श्रीगोविन्दलीलामृतम्

(पञ्चमसर्गत एकादशसर्गान्तम्)

श्रीलकृष्णदासकविराजप्रणीतम्



श्रीबृन्दवनधामवास्तव्येन

श्रीहरिदासशास्त्रिणा सम्पादितम्



श्रीश्रीगौरगदाधरौ विजयेताम्
श्रीश्रीराधागोविन्ददेवौ जयत:

श्रीश्रीगोविन्दलीलामृतम्

(पञ्चमसर्गत एकादशसर्गान्तम्)

श्रील श्रीकृष्णदास कविराज गोस्वामि प्रणीतम्

तथा

श्रीमद् वृन्दावन चक्रवर्ति कृत ''सदानन्दविधायिनी संस्कृतटीकोपेतनम्''
भाषयाचालङ्कृतम्



श्रीवृन्दबनधामवास्तव्येन
न्याय वैशेषिक शास्त्रि-न्यायाचार्य, काव्य, व्याकरण,
सांख्य, मीमांसा वेदान्त तर्क-तर्क-तर्क
वैष्णवदर्शनतीर्थ, विद्यारत्नाद्युपाध्यलङ्कृतेन

श्रीहरिदास शास्त्रिणा

सम्पादितम्



सद्ग्रन्थ प्रकाशक:—
श्रीहरिदासशास्त्री
श्रीगदाधरगौर हरि प्रेस, श्रीहरिदासनिवास,
कालिदह, वृन्दाबन, जिला-मथुरा।
उत्तरप्रदेश

*प्रकाशक:
श्रीहरिदास शास्त्री
अध्यक्ष
* मानव चैतन्य शिक्षा समिति (रजि०)

ॐ विष्णुपाद
लश्रीस्रविनोदविहारी गोस्वामी
महाशय की 'तिरोभाव' तिथि
२७-१२-७७
पौष कृष्णग्र द्वितीया

* प्रकाशन तिथि ।
गुरु पूर्णिमा
११-७-२००६



* प्रथमावृत्तिः - १०००

* द्वितीयावृत्तिः - १०००



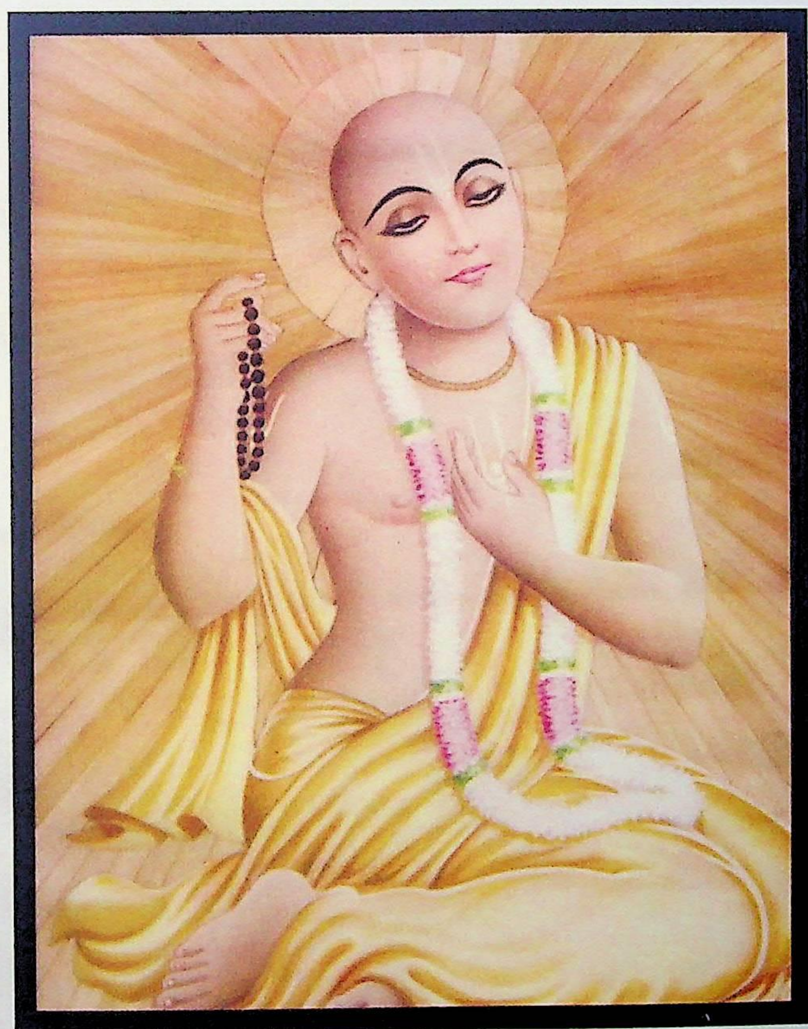
मुद्रण साहाय्यम्
४५०/-
(प्रथमसर्गत -
त्रयोविंशति सर्गान्तम्)



* मुद्रक
श्रीहरिदास शास्त्री
श्रीगदाधर गौरहरि प्रेस
श्रीहरिदास निवास
पुरातन कालीदह
बृन्दावन



।। श्री श्री राधा गोविन्द देव ।।



।। श्री श्री कृष्ण चैतन्य देव ।।



।। श्री हरिदास शास्त्री जी ।।

श्रीश्रीगौरगदाधरौ विज्येताम्।

विज्ञप्ति:

परमकरुण श्रीगौरसुन्दर महाप्रभु की असीम अनुकम्पासे श्रीगोविन्दलीलामृत नामक अनुपम ग्रन्थ प्रकाशित हुआ, यह ग्रन्थ त्रयोविंश सर्गमें पूर्ण है, प्रथम चतुर्थसर्ग पर्यन्त प्रकाशित हुआ है, सम्प्रति पञ्चमसर्ग से एकादश सर्ग पर्यन्त प्रकाशित हुआ, द्वादशसर्ग से त्रयोविंश सर्ग पर्यन्त तृतीय खण्ड का प्रकाशन एक मासके मध्यमें हो जायेगा, विश्रुत कीर्त्ति श्रीपाद कृष्णदास कविराज गोस्वामी प्रस्तुत ग्रन्ध प्रणेता हैं, आपका आविर्भाव शकाब्द १४१८ में पश्चिमवङ्ग प्रदेश के झामटपुर नामक स्थान में हुआ था, पिता का नाम भगीरथ, माता सुनन्दा, भ्राता श्यामदास है, उक्तस्थान, वर्द्धमान जिला के अन्तर्गत काटोआ नामक स्थान के समीप वर्त्ती है।

पिता की चिकित्सा वृत्ति थी, अतः वैद्यकुलोद्भव रूपसे आपकी ख्याति है, आपका पितृवियोग छै वर्ष वयःक्रमके समय होनेसे कृष्णदास, श्यामदास दोनों भ्राता पितृस्वसा के गृहमें प्रतिपालित हुए। बाल्यकाल से प्रबल विषय वैराग्य एवं उतमा भगवद्भक्ति का उदय हृदय में होने से निरन्तर आप अन्तर्मना होकर अध्ययनादि कार्य करते थे। परिणत वयःप्राप्त होनेसे भ्राता श्यामदास को समस्त विषय अर्पण कर श्रीहरिनाम परायण हो गए। एकदिन स्वप्न में श्रीनित्यानन्द प्रभुका आदेश हुआ, अनन्तर आप श्रीवृन्दाबन चले आये और श्रीरूप सनातन, गोपालभट्ट, रघुनाथ भट्ट, रघुनाथदास श्रीजीव गोस्वामी प्रभृतिके आनुगत्य से ही सम्पूर्ण जीवन अतिवाहित किए। प्रेमविलास ग्रन्थके अनुसार आप श्रीरघुनाथ दास गोस्वामी जीके शिष्य थे। श्रीदास गोस्वामी जीके अप्रकट के पश्चात् आपका अप्रकट आश्विन शुक्ला द्वादशी में हुआ, आपकी समाधि श्रीराधाकुण्ड के तीरमें है, आपके रचित श्रीचैतन्य चरितामृत, श्रीगोविन्दलीलामृत एवं श्रीकृष्णकर्णामृत की सारङ्गरङ्गदा टीका का अवलोकन से आपका प्रगाढ़ पाण्डित्य का परिचय मिलता है। आपने अमृतत्रयके परिवेषण द्वारा जगज्जीवों को अमरत्व प्रदान किया है। आपकी काव्यलङ्कार कामतन्त्र गन्धर्व कलाकी अभिज्ञता को देखकर सुधीवर्ग विस्मित होजाते हैं, साहित्य जगतमें अनुपम ग्रन्थ श्रीगोविन्दलीलामृत है, इस में समस्त अलङ्कार, रस, छन्द व्याकरण कोषादि का सर्वोत्तम प्रयोग, सूपविद्या, संगीत विद्या का वर्णन निर्दुष्ट रूपसे हुआ है, यह ग्रन्थ रसाचार्य्य श्रीभरत मुनि मतानुमृत है, काव्य प्रकाश साहित्य दर्पणादि ग्रन्थों में जिसका वर्णन है वह प्राकृत रस

वर्णनात्मक है, गोड़ीय आचार्यों के मतमें प्राकृत में रस शब्दका प्रयोग नहीं हो सकता है, केवल व्रजीय कृष्णमें ही रस शब्दकी चरम पराकाष्ठा है, उनका नाम ही रस है, अतः अप्राकृत रस शास्त्र का प्रणयन आप सबने किया है, भक्तिरसामृत सिन्धु, उज्ज्वलनीलमणि, भक्तिरसामृतशेष, प्रीति सन्दर्भ, अलङ्कार कौस्तुभ, साहित्य कौमुदी, काव्य कौस्तुभ ग्रन्थों में उसका विशद् विवेचन है।

विश्वस्रष्टा का निर्म्माण कौशल की चरम पूर्णता मानव शरीर में जिस प्रकार है, उस प्रकार भगवत्तत्व का चरम विकाश व्रजीय कृष्ण में है, कारण निखिल वाङ्मय में अद्बितीय ग्रन्थ श्रीमद्‌भागवत् है, ओर इसके समस्त अक्षर सार्थक रस स्वरूप श्रीकृष्ण हैं। श्रीचैतन्य मतमें ही श्रीमद्‌भागवत अमल प्रमाण है इसमें भुक्ति मुक्तीच्छा वर्जित परमधर्म का वर्णन है जिसका पूर्णलक्षण- अन्याभिलाषिताशून्यं ज्ञानकर्माद्यनावृतम् आनुकूल्येन कृष्णानुशीलनं भक्तिरुत्तमा शब्दसे हुआ है। इसमें शिक्षित को ब्राह्मण कहा गया है।

पुरुषेष्वपि राजेन्द्र सुपात्रं ब्राह्मणंविदुः।
तपसा विद्यता तुष्ट्या धत्तेवेदं हरेस्तनुम्॥
नन्वस्य ब्राह्मणा राजन् कृष्णस्य जगदात्मनः।
पुनन्तः पाद रजसा त्रिलोकीं दैवतं महत्॥ (७-१४-४१-४२)

धर्म निरुपण प्रसङ्गमें उक्त है—(७-११-७-१२)

धर्ममूलं हि भगवान् सर्ववेदमयो हरिः।
स्मृतश्च तद्बिदां राजन् येन चात्मा प्रसीदति॥
सत्यं दया तपः शौचं तितिक्षेक्षा शमो दमः।
अहिंसा ब्रह्मचर्य्यश्च त्यागः स्वाध्याय आर्जवम्॥
सन्तोषः समदृक् सेवा ग्राम्येहोपरमः शनैः।
नृणां विपर्य्ययेहेक्षा मौनमात्मविमर्शनम्
अन्नाद्यादेः संविभागोभूतेभ्यश्च पर्थाहतः।
तेष्वात्म देवताबुद्धिः सुतरां नृषु पाण्डव॥
श्रवणं कीर्त्तनश्चास्य स्मरणं महतां गतेः।
सेवेज्यावनतिर्दास्यंसख्यमात्मसमर्पणम्॥
नृणामयं परोधर्मः सर्वेषां समुदाहृतः।
त्रिंशल्लक्षणवान् राजन् सर्वात्मा येन तुष्यति॥

इसका सारसङ्कलन श्रीगोविन्दलीलामृतके त्रयोदशसर्गके ११३ में मिलता है।

तृष्णावन्यजनस्य तृप्तिमयिता दुःखेमहादुःखिता।
लब्धैः स्वीयसुखालिदुःखनिचयैर्नोहर्षवाधोदयाः॥

स्वेष्टाराधन तत्परा इह यथा श्रीवैष्णवश्रेणयः।
कास्ताब्रूहि विचार्य्य चन्द्रवदने ता मद्वयस्याइमाः।।

इस मतमें श्रीराधा सहित श्रीकृष्ण उपास्य है, आराध्य तत्त्व श्रीकृष्ण हैं, श्रीराधा श्रीकृष्ण की ह्लादिनी सम्वित् नामिका स्वरूप शक्तिरूपा हैं, उनके परिकर ह्लादिनी शक्ति के पत्रपुष्प स्वरूप हैं, अतः इसमें अद्वय तत्त्व श्रीकृष्ण सेवाके लिए श्रीराधा नामिका पर्य्याप्त सामग्री है, भगवत् प्रेयसीरूपा लक्ष्मीगण, कवित्वसङ्गीतादिरूपा सरस्वतीगण, मेधाप्रतिमादिरूप बुद्धिवृत्ति समूह, धर्म, अर्थ काम, सम्पद्रूपा विभूतिगण, शोभास्वरूप, चामरव्यंजनादि श्रीकृष्ण सेवाके उपकरणादि युक्ता श्रीराधा हैं।

श्रीकृष्ण एवं कृष्ण सम्बन्धी समूह पदार्थों को श्रीराधाकी भाँति निज आचरणसे नित्य उल्लसित देखना ही इस धर्मका प्राण है। अतः इस पारमहंस्य संहितोक्त धर्ममें कामाभ्यासरूप विवाह सम्बन्ध नहीं है, "प्रभवति नहि गाढ़ प्रेमणिधर्माद्यपेक्षा" रीति से नित्य ममतास्पद में निरापत्ता के लिए लौकिक समर्थन की आवश्यकता बलवती नहीं होती है। यह अलौकिक परकीयावाद है। भरतमुनिने इसको स्वीकार किया है, लौकिक में यह अस्वीकार्य है,—

नेष्टा यदङ्गिनीरसे कविभिःपरोढ़ा। तद्गोकुलाम्बुजदृशं कुलमन्तरेण।।
आशंसया रसविधेरवतारितानां। कंसारिणा रसिकमण्डलशेखरेण।। (उज्ज्वल)

श्रीकृष्ण ही मूल अवतारी है, समस्त रस वेत्ताओं में शेखर स्वरूप हैं, रस विधिका आस्वादन कर प्रवर्त्तनके लिए निज स्वरूप शक्तिभूत परिकर वर्गों को पृथिवी में अवतीर्ण कराकर स्वयं अवतीर्ण होकर, निज स्वरूपशक्ति में अवस्थित होते हैं, परिकर समूह भी स्वयं होते हैं। इसके मुख्य प्रचार केन्द्र व्रजधाम है, परिकरों में प्रेयसी मुख्य हैं, उनमें श्रीराधिका श्रेष्ठा है लीलास्वादन के लिए एक ही अद्वय तत्त्व बहुधा प्रकाशित होते हैं। शृङ्गार अति उत्तम वर्णन ममत्वास्वादन है, प्राकृत कामभोग नहीं है, वह सर्वानुभूत है, उसके वर्णन की आवश्यकता नहीं होती है, कृष्णलीलास्वादन से कामवासनाविनष्ठ हो जाती है, शृङ्गार का वर्ण गंभीरता के कारण श्याम होता है, अधिष्ठातृ देवता भी श्रीकृष्ण ही है, राधिका भक्तिशक्ति है, वर्ण पीत है, अशेष नायिकावस्था प्राकट्याद्भुतचेष्ठिते। श्रीरूपगोस्वामीकृत चाटुपुष्पाञ्जलि। उक्त दिव्य रसकी छायामात्र ही लौकिक रस है, इसमें विभावादि रस सामग्री का वैरूप्य वैकृत्य स्वाभाविक है। अप्राकृत रस तत्त्व श्रीकृष्ण चन्द्रमें उपचय की सम्भावना ही नहीं है, श्रीकृष्ण नित्य किशोर हैं, उनमें प्राकृत नायकों के समान वयःक्रमका परिणाम नहीं है, प्राकृत रसशास्त्रवेत्ताने प्राकृत नायक नायिका के अवलम्बन

से जिस रसका प्रतिपादन किया है, वह अलौकिक रसके समान नहीं है, अति विरस है, रसके मूलकारण-नायक नायिका प्राकृत होने से किसी भी प्रकार से उसे रस सामग्री कही नहीं जा सकती है। काव्यादि में प्रतिभाके द्वारा वह गुम्फित होने पर रसास्वादकों की आस्वादन दृष्टि में उसे अलौकिक मान लेते है, लौकिक रसविद् आचार्यों का यह मत है, किन्तु परिणाम में वह अत्यन्त दुःखद है, अतः श्रीचैतन्य मतीय वैष्णवाचार्यों ने उस प्राकृत रस को तुच्छ तथा परिणाम में दुःखद मानकर अप्राकृत (भगवद् सम्बन्धि) रस को ही परम सुखरूप एवं परम आस्वाद्य स्वरूप माना है, श्रीभगवद् रस, कार्य कारण, उभय अवस्थाओं में नित्य आनन्दरूप होता है।

प्रस्तुत ग्रन्थ उक्त पद्धति से ही रचित है, श्रीकृष्ण में परकीया भाव दूषण नहीं है, "भजते तादृशी क्रीड़ा या श्रुत्वा तत्परोभवेत्" रीतिसे वह असमोर्द्ध रसचर्वण के कारण परम उपादेय है।

निगमकल्पतरोर्गलितं फलं शुकमुखादमृतद्रवसंयुतम्।
पिबत भागवतं रसमालयं मुहुरहो रसिका भुवि भावुकाः॥ (भाः १।१।३)

वस्तुतः श्रीराधिकादि प्रेयसीवर्ग श्रीकृष्ण की स्वरूपशक्ति है, उसमें दोषावकाश कहाँ है, यह परदाराभिमर्शन नहीं है, किन्तु हृद्रोगरूप कामनाशक है। मनुष्य शरीर धारण का एकमात्र लक्ष्य विवाह होने के कारण लोक व्रजीय कृष्णलीलाको वैवाहिक सुखाशीलन मानते हैं, यह तो इस प्रसङ्ग में बीभत्य रसका आस्वादन कराता है, रास पञ्चाध्यायी के उपसंहारस्थ श्लोक की व्याख्यामें श्रीसनातन गोस्वामी पादकी उक्ति इस प्रकार है — किमुतेति-अखिलसत्त्वानां सर्वजीवानां तिर्य्यगादयः, क्रमेण तामस राजस सात्त्विका, ईशितव्यानां स्वभावत एव नियम्यानामिति मुक्तानामपि तदधीनता सूचिता, कुशलाकुशले पुण्यपापे ताभ्यामन्वयः सम्पर्कः, सर्वनियन्तृत्वेन नियामकामावात् परमस्वतन्त्रत्वाच्च एतदेवहि परमेश्वरत्वं नामेति भावः॥

श्रीचैतन्यदेवके आदेशानुसार भागवत रसको जाननेके लिए श्रीरूपगोस्वामी पादने रसदर्शनात्मक श्रीभक्तिरसामृत सिन्धु, उज्ज्वल नीलमणि ग्रन्थका प्रणयन किया है, यह पाञ्चरात्रादि शास्त्र सम्मत है, अन्याभिलाषिता शून्यं, उत्तमाभक्ति लक्षण से अलङ्कृत है। उक्त उत्तमाभक्ति में मनुष्य मात्र का अधिकार है। क्लेशघ्नीशुभदा, मोक्षलघुताकृत् सुदुर्ल्लभा सान्द्रानन्दविशेषात्मा श्रीकृष्णाकर्षिणी मता, रूपसे साधन भाव प्रेमभक्ति का प्रदर्शन कार्य के द्वारा क्रमशः विभाग उसका हुआ है। पश्चात् भक्तिके चौषट अङ्गोंका विचार प्रसङ्ग में श्रवण कीर्त्तन स्मरण पादसेवन अर्चन वन्दन दास्य सख्य आत्मनिवेदन रूप

नवधा भक्ति का उत्कर्ष दिखलाकर समस्त अङ्गोमें - (१) श्री भागवतास्वाद, (२) श्रीनामसङ्कीर्त्तन, (३) श्रीमूर्त्ति सेवा, (४) मधुरावास, (५) श्रीकृष्णभक्तसङ्ग रूप पञ्चधा भक्तिका सर्वोत्तमत्व प्रतिपादित हुआ है।

वह भक्ति वैधी रागानुगा भेदसे द्विविध है, शास्त्रानुशासन से प्रवृत्त होकर शास्त्रानुसार सेवन को वैधी, एवं लोभसे प्रवृत्त होकर शास्त्रानुसार सेवन को रागानुगा कहते हैं। परम अभीष्ट वस्तु श्रीकृष्ण है, स्वाभाविकी प्रेममयी तृष्णा को राग कहते हैं। वह तृष्णा व्रजवासियों में होती है, अतः उनको रागात्मिका कहते हैं, उनकी अनुगता भक्ति ही रागानुगा है। साधक के लिए विशेष क्रम भक्तिरसामृतसिन्धु में है-सोपान इस प्रकार है श्रद्धा, साधुसङ्ग, भजन क्रिया, अनर्थ निबृत्ति, निष्ठा, रुचि, आसक्ति, भाव, प्रेम, नवविध है, साधक भक्ति की स्थिति प्रेमपर्यन्त है, परिपक्व अवस्था को जात रति कहते हैं, यह जीवन्मुक्ति है, मृत्युके वाद भावनानुरूप प्रकट लीलामें सच्चिदानन्दमय परिकर शरीर की प्राप्ति होती है। भावना-शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्य, मधुर भावानुगत्य से होती है, किन्तु व्रजमें दास्य, सख्य, वात्सल्य, मधुर का प्राधान्य है, कृष्णनिष्ठा तृष्णा त्यागरूप शान्त, अपने गुणोंसे सर्वत्र प्रच्छन्नरूप से रह जाता है। समस्त भावों की चरम पराकाष्ठा मधुर में होने से उसे शृङ्गार शुचि उज्ज्वल शब्दसे कहते हैं, लौकिक कामके साथ इसका कोई सम्बन्ध नहीं है, यह शृङ्गार उपरोक्त भक्ति लक्षणाक्रान्त है, काम स्वसुख तात्पर्य पूर्ण अन्धतम है, प्रेम उज्ज्वल भास्करस्वरूप चित्शक्ति है, अतः प्राकृत काम नामक चिरानुभूत पदार्थ के साथ व्रजभक्ति का कुछभी सम्पर्क नहीं है, नित्य परिकर व्रजगोपीगणों में श्रीराधिका गुणोंसे अति वरीयसी है, उनमें भाव उत्तरोत्तर वर्द्धित होकर प्रेम, स्नेह, मान, प्रणय, राग, अनुराग, भाव, महाभाव रूपमें प्रकाशित होता है, वर्द्धित असमोर्द्ध महाभाव रूपा ही श्रीराधा है। मनोमूल संसार होने के कारण स्मरणाङ्ग का इसमें प्राधान्य है।

तन्मनस्कास्तदालापास्तद्विचेष्टास्तदात्मिकाः।
तद्गुणोनेव गायन्त्यो नात्मागाराणि सस्मरुः।।
तस्मात् केनाप्युपायेन मनः कृष्णे निवेशयेत्।।

श्रीरूपगोस्वामी पादने भक्तिरसामृतसिन्धु में कहे—

कृष्णं स्मरन्जनश्चास्य प्रेष्ठं निजसमीहितम्
तत्तत्कथारतश्चासौ कुर्य्याद्वासं व्रजेसदा।
सेवासाधकरूपेण सिद्धरूपेण चात्र हि
तद्भावलिप्सुना कार्य्या व्रजलोकानुसारतः।।

साधकरूपेण–यथावस्थितदेहेन, सिद्धरूपेण–अन्तश्चिन्तिताभीष्ट तत् सेवोपयोगिदेहेन।। (दुर्गमसङ्गमनी टीका)

श्रीसनातन गोस्वामीजी के मतमें भक्ति परम दुर्ल्लभ, परमोपादेय है, रागानुगा भक्तिका अधिकारी व्यक्ति भी अति विरह है। इसमें प्रथमतः मुक्त होना आवश्यक है, अशुद्ध चित्तसे अन्यासक्त चित्तसे भगवत् स्मरण नहीं होता है। अतः प्राकृत स्त्री भावनासे कामाभ्यास ही होगा, अतः श्रीजीव गोस्वामी जीने कहा है–किन्तु रहस्यलीला तु पौरुषविकारवदिन्द्रियैः पितृ पुत्रदासभावैश्च नोपास्या, स्वीयभावविरोधात्, रहस्यत्वञ्च-क्वचिदल्पांशेन क्वचित्तु सर्वांशेनेति ज्ञेयम्।।

श्रीराधाप्राणबन्धोश्चरणकमलयोः केशशेषाद्यगम्या
या साध्याप्रेमसेवा व्रजचरितपरैगढिलौल्यैकलभ्या,
सा स्यात् प्राप्ता यया तां प्रथयितुमधुनामानसीमस्यसेवां
भाव्यां रागाध्वपान्थैव्रजमनुचरितं नैत्यिकंतस्यनौमि।। (गोविन्दलीलामृत १-३)

श्रीराधा प्राणबन्धु की यह दैनन्दिनी लीला सर्वोत्कृष्ट वस्तु है, इसका आस्वादन अनुशीलन कामादि रहित परमपवित्र चिन्मय गोपीभाव विभावित चित्तसे ही सम्भव है। वर्णनीय विषय का मौलिक आदर्श पद्मपुराणीय पाताल खण्ड एवं सनत्कुमार संहिता के ३६ पटल में है, तदनुसार श्रीरूप गोस्वामी जीने मतान्तर में श्रीकृष्णदास कविराज जीने दशश्लोकों में उसका क्रमबद्ध किया, उक्त दशश्लोक की विस्तृति गोविन्दलीलामृत ग्रन्थ है।

प्राचीन कालमें धर्म,-देहेन्द्रिय पोषण का साधन नहीं था, वीतराग जनगण सततासे इसका अनुशीलन करते थे। पञ्चम सर्गसे एकादशसर्ग पर्य्यन्त वर्णित विषयों का सङ्कलन निम्नोक्त रूप है।

पञ्चम सर्गमें—पूर्वाह्नलीला–पूर्वाह्नलीला का सूत्र (१) गोष्ठ का वर्णन (१-९), गोचारण हेतु प्रस्तुतीकरण–(१०-१२), व्रजजनोंका आगमन–(१३-१७) प्रेयसि वर्गके द्वारा श्रीकृष्ण दर्शनादि (१९-२२), सखा समूहके मातृवर्ग का श्रीकृष्णके प्रति स्नेहोत्कर्ष यशोदा 'मा' द्वारा वात्सल्य प्रकटन, आक्षेपादि (२३-२७), निवारण के प्रत्युत्तर में श्रीकृष्णका कथन, नीति कथन (२८-२९), बलदेवादि के हाथमें यशोदाके द्वारा कृष्णर्पण, रक्षा बन्धनादि (३०-३७), प्रियावर्ग से अनुमति प्राप्त करने के लिए कटाक्ष निक्षेप, उत्तर में भाव मोहित कटाक्ष प्राप्ति (३८-४३), बन गमन, माता पिताका पशाचाद् गमन, कृष्णके द्वारा निवारण, सन्तोष वाक्य (४४-५०), कान्ताओं के प्रति विनय व्यवहार, बनमें प्रवेश संज्ञाविहीन अवस्थामें कुन्दबल्ली के द्वारा प्रियावर्ग का आनयन, जीवन्मुक्त रीतिसे कर्माचरण का दृष्टान्त (५१-५९),

कुन्दवल्ली के द्वारा जटिला के समीप में सविवरण श्रीराधाका समर्पण, जटिला के द्वारा सूर्य्यपूजा के निमित्त श्रीराधिका को आदेश प्रदान (६०-७३), श्रीराधा का विश्राम, सखीवृन्दों के द्वारा परिचर्य्या, बृन्दा द्वारा पुष्प प्रेरण, माल्यग्रन्थन, ताम्बुल वीटिका निर्म्माण, कृष्णके लिए कस्तुरिका तुलसी द्वारा ताम्बुल वीटिका प्रेरण (६४-६८), श्रीराधाके द्वारा श्रीकृष्ण के निमित्त विभिन्न प्रकार पक्वान्न का निर्म्माण तथा श्रीकृष्ण प्राप्ति के लिए चरम उत्कण्ठित होने का विवरण है (६९-८०)

षष्ठ सर्गमें—गोष्ठगमन के पश्चात् सखागणों के नृत्यगीत, हास्य परिहासादि, वनस्थ वृक्ष, लता, पशु-पक्षीके प्रति श्रीवृन्दाका कथन, कृष्ण द्वारा बनशोभा दर्शन, भोज्य बस्तुको लेकर धनिष्ठा का आगमन, धनिष्ठाके साथ पिता माता सम्बन्धीय कथोपकथन, मानस गङ्गामें जलकेलि समापन के अनन्तर सखावृन्द के साथ भोजन, श्रीराधा का आगमन बिषय में श्रीकृष्ण का परामर्श, श्रीराधा द्वारा प्रेरित तुलसी के साथ श्रीकृष्णका साक्षात्कार, राधाकुण्डस्थ कुञ्ज में मिलनार्थ तुलसी के निकट वर्णन, श्रीकृष्ण के समीपमें चन्द्रावली की सखी शैव्या का आगमन, गौरी तीर्थ में चन्द्रावली को लेजाने के निमित्त शैव्याके प्रति श्रीकृष्णका कथन प्रभृति वर्णित है। (१-८६)

सप्तम सर्गमें—राधाकुण्ड का वर्णन, घाट, मण्डप, हिन्दोला, रत्न सेतु, वृक्ष, कुट्टिम, चतुःशाला, पुष्पकुञ्जश्रेणी, पुष्पवन, उपवन, जलमध्यस्थित मन्दिर, तीरस्थित सेवोपयोगि द्रव्य गृहानि (१-१४), वृन्दाकृत सेवा, केलि उपकरणादि (१५-१७), जलचर, स्थलचर, पक्षियों की ध्वनि, पुष्पादि की शोभा, अष्ट कुञ्ज, शिल्पशाला, मार्गादि, द्वारों की शोभा (१८-३०), ललिता नन्ददा नामक उत्तरदिक् के कुञ्ज, उसकी कर्णिका, शाखाकुञ्ज, पद्ममन्दिर, हिन्दोल कुट्टिम, शाखा कुञ्ज, समूहका वर्णन (३१-४२), ईशान कोण में बिशाखा के मदनसुखद नामक, पूर्वमें चित्रा का चित्रानन्दद, अग्निकोण में इन्दुलेखा सुखद पूर्णेन्दु कुञ्ज, दक्षिण में चम्पकलताके हेमकुञ्ज, नैऋतमें रङ्गदेवी के श्यामकुञ्ज, राधाकुण्ड के मध्यभागमें अनङ्गमञ्जरी के पद्मकुञ्ज का वर्णन-(१००), कुण्डमहिमा, श्रीराधा के अङ्गसाम्य दर्शन में श्रीकृष्णकी उत्प्रेक्षादिका वर्णन (११०), श्यामकुण्ड का वर्णन (११३), वायु कोण में सुवलानन्दद नामक श्रीराधाके श्रीकुञ्ज एवं मानसपाववन घाट का का वर्णन (११४-११५), उत्तर में मधुमङ्गलानन्दद नामक ललिता के कुञ्ज, ईशान में उज्ज्वलानन्दाख्य विशाखा के कुञ्ज का वर्णन (११६-११८), मदनसुखद कुञ्जमें श्रीकृष्णका आगमन एवं मिलनोत्कण्ठादि बर्णित है।

अष्टम सर्गमें—मध्याह्न लीलासूत्र (१), श्रीकृष्णमिलनार्थ श्रीराधा की उत्कण्ठा (२-८), तुलसी का प्रत्यागमन से आनन्द (९), ललिता का प्रवोधन वाक्य (१०-१६), उत्कण्ठा का प्रावल्य (१७-१८), शुभ लक्षण दर्शन (१९-२०) धनिष्ठा का आगमन (२१), विवरण श्रवण (२२-३६), धनिष्ठा वाक्यसे प्रोत्साहित होकर श्रीराधा का बन गमन, भाववैचित्त्य (३८-६१), धनिष्ठा का कथन (६२-६४), श्रीसूर्य्य के मन्दिर में प्रबेश, प्रणाम, प्रार्थना, श्रीसूर्य्य बरप्राप्ति (६४-६९), परिहासादि, मिलनार्थ वृन्दा द्वारा आश्वास वाक्य प्रदान (७०-१०५), परस्पर दर्शन, परस्पर का सात्त्विक विकार (१०६-११२), सखियों की उक्तिसे राधा का विस्मय, उभय का सात्त्विक भाव, परस्पर के गुण वर्णन (११३-११५)।

नवम सर्गमें—समस्त सञ्चारिभावों का प्रदर्शन (१-१०), श्रीराधा के अङ्गमें विलासादि भावोद्गम-पुष्पचयन लीला (११-१२), मौन भङ्गके लिए कृष्ण की विविध चेष्टा (१३-३८), श्रीराधिका के तात्कालीन भावादि (३९-४७), गमनचेष्टा एवं वाधा प्रदान विविध भावोद्गम का वर्णन (४८-६७), नवग्रह पूजा (६८-९३), दिग्पुजा छलसे सखियों के साथ रसलीला (९४-१०६) वणित है।

दशम सर्गमें—श्रीकृष्ण की पशुपति लीला (१-७), श्रीराधिकाके सम्मुख में भ्रमरका आगमन, चकित, भावोद्गम, सखियों का आनन्द बिस्तार (८-१९), श्रीराधाके वाम्यतादिका वर्णन, श्रीललिता की परिहासोक्ति, आनन्दातिरेक से श्रीकृष्ण के हस्तसे वंशी का पतन (२०-३२), श्रीकृष्ण की राहु सम्बन्धि लीला, वंशीका अन्वेषण, कौतुकादि (३३-१४३), रहस्य लीलादि (१४४-१४९), बर्णित है।

एकादश सर्गमें—बृन्दा-नान्दीमुखी का आगमन, राधामाधव के परस्पर वेशविन्यास (१-७), श्रीराधाङ्ग दर्शनकर सखियों की परिहासोक्ति (८-१७), सखियों के द्वारा श्रीराधाङ्ग वर्णन छलसे निखिल अलङ्कारों की सार्थकता, आनन्द आस्वादन (१८-१४५), वर्णित है।

पत् पीतं श्रुतिवाङ्मनोभि नरिशं तृष्णाप्रदं त्वद्भुतं।
संसारामयहार्य्यपि प्रणयजोन्मादान्ध्य मोहादिकृत्।।
शश्वच्चर्वितमेव भूरि रसदं देहादिहृत् पुष्टिदम्।
तज्जीयादमृतस्पृहाहरमिदं गोविन्दलीलामृतम्।। (१–५)

श्रीहरिदास शास्त्री

श्रीगोविन्दलीलामृतम्

पञ्चमसर्गः

— ❋❋ —

पूर्व्वाह्णे धेनुमित्रैर्विपिनमनुसृतं गोष्ठलोकानुजातं
कृष्णं राधाप्तिलोलं तदभिसृतिकृते प्राप्ततत्कुण्डतीरम् ।
राधाञ्चालोक्य कृष्णं कृतगृहगमनामार्य्ययार्कार्च्चनायै
दिष्टां कृष्णप्रवृत्त्यै प्रहितनिजसखीवर्त्मनेत्रां स्मरामि ॥ ॥१॥

स मन्द्रघोषाभिधशृङ्गघोषैः संस्तोषयन् घोषमपास्तदोषैः ।
सम्मोहयन् हृद्व्रजसुन्दरीणां संपोषयन् प्रेम बहिर्जगाम ॥ ॥२॥

कृष्णं राधां च स्मरामि कृष्ण कीदृशं पूर्व्वाह्णे धेनुमित्रैः सह विपिनमनुसृतं विपिने गतं गोष्ठलोकैरनुयातमनुसृतं राधाप्तिलोलं राधया आप्तये प्राप्तये राधाप्राप्त्यर्थं लोलं। तस्या राधाया अभिसृतिरभिसारस्तत्कृते तदर्थं प्राप्तं तस्याः राधायाः कुण्डतीरं येन तं। राधां कीदृशीं। कृष्णमालोक्य कृतं गृहे गमनं यया तां। आर्य्यया जटिलयाऽर्कः सूर्य्यस्तदर्च्चनार्थं दिष्टां प्रेरितां कृष्णस्य प्रवृत्त्यै वार्त्तार्थं प्रहितनिजसखीनां मार्गे नेत्रे यस्यास्तां। वार्त्ता प्रवृत्तिर्वृत्तान्त इत्यमरः ॥१॥ स कृष्णः मन्द्रो गम्भीरो घोषो यस्य तत्तदाभिधं मन्द्रघोषाभिधं शृङ्गं तस्य घोषैः शब्दैः। कीदृशैः अपास्तो दूरीकृतो दोषो जगतां समस्तदोषो यैस्तैः करणैः घोषं आभीरपल्लीं सन्तोषयन् व्रजसुन्दरीणां

गान्धर्वा दास्यलुब्धेन हरिदासेनशास्त्रिणा
कृतेयं विमलाभाषा सज्जनानाञ्च तुष्टये ॥

कृष्ण एवं राधाको स्मरण करता हूँ, जो पूर्वाह्नमें धेनु और मित्रगण के साथ वन गमन करने पर श्रीनन्द यशोदा प्रभृति व्रजवासिगण श्रीकृष्ण के पश्चात् पश्चात् जाते हैं, जो श्रीकृष्ण श्रीराधा के साथ मिलित होने के लिए सतृष्ण होकर अभिसार कर श्रीराधाकुण्ड के तीरदेश में उपस्थित होते हैं मैं उन श्रीकृष्ण को स्मरण करता हूँ । एवं जो राधा आर्य्या जटिला द्वारा प्रेषित होकर सूर्यदेव की अर्चना निमित्त जाकर सखियों से श्रीकृष्ण की वार्त्ता प्राप्त होने के लिए उत्कण्ठा से सखियों के आगमन पथ की प्रतीक्षा करती हैं, मैं उन श्रीमती राधाका चिन्तन करता हूँ ।।१।। अनन्तर श्रीकृष्ण प्रातःकाल में गोचारण हेतु यात्राके समय जगत् के अमङ्गलहारि मन्द्रघोष नामक शृङ्गके शब्द से पल्लीस्थ लोक समूह को सन्तोष प्रदान करते हुए एवं व्रजाङ्गनागणों

गोमयोत्पलिकाकूटैर्गिरिशृङ्गनिभैर्युतम् ।
बासितावासमत्तानां षण्डानां सङ्गरोद्धुरम् ॥ ॥३॥

कृष्णलीलां प्रगायद्भिर्विहसद्भिः परस्परम् ।
गोमयावचयव्यग्रैः गोपदासीशतैर्वृतम् ॥ ॥४॥

गोयानवत्सावरणव्यग्रगोपशतान्वितम् ।
गोमयोत्पलिका कृद्भिर्जरद्गोपीगणैर्युतम् ॥ ॥५॥

गवां स्थानीश्रेणीस्फुरितमभितोऽल्पावृतिचयो-
ल्लसद्वत्सावासस्फुरिततलवृक्षावलिचितम् ।
करीषक्षोदस्योच्चयमृदुलभूमितलमसौ
व्रजाभ्यर्णं पूर्णं व्रजधनजनैर्वीक्ष्य मुमुदे ॥ चतुर्भिः कुलकं ॥ ॥६॥

कृत्स्नं मोहयन् प्रेम च सम्पोषयन् वहिर्जगाम ॥२॥ असौ श्रीकृष्णः व्रजस्य धनैर्गोभिर्जनैश्च पूर्ण व्रजाभ्यर्णं व्रजसमीपं वीक्ष्य मुमुदे इति चतुर्थेनान्वयः। व्रजाभ्यर्णं कीदृशं व्रजे विटोरा इति ख्यातेः गोमयोत्पलिका व्रजे उपलाख्या तस्याः वूटं समूहो यत्र तैः कीदृशैः गिरिशृङ्गसदृशैर्युतम्। वासिता ऋतुमत्यो गावः तासां वासेन गन्धेन मत्तानां षण्डानां सङ्गरेण युद्धेन उद्धुरं। गोमयस्यावचये आहरणे व्यग्रैर्गोपदासीशतैर्वृतं। गोयाने गवां गमनसमये वत्सानामावरणे रक्षणे व्यग्रगोपशतैरन्वितं। गोमयेन उपलिकाः उपलाख्या तां कृद्भिर्वृद्धगोपीगणैर्युतं। गवा स्थानं गोस्थानं तेषां श्रेणीभिः स्फुरितं।

के मनको विमोहित एवं प्रेमका पोषण करते-करते घरसे वाहर निकल आये ।।२।। आप व्रजभूमि की शोभा को देखकर अत्यन्त आनन्दित हो गये, कहींपर पर्वतश्रेणी के शिखरों के समान कण्डोंके ढेर दिखाई पड़े, और किसी-किसी स्थानपर गौओं की ऋतु रक्षाके लिए पालित साँड़ों की अतिशय लड़ाई हो रही थी।।३।। कहींपर शत-शत गोपदासीगण गोबर इकठ्ठा करते समय श्रीकृष्ण लीलाको गागाकर तन्मय हो रहीं थीं, किसी स्थानपर गोपगण गौओं को वन ले जाते समय इधर-उधर चरते हुए उनके वच्चों को पकड़ -पकड़ कर बाँध रहे थे। कहीं पर गोपाङ्गनागण बुड्ढीयों के साथ गोवर के कण्डे थाप रही थीं।।४-५।। किसी स्थान में अनेक गोशाला वनी हुई हैं, और उसके निकट में वृक्षों से शोभित बछड़ों के रहने का स्थान है, कहीं सूखे कण्डों का ढेर है, और उसके चूर्णों से वह स्थान अति मृदुल बनगया है।।६।।

तर्णकारोधनव्यग्रगोपयादोगणान्विताः ।
उच्छलद्गोपयः पूराः दुग्धभाण्डानि कच्छपाः ॥ ॥७॥

गोशकृच्चयनासक्तगोपीवक्त्र सरोरुहाः ।
सितारुणचलद्वत्सहंसकोककुलाकुलाः ॥ ॥८॥

निर्गच्छद्धवलापङ्क्तिनदीर्गोपुच्छशैवलाः ।
गवालयसरःश्रेणीः पश्यन् स मुमुदे हरिः ॥ ॥९॥

सन्दानितकं ॥
अनुव्रजन् स्वोर्ध्वमुखं व्रजेन्दुर्व्रजेन्द्रनिष्कासितगोव्रजं सः ।
व्रजाद्विकर्षन् व्रजवासिलोकान् वनाय वव्राज सखिव्रजेन ॥ ॥१०॥

अल्पावृतीनां चयेन समूहेन उल्लसद्वत्सावासैः। स्फुरितं तलं यासां ताभिर्वृक्षावलिभिश्रितं व्याप्तं। करीषक्षोदस्य शुष्कगोमयचूर्णस्य उच्चयेन मृदुलं भूमितलं यत्र तत् ॥३-६॥ हरिः गवालय एव सरः सरोवरः तस्य श्रेणीः पश्यन् मुमुदे। सरोवरविशेषणान्याह। निर्गच्छन्त्यो धवला पङ्क्तिरूपनद्यो याभ्यस्ताः। तर्णकानां वालवत्सानामारोधने व्यग्रा गोपा एव यादो गणाः जलजन्तुसमूहास्तैरन्विता युक्ताः। उच्छलद्भिर्गवां पयोभिः पूर्य्यन्ते इति पूराः पूर्णाः उच्छलन्तो गवां पयसां पूराः समूहा यत्र इति वा दुग्धभाण्डानामालयः श्रेण्य एव कच्छपाः यत्र दुग्धभाण्डा कृष्णवर्णा एव भवन्ति अतः वर्णसाम्यादुक्तं। गवां शकृत् गोमयं तस्य चयने ग्रहणे आसक्तानां गोपीनां मुखान्येव सरोरुहाणि यत्र। शुक्लारुणवर्णचलद्वत्सा एव हंसचक्रवाकसमूहाः यत्र ताः गवां पुच्छा एव शैवला यत्र ताः ॥७-९॥ यत्र श्लोकत्रयेणान्वयो भवेत्तत्र सन्दानितकमिति। यत्र श्लोकद्वयेन तत्र युग्मकम्। यत्र चतुर्भिः श्लोकस्तत्र कुलकमिति वोध्यं। सव्रजेन्दुः कृष्णः

वहाँ की शोभा को देखकर श्रीहरि अतिशय आनन्दित हो रहे थे, वहाँ की गोशालायें सरोवर की भाँति शोभित हो रही थीं, वहाँसे जो धवला गायें पंक्ति रूपमें निकलती थीं मानो वह उस सरोवर का स्रोत था। गायों के स्तनों से जो दूध निकल रहा था, मानो उसका ही जल है, वछड़ों के पकड़ने में चञ्चल समस्त गोपगण मानो उसमें जलजन्तु ग्राह थे। गोबर इकट्ठे करने वाली व्रजाङ्गनाओं के मुख, मानो उस सरोवर के प्रस्फुटित कमल हैं। सफेद और लालवर्ण के गोवत्स मानो उसके किनारे पर रहने वाले हंस और चक्रवाक हैं, और सवगायों की पुच्छ मानो शैवालके समान शोभा पा रही थी। सन्दानित है।।७-९।। व्रजचन्द्रमा श्रीकृष्ण, व्रज की इस प्रकार शोभा

रजोऽम्भोभिः शम्भोरपि च विधिदम्भोलिकरयोः
परां शुद्धिं वुद्धीन्द्रियचयनिरुद्धिं विदधती।
लुलाप्याल्या पाल्या रविदुहितृकाल्याथ मिलिता
गवां श्रेणी श्वेनी द्युसरिदिव वेणीभ्रममधात्॥ ॥११॥

वनाय गच्छन् वनजेक्षणो हरिर्यतोयतः सन्निदधे पदाम्बुजम्।
ततस्ततः सा व्रजभूः समुत्सुका प्रकाशयामास हृदम्बुजं स्वकम् ॥१२॥

तच्छ्रीपदस्पर्शभरप्रमोदैः सा फुल्लरोमाञ्चितसर्व्वगात्री
ननन्द कृत्यानि तृणानि भूयः खुरैः क्षताङ्गानि च रोहयन्ती॥ ॥१३॥

व्रजेन्द्रेण श्रीनन्देन निष्कासितं गोसमूहं। कीदृशं स्वोर्द्ध्वमुखं स्वस्मै स्वदर्शनार्थमूर्द्ध्वं मुखानि यस्य तं। अनुव्रजन् व्रजवासिलोकान् विकर्षन् सखि व्रजेन सह व्रजाद्वनाय वव्राज ॥१०॥ पाल्याः पालनीयाः श्वेतवर्णा गवां श्रेणी। रविदुहितृ-काल्या रविदुहिता यमुना तद्वत् काली कृष्णवर्णा तथाभूतया लुलाप्याल्या लुलापीनां महिषीणामाल्या श्रेण्या मिलिता सती लुलाप्याल्या इति पाठे एकविशेषः। रजोऽम्भोभिः रजोरूपजलैः शम्भोर्महादेवस्य विधिदम्भोलिकरयोः ब्रह्मेन्द्रयोरपि परांशुद्धि बुद्धीन्द्रियचयस्य निरुद्धिमन्यत्राप्रवृत्तिं च विदधती सती द्युसरिद्गङ्गा सैव वेणीभ्रमं त्रिवेणीभ्रममधात् गङ्गा यथा यमुना सरस्वतीभ्यां मिलिता त्रिवेणी भवति तथा गवां शुक्लत्वात् गङ्गात्वं महिषीणां कृष्णत्वात् यमुनात्वं रजसां धूषरत्वात् सरस्वतीत्वमुपमा। यथा कथञ्चित् साधर्म्यमुपमानोपमेययोः उपमेति। लुलापो महिषो वाहद्विषत् कासर सैरिभा इत्यमरः ॥११॥ वनाय गच्छन् हरिर्यत्र पदाम्बुजं सन्निदधे तत्र तत्र सा व्रजभूः स्वकं हृदम्बुजं

को देखते देखते, सकल वयस्यों के साथ प्रसन्न मन उन गौओंके पीछे-पीछे जिनको व्रजेन्द्र नन्द महाराजने वन ले जाने के लिए खोला था, और वनकी ओर जाने के लिए ऊपर को मुख की हुई थी, वनकी ओर प्रस्थान करने लगे और व्रजवासियों के मन प्राण को भी आकर्षण कर लिए।।१०।। वनगमन के समय सफेद वर्णकि अनेक गौएँ एवं कृष्णवर्ण भैसों की श्रेणी जब मिल जाती थी तब प्रतीति होती थी कि मानो गङ्गा तथा यमुना मिलकर वेगसे चल रही हैं। ब्रह्मा, महेश और इन्द्र आदि देवगण मन्दाकिनी के जल के समान पवित्र उस गो-रज को स्पर्शकर अपनी आत्मा को कृतार्थ मानने लगे।।११।। व्रज चन्द्रमा श्रीकृष्ण वन की शोभा देख देखकर चलते-चलते

फुल्लाक्षिपद्मातिजवा सुसंभ्रमा प्रीत्यम्वुवृष्ट्यै धितसर्व्वतोमुखा।
वृद्धादिवालान्तजनावली सरिद्व्रजाचलात् कृष्णसमुद्रमाययौ॥ ॥१४॥

क्लिन्नाम्वराक्षि स्तनजैः पयःश्रवैस्तथाविधैर्यातृमुखाङ्गनागणैः।
अम्वा किलिम्बानुगया वलाम्वया सहावताम्वा सुतदर्शनोत्सुका ॥१५॥

अन्योन्यासङ्गसंस्तब्धदृष्टिहिल्लोलमुल्वणम्।
कृष्णं रसार्णवं भेजे राधा सुरतरङ्गिणी॥ ॥१६॥

श्रीकृष्णसुखगमनार्थं प्रकाशयामास ॥१२॥ आदौ गवां गमनेन गवां क्षुरैः कृत्तानि छिन्नानि तृणानि क्षताङ्गानि च भूयः पुनरपि रोहयती सा व्रजभूः। तस्य श्रीकृष्णस्य पदस्पर्शभरप्रमोदैः फुल्लरोमभिरञ्चित-सर्व्वगात्री ननन्द तदैव तृणाङ्कुरोद्गमदर्शनात् ॥१३॥ वृद्धादिवालान्तं जनावली आवालवृद्धजनश्रेण्येव सरिन्नदी व्रजरूपपर्व्वतात् कृष्णसमुद्रमाययौ। नदीसाधर्म्यमाह जनानां कृष्णदर्शनेन फुल्लानि नेत्राण्येव पद्मानि यत्र सा अतिजवा अतिवेगवती सुसंभ्रमा सुष्ठु सम्यक् भ्रमो भ्रान्तिर्यस्यां सा किम्वा प्रीतिः श्रीकृष्णप्रेमानन्दः सैवाम्बु तस्य वृष्टिरिव सञ्चारस्तया एधितानि वर्द्धितानि फुल्लानि सर्व्वतः सर्व्वेषां मुखान्येव सर्व्वतोमुखानि जलानि यस्याः। अत्रापि अम्भसोऽनुकरणं प्रीत्यम्बुवृष्ट्या प्रेमाश्रुवृष्ट्या एधितं वृद्धं सर्व्वतोमुखं जलं यस्याः सा ॥१४॥ अक्षिस्तनजैः पयःस्रवैरश्रुस्रवैश्च क्लिन्नाम्वरा। तथाविधैर्यातर उपनन्दादीनां पत्न्यस्तदाद्याङ्गनानां गणैः सह तथा अम्वा किलिम्वे अम्विका च किलिम्वा च धात्रिके स्तन्यदायिके तेऽनुगे यस्यास्तया वलाम्वया रोहिण्या सह सुतदर्शनोत्सुका अम्वा श्रीयशोदा आगता ॥१५॥ राधैव सुरतरङ्गिणी गङ्गा सुरते रङ्गिणी वा सा अन्योन्यासङ्गेन परस्पर मिलनेन संस्तब्धा दृष्टिरूप हिल्लोलस्तरङ्गो यस्यास्तथाभूतं

जिस स्थान पर अपने चरण-कमल का स्थापन करते थे, तो पृथिवी अति उत्सुक होकर उसी स्थान पर अपने कमलरूपी हृदय को प्रकाश कर देती थी।।१२।। श्रीव्रजराज नन्दन के चरण-कमल के स्पर्शसुख से पुलकित होने के छलसे उस स्थान पर नवीन घास उत्पन्न करने लगी, जहाँ गौओं के खुर पड़ने से स्थान सकल क्षत विक्षत एवं तृणशून्य हो जाते थे।।१३।। समस्त व्रजवासी बालक, युवा, वृद्ध और गोपियाँ जैसे बाढ़से भरी हुई नदी की भाँति वेगसे सागर की और दौड़ती है, उसी प्रकार नेत्रों से प्रेमाश्रु बहाते हुए श्रीकृष्ण से आकर मिलने लगीं।।१४।। और यशोदा अश्रुजल और स्तन्य दुग्धसे

मङ्गला श्यामला भद्रा पाली चन्द्रावलीमुखाः ।
स्वस्वयूथा यूथनाथाः सर्व्वतस्तास्तमन्वयुः ॥ ॥१७॥

सह जनधनवृन्दैर्निर्गते प्राणनाथे जनगतिरवहान्या स्पन्दनालापहीना
पशुखुरजरजोभिर्धूसरासौ जडाङ्गी व्रजवसतिरथासीत् प्रोषितप्रेयसीव ॥१८॥

अन्वयत् पितरौ वीक्ष्य सव्रजौ वनसीमनि ।
स्थितेऽस्मित् वलितग्रीवं तस्तम्भे गोकदम्बकैः ॥१९॥

उल्वणं च उज्ज्वलं च यथास्यात्तथा रसार्णवं कृष्णं भेजे। अन्योन्येति पदं श्रीकृष्णस्य वा विशेषणं ॥१६॥ मङ्गलाद्यास्ता यूथनाथाः स्व स्व यूथै सह वर्त्तमानाः सर्व्वतश्चतुर्दिक्षु तं श्रीकृष्णं अन्वयूः रनुगता वभूवः ॥१७॥ प्रोषितः प्रवासगतः प्रेयान् यस्याः सा इव जनधनवृन्दैः सह प्राणनाथे श्रीकृष्णे निर्गते सति असौ व्रजवसतिर्जडाङ्गी आसीत् द्वयोः साधर्म्मयमाह नायिका पक्षे जनेषु लोकसभासु गतेस्तथा रवस्य शब्दस्य च हान्या। वसतिपक्षे जनानां गमनरवयोर्हान्या राहित्येन स्पन्दनालापहीना। नायिका पक्षे शरीरगत स्पन्दनालापरहिता। पक्षे व्रजवसतिस्थजनानां स्पन्दनालापहीना। लालिका धूलिधूसराः। पक्षे पशूनां खुररजोभिर्धूसरा ॥१८॥ अस्मिन् वनसीमनि स्थिते स्थितौ। मर्य्यादायां भावे क्तः वलितग्रीवं वक्रग्रीवं यथास्त तथा स व्रजौ अन्वयन्तौ अनुगच्छन्तौ पितरौ वीक्ष्य श्रीकृष्णः गोसमूहैः सह तस्तम्भे ॥१९॥ स्वस्य वनप्रयाणे अभद्रजन्य भीतेर्हेतोरनन्ताः शङ्का ययोस्तौ तथा वहुधा कथ्यमानावप्यनिवारयन्तौ।

अपने अंग को गीला करती हुई, धात्री आदि महिलाएँ ओर श्रीबलदेव की माता श्रीरोहिणीजी श्रीकृष्ण को देखने की लालसा से आकर खड़ी हुई।।१५।। परम पावन नदी गङ्गा जिस प्रकार सागर की ओर बहती रहती है, ठीक उसी प्रकार हास्य परिहास पूर्व क्रीड़ाभिलाषी श्रीवृषभानुकुमारी, मिलने की कामना से, प्रेमरूप तरङ्गों से आकुल हो चञ्चल श्रीकृष्णरूप रससागर में प्रविष्ट होने के लिए वहाँपर आगई।।१६।। अनन्तर मङ्गला, श्यामला, भद्रा, पाली और चन्द्रावली आदि सखिगण, निज-निज यूथके साथ श्रीकृष्ण का दर्शन हेतु आकर उपस्थित हो गई।।१७।। श्रीकृष्ण, गोचारण हेतु वनको सखाओं के साथ चले जाने से व्रजवसती प्रोषित नायिका की भाँति होगई, गोधूली से सर्वत्र अन्धकार छा गया था, सव व्रजवासी आनन्दशून्य होगये थे, किसी का मन स्थिर नहीं था, कहीं पर आनन्दोत्सव नहीं था, सर्वत्र सन्नाटा था, किसी में उत्साह नहीं था, सकल व्यक्ति जड़के

अनन्तशङ्कौ स्ववनप्रयाणेऽप्यभद्रभीतेरनिवारयन्तौ ।
अस्राकुलाक्षावपि दर्शनोत्सुकौ स दुःस्थितोऽभूत् पितरौ समीक्ष्य ॥ ॥२०॥

सौरभ्यलुब्धा तृषितोच्चलन्ती ह्रीवात्यया वंभ्रमिताभितोऽपि ।
नेत्रालिपङ्क्तिर्व्रजसुन्दरीणां हरेः पपातैव मुखारविन्दे ॥ ॥२१॥

समीक्ष्य राधावदनारविन्दे श्रीनेत्रनृत्यन्मदखञ्जरीटौ ।
सुमङ्गलां स्वां मनुते स्म यात्रां तदीय सन्दर्शन सत्फलां सः ॥ ॥२२॥

स्वस्ववालमपहाय मातरः कृष्णवक्त्रधृतसाश्रुलोचनाः ।
स्तन्यसिक्तवसनाः सुवत्सलाः सर्व्वतोऽथ परिवव्रुरच्युतम् ॥ ॥२३॥

विमनस्कापि मनसा भावयन्त्यथ तत् शुभम् ।
विहस्तापि स्वहस्ताभ्यां जननी तमलालयत् ॥ ॥२४॥

अश्रुकुलावपि स्वस्य दर्शने उत्सुकौ पितरौ समीक्ष्य स श्रीकृष्णः दुःस्थितो व्यग्रचित्तोऽभूत् ॥२०॥ व्रजसुन्दरीणां नेत्रालिपङ्क्तिः । ह्रीर्लज्जा सैव वात्या वातसमूहस्तया वंभ्रमिता पुनः पुनरतिशयेन भ्रमितापि तृषिता उच्छलिता वेगवति हरेर्मुखारविन्दे पपातैव ॥२१॥ स श्रीकृष्णः राधावदनारविन्दे श्रीयुक्तनेत्र-रूपनृत्यन्मदखञ्जनौ वीक्ष्य स्वां यात्रां सुमङ्गलां मनुतेस्म। मनुष्याणां पद्मोपरि खञ्जनदर्शनेन यात्रा सत्फला भवतीत्याह तदीयेत्यादि ॥२२॥ अन्य गोपीनां स्व स्व पुत्रात् श्रीकृष्णे अपारवात्सल्यं श्रीभागवते यदुक्तं। तदेवाह स्व स्व वालमित्यादि ॥२३॥ विरोधाभासालङ्कारेणाह। विमनस्कापि मनसा तत्तस्य श्रीकृष्णस्य शुभं भावयन्ती विहस्ता व्यग्रापि स्वहस्ताभ्यां जननी तं श्रीकृष्णमलालयत् ॥२४॥ गवां

समान कालयापन कर रहे थे।।१८।। चलते-चलते श्रीकृष्ण एक ओर खड़े हो गये और अपने पीछे व्रजवासियों को माता-पिताके साथ आते देखकर गौ एवं वच्चों के साथ निस्तब्ध होकर रुक गए।।१९।। श्रीकृष्ण जान गये कि-हमारे पिता-माता हमारे गोचारण हेतु वन गमन में अनेक प्रकार अमङ्गल की आशङ्का करते हैं, तथा हमको वन जाने से रोकने में असमर्थ अपने को जानकर, नेत्रों में अश्रुजल भर हमारी ओर अपलक नेत्रों से देख रहे हैं, एवं दुःखी हो रहे हैं।।२०।। और गोपियों के नेत्र भ्रमर समूह श्रीकृष्ण सौरभ से लुब्ध होकर श्रीकृष्ण दर्शन की लालसा से लज्जारूप वायु वेग से रुद्ध गति होने परभी बारम्बार श्रीकृष्ण के मुख कमलपर गिरने लगे।।२१।। यात्रा के

शतशः सन्ति मे गोपा :निपुणाः पालने गवाम् ।
पालयामि स्वयमिति वत्स कोऽयं दुराग्रहः ॥ ॥२५॥

वालोऽपि मृदुलस्तत्र विमुक्तच्छत्रपादुकः ।
दिनं भ्रमसि कान्तारे जीवेतां पितरौ कथम् ॥ ॥२६॥

क्रियमाणाग्रहौ स्वस्य छत्रोपानद्धिधारणे ।
वात्सल्यव्याकुलौ वीक्ष्य पितरौ प्राह केशवः ॥ ॥२७॥

गोपालनं स्वधर्म्मो नस्तास्तु निश्छत्रपादुकाः ।
यथा गावस्तथा गोपास्तर्हि धर्म्मः सुनिर्म्मलः ॥ ॥२८॥

पालने निपुणाः गोपाः शतशः मे सन्ति। हे वत्स स्वयं गाः पालयामीति कोऽयं दुराग्रहः ॥२५॥ त्वं वालः मृदुलश्च तत्रापि छत्रपादुकां विना दिनं व्याप्य कान्तारे दुर्गममार्गे भ्रमसि पितरौ कथं जीवेतां। कान्तारो वर्त्मदुर्गम इत्यमरः ॥२६॥ केशवः स्वस्य छत्र पादुकयोर्विधारणे क्रियमाणाग्रहौ माता पितरौ वीक्ष्याह ॥२७॥ नोऽस्माकं गोपालनं स्वधर्मः गोपालनं कुरु। किन्तु छत्र पादुकां धृत्वा कुरु तत्राह। यथा ताः गावः निश्छत्रपादुकास्तथा गोपा अपि निश्छत्रपादुकाः गोपालने यदि भवन्ति तदा

समय खञ्जन दर्शन होने पर यात्रा शुभ होती है, श्रीकृष्ण भी श्रीराधिका के मुख कमल में नेत्ररूप खञ्जन-युगल को देखकर मन ही मन विचार करने लगे कि यात्रा का शुभफल मुझे पहले ही मिलगया ।।२२।। अनन्तर सुवत्सला रमणीगण निज निज सन्तानगण को छोड़कर स्तन्य दुग्धसे आर्द्रवसना होकर अश्रुपूर्ण नयनों से श्रीकृष्ण के प्रति दृष्टि-पात करती हुई उनके चारों ओर आकर खड़ी होगईं।।२३।। जननी यशोदा विमनस्का होकर भी मन से बालक कृष्ण की कुशल कामना करती हुई व्यग्र होकर निज हस्त से कृष्णके अंगपर हाथ फेरकर उनका लालन-पालन करने लगीं।।२४।। यशोदा स्नेह से आप्लुत होकर कही, हे वत्स! गो-पालन कार्य हेतु सुनिपुण शत-शत दास हमारे यहाँ विद्यमान है, तथापि तुम कहते हो कि मैं ही गोचारण कर्म करूँगा, यह कैसा तुम्हारा दुराग्रह है ? (२५) उन्होंने फिरसे कही, वत्स! तुम अति सुकुमार बालक हो, उसमें भी तुम छाता और पादुका को छोड़कर समस्त दिन दुर्गमपथ पर भ्रमण करते रहते हो, हम तो पितामाता हैं, यह देखकर कैसे जीवित रह सकेंगे ? (२६) पुत्र स्नेह से व्याकुलचित्त पितामाता को छत्र पादुका धारण कराने के लिए अतिशय आग्रह करते हुए

धर्म्मादायुर्यशोवृद्धिर्धर्म्मो रक्षति रक्षितः ।
स कथं त्यज्यते मातर्भीषु धर्म्मोऽस्ति रक्षिता ॥ ॥२९॥

सुतस्य सादृगुण्यमवेक्ष्य साक्षान्ननन्दतुस्तौ हृदि यद्यपारम् ।
अनिष्टशङ्काकुलिता तथापि गोपान् समाहूय जगाद माता ॥ ॥३०॥

सुभद्र मण्डलीभद्र वत्स भो वलभद्रक ।
समर्पितोऽयं युष्मासु वालोऽतिमृदुलश्चलः ॥ ॥३१॥

यन्त्रणीयः शिक्षणीयः पालनीयश्च वः सदा ।
स्वैरीचेच्चलतां याति कथनीयं तदा मयि ॥ ॥३२॥

सुनिर्म्मलो धर्म्मः स्यात् ॥२८॥ विपक्षासुरादिभ्योविभेसि तत्राह धर्म्मादायुर्यशसोर्वृद्धिर्भवति । अनेन धर्म्मोरक्षितः सन् तं जनं धर्म्मो रक्षति । हे मातः सधर्म्मः जनैः कथं त्यज्यते । भीषु विपक्षादिकृतभयेषु धर्म्मो रक्षितास्ति ॥२९॥ सुतस्य श्रीकृष्णस्य सादृगुण्यं साक्षादवेक्ष्य तौ यद्यपि अपारं यथास्यात्तथा हृदि ननन्दतुः । तथापि माता हृदि शङ्काकुला सती गोपानाहूय जगाद ॥३०॥ हे सुभद्रादयः युष्मासु अयं कृष्णः समर्पितः । अयं वालः तत्रापि मृदुलस्तत्रापि चलश्चञ्चलः ॥३१॥ वो युष्माभिरेवं कुरु एवं इत्यादिप्रकारेण यन्त्रणीयः नियम्यः स्वैरी स्वेच्छाचारी सन् चेद्यदि

देखकर उनसे श्रीकृष्ण ने कहा।।२७।। हे मातः! हे पितः! शास्त्रका विधान यह है हमारे जातिधर्म ही गोपाल है न, गो सकल छत्र पादुका विहीन हैं, उस प्रकार हम सब गोपगण यदि छत्र पादुका को छोड़कर उसके अनुसरण करते हैं तब ही हमारा गोपालन धर्म सुनिर्मल होगा।।२८।। कृष्णने फिरसे कहा मातः! जव धर्मसे यश और आयु की वृद्धि होती है, जो मनुष्य धर्म की रक्षा करता है धर्म भी उसकी रक्षा करता है। अतएव हे जननि! धर्म ही एकमात्र भयसे परित्राण प्राप्त होने का उपाय है, तब हमसब धर्मका परित्याग क्यों करें? (२९) तब नन्द एवं यशोदा श्रीकृष्ण के उस प्रकार सादृगुण्य उत्तम विचार को जानकर हृदय में अतिशय आनन्दित तो हुए, तथापि अनिष्ट की आशङ्का से व्याकुल होकर यशोदा गोपगण को बुलाकर कहने लगी।।३०।। हे सुभद्र! हे मण्डली भद्र! हे बलभद्र! हे वत्सगण! मैं इस सुकुमार चञ्चल बालक कृष्ण को तुम्हारे हाथ सौंप रही हूँ।।३१।। तुमसब सब समय इसके साथ रहकर यह करो यह न करो" इस प्रकार अपने वशमें रखकर इसको सिखाना, एवं इसके लालन पालन में तत्पर

धृतखड्गधनुर्वाणैर्भो वत्सा विजयादयः ।
रक्षणीयोऽप्रमत्तैर्वः सदायमभितः स्थितैः ॥ ॥३३॥

अङ्गे सुतस्याथ करेण माता स्निग्धा स्पृशन्तीश्वरनाममन्त्रैः ।
नृसिंहवीजैश्च विधाय रक्षां ववन्ध रक्षामणिमास्य हस्ते ॥ ॥३४॥

आज्ञा मातः पितरिति सुतं सम्पतन्तं पदान्ते
दोर्भ्यां धृत्वा हृदि निदधतौ स्तन्यवाष्पाम्वुसिक्तम् ।
चुम्वन्तौ तद्वदनकमलं मार्जयन्तौ कराभ्यां
जिघ्रन्तौ तं शिरसि पितरावूहतुर्वाष्पकम्पम् ॥ ॥३५॥

भूर्यौर्भव्या भवतु भवतो रक्षिता श्रीनृसिंह
शस्तः पन्था वनमपि शुभं भावुका दिग्विदिक् च ।
स्वागम्यः स्वं पुनरथ गृहं मङ्गलालिङ्गितस्त्वं
दत्तानुज्ञः स इति मुमुदे वत्सलाभ्यां पितृभ्याम् ॥ ॥३६॥

चलतां याति तदा मयि कथनीयं ॥३२॥ भो विजयादयः। अप्रमत्तैः सावधानैर्धृतखड्गधनुर्वाणैरभितः स्थितैर्वो युष्माभिरयं रक्षणीयः ॥३३॥ माता ईश्वरस्य नाम घटितमन्त्रैर्नृसिंहवीजैश्च तस्याङ्गेषु करेण स्पृशन्ती रक्षां विधाय हस्ते रक्षामणिं ववन्ध ॥३४॥ आदौ हे मातरित्युक्त वा आज्ञां देहीति वक्तव्ये आज्ञा इति। प्रेमोद्रेकेणोक्त्वा पदान्ते पतन्तं सुतं पश्चात् हे पितरिति पदान्ते सम्पतन्तं तौ पितरौ दोर्भ्यां हृदि धृत्वा स्तन्यवाष्पाम्बुसिक्तं निदधतौ तद्वदनकमलं चुम्वन्तौ कराभ्यां मार्ज्जयन्तौ शिरसि जिघ्रन्तौ वाष्पकम्पं ऊहतुः ॥३५॥ भवतस्तव रक्षिता श्रीनृसिंहो

रहना, यह यदि स्वेच्छाचारिता से चञ्चलता करे तो तुमसव आकर हमें कहना।।३२।। हे विजयादि बालको ! तुम सब अप्रमत्त होकर सबसमय धनुर्बाण और खड्ग आदि हाथमें लेकर इसके पास ही रहना और इसकी सर्वदा रक्षा करना।।३३।। अनन्तर जननी यशोदा स्नेहार्द्र चित्त से ईश्वर के नाम लेकर बालक श्रीकृष्ण के सर्वाङ्ग को स्पर्श करके श्रीनृसिंह के बीजमन्त्र के द्वारा रक्षा एवं हाथमें रक्षामणि बांध दी।।३४।। तब श्रीकृष्ण ने कहा हे मातः ! हे पितः ! मुझे आज्ञा प्रदान करें, और नन्द यशोदा के चरणों में गिरकर प्रणाम किया। यह देखकर नन्द यशोदा ने कृष्ण को दोनों हाथों से उठाकर हृदय से लगा लिया और स्तन्य एवं नयनाश्रु से कृष्ण को भिगोते हुए मुखचुम्बन करके अङ्गों में हाथ फेरकर मस्तक को सूँघा एवं गद्गदस्वर से कहा।।३५।। हे वत्स ! श्रीनृसिंह देव तुम्हारी रक्षा करें, पृथिवी, आकाश,

यथा पितृभ्यां स तथा वलाम्बयाप्यम्बा किलिम्बाद्युपमातृयुक्तया ।
गोपैश्च गोपीनिवहैश्च लालितो यथा हरिस्तैः स वलोप्यभूत्तथा ॥ ॥३७॥

ब्रजाङ्गनानां तृषिताक्षि चातकान् सिञ्चन् कटाक्षामृतवृष्टिधारया ।
न्यवेदयत् काननयानमात्मनस्ताभिः स्वदृष्ट्यैव सचानुमोदितः ॥ ॥३८॥

तासां मनोदीनकुरङ्गसंघान् विलोक्य लोलान् रुचिपल्लवान् स्वान् ।
निन्ये स्फुटं चारयितुं स्वसङ्गे सन्दान्य दृक्शृङ्खलया स्वयासौ ॥ ॥३९॥

द्वित्राः क्षेप्याः सुमुखि घटिकाश्चक्षुषी मुद्रयित्वा
मागाः खेदं सपदि भविता सङ्गमो नो वनान्ते ।
आगन्तव्यं मयि करुणया छद्मनाशु स्वकुण्डं
कृष्णश्चक्रे स्फुटमनुनयं राधिकायां दृशेत्थम् ॥ ॥४०॥

भवतु इत्युक्त्वा आशीर्व्वादपूर्व्वकं पितृभ्यां वनगमने दत्तानुज्ञः दत्ता अनुज्ञा आज्ञा यस्मै स श्रीकृष्णः मुमुदे । आशीर्व्वादप्रकारमाह भवतः भूद्यौर्भव्या भवतु शस्तः पन्था भवतु । वनमपि शुभं भवतु । दिक् विदिक् च भावुका भवतु मङ्गलैरालिङ्गितः मङ्गलयुक्तस्त्वं पुनः स्वगृहं स्वागम्यः सुखेनागमनीयः । भावुकं भाविकं भव्यं कुशलं क्षेममस्त्रियात्यिमरः ॥३६॥ पितृ मातृ रोहिणी अम्बा किलिम्बा गोपगोपीसमूहैः । यथा सहरिर्लालितस्तथा स बलोपि तैः पित्रादिभिर्लालितोऽभूत् ॥३७॥ ब्रजाङ्गनानां तृषितनेत्रचातकान् स्वकटाक्षामृतधारया सिञ्चन् आत्मनः काननगमनं तत्रैव न्यवेदयत् । ताभिरपि स्वदृष्टा एवं स श्रीकृष्णश्चानुमोदितोऽभूत् ॥३८॥ असौ श्रीकृष्णस्तासां ब्रजसुन्दरीणां मनोरूपदीनमृगसंघान् लोलान् विलोक्य स्वस्य रुचिरूपपल्लवान्

पथ, अरण्य दिक् तुम्हारे लिए मङ्गलप्रद हो, यह सब आशिष वचन कहकर "तुम निर्विघ्न से घर पर लौट आओ।" यह कहकर स्नेह से आलिङ्गन करके श्रीकृष्ण को गोचारण हेतु वन को जाने के लिए आज्ञा देकर उनको आनन्दित किया।।३६।। नन्द, यशोदा, रोहिणी, अम्बा, किलिम्बा प्रभृति धात्री एवं गोपीगण के द्वारा श्रीकृष्ण जिस प्रकार लालित हुए, उसी प्रकार श्रीबलदेव लालित हुए।।३७।। अनन्तर कृष्ण ने निज कटाक्षरूपी अमृत वृष्टि धारासे ब्रजाङ्गनाओं के नयन चातकों को अभिषिक्त करा दिया और निज वन-गमन वार्त्ता को सूचित किया, उन्होंने भी निज-निज कटाक्ष के द्वारा श्रीकृष्ण के वन गमन को अनुमोदन करदिया।।३८।। जब श्रीकृष्ण गोचारण हेतु वनको जाने लगे तो ऐसा प्रतीत होने लगाकि, मानो गोपीकागणों के मनोरूप दीन मृग समूह को चञ्चल देखकर निज अङ्गकान्ति रूप पल्लव

ययाचे राधिकामाज्ञां सद्दशा दैन्यपूर्णया।
कातर्य्यं वमताभूत्तत् कटाक्षेणानुमोदितः ॥ ॥४१॥

मध्ये नभः संमिलनेप्यलूनैर्जवात् प्रविष्टैर्हृदये मिथस्तौ।
कटाक्षवाणैरपि मोदमाप्तौ प्रेम्णो विचित्रा हि गतिर्दुरुरूहा ॥ ॥४२॥

राधामनोमीनमयं स्वसङ्गे स्वकान्तिजालेन निवध्य निन्ये।
रुरोध तच्चित्तमरालमुत्कं सापि स्वदृक् कूणनपञ्जरान्तः ॥ ॥४३॥

प्रेरयन्नग्रतो धेनूराकर्षन् पृष्ठतो व्रजम्।
स मित्रैरावृतोरण्यं प्रवेष्टुमुपचक्रमे ॥ ॥४४॥

चारयितुमास्वादयितुं स्वदृक्शृङ्खलया संदान्य वद्धा स्वसङ्गं निन्ये। तासां मनांसि श्रीकृष्णकान्तिभिराकृष्टानि भूत्वा ययुरिति भावः ॥३९॥ हे सुमुखि राधे चक्षुषी मुद्रयित्वा द्वित्राः घटिकाःक्षेप्याः खेदं मागाः माकुरु नाप्नुहि। नौ आवयोर्वनान्ते सङ्गमो भविता। तया केनापि छद्मना आशु स्वकुण्डमागन्तव्यमित्थमनेन प्रकारेण श्रीकृष्णः दृशा राधिकायामनुनयं चक्रे ॥४०॥ दैन्येन पूर्णया दृशा स श्रीकृष्णः राधिकामाज्ञां ययाचे। तस्या राधायाः कातर्य्यं वमता कातर्य्योद्गारिणा कटाक्षेणानुमोदितोऽभूत् ॥४१॥ मध्ये नभः आकाशमध्ये उभयोः कटाक्षयोः संमिलनेऽपि अनूनैरच्छिन्नैः कटाक्षवाणैर्जवाद्धृदये प्रविष्टैः। तौ राधाकृष्णौ मिथः परस्परं मोदं प्राप्तौ। वाणप्रहारेऽपि मोदाप्तौ कारणमाह। प्रेम्नो गतिर्दुरुहा विचित्रा च ॥४२॥ यथा अयं श्रीकृष्णः राधामनोरूपमीनं स्वकान्तिरूपजालेन निवध्य स्वसङ्गे निन्ये। तथा सापि

आस्वादन कराने के लिए नयन शृङ्खल से वांधकर कृष्ण साथ ले जा रहे हैं ।।३९।। अनन्तर कृष्ण ने निज नयनभङ्गी से कहा कि-हे सुमुखि ! नयन युगल को निमीलित करके दो-तीन घन्टे किसी प्रकार से बिताओ, खिन्न न होना, कुछ ही समय के बाद ही मिलन होगा, तुम कृपा करके किसी भी बहाने से एकबार इसके वीच में अपने कुण्डमें आओ, इस प्रकार कृष्णने राधाको अनुनय किया ।।४०।। श्रीकृष्ण निज दैन्य पूर्ण नयनों से श्रीराधा से अनुज्ञा प्रार्थना करने पर श्रीराधाने भी श्रीकृष्ण को सकातर कटाक्षसे अनुमोदन करदिया ।।४१।। जब श्रीकृष्ण के कटाक्ष वाणने उर्द्ध से निपतित होकर श्रीराधाके हृदयको विद्ध करदिया एवं श्रीराधिका का कटाक्ष शरभी ऊपर से श्रीकृष्ण के हृदय में गिरा, तो दोनों ही परम सन्तुष्ट हो गये, कारण

तिर्य्यग् ग्रीवं पुनः प्रेक्ष्य सव्रजौ स्नेहकर्षितौ।
अन्वायान्तौ पुरस्तिष्ठन्नब्रवीत् पितरौ हरिः॥ ॥४५॥

मातर्नातःपरमिह पुरो गन्तुमर्ह्याटवी वो
व्यावर्त्तध्वं त्वरितमिह मे प्रापणीया रसाला।
तातैषाद्य त्रुटितशिखरा कन्दुकक्षेपणी मे
गत्वा घोषं झटिति सुदृढाः पञ्चषाः कारणीयाः॥ ॥४६॥

वलितग्रीवमूर्द्धास्यं क्षुधितास्तृषिता अपि।
तस्तम्भिरे पुरो गावः पश्याम्ब मदपेक्षया॥ ॥४७॥

प्रेषयिष्यामि सद्भोज्यं भुक्त्वा मध्याह्न एव तत्।
आगच्छेरपराह्ले त्वं तूर्णमित्याह तं प्रसूः॥ ॥४८॥

तच्चित्तरूपहंस उत्कण्ठितं दृशोः कुणनदृष्टिपातरूपपञ्जरमध्ये रुरोध ॥४३॥ स अग्रतो धेनूः प्रेरयन् पृष्ठतः व्रजमाकर्षन् ॥४४॥ हरिस्तिर्य्यग् ग्रीवं यथास्यात्तथा पुनः प्रेक्ष्य स व्रजौ स्नेहकर्षितौ अन्वायान्तौ पितरौ अब्रवीत् ॥४५॥ हे मातरत्रेऽटवीं गन्तुं वो युष्माभिरर्ह्या न यूयमतो व्यावर्त्तध्वं। मे मह्यं रसाला त्वरितं प्रापणीया। तव गोष्ठगमनाभावे रसाला केन प्रापणीया। अन्यदपि मे कार्य्यान्तरं शृणु। मे कन्दुकक्षेपणी एषा त्रुटितशिखरा वभूव। हे तात पञ्चषा पञ्च वा षट्वा अतिदृढाः। कन्दुकक्षेपण्यः कारणीया व्रजे काष्ठनिर्मितक्षेपण्याख्यं कन्दूकं क्षिप्त्वा क्रीडन्ति ॥४६॥ वलितग्रीवमूर्ध्वास्यं यथास्यात् क्षुधितास्तृषिता गावः मदपेक्षया तस्तम्भिरे पश्य ॥४७॥

प्रेम की गति अति दुरूह है, तथा अति विचित्र होती है, उसको कौन जान सकता है ? (४२) श्रीकृष्ण गोचारण हेतु वन-गमन के समय जिस प्रकार निज कान्ति जाल से श्री राधा के मनोमीन को बांध कर साथ ले जा रहे हैं, वैसा ही श्रीराधिका ने भी श्रीकृष्ण के उत्कण्ठित चित्तरूप हंस को दृष्टि पात रूप पिञ्जर में बद्ध कर लिया।।४३।। तब श्रीकृष्ण ने भी धेनु समूह को आगे-आगे लेकर व्रजवासियों के चित्त को आकर्षण करते हुए सखाओं के साथ वनगमन का उपक्रम किया ।।४४।। गमन करते-करते हरिने वक्रग्रीवा से देखा कि समस्त व्रजजन के साथ नन्द तथा यशोदा पीछे-पीछे आ रहे हैं,। यह देखकर उन्होंने कहा ।।४५।। हे मातः ! इसके बाद वन की ओर नहीं आ सकती, अतएव यहाँ से ही लौट जाओ, घरमें जाकर मेरे लिए रसाला भेज दो। हे पितः ! मेरे वल्लाका सामने का हिस्सा टूट गया है,

सोऽप्यब्रवीत्तां कृतभोजनौ चेत् श्रोष्यामि गेहे मुदितौ भवन्तौ।
भोक्ष्यामि भोज्यं प्रहितं तदा ते गृहं समेष्यामि न चान्यथाम्ब॥ ॥४९॥

कृतावनः कायमनोवचोभिः संसिक्तदेहः स्तनदृक् पयोभिः।
स चुम्बितालिङ्गित आकुलाभ्यां मुहुर्मुहुर्दृष्टमुखः पितृभ्याम्॥ ॥५०॥

उद्यद्वियोगोष्णरविप्रतापितैः सिक्तैर्निजप्रेक्षणवीचिशीकरैः।
कटाक्षधारा नलनालिकाचयैर्निपीतलावण्यरसः प्रियागणैः॥ ॥५१॥

व्रजत्यागाऽरण्ययानोत्पन्नाभ्यां नन्दनन्दनः।
वैमनस्योन्मनस्याभ्यां व्यग्रोऽसौ प्राविशद्वनं॥ (सन्दानितकं) ॥५२॥

तत् सद्भोज्यं मध्याह्ने भुक्त्वा त्वमपराह्ने आगच्छेरिति प्रसूर्माता तमाह ॥४८॥ सोऽपि तामब्रवीत् गेहे कृतभोजनौ मुदितौ भवन्तौ चेत् यदि श्रोष्यामि तदा ते त्वया प्रहितं भोज्यं भोक्ष्यामि। गृहञ्च समेष्यामि अन्यथा युवयोः भोजनाद्यभावे न भोक्ष्यामि गृहञ्च न समेष्यामि ॥४९॥ स श्रीनन्दनन्दनः श्रीकृष्णः आकुलाभ्यां पितृभ्यां कायादिभिः कृतावनः कृतमवनं रक्षणां यस्य सः। पुनस्ताभ्यां स्तनदृक्पयोऽभिः संसिक्तदेह आलिङ्गितश्चुम्बितश्च दृष्टमुखः एवम्भूतो भूत्वा उद्यद्वियोगे एव उष्णरविर्ग्रीष्म-कालीनसूर्य्यस्तेन प्रकर्षेण तापितैः निजस्य श्रीकृष्णस्य प्रेक्षणरूपवीचिस्तरङ्गस्तस्य श्रीकरैरम्बुकणाभिः सिक्तैः प्रियागणैः कटाक्षस्य धारा सैव नल नालिका नलस्य

आप ब्रज में जाकर जल्दीसे पाँच या छै मजबुत कन्दुक क्षेपणी निर्माण करवा दें ।।४६।। आपने यशोदा को और भी कहा, मैया ! देखो सब गैया भूखी और प्यासी होकर पीछे की ओर ताकती हुई मेरी अपेक्षा से उर्द्धमुख होकर खड़ी हैं ।।४७।। यह सुनकर श्रीयशोदा ने कहा, बेटा ! तेरे लिए मैं उत्तम भोजन मध्याह्न में भेजूँगी, तुम उसे मध्याह्न में भोजन करके अपराह्न में जल्दी घर को लौट आना ।।४८।। तब कृष्णने कहा, मैया ! यदि मैं सुन लूँ, कि-तुम सव अच्छीतरह भोजन पान करके सुख से घरमें रह रहे हो, तव ही तुम्हारी भेजी हुई भोजन सामग्री को खाकर अपराह्न में घर को लौट आऊँगा, अन्यथा मैं लौटकर नहीं आऊँगा ।।४९।। इस वाक्य को सुनकर श्रीनन्द एवं श्रीयशोदा, कायवाक्य मनसे श्रीकृष्ण के अङ्गों में रक्षा बन्धन करके एवं स्तन्य दुग्धसे तथा अश्रुधारा से श्रीकृष्ण के कलेवर को अभिषिक्त करते हुए, बारम्बार आलिङ्गन, मुखचुम्बन, आकुल नयनों से मुख निरीक्षण करने लगे ।।५०।। उस समय श्रीराधिका प्रभृति सखीगण वियोगरूप प्रखर

व्रजस्य कृष्णे निहितेक्षणस्याखिलेन्द्रियाणां नयनत्वमासीत् ।
तस्मित् वनेनान्तरिते क्षणेन तेषां समन्तात् सुविलीनताभूत् ॥ ॥५३॥

चरत्वतः स्थावरतैव धन्या वनं प्रयात्येष विहाय यन्नः ।
इतीव खिन्नाः स्फुटमादधुस्तां स्तम्भस्य दम्भात् ब्रजवासिनस्ते ॥ ॥५४॥

हरेश्चिल्लीचिल्लीगिलितमतिमीलच्छफरिका
मुखाम्भोजान्म्लानाच्चलितचलदृष्टि-भ्रमरिकाः ।
वियोगोत्द्यत पङ्कावलिपतित-हंसा न विवभू-
स्तदाभीरीनद्यो वनशुचिहृते जीवनधने ॥ ॥५५॥

सच्छिद्रतृणविशेषस्य प्रणालिका तासां चयैः समूहैः करणैर्निपीतो लावण्यरूपो रसो यस्य तथाभूतः सन् व्रजत्यागजन्यवैमनस्यं तथा अरण्ये यानं गमनं तज्जन्य उन्मनस्यं ताभ्यां व्यग्रः सन् वनं प्राविशत् ॥५०-५२॥ कृष्णे निहितेक्षणस्य व्रजस्य व्रजजनानाम-खिलेन्द्रियाणां नयनत्वमासीत् दर्शनोत्साहेनाखिलेन्द्रियाण्यपि नेत्ररूपाणि वभूवुः । ते सर्व्वेन्द्रियैः श्रीकृष्ण ददृशुरिति भावः । अङ्गानि यस्य सकलेन्द्रियवृत्तिमन्ति पश्यन्तीति नित्यसिद्धा मुकुन्दवदिति च प्रमाणं । यद्वा नयनत्वं स्वस्वकार्य्यकारित्वं । तस्मिन् कृष्णे वनेनान्तरिते सति तेषामिन्द्रियाणां क्षणेन समन्तात् सर्व्वतोभावेन सुविलीनता चेष्टाराहित्यमभूत् ॥५३॥ यद्यस्मात् नोऽस्मान् जङ्गमान् विहाय त्यक्त्वा एष श्रीकृष्णः स्थावरं वनं प्रयाति तस्मच्चरत्वतः चरतीति चरः तस्य भावः चरत्वं तस्मात् जङ्गमत्वात् स्थावरतैव धन्या इति हेतोरिव स्तम्भस्य दम्भात् छलात् ते व्रजवासिनः खिन्नाः स्फुटं तां स्थावरतामादधुः ॥५४॥ तदा वनरूपशुचिना निदाघेन जीवनधने जीवनस्य धनं सर्व्वस्वं श्रीकृष्णः किम्वा जीवनरूपः श्रीकृष्णः स एव धनं

रवि के ताप से तापित एवं श्रीकृष्ण के ईक्षण रूप तरङ्ग की कणासे अभिषिक्त होकर धारावाहि कटाक्षरूप दलसे अर्थात् सच्छिद्ररूप तृण विशेष प्रणालिका समूह के द्वारा श्रीकृष्ण के अङ्ग के लावण्य का पान करने लगीं ।।५१।। अनन्तर व्रजेन्द्रबन्दन श्रीकृष्ण व्रज परित्याग हेतु वैमनस्य एवं अरण्य गमन हेतु व्यग्र चित्त होकर वनकी ओर चलने लगे ।।५२।। श्रीकृष्ण के प्रति व्रजवासिगण जब दृष्टिपात करते थे तो दर्शनोत्साह से समस्त इन्द्रिय नयनत्व प्राप्त करती थीं, और जब श्रीकृष्ण के वन गमन हेतु श्रीकृष्ण उन सबके नेत्रोंसे दूर हो जाते थे तब क्षणकाल में ही उसकी इन्द्रियां निश्चेष्ट हो जाती थीं ।।५३।। श्रीकृष्ण के वन गमन से व्रजवासीगण मनमें सोचते

अभ्यासतोऽथ ब्रजवासिनस्ते विमोहितौ तौ ब्रजपौ गृहीत्वा ।
कृष्णानुगामि स्वमनो विहीनैर्देहैः परं गेहमयुर्निरीहाः ॥ ॥५६॥

स्वां स्वां सख्योऽपि यूथेशां यत्नादादाय मूर्च्छिताम् ।
निन्युर्गृहं यन्त्रचञ्चत् प्रतिमाः प्रतिमामिव ॥ ॥५७॥

कुन्दवल्ल्यथ तां राधां स्वयं व्यग्राप्यचेतनाम् ।
आदायायाद्व्रजं यत्नाद्विचित्तैस्तत्सखीजनैः ॥ ॥५८॥

यद्यप्यस्मिन् न्यस्तचित्ता ब्रजस्था आतद्दर्शं ज्ञप्तिशून्यास्तथापि ।
तत्तत्कर्मण्याचरन्ति स्म यद्वज्जीवन्मुक्ता देहसंस्कारतस्ते ॥ ॥५९॥

तत् जीवनधनमेव नदीपक्षे जीवनधनं जलरूपधनं तस्मिन् हृते सति आभीरीरूपा नद्यो न विवभूः भा दीप्तौ धातुः। कीदृश्यः सत्यः हरेश्चिल्ली भ्रूरेव चिल्ली चिलाख्य पक्षिविशेषस्त्री। तया गिलितामतिर्विवेकशीला वुद्धिस्तद्रूपमीलत् शफरिका मत्स्य विशेषो यासां ताः। म्लानात् मुखरूपाम्भोजात् चलिता गताश्चलदृष्टिरूपा भ्रमरिका भ्रमर्य्यो यासां ताः। कृष्णवियोगरूपोद्यत् पङ्कावलिषुपतिता हंसाः प्राणास्त एव हंसा यासां ताः ॥५५॥ निरीहाश्चेष्टारहिता अपि ते व्रजवासिनः। विमोहितौ तौ यशोदा नन्दौगृहीत्वा कृष्णानुगामिस्वमनोविहीनैरपि देहैः सह अभ्यासतः परं केवलं देहाभ्यासात् गेहं ययुः ॥५६॥ सख्योऽपि मूर्च्छितां स्वां स्वां यूथेशां यत्नादादाय गृहीत्वा गृहं निन्युः। काः कमिव काष्ठादिनिर्म्मितयन्त्रप्रेरिताः प्रतिमाः काष्ठादिमयीं प्रतिमामिव इत्यनेन तासां प्रेमाधिक्यं ज्ञेयं ॥५७॥ व्यग्रापि कुन्दवल्ली अचेतनां तां राधां

थे, हम सब जङ्गम हैं, किन्तु हमसे स्थावरत्व ही उत्तम है, कारण श्रीकृष्ण हमसब को छोड़कर वनको जाते हैं, यह कह कर खिन्न होकर स्तम्भके छलसे स्पष्ट रूपसे ही स्थावर हो गये ।।५४।। व्रजमण्डली के जीवनधन कृष्ण गोष्ठ यात्रा करने पर ग्रीष्म के प्रभाव से शुष्क नदी के समान गोपिकागण प्रभाशून्य होगई, अर्थात् ग्रीष्म के प्रभाव से नदी का जलधन सूख जानेपर चील आदि पक्षीगण वहाँ की मछलियों को खाते हैं, वहाँ के नलिनीगण शुष्क होनेपर भ्रमरगण वहाँ से अन्तर्हित होते हैं, एवं हंसगण पङ्क में निमग्न हो जाते हैं। श्रीकृष्ण की भ्रूरूप चील पक्षि चिल्ली उनके रूप-शफरों को ग्रास किया, चञ्चल दृष्टिरूपी भ्रमरी उनसब के मुख पद्म से उड़ गई, एवं उनके जीवन रूप हंस श्रीकृष्णके विरह पङ्क में फँस गया।।५५।। अनन्तर व्रजवासिगण निश्चेष्ट होने परभी कृष्णानुगामी मनोविहीन शरीर को लेकर शोक मुग्ध श्रीनन्द यशोदा को लेकर अभ्याससे ही घर को लौट आए।।५६।।

निर्म्माणोत्कां स्वपथि जटिलां गोशकृत् पिण्डिकानाम्
वध्वा वर्त्मन्यथ धृतदृशं व्याकुलां कुन्दवल्ली।
दृष्ट्वावादीज्जडिमकलितां राधिकां चेतयन्ती
कृष्णाभ्यर्णं नयनिपुणधीस्तूर्णमेनां निनीषुः॥ ॥६०॥

नमाम्यार्य्ये स्नुषेयन्ते कल्याणी नीयतां पुरः।
छायाप्यस्या न कृष्णस्य दृष्टिगोचरतां गता॥ ॥६१॥

साब्धिद्वीपा भवति पृथिवी यस्य नैकस्य मूल्यं
तादृग्दिव्यामितमणिमयं पश्य शच्याप्यलभ्यम्।
सर्व्वाङ्गीनं वसनसहितं भूषणं दत्तमस्यै
गोष्ठेश्वर्य्या मुदित मनसा पाकनैपुण्यतोऽस्याः॥ ॥६२॥

यत्नादादाय विचित्तैश्चित्तरहितस्तत्सखीजनैः सह व्रजमयात् ॥५८॥ अस्मिन् श्रीकृष्णे न्यस्ताः। यद्यपि आतदृर्श यावत् कृष्णदर्शनं न स्यात् तावत्कालपर्य्यन्तं शून्याः ज्ञप्तिर्ज्ञानं तत् तथापि देहसंस्कारात् जीवन्मुक्ता इव तत्तत् कर्म्माणि कुर्व्वन्तिस्म ॥५९॥ नये नीतौ निपुणा धीर्यस्याः सा कुन्दवल्ली जडिमयुक्तां राधां चेतयन्ती तथा तूर्णं कृष्णनिकटमेनां राधां निनीषुः नेतुमिच्छा यस्या सा। स्वपथि स्वानां गमनमार्गे। गोसकृत् गोमयं तस्य पिण्डिकानां निर्म्माणे उत्कण्ठितां वध्वाः राधायाः वर्त्मनि धृतदृश व्याकुलां जटिलां दृष्ट्वा तामवादीत् ॥६०॥ हे आर्य्ये त्वां नमामि कल्याणीयं ते स्नुषा नीयतां अस्याः छायापि श्रीकृष्णस्य नेत्रगता नाभूत् ॥६१॥ अस्याः पाकनैपुण्यतो मुदित मनसा गोष्ठेश्वर्य्या अस्यै राधायै सर्व्वाङ्गीनं

एवं सखीगण भी कृष्ण विरह से मूर्च्छिता निज-निज यूथेश्वरी को साथ लेकर घरको आईं, जिस प्रकार कठपुतली वाले कठपुतली को डोरी से खींचकर लाते हैं।।५७।। अनन्तर कुन्दवल्ली स्वयं विरह से कातर होकर संज्ञा विहीन सखीगण के साथ अचेतना श्रीराधा को साथ ले कर घर को लौट आई।।५८।। यद्यपि व्रजवासि गण श्रीकृष्ण में समर्पित प्राण थे, एवं जबतक श्रीकृष्ण का दर्शन नहीं होता है तबतक चेतनशून्य हो जाते थे, तथापि जीवन्मुक्त पुरुष की भाँति संस्कार से ही समस्त कार्य करने लगे ।।५९।। दूसरी और जटिला भी कण्डे थाप रही थी, और आत्मीय वर्ग के लौट आने के मार्ग को देख रही थी, अपनी वहु के लिए व्याकुल चित्त थी, इसी समय मिलन कार्य में सुनिपुणा कुन्दवल्ली श्रीराधा को सचेत करके पुनर्वार श्रीकृष्ण के साथ मिलन कराने की वासना से जटिला के पास जाकर कही।।६०।।

धर्मार्थलाभान्मुदिता स्नुषायास्तयैव कार्यान्तरमुच्चिकीर्षुः ।
स्वाभीष्टसम्पादनलब्धवर्णां मत्वावदत्तां जटिला स्तुवन्ती ॥ ॥६३॥

एह्येहि वत्से कुशलं भवत्यास्त्वच्छीलनिर्मञ्जनमाशु यामि ।
स्निग्धासि यत्त्वं मयि सस्नुषायां मदाशिषा तत् सुतवस्करा स्याः ॥६४॥

स्वयं साध्वी प्रगल्भा त्वमन्यासां धर्मपालने ।
आत्मनीव प्रतीतिर्मे त्वयि त्वां प्रार्थये ततः ॥ ॥६५॥

धर्म्मे पत्न्याः पालिते तत् पतिः स्यात्
गोमान् पुत्री वित्तवांश्चायुराढ्यः ।

सर्व्वाङ्गे देय वसनसहितं भूषणं दत्तं। कीदृशं साब्धिद्वीपा पृथ्वी यस्य एकस्यापि मणेर्मूल्यं न भवति। तादृश दिव्यालौकिकामितमणिमयं शच्याप्यलभ्यं किं पुनरन्यया॥६२॥ स्नुषायाः श्रीकृष्णादर्शनात् धर्मलाभात् अमूल्यभूषणादिप्राप्त्या अर्थलाभाच्च मुदिता तया कुन्दवल्ल्या कार्य्यान्तरं कर्त्तुमिच्छुः स्वाभीष्टस्य सम्पादने लब्धवर्णां विचक्षणां मत्वा तां कुन्दवल्लीं स्तुवन्ती जटिला अवदत्-लब्धवर्णो विचक्षण इत्यमरः॥६३॥ हे वत्से एह्ये हीति आदरे भवत्यास्तव कुशलं तत्तव शीलस्य स्वभावस्य निर्मञ्छनं यामि। यद्यस्मात् सस्नुषायां मयि त्वं स्निग्धासि तत्तस्मान्मदाशिषा सुतवस्करा सत्पुत्रप्रसूता त्वं स्याः॥६४॥ त्वं स्वयं साध्वी भूत्वा

आर्य्ये ! नमस्कार ! तुम्हारी वहू को मैं ले आई हूँ, यह लो, इस कल्याणी को मैंने इस प्रकार रक्षा की है, कि कृष्ण तो इस की परछाईं तक देख नहीं पाया।।६१।। फिर से कुन्दवल्ली ने कही मान्ये ! यह देखो ! व्रजेश्वरी यशोदा श्रीराधा की रसोई से सन्तुष्ट होकर खुशी से ही श्रीराधा को सर्वाङ्ग शोभक वसन एवं महामूल्य के मणिमय आभरण प्रदान किए हैं, इस की एक-एक मणि के मूल्य से पृथिवी को खरीद सकती हो, अधिक क्या कहूँ इन्द्र पत्नी शची भी इस अलङ्कार को देखकर दुर्ल्लभ मानती है।।६२।। धर्म एवं अर्थ प्राप्त होने पर जटिला अत्यन्त खुशहुई निज पुत्रवधू का स्पर्श कृष्ण के साथ न होने से एवं यशोदा से आभूषण प्राप्त होने से जटिला ने सुभद्रा पत्नी कुन्दवल्ली को इष्ट साधनों के उपयोगी माना, एवं उस से अपर कार्य सम्पन्न करवाने की इच्छा से उसकी प्रशंसा के साथ जटिला कहने लगी।।६३।। वत्से कुन्दलते ! आओ ! आओ ! तुम तो सकुशल हो। तुम्हारे स्वभाव परतो बलि जाऊँ। हमारी पुत्रवधू में तो तुम्हारा बहुत स्नेह है, मैं आशीर्वाद करती हूँ

इत्याहास्मान् पौर्णमासी स्मृतिज्ञा
सेयं तत्त्वय्यर्पिता धर्म्मगुप्त्यै ॥ ॥६६॥

धर्म्मादर्थश्च कामश्चेत्यादि सत्यं सतां वचः ।
यतोऽस्याः पालिताद्धर्म्मात् भूयानर्थोऽपि साधितः ॥ ॥६७॥

सुतोयथा मे कुशली यथासौ कुलेऽमले स्यान्न यथा कलङ्कः ।
धर्म्मं तथाऽस्याः परिपालयन्ती निर्वाह्य सूर्य्यार्च्चनमानयैनाम् ॥ ॥६८॥

राधे त्वं ताम्रकुण्डीमरुणकपिलिकाक्षीरदध्याज्यमिज्याम्
सार्पिस्कान्नं जवामैक्षवमथ घुसृणं पत्रकं पद्ममालाम् ।
सार्द्धं सख्या नयेत्याद्युपकरणचयं पुत्रि गेहात् गृहीत्वा
गार्ग्या वा केनचिद्वार्च्चनपटुवटुना याहि सूर्य्यार्च्चनाय ॥ ॥६९॥

अन्यासां धर्मपालने त्वं प्रगल्भासि मम आत्मनीव त्वयि प्रतीतिः ततस्त्वां प्रार्थये ॥६५॥ पत्न्या धर्मे पालिते तत् पतिः गोपुत्रधनायुष्मान् स्यादिति स्मृतिज्ञा पौर्णमासी अस्मानाह। तत्तस्मात् सेयं राधा धर्मगुप्त्यै धर्मारक्षायै त्वयि अर्पिता ॥६६॥ पालितात् धर्मात् अस्याः भूयानर्थोऽपि साधितः संसिद्धः स्यात् ॥६७॥ मे सुतः यथा कुशली स्यात् अमले कुले च कलङ्को यथा न स्यात्तथाऽस्याः धर्मं परिपालयन्ती सूर्य्यपूजां निर्वाह्य एनामानय ॥६८॥ हे पुत्रि राधे त्वं गेहात् ताम्रकुण्ड्यादि उपकरणचयं गृहात् गृहीत्वा अनया कुन्दवल्ल्या सख्या सार्द्धं गार्ग्या वा अर्च्चनपटुना केनचित् ब्राह्मणबालकेन वा

कि तुम सात पुत्रों की जननी बनो ।।६४।। पुनर्वार कहने लगी, पुत्री ! तुम स्वयं पतिव्रता होकर भी दूसरी स्त्रियों की पातिव्रत्य धर्म रक्षा के लिए सचेष्ट रहती हो, अतः तुम मेरे समान ही हो, मैं तुमसे एक प्रार्थना करती हूँ।।६५।। मैंने पौर्णमासी से यह बात सुनी है कि जिस की पत्नी की निष्ठा धर्म में है वह पुरुष गो, रत्न, पुत्रवान् वित्तवान् तथा दीर्घायु होता है, अतएव धर्मरक्षा के लिए अपनी पुत्रवधू राधा को तुम्हारे हाथों में सौंपी थी।।६६।। साधुगण कहते हैं कि-धर्म से अर्थ तथा काम की प्राप्ति होती है, यह बात सत्य है, इस लिए हमारी पुत्रवधू के धर्माचरण से ही हमारे पुत्र को प्रचुर अर्थका लाभ होगा।।६७।। जटिला फिर से बोली-वत्से ! मेरा एक ही पुत्र है, वह कुशल से रहे, और मेरा इस निष्कलङ्क कुल में कोई कलङ्क न लगे, तुम इस को धर्म उपयोगी उपदेश देकर श्रीराधा को सूर्यदेव की अर्च्चना में रत कराओ।।६८।। इस के बाद जटिला ने श्रीराधा से कही,

चण्डासि साध्वी ललिते त्वयासौ नैकाकिनी क्वापिसखी विधेया।
गन्धोऽपि यस्यां किलनन्दसूनोस्तस्यै दिशे वोऽञ्जलिरेव कार्य्यः। ॥७०॥

अत्यारूढं दिनं वत्से सन्ति गोमयराशयः।
युवयोर्न्यस्तभारा स्यां निश्चिन्तोत्पलिकाकृतौ ॥ ॥७१॥

तामूचतुस्ते हृदि संप्रहर्षिते निश्चिन्तमार्य्ये क्रियतां क्रिया निजा।
आवामवावः सततं भवद्वधूं तारामिवाक्ष्णः सह पक्ष्मलोचके ॥ ॥७२॥

ताः प्रोन्मत्ता अपि जटिलायाः पीत्वाज्ञावाङ्मधुमधुराङ्गयः।
आनन्दोत्फुल्लिततनुचित्ता धैर्य्यं धृत्वा गृहमनुजग्मुः ॥ ॥७३॥

सह सूर्य्यार्च्चनाय याहि। अरुणकपिलाज्यं कीदृशं इज्यं पूजार्हं। सार्पिस्कान्नं सघृत-तण्डुलं घृतपक्कान्नं वा जवां जवापुष्पं ऐक्षवं इक्षुविकारं खण्डशर्करादि घुसृण केशरं पत्रकं रक्तचन्दनं ॥६९॥ हे ललिते त्वं साध्वी चण्डा प्रगल्भा च भवसि। त्वया ते सखी राधा एकाकिनी क्वापि न विधेया यस्यां दिशि श्रीकृष्णस्य गन्धोऽप्यस्ति तस्यै दिशे वो युष्माभिरञ्जलिर्नमस्कार एव कार्य्यः। तत्र सर्व्वथैव न गन्तव्यमिति भावः ॥७०॥ हे वत्से ललिता-कुन्दवल्लयौ युवयोरुपरि स्नुषायाः रक्षा सूर्य्यपूजार्थं न्यस्तभाराहं स्यां गोमयैरुत्पलिकाकृतौ निश्चिन्तः स्यां ॥७१॥ ते कुन्दबल्ली-ललिते तां जटिलामूचतुः। हे आर्य्ये निश्चिन्तं निजक्रिया क्रियतां भवत्येति शेषः। आवां भवद्वधूं पक्ष्मणा सह वर्त्तमाने सहपक्षिणी तथाभूते लोचके नेत्राच्छादके ऊर्द्धाधोवर्त्तिनी चर्मणी अक्ष्णस्तारामिवावावः रक्षां करिष्यावः ॥७२॥ ता गोप्यो जटिलायाः आज्ञा

बेटी ! तुम घर से ताम्रकुण्डी अरुणवर्ण कपिला गो का दूध, दधि, घृत, घी का बनाहुआ द्रव्य, गुड़, जवापुष्प, केशर, रक्तचन्दन, पद्ममाला यह सब वस्तु लेकर कुन्दलता तथा गर्गमुनि की कन्या के साथ अथवा सूर्य्यपूजा करवाने में निपुण किसी ब्राह्मण कुमार के साथ सूर्यपूजा के लिए जाओ ।।६९।। पुनर्वार ललिता को बुलाकर कहने लगी, - ललिते ! तुम तो साध्वी तथा प्रगल्भा हो कहींपर तुम्हारी सखी राधा को अकेली रहने न देना, ओर जहाँपर नन्दनन्दन की गन्ध भी हो उस दिक् की ओर से अञ्जलि बाँधकर प्रणाम करना, अर्थात् कदाच उस दिशा के ओर न जाना।।७०।। फिर से बोली, हे कुन्दलते ! हे ललिते ! यह देखो ! यह देखो ! बेला अधिक हो गयी है, गोबर भी इकट्टा है, अतएव तुम दोनों के हाथों में राधा को सौंपकर मैं कण्डे थापने के लिए मनोयोग दे सकूँगी।।७१।। तब अतिशय

आगत्य खट्टोपरिसन्निविष्टां श्रीराधिकां क्षालितमार्ज्जिताङ्घ्रिम् ।
दास्यो मुदा पर्य्यचरन्निजेशां पादाब्जसम्बाहनवीजनाद्यैः ॥ ॥७४॥

मल्ली रङ्गण कर्णिकार वकुलामोघा लता सप्तला
जाती चम्पक नागकेशर लवङ्गाब्जादि पुष्पोच्चयम् ।
श्रीवृन्दाप्रहितं वनादलिकुलास्पृष्टं दरोज्जृम्भितम्
स्वेश्वर्य्याः पुरतोऽन्यधाद्वनसखी श्रीनर्म्मदा मालिनी ॥ ॥७५॥

कृष्णाङ्गकामालयवैजयन्तिकां तैर्वैजयन्तीं विरचय्य सा व्यधात् ।
राधा स्वनैपुण्यगुणादिसूचिकां कर्पूर-कृष्णागुरुसत्त्वभाविताम् ॥ ॥७६॥

वागेव मधु तत् पीत्वा प्रोन्मत्ता अपि आनन्देनोत्फुल्लित-तनुचित्ता मधुराङ्गचः आनन्दातिशयेन गन्तुमसमर्था अपि धैर्य्यं धृत्वा गृहमनुजग्मुः ॥७३॥ स्वगृहमागत्य खट्टोपरि उपविष्टां निजेशां राधां दास्यः पादसम्वाहनवीजनाद्यैः पर्य्यचरन् ॥७४॥ मल्ली रङ्गणादि पुष्पसमूहं बनात् श्रीवृन्दादेव्याः प्रहितं भ्रमरैरस्पृष्टमल्पविकसितं स्वेश्वर्य्याः राधायाः पुरतः वनसखी नर्म्मदानाम्नी मालिनी न्यधात् । कर्णिकारः स्वर्णवर्णपद्माकारपुष्पं । कर्णिकारः पुमानारथपत्रे च द्रुमोत्पले इति मेदिनी । कर्णिकारो मतः पुंसि शामाख्ये च द्रुमोत्पल इति विश्वः । अमोघा लता सप्तला नवमल्लिका भ्रमरास्पृष्टमल्यविकसितमित्यनेन पुष्पाणां म्लानराहित्यं । सौगन्ध्यवर्णयोः परिपूर्णत्वमायात ॥७५॥ सा राधा तैः पुष्पैर्वैजयन्तीं पञ्चवर्णमयीं मालां विरचय्य कर्पूरादि सत्त्वैर्वासितां व्यधात् । कीदृशीं श्रीकृष्णाङ्गरूप-काममन्दिरस्य वैजयन्तिकां जयपताकां । श्रीराधायाःस्वनैपुण्यगुणादेः तादृक् गुणजनकपुण्यस्य सूचिकां ॥७६॥ सा

आनन्दित होकर ललिता एवं कुन्दलता बोली, हे आर्य्ये! आप निश्चिन्त होकर अपना कार्य सम्पन्न करो। नयन पलक जैसे नयन की रक्षा करते हैं, उस प्रकार ही हम दोनों तुम्हारी पुत्रवधू श्रीराधिका की रक्षा करेंगी ।।७२।। अनन्तर मधुराङ्गिणी सखीगण जटिला की आज्ञा रूप मधुपान से मत्त तथा आनन्दोत्फुल्लचित्त हो करके और चलने में असमर्थ होने पर भी धैर्य्य से ही श्रीराधाके साथ घरको चली गईं।।७३।। घरमें आकर श्रीराधा पलङ्ग में बैठने पर, दासीगण उनके चरणकमल को धोकर साफ किए एवं पादसम्वाहन "चरणचापकर" पूर्वक श्रीराधा की परिचर्य्या करने लगीं।।७४।। तब श्रीराधा की बनसखी श्रीनर्म्मदा नाम की एक मालिनी बन से वृन्दा द्वारा भेजे हुए भ्रमरास्पृष्ट ईषन्मुकुलित मल्लिका, रङ्गण, कर्णिकार वकुल, पाटली,

एलेन्दु जातीफलखदिरान्विताः स्वपाणिहृत्सौरभरागभाविताः ।
कृष्णाक्षि चित्ताननचन्द्ररञ्जिकाः सा नागवल्लीदलवीटिका व्यधात् ।। ।।७७।।

मालामेतां तुलसि! हरये वीटिकाश्चोपहृत्य
ज्ञात्वा वृन्दा सुबलमुखतः केलिसङ्केतकुञ्जम् ।
आगच्छाशु त्वमिति ललिता प्रेरितादाय तां ताः
कस्तूर्य्याली सहित तुलसी कृष्णपार्श्वं प्रतस्थे ।। ।।७८।।

श्रीराधिकाप्यथ सखी सहितातिदक्षा श्रीकृष्णचन्द्र सकलेन्द्रियतर्पणानि
कर्पूरकेल्यमृतकेलिमुखानि कामं कर्त्तुं समारभत साद्भुतलड्डुकानि ।।७९।।

राधा नागवल्लीदलस्य ताम्बूलस्य वीटिकाः ब्यधात्। कीदृशीः। एला इन्दुः कर्पूरः जातीफलं खादिरः स्वार्थेऽण् खदिर एतैरन्विता युक्ताः स्वपाणेर्हृदयस्य च सौरभरागाभ्यां भाविताः श्रीकृष्णाक्षिचित्तयोः सुखदाः। आननस्य रागजनिकाः। यद्वा कृष्णस्य अक्षिचित्तयोः आननचन्द्रस्य सत् रञ्जिका ।।७७।। हे तुलसि मालां वीटिकाश्च हरये उपहृत्य दत्त्वा वृन्दा सुबलमुखात् केलिसङ्केतकुञ्जं ज्ञात्वा शीघ्रमागच्छ इति ललितया प्रेरिता कस्तूर्य्या सह तुलसी तां मालां ताः बीटिकाश्चादाय कृष्णपार्श्वं प्रतस्थे ।।७८।। श्रीराधा सखीसहिता कर्पूरकेलिमुखानि अद्भुतलड्डुकानि कर्त्तुं समारभत ।।७९।। यदपि

माधवीलता, नवमल्लिका, जाति, चम्पक, नागकेशर, लवङ्ग एवं पद्म प्रभृति कुसुम समूह को लेकर श्रीराधा के पास उपस्थित हुई।।७५।। श्रीराधा ने भी वृन्दा प्रदत्त कुसुमसमूह के द्वारा निज शिल्पादि गुण सूचक कर्पूर कृष्णागुरु से सुवासित एवं श्रीकृष्णके अङ्गरूप कन्दर्प भवन की पताका स्वरूप वैजयन्ती "पञ्चवर्ण मयी" दिव्य माला बनायी।।७६।। श्रीराधा ने निज हस्त सौरभ एवं हृदयके अनुराग से सुवासित, एवं श्रीकृष्ण के नयन और चित्त के आनन्द दायक, तथा मुखचन्द्र के राग जनक, इलायची कर्पूर, और जायफल खदिर आदि के द्वारा ताम्बुल की वीड़ी वनाई।।७७।। और तुलसी को बुलाकर कही, तुम माला तथा वीड़ी (पानकी) ले जाकर कृष्ण को दो, और वृन्दा तथा सुवल से केली कुञ्जका संवाद जानकर शीघ्र लौट आओ। इस प्रकार ललिता द्वारा भेजी हुई कस्तूरी सखी के साथ तुलसी माला और पान की वीड़ी को लेकर कृष्ण के पास पहुँच गई।।७८।। सखियों के साथ श्रीराधा, श्रीकृष्ण की सर्वेन्द्रिय और आत्मा की तृप्तिदायक कर्पूर केलि,

यदपि निजसखी सान्वेषणायास्य याता
स्वयमपि च निमग्ना कृष्णसम्बन्धिकृत्ये ।
तदपि हरिमुखेन्दोर्दर्शनोत्काऽथ मेने
त्रुटिमपि युगलक्षं व्यग्रराधा चकोरी ॥ ॥८०॥

॥❋॥ श्रीचैतन्यपदारविन्दमधुप श्रीरूपसेवाफले
दिष्टे श्रीरघुनाथदासकृतिना श्रीजीवसङ्गोद्गते ।
काव्ये श्रीरघुनाथभट्टवरजे गोविन्दलीलामृते
सर्गः पञ्चम एष साधु निरगात् पूर्व्वाह्नलीलामनु ॥❋॥ ॥५॥

अस्य श्रीकृष्णस्यान्वेषणाय सा निजसखी तुलसी याता स्वयमपि श्रीकृष्णसम्बन्धि कृत्ये लड्डुका निर्म्माणे निमग्ना तदपि श्रीकृष्णमुखदर्शनोत्कण्ठिता त्रुटिका-लमतिसूक्ष्मकालमपि युगलक्षं मेने तत्र हेतुमाह व्यग्रा चैषा राधा चकोरीति ॥८०॥

॥ ❋❋ ॥ इति श्रीगोविन्दलीलामृते सदानन्दविधायिन्यां पञ्चमः सर्गः ॥ ❋❋ ॥

अमृत केलि प्रभृति लड्डू बनाने लगगई।।७९।। इसके पहले ही कृष्ण का पता लगाने के लिए यद्यपि निज सखी तुलसी गई है, तथापि लौटकर आने में विलम्ब को देखकर राधा चकोरी व्रजचन्द्रमा श्रीकृष्ण के अदर्शन से क्षण भर समय को भी लक्ष युग के समान मानने लगी।।८०।। श्रीकृष्णचैतन्य महाप्रभु के पदारविन्द के मधुप स्वरूप श्रीरूपगोस्वामी जी की सेवा के फलस्वरूप, श्रीरघुनाथ दास गोस्वामी जी से प्रेरणा प्राप्त और श्रीमज्जीव गोस्वामी जी के सङ्ग से उत्पन्न और श्रीरघुनाथ भट्टगोस्वामी जी के वरदान प्रभाव से लिखित श्रीगोविन्द लीलामृत काव्य में पूर्वाह्न लीला वर्णनमय पञ्चमसर्ग समाप्त हुआ।।५।।



षष्ठसर्गः

—※※—

प्रविष्टोऽथ वनं पश्चात् पश्यन् वलितकन्धरम्।
उज्जिजृम्भे हरिर्वीक्ष्य निवृत्तान् व्रजवासिनः॥ ॥१॥

कृष्णमत्तेभ उन्मुक्तो घोषदृग्दृढशृङ्खलात्।
उच्छ्वसंश्चपलः स्वैरी काननेऽन्य इवाभवत्॥ ॥२॥

श्रीकृष्णसच्चित्रपटे विमोचिते व्रजाक्षिवन्धाद्वनचित्रकारिणा।
प्रादुर्वभूवुर्नयनोत्सवानि तद्विहारचित्राणि शुभान्यनेकधा॥ ॥३॥

नृत्यन्ति गायन्ति हसन्ति गोपाः कूर्द्दन्ति नन्दन्ति परिस्खलन्ति।
नर्म्माणि तन्वन्ति लसन्त्यथैते वन्धाद्विमुक्ताः कलभोत्तमा वा॥ ॥४॥

अथानन्तरं हरिर्वक्रकन्धरं यथास्यात् पश्चात् भागं पश्यन् निवृत्तान् व्रजराजमुखान् व्रजवासिनो वीक्ष्य बनं प्रविष्टः सन् उज्जिजृम्भे हर्षोत्फुल्लोऽभूत्॥१॥ घोषनिवासिनां दृगेव दृढशृङ्खलं तस्मादुन्मुक्तः कृष्णमत्तेभ उच्छवसन् उत्प्लुत्य गच्छन् श्वसप्लुत गतौ धातुः। अन्य इव कानने चपलः स्वैरी स्वेच्छाचारी चाभवत्। अनेन घोषवासिनां प्रेमाधीनत्वं स्वत एवायातं॥२॥ वनरूपचित्रकारिणा कर्त्रा व्रजाक्षिवन्धात् श्रीकृष्ण एव सच्चित्रपटस्तमिन् विमोचिते सति शुभानि मङ्गलानि नयनोत्सवानि नयनानामुत्सवो येभ्यस्तानि चित्राणि अनेकधा अनेकविधानि तत्तस्य श्रीकृष्णस्य विहाररूपचित्राणि प्रादुर्वभूवुः। व्रजाक्षिवन्धात् मुक्त इत्यनेन तेषां गौरवेण तादृशी लीला न भवति। वनचित्रकारिणेत्यनेन वने यथेष्टाचरणे संभ्रमाभावः कथितः॥३॥ गोपाः नृत्यन्ति नर्म्माणि

अनन्तर श्रीकृष्णने पीछे की ओर गर्दन को घुमाकर देखा कि व्रजवासीगण वापिस लौट चुके हैं, यह देखकर प्रफुल्लचित्त से वनमें प्रविष्ट होकर आनन्दित हुए ॥१॥ जिस प्रकार मत्तहस्ती बन्धन मुक्त होकर झपटकर चलता हो, वैसा ही स्वतन्त्र भ्रमणकारी श्रीकृष्ण व्रजवासियों के नेत्ररूप दृढ़ श्रृङ्खल से मुक्त होकर वनमें दूसरों की भाँति दिखाई देने लगे ॥२॥ एवं वनरूप चित्रकार के द्वारा व्रजवासीगण के बन्धन से श्रीकृष्णरूप सत् चित्रपट मुक्त होनेपर उन कृष्णके बहुविध चित्रविचित्र सुन्दर विहार सकल जो कि नयनावलि के महानन्दजनक है, प्रादुर्भूत होने

स्थितिं स्थिरां मातृपुरो बकारेरेकेऽङ्गना स्वस्य दृशश्च लोलाम्।
सङ्कट्टदृष्टामनुकुर्व्वतेऽन्ये चेष्टां गिरिश्च स्खलितां जनानां ॥५॥

केचिद्वृक्षलतावृत्ताः प्रचपलापाङ्गैः स्मितार्द्रं मना-
गुद्घाट्याम्वर-सम्वृताननममुं गोपालयोषायिताः।
पश्यन्तो व्यहसन् परे च धवला लेखायमाना मुदा
व्यालम्वथाङ्गिकैर्महीं विलुलितग्रीवोर्ध्वकर्णाननाः। ॥६॥

तन्वन्ति एते गोपाला वन्धाद्विमुक्ताः। कलभोत्तमाः करिशावकश्रेष्ठा वा इवार्थे हस्तिवालका वन्धाद्विमुक्ता यथा यथेष्टया चरन्ति तथेत्यनेन यथेष्टाचरणां सेवनांशे च दृष्टान्तः ॥४॥ माता प्रेयस्योरग्रे श्रीकृष्णस्य यादृशं स्थिरीदृष्ट्योः स्थैर्य्यं चाञ्चल्यञ्च। मातृपुरः मातृणामग्रे अस्य बकारेः स्थिति स्थिरां दृशश्च स्थिरां। तथा अङ्गनासु प्रेयसीषु स्थितिं लोलां दृशश्च लीलां वात्सल्यमधुरभावजन्यां। एके सखायः अनु कुर्व्वते। अनु तत्सदृर्शी स्थितिं दृशश्च स्थिरां लोलाञ्च कुर्व्वते। अन्ये सखायः जनानां तद्भिन्नजनानामग्रे श्रीकृष्णस्य सङ्कट्टां क्वापि समये लोलां क्वापि समये समां दृष्टां स्थिरां स्थितिं दृशश्च यथा दृष्टिगोचरीं तादृर्शी अनुकुर्व्वते। तथा मातृप्रेयस्यादीनामग्रे वात्सल्यादिभारवशात् क्वापि समये श्रीकृष्णस्य स्खलितां गिरं चेष्टाञ्चानुकुर्व्वते। ननु व्रजपरिकराणाञ्चेष्टामात्रमपि श्रीकृष्णसुखतात्पर्य्यकमेव। ये श्रीकृष्णसुखतात्पर्य्यक-चेष्टाबन्तो न ते परिकरा एव न पूर्व्वश्लोकोक्तनृत्यादिकं श्रीभागवतोक्तं सुखकरञ्च। अत्रोक्त श्रीकृष्णस्य स्थित्यादेरनुकरणेन श्रीकृष्णस्य का प्रीतिर्भवेत्। उच्यते श्रीकृष्णाविष्टचित्तानां व्रजसुन्दरीणां मधुररसवतीनां श्रीकृष्णस्य परोक्षे रासलीलायां कस्याश्चित् पूतनायन्त्याः कृष्णायन्त्यपिवत् स्तनमित्यादि भयानकासुरवधादिलीलानु-करणं कृष्णाकर्षकं कृष्णसुखदञ्चाभूत्। श्रीकृष्णसखीनां श्रीकृष्णसन्निधौ परमानन्दमयं श्रीकृष्णस्य स्थिरचाञ्चल्यादि लीलानुकरणं। सख्यरसस्य परमपुष्टिकरं असङ्कच श्रीकृष्णसुखदं भवेदेवेति किमाश्चर्य्यं ॥५॥ केचित् गोपा गोपालानां योषित इवाचरिताः।

लगे ॥३॥ वन में जाकर गोपबालकगण बन्धनमुक्त हस्ति शावक की भाँति कोई-कोई नाचने में, कोई-कोई कूदने में प्रवृत्त रहा, कोई-कोई आनन्द में मगन था, कोई-कोई भूमि में लोट रहा था, कोई कोई परिहास कर रहा था, कोई-कोई आमोद-प्रमोद में प्रवृत्ति रहा ॥४॥ अपर बालक श्रीकृष्ण जिस प्रकार मैया के पास निश्चल दृष्टि से रहते हैं, एवं प्रेयसी के समीप में मधुरभाव के कारण जिस प्रकार चञ्चल दृष्टि से देखते हैं, अन्यान्य लोकों

वितण्डापण्डिताः केचित्तत्तच्छब्दार्थखण्डनैः ।
दण्डादण्डिरणैः केचिद्दोर्दण्डसङ्गरैः परे ॥७॥
क्षिप्तानेकास्त्रकाण्डौघैर्दण्डभ्रमणकौशलैः ।
लास्यैर्हास्यैः परे दास्यैस्तोषयामासुरच्युतम् ॥८॥
अथागतं कृष्णमवेक्ष्य वृन्दा वृन्दाटवीं तद्विरहात् विषण्णां
वृन्दश्च साऽबोधयदाकुलानां वृन्दावनस्थावरजङ्गमानाम् ॥९॥

आचरणमाह वृक्षलताभिरावृताः। स्मितेनार्द्र अम्बरेणावृतश्च मुखं मनागुद्घाट्य अमुं श्रीकृष्णं प्रचपलापाङ्गैः पश्यन्तः व्यहसन्। परे च गोपाः अङ्घ्रिकरैर्महीं व्यालम्ब्य धवला लेखायमानाः गवाकारा भूत्वा गाव इव आचरिताः विवलितवक्रीकृतग्रीवाश्च ते ऊर्ध्वकर्णाननाश्च भूत्वा अमुं श्रीकृष्णं पश्यन्तो व्यहसन् श्रेणी लेखास्ते राजय इत्यमरः ॥६॥ वितण्डा परमतखण्डनं तत्र पण्डिताः केचित् गोपाः। तत्तत् कृष्णदिभिरुक्तं यद्यत् तेषां तेषां शब्दार्थानां खण्डनैः। दण्डेन दण्डं संताड्य वृत्तैरणैः दण्डादण्डिरणैः। दोर्दण्डाभ्यां हस्तरूण्डाभ्यां सङ्गरैर्युद्धैः क्षिप्तैरनेकास्त्रैः काण्डौघैश्च दण्डभ्रमणकौशलैः। लास्यैर्नृत्यैर्हास्यैर्दास्यैस्तेऽच्युतं तोषयामासुः। काण्डोऽस्त्री दण्डवाणार्व्ववर्गावसरवारिषु इत्यमरः ॥७॥८॥ वृन्दा आगतं श्रीकृष्णमवेक्ष्य तत्तस्य कृष्णस्य विरहात् विषण्णां वृन्दाटवीं। तथा श्रीकृष्णविरहात् आकुलानां वृन्दावनस्थावरजङ्गमानां वृन्दं चाबोधयत् ॥९॥

के निकट कभी तो स्थिर, सम चञ्चल दृष्टि से अवलोकन करते हैं उसकी भाँति कोई-कोई बालक अनुकरण कर रहा था ॥५॥ कोई-कोई बालक सघनलताओं में घुसकर, कोई तो वृक्षकी आड़में रहकर, कोई व्रजाङ्गनाओं के भावसे ईषत् हास्य, आंचल से मुह ढ़के घूँघट में से श्रीकृष्ण की ओर वक्रनेत्रों से देखकर हास्य विनोद कर रहा था, कोई बालक आनन्द से अपने हाथ पैरों से पृथिवी का अवलम्बन लिए गोके समान आकृति से टेढ़ी गर्दन कर ऊपर की ओर मुँह उठाये, कानों को खड़े कर खेल रहा था ॥६॥ और भी कोई वालक श्रीकृष्ण आदिके कथित वाक्यों का खण्डन धूर्त्तपण्डित के समान कर रहा था, कोई तो दण्डयुद्ध कर रहा था, कोई बाहुयुद्ध, कोई अस्त्र चालन, और कोई लठ्ठ घुमाने का कौशल दिखा रहा था, कोई नृत्य, कोई हास्य, कोई दास्य कार्यके द्वारा श्रीकृष्ण को सन्तुष्ट करने लगा ॥७॥८॥ अनन्तर वृन्दा, श्रीकृष्ण को वनमें आते देखकर, कृष्ण विरहसे खिन्न अटवी एवं वृन्दावनस्थ स्थावर जङ्गम को प्रबोधित कर कहने

अटवि सखि समायान्माधवोऽसौ समन्तात्
विसृज विरहघूर्णां तूर्णमुल्लालसीहि।
स्वगुणगणविकाशैः स्वेश्वरीं स्मारयामूम्
सफलय निजलक्ष्मीश्चानयोः सद्विलासैः ॥१०॥

प्रबुध्यध्वं वल्ल्यो विकसत नगाः कूर्दत मृगाः
पिका भृङ्गैर्गानं कुरुत शिखिनो नृत्यत मुदा
अधोर्ध्वं भोः कीराः स्थिरचरगणानन्दत चिरं
समायातो युष्मान् सुखयितुमसौ वः प्रियतमः ॥११॥

ततः स्वविच्छेददवाग्निमूर्च्छितां समीक्ष्य तां चेतयितुं प्रियाटवीम्।
कृष्णाम्वुदः स्वागमनञ्च शंसितुं ववर्ष वंशीनिनदामृतान्यसौ॥ ॥१२॥

वंशीनिनादामृतवृष्टिसिक्ता कृष्णाङ्गसङ्गानिलवीजिताथ।
श्रीवृन्दयाल्या च सुचेतितोच्चैर्वृन्दाटवी सा सहसोन्मिमील॥ ॥१३॥

हे सखि अटवि असौ माधवः श्रीकृष्णः वसन्तश्च समायात् विरहाज्जन्यां घूर्णां विसृज तूर्णं उल्लासयुक्ता भव। स्वेश्वरीं श्रीराधां स्वगुणगणविकाशैरमुं श्रीकृष्णं स्मारय। अनया राधाकृष्णयोः सद्विलासैर्निजलक्ष्मीं सफलय ॥१०॥ हे वल्ल्यः प्रबुध्यध्वं हे नगाः कूर्दत प्लुत्य गच्छत एवमग्रेऽपि ते स्फुटार्थाः। असौ प्रियतमः श्रीकृष्णः वो युष्मान् सुखयितुं समायातः ॥११॥ असौ कृष्णाम्बुदः स्वविरहमूर्च्छितां प्रियाटवीं वीक्ष्य तां चेतयितुं स्वागमनञ्च शंसितुं वंशीनिनादामृतानि ववर्ष ॥१२॥

लगी ॥९॥

हे सखि अटवि! सव प्रकार से माधव बृन्दावन में आगए हैं, पक्ष में वसन्त का आगमन हुआ है, तुमसब श्रीकृष्ण विरह खेदका त्यागकर शीघ्र उल्लसित हो जाओ, निज निज गुण समूह को प्रकट करो, जिससे श्रीकृष्ण को श्रीराधा का स्मरण हो, एवं श्रीराधाकृष्ण के विलास के द्वारा निज शोभा की सफलता सम्पादन करो॥१०॥ हे लतागण! सचेतन हो जाओ! हे तरुगण! विकसित हो जाओ! हे मृगगण! तुमसब खेलो! हे कोकिलकुल! तुमसब भृङ्गगणके साथ गाओ, हे मयूरगण! सुखसे नाचो! हे शुकपक्षिगण! तुमसब मधुर पदावलियों का पाठ करो! हे स्थावर जङ्गमगण! तुम सब आनन्दोत्सव मनाओ! वह देखो! तुम्हारे प्रियतम श्रीकृष्ण तुमसब को सुखी करने के लिए वनमें आ रहे हैं॥११॥ अनन्तर श्रीकृष्ण मेघने निज विरहरूप दावानल से मूर्च्छित अटवी को देखकर, चेतन कराने के लिए एवं निज

सत्वधर्म्मविपर्य्यासैर्वेणूनादामृतोत्थितैः।
स्वसात्त्विकविकारैश्च तदाभूद्व्याकुलाटवी ॥१४॥

प्रोद्यद्वेपथुरुच्चलत् स्थिरचयैः स्तब्धा जडैर्जङ्गमैः
प्रस्विन्ना स्रवदश्रुजालसलिलैः श्वेता प्रसूनोत्करैः।
साश्रुः पुष्पमधुद्रवैः स्वरभिदा युक्ता खगालीरवैः
रोमाञ्चालियुता लताङ्कुरवृतैर्वृन्दाटवी सा वभौ ॥१५॥

मण्डिता विशतैकेन जाग्रतान्येन साटवी।
माधवेनाबभौ द्रष्टुं तं शोभा श्रीरिवागता ॥१६॥

वृष्टिसिक्ता वायुवीजिता सुचेतिता च सा वृन्दाटवी उन्मिमील ॥१३॥ वेणुनादामृतोत्थैः सत्त्वानां प्राणिनां धर्म्मविपर्य्यासैः जङ्गमानां स्थावरधर्म्मैः स्थावराणां जङ्गमधर्म्मैः सात्त्विकविकारैश्चाटवी व्याकुला व्याप्ताभूत् ॥१४॥ व्याकुलतामाह। सा वृन्दाटवी वभौ कथं तत्राह। उच्चलद्भिः स्थिरचरैः प्रोद्यन् वेपथुः कम्पो यस्याः सा। जडैर्जङ्गमैः स्तब्धा। स्रवदश्रुसमूहजलैः प्रस्विन्न स्वेदयुक्तः। प्रसूनोत्करैः श्वेता विवर्णा पुष्पमधुस्रबः साश्रुः। पक्षिसमूहशब्दः स्वरभेदयुक्ताः। लताङ्कुरैः रोमाञ्चयुक्ताः ॥१५॥ सा वृन्दाटवी एकेन विशता माधवेन कृष्णेनान्येन जाग्रता माधवेन वसन्तेन च मण्डिता सती तं श्रीकृष्णं द्रष्टुमागता शोभा श्रीरिवाबभौ। अत्र चाभावो न्यूनपदत्वं ॥१६॥ साटवी हरेः सर्व्वेन्द्रियाह्लादिनी अभवत्। कीदृशी कूजद्भ्रमरपक्षिणां पञ्चमः स्वरः उच्चैः स्वरस्तस्य कला वैदग्ध्यं यत्र तेनालापेन उल्लसन्ती उल्लासयुक्ता अनेन कर्णेन्द्रियसुखदा।

आगमनवार्त्ताकोसूचितकरनेके लिए वंशीनादरूप अमृत कीवर्षा की ।।१२।। तत् पश्चात् वृन्दाटवी वंशीनिनाद रूप अमृत वृष्टिसे अभिषिक्त एवं कृष्णाङ्ग सङ्ग समीरण द्वारा वीजित, तथा सभी वृन्दा के द्वारा प्रबोधित होकर सहसा प्रफुल्लित हो गई ।।१३।। तब वह वृन्दाटवी, वेणुनादामृत द्वारा प्राणी समूह के धर्म विपर्यय से अर्थात् स्थावर सकल में जङ्गम का धर्म, जङ्गम समूह में स्थावर का धर्म, तथा सात्त्विक विकार समूह द्वारा व्याकुला होगई ।।१४।। जैसे उच्छलित स्थावर समूह कम्प, जड़ता से जङ्गम समूह में स्तब्धता, द्रवीभूत् पाषाण समूह में स्वेद, पुष्प समूह में विवर्ण, पुष्पमधु क्षरणमें अश्रु, पक्षिवृन्दके शब्द से स्वरभङ्ग एवं लता समूह के अङ्कुरोद्गम से रोमाञ्चकी शोभासे सुशोभित हो गई ।।१५।। वह वृन्दाटवी एक श्रीकृष्ण के प्रवेश से दूसरा वसन्त ऋतु के समागम से श्रीकृष्ण दर्शन के लिए आगता लक्ष्मी की

कूजत्भृङ्गविहङ्गपञ्चमकलालापोल्लसन्ती हरे-
श्च्योतत्पक्त्रिमसत्फलोत्कररसोल्लासाटवी साभवत्।
संफुल्लन्नलिनीविलासि विहसद्वल्लीमतल्ली नटी
लास्याचार्य्य मरुद्गणालिमुदिता सर्व्वेन्द्रियाह्लादिनी ॥१७॥

पुष्पैर्हास्यं भ्रमरैर्गानं पर्णैर्लास्यं मधुभिः पानं।
दधतस्तरवः स्वफलैः खानं कुर्व्वन्त्यभ्यागत-हरिमानम्॥ ॥१८॥

अलिगायकचुम्बितकुसुमास्यं पल्लवपटवृत-विवृतसुहास्यं।
दधती रहसी विदधती लास्यं व्यवृणुत वल्लीततिरपि दास्यं॥ ॥१९॥

च्योतता क्षरता पक्त्रिमाणां सुपक्कानां फलानां आम्रादीनां उत्कररसोल्लासो यस्या अनेन रसनेन्द्रियसुखदा सफुल्लनलिन्यां विकसितपङ्कजे विलसितुं शील यस्य तथाभूतश्चासौ विहसद्वल्ली विकसत् पुष्पयुक्ता लता सैव मतल्ली प्रशस्ता नटी तस्या लास्यस्य नर्त्तनस्याचार्य्यो यो मरुद्गणः तेनातिमुदिता इत्यनेन च घ्राणेन्द्रियनेत्रेन्द्रियाणां सुखदा ॥१७॥ तरवो वृक्षाः पुष्पैर्हास्यं दधतः पर्णै खानं भोजनं अभ्यागतश्चासौ हरिश्चतस्य मानं कुर्व्वन्ति ॥१८॥ वल्लीततिरपि इत्यत्रापि शब्देनाभ्यागतहरिमान दास्यं व्यवृणुत किं कुर्व्वती अलिगायकैश्चुम्बितं कुसुमरूपमुखं दधती कीदृशं तत् पल्लवरूप-पटेन वृतमावृतं विवृतं विकसितं सुहास्यं यत्र। रहसी लास्यं विदधती ईदृशी चेष्टा एव वल्लीरूपनायिकानां दास्यं एतादृशवल्लीदर्शनेन कृष्णसुखोत्पत्ते ॥१९॥ स्वरमणहसितानां हरिणीनां चञ्चलालोकनानि वीक्ष्य स्मृतिपथमधिरूढैः

भाँति शोभिता हो गई।।१६।। सौन्दर्य्य को कहते हैं,-वृन्दाटवी अव्यक्त मधुर शब्दकारी भ्रमर एवं पक्षिगण के उच्चस्वर से उल्लासयुक्त, सुपक्क आम प्रभृति फलादि से क्षरित रससे उल्लसित, संफुल्ल पङ्कज से शोभित, नृत्याचार्य सुमन्द नटरूप समीरण द्वारा प्रफुल्ल लतारूप नटी के नृत्य बिनोद से शोभित होकर श्री कृष्ण की सकलेन्द्रिय की तृप्ति विधान करने लगी। अर्थात् श्रीकृष्ण की कर्णेन्द्रिय, रसनेन्द्रिय, एवं घ्राणेन्द्रिय की सुखप्रदा होगई।।१७।। तब वृन्दाटवीके वृक्ष समूह श्रीकृष्ण को अभ्यागत अतिथि मानकर हृष्ट होकर पुष्प निकर द्वारा हास्य, भ्रमर निकर द्वारा गान, पत्रसकल के द्वारा नृत्य, मधु निचय द्वारा पान, एवं निज-निज फलों के द्वारा भोजन इत्यादि प्रकारसे उनको सम्मानित करने लगे।।१८।। लतानिचय भी श्रीकृष्ण को अतिथिरूप में प्राप्त कर गायकरूप अलिके द्वारा चुम्बित, कुसुम स्वरूप से सुहास्य, वदन पल्लव की भाँति वसन के द्वारा संवृत होकर

स्वरमणसहितानां वेणुनादाहृतानां
तृणकवलमुखानां चञ्चलालोकनानि।
हरिरथ हरिणीनां वीक्ष्य राधाकटाक्षैः
स्मृतिपथमधिरूढैर्विव्यथे विद्धमर्म्मा॥ ॥२०॥

प्रेम्णाऽनृत्यत्फुल्ल-मयूरीततियुक्तः
कृष्णालोकान्मत्तमयूर-व्रज-आरात्।
स्निग्धे राधा केशकलापे रतिमुक्ते
यत् सत् पिञ्छैराशु मुरारेः स्मृतिरासीत् ॥२१॥

मदकलकलविङ्की मत्तकादम्बिकाना-
मपि सरसि विरावैः सारसानां प्रियायाः।
वलयकटककाञ्ची नूपुराणां स्वनोर्म्मी
भ्रमचुलुकितचित्तोऽभ्यागतां तां स मेने॥ ॥२२॥

राधाकटाक्षैर्विद्धमर्म्मा हरिः विव्यथे ॥२०॥ कृष्णालोकात् मयूरीभिः मयूरव्रजः आरात् आरात् समीपे प्रेम्णाऽनृत्यत्। यद्यस्य मयूरव्रजस्य सत् पिञ्जैः रतेर्मुक्ते स्खलिते स्निग्धे राधायाः केशकलापे तद्विषये मुरारेराशु स्मृतिरासीत् ॥२१॥ सरसि वीनां पक्षिणां रावैः शब्दैः मदकलकलविङ्की मदोत्कटचटकी तासां मत्तकादम्बिकानां हंसीनां सारसानामपि शब्दैः प्रियायाः राधायाः वलयादीनां स्वनोर्म्मि भ्रमेण चुलकितं ग्रस्तं चित्तं यस्य स श्रीकृष्णः आगतां तां राधां मेने चटकीशब्देन वलयशब्दज्ञानं हंसीशब्देन कटकशब्दज्ञानं विविधपक्षिणः शब्देन काञ्ची ज्ञानं सारसानां प्रियायाः शब्देन नूपुरशब्दज्ञानं। यद्वा,

---

निर्जन में नृत्य करते-करते दास्य बिस्तार करने लगीं।।१९।। अनन्तर मृगी निकर मृगगणके साथ तृण भक्षण करते करते वंशीरव से आकृष्ट होकर निकट में समागत होनेपर श्रीकृष्ण उस हरिणीयों के मनोहारी लोचनों को देखकर श्रीराधा की कटाक्ष की स्मृति होने पर हृदय से व्यथित होगये।।२०।। उस समय समीपवर्त्ति मयूर निकर श्रीकृष्ण को देखकर आनन्द मनसे मयूरीयों के साथ उन्मत्त होकर नृत्य शुरूकर दिये, यह देखकर श्रीकृष्ण के चित्त में रति क्रीड़ा से राधा के आलुलायित केश कलाप का स्मरण हुआ।।२१।। वहाँ के सरोवर के तीर में रहने वाले मदमत्त चड़ई पक्षिगण की ध्वनि को श्रीकृष्ण श्रीराधा के वलय की ध्वनि, हंस सकल की ध्वनि को कटक की ध्वनि, सरोवरस्थ सारसगण की कलध्वनि की नूपुर ध्वनि मानने लगे। सुतरां

उपरि चपलभृङ्गं पद्ममीषत् प्रकाशं
वरपरिमलपूरं शश्वदालोक्य कृष्णः ।
स्मित-शवल-कटाक्षं पद्मगन्धं प्रियाया
मुखमिदमिति मत्वा तामुपेतां विवेद ॥ ॥२३॥

रुचक-करक-विल्वैर्नागरङ्गैः सुपक्वैः
प्रति दिशमनुदृष्टैर्हर्षतर्षाकुलोऽसौ ।
सपदि लसदुरोजभ्रान्ति-सम्भ्रान्तचेता
वपुष इह विभुत्वं राधिकायाः शशङ्के ॥ ॥२४॥

यतो यतः पतति विलोचनं हरेस्ततस्ततः स्फुरति तदङ्गसंहतिः ।
न चाद्भुतं तदिह तु यत् व्रजाटवी मुदे हरेरलभत राधिकात्मताम् ॥ ॥२५॥

आर-वारावसंवार-बिरावा इत्यमरः । विरावैः शब्दैः तत्र सारसानां तत्प्रियायाश्चेति पृथगुपमेति ॥२२॥ अत्र यथाक्रमं ज्ञेयं, कृष्ण ईषत् प्रकाशो यस्य तत् उपरि चपलभ्रमरो यस्य तत् वरपरिमलस्य दूरगामी-सुगन्धस्य पूरः समूहो यस्य तत् पद्मं शश्वदालोक्य प्रियायाः स्मितहसति-कटाक्ष सुगन्धश्च मुखमिदं मत्वा तां प्रियां आगतां विवेद ॥२३॥ रुचकैः वीजपूरैर्व्रजे विजोराख्यैः । फलपूरो वीजपूरो रुचको मातुलुङ्गके इत्यमरः । करकैर्दाडिमैः विल्वैर्नागरङ्गैः नारङ्गीति ख्यातैः । सुपक्वैरित्यनेन वर्णसाम्ययुक्तं । प्रति दिश दिश प्रति ननुदृष्टैर्हेतुभिर्हर्षतर्षाकुलः कृष्णः राधिकायाः स्तनभ्रान्त्या भ्रान्तचेताः स इह राधावपुषः विभूत्वं सर्व्वव्यापकत्वं शशङ्के ॥२४॥ यत्र यत्र हरेर्विलोचनं पतति तत्र तत्र तस्या राधायाः अङ्गस्य संहतिः समूहः स्फुरति । व्रजाटवी-हरेर्मुदे आनन्दार्थं यत्

भ्रम ग्रस्त चित्त से मानने लगे कि श्रीराधा आगई है ।।२२।। उत्कृष्ट परिमल को तिरस्कारि सुगन्धयुक्त ईषत् प्रस्फुटित कमल के ऊपर चञ्चल भ्रमर को देखकर स्मित हसित कटाक्ष शोभित पद्म गन्धयुक्त श्रीराधाके मुखपद्म को मानकर मनमें सोचने लगे कि सम्भवतः प्रियतमा आ गई होगी।।२३।। श्रीकृष्ण बनमें भ्रमण करते-करते चारों ओर दृष्टिपात पूर्व्वक-वीजपुर, अनार, वेल, नारङ्गी प्रभृति सुपक्व फल समूह को अवलोकन कर हर्ष से तृष्णाकुल होकर भ्रमसे भ्रान्तचित्त होकर मानने लगे की श्रीराधा के अङ्गकी व्यापकता हुई है, अर्थात् सकल वन ही श्रीराधाके शरीर से रूपायित होगए हैं।।२४।। इस प्रकार श्रीकृष्ण की दृष्टि जहाँ जहाँपर पड़ने लगी वहां वहाँपर

तैरुद्दीपितभावाली वात्ययोच्चालितं मनः।
शशाक न स्थिरीकर्त्तुं काशपुष्पनिभं हरिः॥ ॥२६॥

वृन्दावनस्थिरचरान् स्वालोकप्रेमविह्वलान्।
प्रेमाकृष्टमनाः कृष्णः प्रेक्ष्य तान् मुमुदे भृशं॥ ॥२७॥

सख्यः किं कुशलं लताः क्षितिरुहाः क्षेमं सखायः शिवं
मृग्यः किं भविकं मृगाः शकुनिका भव्यं शकुन्ताः शुभं।
भृङ्ग्यः शं भ्रमराः सुखं स्थिरचराः स्वश्रेयसं वः सदा
प्रेम्णेत्थं वनसंगतान् सरभसं पप्रच्छ सर्व्वान् हरिः॥ ॥२८॥

राधिकात्मतामलभत तत्तु इह व्रजाटव्यामद्भुतं न॥२५॥ हरिस्तै राधाङ्गानुभवैरुद्दीपित-भावाली सैव वात्या वायुसमूहस्तेन उच्चालितं मनः स्थिरीकर्त्तुं न शशाक किमिव। काशस्य तृणविशेषस्य पुष्पमिव॥२६॥ वृन्दावनीय-स्थावर-जङ्गमान् स्वस्य श्रीकृष्णस्यालोकेन प्रेमविह्वलान् तान् वीक्ष्य श्रीकृष्ण प्रेमाकृष्टमनाः सन् भृशं मुमुदे॥२७॥ हे सख्यः लताः! वो युष्माकं किं कुशलं किं प्रश्ने, हे सखायः! क्षितिरुहा वृक्षाः वः क्षेमं, हे मृग्यः! वः किं शिवं, हे मृगाः! वः भविकं, हे शकुनिकाः! वः भाव्यं, हे शकुन्ताः पक्षिणः! वः शुभं, हे भृङ्ग्यः! वः शं सुखं, हे भ्रमराः! वः सुखं, हे स्थिरचराः! वः सदा स्वश्रेयस सरभसं स हर्षं इत्थं सर्व्वान्

ही श्रीराधाके अङ्ग प्रत्यङ्ग समूह की स्फूर्त्ति होने लगी, अतः वह वृन्दाटवी श्रीकृष्णको सुखी करने के लिए श्रीराधिकामय होगई थी, यह कुछ अद्भुत नहीं है।।२५।। उसको देखकर श्रीराधा के अङ्ग प्रत्यङ्ग के अनुभव से उद्दीपित भावावलि रूप घूर्णीवायु से घूर्णित काशकुसुम की भाँति श्रीकृष्ण निज चित को सुस्थिर रखने में असमर्थ रहे।।२६।। श्रीकृष्ण के रूपादि को देखकर वृन्दावनस्थ स्थावर जङ्गम श्रीकृष्ण प्रेममें विभोर होगए, यह देखकर श्रीकृष्ण स्वयं ही प्रेमाकृष्ट चित्तसे अतिशय आह्लादित होगये।।२७।। अनन्तर वृन्दावनस्थ स्थावर जङ्गम निकर को जिज्ञासा करने लगे, हे सखि लतागण! तुम्हारे कुशल है न, हे वृक्षगण! तुमसब हमारे सखा हो, तुम सब कुशल से हो तो? हे मृगीगण! तुमसब अच्छे हो? हे मृगवृन्द! तुम्हारे मङ्गल है तो? हे पक्षिणी निचय! तुमसब प्रकार से सुखपूर्वक तो हो? हे पक्षि समूह! तुम सबके शुभ तो है? हे भ्रमरीगण! तुमसब सुखी तो हो? हे मधुकर निकर! तुम्हारे मङ्गल तो है? हे स्थावर जङ्गम सकल! तुमसब के

प्रचार्य्य गाश्चारयितुं क्षुधार्त्ता गोवर्द्धनक्ष्माभृदुपत्याकायाम् ।
मनोऽनुधावद्दयितां निवर्त्तयन् समं वयस्यैर्विजहार कृष्णः ॥ ॥२९॥

स्वकल्पितैर्लोकचयप्रसिद्धैर्हरिर्विहारैर्वनशोभया च ।
शशाक राधाविरहातितप्तं सतां प्रधावन्न मनोनिराध्धम् ॥ ॥३०॥

तान् वीक्ष्य कृष्णः कृपयार्द्रचित्तस्तैर्विहारैश्च मिथो नियुद्धैः ।
श्रान्तान् क्षुधार्त्तानथ भोजनेच्छूनियेष संभोजयितुं वयस्यान् ॥३१॥

तावद्धनिष्ठा घृतपक्वमन्नं प्रातःकृतं यल्ललितादिभिस्तत् ।
दत्तं रसालासहितं जनन्या दासीभिरादाय समाजगाम ॥ ॥३२॥

तां वीक्ष्य हृष्टः स हरिर्बभाषे किं मे धनिष्ठे पितरौ सुखंस्तः ।
सुस्नातमाभ्यां विहितेशपूजा प्रतोष्य सर्व्वान् वद किं नु भुक्तम् ॥ ॥३३॥

हरिः पप्रच्छ ॥२८॥ गोवर्द्धनपर्व्वतस्योपत्यकायां गोवर्द्धनस्य समीपवर्त्तिभूमौ क्षुधार्त्ताः गाश्चारयितुं प्रचार्य्य दयितां राधामनुधावत्मनः निबर्त्तयन् वयस्यैः समं कृष्णो विजहार ॥२९॥ स हरिः स्वकल्पितैर्लोकसमूहेषु च प्रसिद्धैर्विहारैर्वनशोभया च राधाविरहातितप्तं तां राधां प्रधावन्मनः निरोद्धुं न शशाक ॥३०॥ तैस्तैः पूर्व्वोक्तैर्विहारैर्मिथः परस्परं नियुद्धैर्बाहुयुद्धैश्च श्रान्तान् क्षुधार्त्तान् भोजनेच्छून् वयस्यान् वीक्ष्य तान् संभोजयितुं इयेष इच्छाञ्चकार ॥३१॥ ललितादिभिः प्रातःकृतं यत् घृतपक्वमन्नं तत् रसालादिभिः सह जनन्या दत्तं धनिष्ठा-दासीभिरादाय गृहीत्वा तावत् तदा समाजगाम ॥३२॥ तां धनिष्ठां वीक्ष्य स हरिर्बभाषे नु भो धनिष्ठे ! मे पितरौ

सर्वदा कुशल तो है न ? (२८)
इस प्रकार स्थावर जङ्गमसमूह को जिज्ञासा करते करते गोवर्द्धन पर्वत की उपत्यकामें अर्थात् समीपवर्त्ति भूमि में क्षुधार्त्त गो समूह को तृण भोजन कराने के लिए पहुँच गए एवं श्रीराधा के प्रति धावित मनोवृत्ति को निवृत्त करके वयस्यों के साथ विहार करने लगे ।।२९ ।। तब श्रीकृष्ण स्वकल्पित एवं लोकप्रसिद्ध विविध क्रीड़ा एवं वनकी शोभासे भी राधा विरह से अति संतप्त रहे, तथा श्री राधाके प्रति धावित मनोवृत्ति को किसी प्रकार से रोध करने में समर्थ नहीं हुए ।।३० ।। अनन्तर श्रीकृष्ण सखागण को पूर्वोक्त अर्थात् स्वकल्पित एवं लोकप्रसिद्ध क्रीड़ा तथा परस्पर बाहुयुद्ध से अत्यन्त परिश्रान्त, क्षुधातुर, व भोजनेच्छु देखकर, उन सबको भोजन कराने की व्यवस्था किए ।।३१ ।। तब ललितादि सखीगण प्रातःकाल में जो सब भोज्य पदार्थ

साप्याह तं तौ तव मङ्गलार्थं स्नानार्च्चितेशौ द्विजसात् कृतार्थौ।
संभोज्य सर्व्वानथ भुक्तवन्तौ भोज्यानि च प्रेषयतः स्म तुभ्यम्॥ ॥३४॥

राधासङ्गद्रुमारोहोत्कण्ठितालम्वनार्थिनी।
तां परालम्वनं मेने चित्तवृत्तिलता हरेः॥ ॥३५॥

इतस्ततः सञ्चरतीर्गवालीः स्ववेणुनादैरथ संकलय्य।
जगाम ताः पाययितुं वयस्यैः सञ्चालयन् मानसजाह्नवीं सः॥ ॥३६॥

सुखंस्तः आभ्यां सुस्नातं ईशपूजा विहिताकृता सर्व्वान् प्रतोष्य भुक्तं किं ॥३३॥ तव मङ्गलार्थं स्नातौ च तौ अर्च्चितेशौ च द्विजेभ्यः सतकृतं दत्तमर्थं याभ्यां तौ सर्व्वान् संभोज्य भुक्तवन्तौ तुभ्यं भोज्यानि च प्रेषयतः स्म। पुरा वनप्रवेशसमये मातरं प्रति श्रीकृष्णेनोक्तं त्वया प्रहितं भोज्यं तदाहं भक्ष्यामि भवन्तौ यदि कृतभोजनौ मुदितौ च श्रोष्यामि। तत्राप्युक्तं मे पितरौ सुखंस्तः आभ्यां सुस्नातमित्यादि। प्रश्नानन्तरं धनिष्ठया उक्तं तव मङ्गलार्थं स्नानभोजनादिकं कृतमित्यनेन पित्रोर्भोजनादिकमपि कृष्णसुखतात्पर्य्यकं। एवं सखा प्रेयस्यादीनां नृत्यगीतादि सर्व्वैव चेष्टा कृष्णसुखार्थमेव कृष्णस्य तु अचिन्त्यैव शक्तिर्यया अनन्तदास-सखा पितृ-मातृ-प्रेयस्यादीनाम-नन्तसुखार्थमनन्तचेष्टादिकं सिद्ध्यति ॥३४॥ हरेश्चित्तवृत्तिरूपा लता राधया सह सङ्गरूपवृक्षारोहणोत्कण्ठिता कीदृशी आलम्बनार्थिनी परालम्बनं तां धनिष्ठां मेने ॥३५॥ इतस्ततः सञ्चरन्तीर्गवालीः संकलय्य एकत्री कृत्य ताः गाः पयः पाययितुं

प्रस्तुत किए थे, यशोदा, रसाला के साथ वह सर्वद्रव्य भेजने के कारण धनिष्ठाने दासीगण के साध उक्त सामग्रियों को कृष्णके समीप में लाकर उपस्थित किया ।।३२।। श्रीकृष्ण, धनिष्ठा को देखकर हृष्टचित्त से वोले, हे धनिष्ठे ! हमारे मातापिता तो सकुशल हैं ? उन्होंने स्नान एवं भगवत् पूजादि करके परिजन वर्गको भोजन कराकर यथासमय स्वयं भोजन किए हैं ? (३३) अनन्तर धनिष्ठा कृष्णको बोली, तुम्हारे कुशलार्थ पिता नन्द, माता यशोदा, स्नान, ईश्वरार्च्चना एवं ब्राह्मणों को यथायोग्य धन दान पूर्वक परिजनों के साथ भोजन करके तुम्हारे लिए घृतपक्वान्न सामग्री समूह भेज दिये हैं।।३४।। इसके पहले श्रीकृष्ण की चित्तवृत्ति रूपालता, अवलम्बन के अभिप्राय से श्रीराधासङ्ग रूप वृक्षमें आरोहण हेतु महा उत्कण्ठित रही, सम्प्रति वह धनिष्ठा को ही परम आश्रय रूपमें समझने लगी।।३५।। अनन्तर श्रीकृष्ण इतस्ततः सञ्चारणकारी धेनुनिचय को वेणुनाद के द्वारा एकत्र करके

पाययित्वा जलं गास्ताः शीतं स्वादु सुनिर्म्मलं।
स्वयं गोपाः पपुः सस्नुर्विजह्रुः सलिले चिरं॥ ॥३७॥

उपपुलिनमथासौ तांस्तदन्नं वयस्यान्
दधिमथितरसाला सन्धिताम्रादि युक्तं।
स्वयमपि च समश्नन् स्वादयन् हासयंश्च
स्वपरित उपविष्टान् भोजयामास कृष्णः॥ ॥३८॥

ततः सखीनाह हरिः सहार्य्या यूयं क्षणं चारयताग्रतो गाः।
अहं सखिभ्यां सह माधवीयां वनश्रियं द्रष्टुमिह भ्रमामि॥ ॥३९॥

दासीर्धनिष्ठावददाशु यात यूयं गृहीत्वाखिलभाजनानि।
पुष्पाणि नारायणसेवनार्थं सञ्चित्य पश्चादहमागतास्मि॥ ॥४०॥

सञ्चालयन् वयस्यै सह स मानसगङ्गां जगाम॥३६॥ जलं पाययित्वा स्वयं गोपाश्च जलं पपुः सलिले सस्नुः स्नानं कृत्वा चिरं विजह्रु॥३७॥ असौ श्रीकृष्णस्तदन्नं दधिमथितं रसाला च आचार इति ख्यातं सन्धितं यदा आम्रादि तद्युक्तञ्च स्वयं समश्नन्। स्वस्य परितश्चतुर्दिक्षु उपविष्टान् वयस्यान् हासयन् भोजयामास॥३८॥ ततो भोजनानन्तरं हरिः सखीनाह, क्षणं सहार्य्या वलदेवसहिता यूयं गाश्चारयत अहं सखिभ्यां मधुमङ्गलसुबलाभ्यां सह माधवीयां बसन्तसम्वन्धिनीं बनश्रियं द्रष्टुमिह भ्रमामि॥३९॥ धनिष्ठा दासीरवदत् यूयं भोजनानि गृहीत्वा यातपुष्पाणि सञ्चित्य॥४०॥ वृन्दा तदादावागत्य कृष्णस्य करे फुल्लं गन्धफलीद्वन्द्वं चम्पकपुष्प-द्वन्द्वमर्पितवती॥४१॥ तत्तस्य गन्धफलीद्वन्द्वस्यालोकात् प्रियायाः श्रीराधायाः कान्तेः

उनसब को जलपान कराने के लिए वयस्य गणों के साथ मानस गङ्गा की ओर चले गये।।३६।। वहाँपर गोपबालकोंने गौओं को सुस्वादु सुशीतल एवं निर्म्मल जलपान कराकर स्वयं भी उक्त जल पान एवं उक्त जल में स्नान करके अनेक समय तक खेलने लगा।।३७।। तत् पश्चात् पुलिन में उपस्थित होकर सखाओं श्रीकृष्ण को चारों और से घेर कर उपविष्ट होने पर श्रीकृष्ण हास्य वदन से उक्त भोजन सामग्रीयों के द्वारा सखागण को दधि, रसाला, आदि के साथ भोजन करवाने लग गये, और स्वयं भी भोजन करने लगगये।।३८।। अनन्तर कृष्णने सखाओं से कहा, हे सखावृन्द! तुमसब दाऊजी के साथ कुछ समय तक गोचारण करो, मैं सुबल और मधुमङ्गल के साथ वसन्त ऋतु के वनकी शोभा को देखने के लिए यहीं पर भ्रमण

फुल्लं गन्धफलीद्वन्द्वमवतंसोचितं तदा ।
आदायागत्य कृष्णस्य बृन्दार्पितवती करे ॥ ॥४१॥

तदालोकात् प्रियाकान्ति-स्मृत्युत्कण्ठावतो हरेः ।
एजत् करात्तदादाय तच्छ्रुत्योर्निदधे वटुः ॥ ॥४२॥

वृन्दां धनिष्ठां सुवलं वटुञ्च षाड्गुण्य विज्ञान् सचिवान् स कृष्णः ।
उपायदक्षानुपलभ्य मेने राधाङ्गसङ्गोत्तमराज्यलब्धिम् ॥ ॥४३॥

मधुमङ्गलहस्तं स प्रगृह्य वामपाणिना ।
वृन्दा धनिष्ठा सुवलैः ससार सुमनः सरः ॥ ॥४४॥

कुसुमिततरुवल्ली वीथिकुञ्जैर्लसन्तीं
स्थलजलविहगालिव्यूहकोलाहलैश्च ।
स कुसुमसरसीं तां वीक्ष्य राधागमोत्क-
स्तदभिसृतिविचारं स्वानुगैराचचार ॥ ॥४५॥

स्मृत्या उत्कण्ठावतः श्रीकृष्णस्य प्रेम्वा एजत् करात् कम्पितकरात् बटुस्तदा आदाय गृहीत्वा तत् श्रुत्योः कृष्णकर्णद्वये निदधे ॥४२॥ स उक्तप्रकारः कृष्णः, वृन्दादि षाड्गुण्य विज्ञान् सचिवान् आमात्यान् उपायदक्षान् उपलभ्य राधाया अङ्गसङ्ग एष उत्तमराज्य तस्य लब्धिं मेने। सन्धिर्नां विग्रहो यानमासनं द्वैधमाश्रयमिति षाड्गुण्यः ॥४३॥ स कृष्णः वामपाणिना मधुमङ्गलहस्तं प्रगृह्य वृन्दादिभिः सह कुसुमसरोवराख्य सुमनः सरः ससार सृगतौ ॥४४॥ स तां कुसुमसरसीं वीक्ष्य राधाया

करूँगा ।।३९।। तब धनिष्ठा दासीगण को बोली, मैं श्रीनारायण की अर्चना हेतु पुष्पचयन पूर्वक तुम्हारे पीछे पीछे आ रही हूँ, तुमसब यह सब पात्रों को लेकर चली जाओ ।।४०।। इसके पहले वृन्दा कर्ण भूषणोपयोगि दो चम्पककुसुम को लेकर वहाँपर आई और श्रीकृष्ण को प्रदान किये ।।४१।। श्रीकृष्ण उक्त चम्पक पुष्पद्वय को अवलोकन करके श्रीराधा की कान्ति उद्दीप्त हेतु उनके हस्तद्वय कम्पित होने लगे। मधुमङ्गल उसे देखकर श्रीकृष्ण के हस्तसे दोनों पुष्पको लेकर उनके कानों में पहिना दिये ।।४२।। अनन्तर श्रीकृष्ण सन्धि, विग्रह, यान, आसन, द्वैध, एवं आश्रयरूप राज्याङ्ग विषय में सुनिपुण उपाय विज्ञवृन्दा, धनिष्ठा, सुबल एवं मधुमङ्गल यह चार अमात्य को प्राप्तकर श्रीराधाके अङ्गसङ्ग रूप उत्तम राज्य प्राप्ति के लिए विवेचना

प्रयाति वृन्दा सुबलो वटुर्वा राधान्तिकं चेज्जटिला सशङ्का।
एभिः समं वा कलहं विदध्याद्वधूं निरुन्ध्यादथ वा गृहान्तः॥ ॥४६॥

आकर्षणीं वा मुरलीं नियुञ्ज्यां सर्व्वाः समेष्यन्ति च गोपरामाः।
तदिष्टलीलादिरसो न सिद्ध्येत् परस्परेर्ष्या-मद मान-वाम्यात्॥ ॥४७॥

ततो धनिष्ठे व्रज कुन्दवल्लीं प्रतीतिकृत् सा जटिला यदस्यां।
तद्वञ्चनाचञ्चुमतिः सदा नौ स्निग्धार्थिता सा ध्रुवमानयेत्तां॥ ॥४८॥

अथाह वृन्दा भवता यदुक्तं सत्यं हि तच्चेत् सुमनोऽवचेतुं।
राधासखी काचिदिहागता स्यात् ज्ञेयास्तदास्यास्तदुदन्त आदौ॥ ॥४९॥

आगमनार्थमुत्कण्ठो यस्य सः। तदभिसृतौ तस्या आगमने विचारमाचचार। कीदृशीं कुसुमितवृक्षलतानां बीथिभिः कुञ्जं लतादि पिहितं स्थानं तैः। स्थलचर-जलचरपक्षिणां भ्रमराणाञ्च योव्यूह एक जातीयपक्षिसमूहस्तेषां कोलाहलैश्च लसन्तीं॥४५॥ श्रीकृष्ण आह, वृन्दादीनां मध्ये एकोऽपि यदि राधान्तिकं प्रयाति तदा सशङ्का जटिला एभिः समं कलहं विदध्यात् गृहमध्ये बधूं वा निरुन्ध्यात्॥४६॥ राधामानेतुमाकर्षणीं मुरलीं वा नियुज्यां मुरलीध्वनिं श्रुत्वा सर्व्वा गोपरामाः समेष्यन्ति। आगच्छन्तु तेन किं तत्राह तासां परस्परेर्ष्यामदमानवाम्यात् तत्तया राधाया सह इष्टलीलादिरसो न सिद्ध्येत्॥४७॥ ततो हेतोर्हे धनिष्ठे ! त्वं कुन्दवल्लीं व्रज। सा जटिला यद्यस्मात् अस्यां कुन्दवल्ल्यां प्रतीतिकृत्। तत्तस्माः जटिलायाः वञ्चने चञ्चुर्निपुणामतिर्यस्याः सा कीदृशी, नो आवयोः सदा स्निग्धा सार्थिता सती तां राधा मानयेत्॥४८॥ वृन्दा आह, भवता

करने लगे।।४३।। पश्चात् श्रीकृष्ण निज वामहस्त के द्वारा मधुमङ्गल के हाथ को पकड़ कर वृन्दा धनिष्ठा एवं सुबलके साथ कुसुम सरोवर की ओर चले आये।।४४।। वहाँपर श्रीकृष्ण कुसुमित तरुलता से आवृत कुञ्ज एवं स्थलचर जलचर विहग श्रेणी के कलरव से रमणीय उक्त सरोवर की शोभा को देखकर अभिसार सुख केलिए उत्कण्ठित होकर मधुमङ्गल आदि के साथ मधुर आलाप करते करते मनमें सोचने लगे।।४५।। यदि मैं श्रीराधा को यहाँपर ले आने के लिए वृन्दा अथवा सुबल किम्वा मधुमङ्गल को भेजूं तो, जटिला सन्देह करेगी, और सम्भवतः इनके साथ कलह भी करेगी, नहीं तो श्रीराधा को घरमें रोक रखेगी।।४६।। आपने और भी चिन्ता की, यदि श्रीराधा को लाने केलिए आकर्षणी मुरलीको नियुक्त करूँ तब उसको सुनकर सब गोपबालागण यहाँपर आयेंगी तब उनसब के मध्यमें परस्पर ईर्षा मद,

अथागता सा तुलसी स्वसख्या कृष्णं सखिभ्यां सह तत् सखीभ्यां ।
प्रियागमोपायविचार-लग्नं पुरः स्फुरन्तं मुमुदे समीक्ष्य ॥ ॥५०॥

स्वप्नेऽपि तत् सन्निधिमत्यजन्ती तां राधया ते जहृषुः समेताम् ।
निश्चित्य सर्व्वेप्यथ माधवोऽभूत्तद्दर्शनोत्कोऽध्वनि दत्तदृष्टिः ॥५१॥

ततः सा तुलसी न्यस्य हृष्टा वटुकरे स्रजम् ।
उद्घाटय पुटिकां वीटीं सुवलस्य करे ददौ ॥ ॥५२॥

यदुक्तं तत् सत्य सुमनोवचेतुं पुष्पाहरणार्थं चेद्यदि काचित् राधासखीहागतास्यात्तदादौ तदुदन्तस्ततोस्या राधायाः उदन्तः वार्त्ता अस्या राधासखीतो ज्ञेयः । वार्त्ता प्रवृत्तिर्वृत्तान्त उदन्त इत्यमरः ॥४९॥ स्वसख्या कस्तुर्य्या सहागता सा श्रीराधानिर्म्मिततताम्बूल-मालाहारिणी तुलसीसखिभ्यां सुवल-मधुमङ्गलाभ्यां तथा तत्तस्या राधायाः सखीभ्यां वृन्दा-धनिष्ठाभ्याञ्च सह श्रीराधागमनोपायविचारेषु लग्नं पुरोऽग्रे स्फुरन्त श्रीकृष्णं समीक्ष्य मुमुदे ॥५०॥ स्वप्नेऽपि तत्तस्या राधायाः सन्निधिमत्यजन्तीं अतः राधायाः समेतां आगतां तां तुलसीं ते कृष्णादयः निश्चित्य जहृषुः । माधवस्तस्या राधाया दर्शनोत्सुकः सन् अध्वनि दत्तदृष्टिरभूत् ॥५१॥ हृष्टा सा तुलसी पुटिकामुद्घाटय

मान, वाम्यता उत्पन्न होनेपर अभीष्ट लीलादि रससिद्ध नहीं होगा ।।४७।। इस हेतु आपने मन ही मन एक उपाय स्थिर किया, और धनिष्ठा को कहा, हे धनिष्ठे ! तुम कुन्दवल्लि के निकट जाओ, वह मेरे प्रति सदा स्नेह करती है, विशेषत: जटिला उसको खूब विश्वास करती है, अतएव जटिला को वञ्चना करने की शक्ति उसमें है, उसके पास प्रार्थना करने से अवश्य ही वह राधाको ले आवेगी ।।४८।। तव वृन्दा बोली, तुमने जो कुछ कहा, वह सत्य है। किन्तु श्रीराधा की किसी सखी यदि कुसुम चयनार्थ यहाँपर आई होगी तो पहले उसमें श्रीराधा का सम्वाद जान जाऊँगी ।।४९।। अनन्तर तुलसी नाम्नी श्रीमती की सखी कस्तूरी सखी के साथ वहाँपर आकर वृन्दा, धनिष्ठा, सुबल, मधुमङ्गल के साथ श्रीकृष्ण को श्रीराधा का आगमन विषय में विचार करते देखकर आनन्दित होगई ।।५०।। जब तुलसी स्वप्न में भी श्रीराधा के सान्निध्य को नहीं छोड़ती है, तब वह अवश्य ही श्रीराधा के साथ आयी है, इस प्रकार निर्द्धारिण कर सब प्रफुल्लित होगये, और श्रीराधा के दर्शनार्थ समुत्सुकचित्त से तदीय पथ के प्रति दृष्टिपात करके रह गये ।।५१।। तब तुलसी पुटिकाकी उद्घाटन पूर्वक मधुमङ्गल के हाथ में माला को अर्पणकर

राधाकरामोदसमृद्ध-सौरभं तच्छिल्पनैपुण्यभरं तथाद्भुतम्।
तामुद्गिरन्तीं भ्रमरालिकर्षिणीं स्रजं विलोक्याभवदुन्मना हरिः। ॥५३॥

कण्ठे स्रजं तामथ वैजयन्तीं हसन्नधाच्छ्रीमधुमङ्गलोऽस्य।
राधाकरस्पर्शसुखादिवासौ तत्स्पर्शतः कण्टकिताङ्ग आसीत्॥ ॥५४॥

आगत्य कुञ्जे परिहासलीनां सम्भावयंस्तां दयितां मुकुन्दः।
तदास्य वीक्षोत्कलिकाकुलात्मा तया हसन्त्या सह संललाप॥ ॥५५॥

सख्यास्ते कुशलं सखीश कुशलं कुत्रेयमात्मालये
किं नायाति वनं कृतौ स्वगुरुणा दिष्टाथ किं चेष्टते।
मथ्नात्यम्बुघटं ततः किमभवन्निर्भर्त्स्य रुद्धा गृहे
युक्त्या चानय वृन्दया न जटिला वञ्च्याह हा धिग्विधिं॥ ॥५६॥

वटुकरे स्रजंयस्य सुवलस्य करे वीटीं ददौ ॥५२॥ राधाकरयोरामोदाद्दूरगामीसौगन्ध्यं तद्रूपसमृद्धया सम्पत्तया सौरभमुद्गिरन्तीं तथा तत्तस्या राधाया अद्भुतं शिल्पनैपुण्य-भरमुद्गिरन्तीं तां स्रजं विलोक्य हरिरुन्मना सन्दिग्धचित्तोऽभूत्। माला वीटी प्रेषणेन श्रीराधा गमनाभावात् ॥५३॥ मधुमङ्गल अस्य कण्ठे तां स्रजं न्यधात्। असौ श्रीकृष्णस्तस्याः स्पर्शात् कण्टकिताङ्ग आसीत् ॥५४॥ मुकुन्दः आगत्य कुञ्जपरिहास-लीनां तां राधां संभावयन् तस्या राधाया आस्य वीक्षायामुत्कण्ठाकुलमात्मा मनो यस्य सः। हसन्त्या तया तुलस्या सह ललाप सलापो भाषणं मिथः ॥५५॥ श्रीकृष्ण आह,

---

सुबल के हाथमें वीटिका को प्रदान किए।।५२।। तब श्रीकृष्ण श्रीराधाके करस्पर्श से समधिक सुगन्ध, एवं शिल्प नैपुण्ययुक्त अति विचित्र एवं भ्रमरकुल आकर्षिणी उस मालाको देखकर अतिशय उत्कण्ठित होगये।।५३।। अनन्तर मधुमङ्गल हँसते हँसते जब उस वैजयन्ती मालाको श्रीकृष्ण के गले में पहिना दिये तब उसमें श्रीराधाके करद्वय के संस्पर्श विद्यमान होने के कारण उसके स्पर्शसे ही श्रीकृष्णके सर्वाङ्ग पुलकित होने लगे।।५४।। तब श्रीकृष्ण उस स्थानसे कुञ्ज में जाकर परिहासलीना श्रीराधा की मोहिनी मूर्त्ति की चिन्ता करके उनके मुखचन्द की दर्शनोत्कण्ठा से व्याकुलचित्त होकर हास्यकारिणी तुलसी के साथ वार्त्तालाप शुरुकरदिये।।५५।। श्रीकृष्ण बोले, हे सखि! तुम्हारी सखी श्रीराधा कुशलसे है तो? तुलसी बोली, हे हुजुर! कुशल हैं। श्रीकृष्ण वोले,-सम्प्रति वह कहाँ है? तुलसी वोली, अपने घरमें

सदा राधातिदौर्लभ्य स्फूर्त्त्या मत्वा वभूव सः।
हासोक्तिमपि सत्यां तां विषण्णात्मा स्मराकुलः॥ ॥५७॥

कृष्णं विषण्णमालोक्य व्याकुला तुलसी स्वयम्।
दृशा वृन्दा धनिष्ठाभ्यां भर्त्सिताह स संभ्रमम्॥ ॥५८॥

मागाः खेदं व्रजानन्द यामि निर्मञ्छनं तव।
आगतां विद्धि दयितां परिहासः कृतो मया॥ ॥५९॥

तामागतामथ निशम्य दिदृक्षुरेनामौत्सुक्य चञ्चलमना व्रजराजसूनुः
उत्तार्य्य चम्पकयुगं निजकर्णयोस्तत् तस्याः समर्प्यकरयोर्मुदितोऽवदत्ताम् ॥६०॥

हे सखि ! ते सख्या राधायाः कुशलं। साह, हे ईश ! कुशलं पुनः स आह, इयं राधा कुत्र। साह, आत्मालये। स आह, वनं किं नायाति। साह, स्वगुरुणा श्वश्र्वा कृतौ दधिमथने दिष्टा आज्ञप्ता ततः नायाति। स पुनराह, किं चेष्टाते। साह, अम्बुघटं मथ्नाति। स पुनराह, ततः किमभवत्। साह, दधिभ्रान्त्या जलमथनात् तस्या वैषम्यं वीक्ष्य तां निर्भर्त्स्य श्वश्र्वा गृहे रुद्धाकृता। स पुनराह, वृन्दया नह युक्त्या तां बञ्चयित्वा तामानय। साह, जटिला बञ्च्या न भवति। कृष्ण आह, हा खेदे। विधिं धिक् ॥५६॥ तां परिहासोक्तिमपि सत्यां मत्वा स्मराकुलः स श्रीकृष्णः सदा राधाया अतिदौर्लभ्य स्फुर्त्त्या विषन्नात्मा वभूव ॥५७॥ बिपन्नं कृष्णमालोक्य स्वयं व्याकुला तुलसी तत्रापि वृन्दा-धनिष्ठाभ्यां दृशा भर्त्सिता सती ससंभ्रममाह ॥५८॥ हे व्रजानन्द ! खेदं मागाः माकुरु, दयितां आगतां विद्धि ॥५९॥ तां राधामागतां श्रुत्वा

ही है। कृष्ण बोले, क्या वनमें नहीं आयेगी ? तुलसी बोली, गुरुजन के आदेश से दधि मन्थन कार्यमें रत है, इसलिए आ नहीं सकती। श्रीकृष्ण वोले, क्या कर रही है ? तुलसी,-भ्रमसे जलको दहीमानकर मथरही है। श्रीकृष्ण,-उससे क्या हुआ ? तुलसी जटिलाने राधाको दधि के भ्रमसे वारिमन्थन करते देखकर फटकार के साथ घरमें बन्द करदिया है। श्रीकृष्ण, -वृन्दाके साथ परामर्श करके जटिला को वञ्चानाकर श्रीराधा को यहाँपर लिवालाओ। तुलसी,-जटिला भोरी नहीं है, तब श्रीकृष्ण खेदसे कहने लगे, हा विधातः ! तुम्हे धिक्कार है।।५६।। कन्दर्पाकुल श्रीकृष्ण, तुलसी के परिहासमय वाक्य समूहको सत्य मानकर श्रीराधा को अत्यन्त दुर्लभ मानकर विषण्णचित्त हो गये।।५७।। तुलसी, कृष्णको विषण्ण अवलोकनकर स्वयं व्याकुला होगई, एवं वृन्दा, धनिष्ठा द्वारा नेत्रेङ्गित से भर्त्सित होकर सम्भ्रम

क्वेयं क्वेयं निह्नुता वा किमर्थं रुष्टा सा चेन्नापराधो ममास्ति।
चेन्नर्म्मैतद्दूनचित्ते न युक्तं हाहा शीघ्रं दर्शयामूं प्रियां मे॥ ॥६१॥

प्रियावलोकनोत्कण्ठं कालदेशार्थतत्त्ववित्।
आनिनीषुर्द्रुतं राधां बभाषे तुलसी हरिं॥ ॥६२॥

सा ते कान्ता कमलनयन त्वन्मुखालोकनोत्का
सूर्य्याच्चार्यै सपदि जटिला प्रेषिता कुन्दवल्ल्या।
त्वामायान्ती प्रथममिह मां प्राहिणोत् त्वत् प्रवृत्त्यै
क्रीडाकुञ्जं तमुपदिश तं यत्र तामानयामि॥ ॥६३॥

एनां दिदृक्षु, औत्सुक्येन उत्साहेन चञ्चलं मनो यस्य स नन्दसूनुः। निजकर्णयोश्चम्पक युगमुत्तार्य्य तस्याः करयोः समर्प्य मुदितस्तामवदत्॥६०॥ क्व कुत्र इयं वीप्सा औत्सुक्यावेगवशात्, सा निह्नुत्यास्तीति चेन्न किमर्थमम्वा निह्नुता चेद्यदि संरुष्टा इत्यपि न ममापराधो नास्ति चेद्यदि नर्म्मपरिहास एतत्परिहासनं दूनचित्ते दुःखितचित्ते मयि न युक्तं मेऽमूं शीघ्रं दर्शय॥६१॥ कालदेशार्थतत्त्ववित् राधां द्रुतं आनिनीषु तुलसीप्रियावलोकनोत्कण्ठं हरिं बभाषे॥६२॥ हे कमलनयन! ते सा कान्ता तव मुखावलोकनोत्का सूर्य्यपूजार्थं कुन्दवल्ल्या सह जटिला प्रेषिता तामायान्ती राधा। त्वत्प्रवृत्तेस्तव वार्त्तार्थश्च मां प्राहिणोत्। त्वं तत्क्रीडाकुञ्जं उपदिश यत्र तामानयामि निकुञ्जकुञ्जौ वा क्लीबे लतादि पिहितोदरे इत्यमरः॥६३॥ तत् श्रुत्वा उच्छ

से कृष्णको कहने लगी॥५८॥ हे ब्रजानन्द! दुःखी मत हो, तुम्हारी बाला आई रही है। मैंने परिहास किया, सम्प्रति तुम्हारी प्रियाजी आ ही गई है, यह मानो॥५९॥ अनन्तर श्रीकृष्ण "राधा आगई है" यह सुनकर उनके दर्शनेच्छु होकर उत्सुकता से चञ्चल होकर कानों से चम्पक कुसुमद्वय को हाथों से उठाकर तुलसी के हाथों में थमाकर सहर्ष उससे कहने लगे॥६०॥ अयि तुलसी! श्रीराधा कहाँ है? क्यों छिपकर रहेगी? कहो कि-क्रुद्धा होगई है? तो मेरा तो अपराध नहीं हुआ है, यही कहो, यह परिहास ही है, किन्तु मैं दुःखित चित्त हूँ, मेरे प्रति इस प्रकार परिहास करना सङ्गत नहीं है, अतएव शीघ्र ही मुझे प्रियतमा का दर्शन कराओ॥६१॥ तव देश कालाभिज्ञा तुलसी श्रीराधा को सत्वर आनयनेच्छु होकर प्रियतमा के दर्शनार्थ उत्कण्ठित श्रीकृष्ण को बोली॥६२॥ हे कमलनयन! तुम्हारी कान्ता राधा तुम्हारे मुखावलोकनोत्कण्ठिता होकर जटिला के आदेश से सूर्यदेव की

तच्छुत्वोच्छ्वसित स्वान्तः प्रीतो गुञ्जावलीं हरिः ।
तुलस्यै दत्तवान् कण्ठादुत्तार्य्य पारितोषिकम् ॥ ॥६४॥

लीलानिकुञ्जकलनाय तदाथ वृन्दा
कृष्णावलोकितमुखी तुलसीं वभाषे ।
तत् कुण्डतीर-गतमानय राधिकां तां
कन्दर्पकेलिसुखदाख्य निकुञ्जमाशु ॥ ॥६५॥

अहञ्च केलिसामग्रीं समग्रयितुमुत्सुका ।
राधाकुण्डं त्वया सार्द्धं प्रयातास्मि द्रुतं सखि ॥ ॥६६॥

तावत् कृत्वा प्रियसहचरीं स्वस्य चन्द्रावलीं तां
सङ्केतस्थां-व्रजपतिसुतं नेतुमागत्य तत्र ।
गुञ्जाहारं हरिहृदि सखी दत्तमाधाय शैब्या
दृष्ट्वा वृन्दासहित-तुलसीं विव्यथे क्षुब्धचित्ता ॥ ॥६७॥

श्वसित स्वान्तः उत्साहयुक्तचित्तो हरिः तुलस्यै पारितोषिकं परितोषेण देयं गुञ्जावलीं दत्तवान् ॥६४॥ तदा लीलानिकुञ्जकथनाय कृष्णेनावलोकितं मुखं यस्याः सा वृन्दा-तुलसीं वभाषे। तत्तस्याः कुण्डतीरं गतं कन्दर्पकेलिसुखदाख्यं निकुञ्जं तां राधा-मानय ॥६५॥ अहञ्च केलिसामग्रीं समग्रयितुं सम्पादयितुमुत्सुका त्वया सह कुण्डं प्रयातास्मि कुण्डतीरनिकुञ्जं दृष्ट्वा तस्माद्गत्वा तामानय अहं सामग्रीसम्पादयिष्यामीति भावः ॥६६॥ तावत् तस्मिन् समये शैब्या स्वस्य प्रियसहचरीं तां चन्द्रावलीं सङ्केतस्थां कृत्वा कृष्णं नेतुं तत्रागत्य सखीदत्तं गुञ्जाहारं हरिहृदि आधाय दत्ता वृन्दा-सहित-

---

अर्च्चना के निमित्त कुन्दलताके साथ आरही है, वे तुम्हारा मनोभाव संवाद जानने के लिए मुझ को भेजा है, अब कहो किस क्रीड़ा कुञ्ज में उनको ले आऊँ ? (६३) तुलसी के वाक्य को सुनकर उत्साहयुक्तचित्त एवं प्रीत होकर श्रीकृष्ण निज कण्ठसे गुञ्जाहार को उतार कर तुलसी को पारितोषिक रूपमें प्रदान किए।।६४।। अनन्तर श्रीवृन्दा लीलाकुञ्ज निर्द्धारित करने के लिए श्रीकृष्ण के मुखके प्रति नेत्रपात करके तुलसी को बोली, तुम श्रीराधाकुण्ड तीरस्थित कन्दर्प केलि नामक सुखद निकुञ्जमें शीघ्र श्रीराधा को ले आओ।।६५।। हे सखि ! मैं भी यत्न के साथ केलि सामग्री समूह को संग्रह करने के लिए उत्सुका होकर तुम्हारे साथ राधाकुण्ड को जा रही हूँ। अर्थात् राधाकुण्ड तीरस्थ कुञ्जों को देखकर श्रीराधाके पास चली जाओ और उनको

कृष्णस्याग्रे वृन्दया संलपन्त्या आलोकात्तत् प्रेष्ठसख्यास्तुलस्याः ।
राधां मत्वा सागतां दुःखिता तां शैव्या सव्याजं तदा व्याजहार ॥६८॥

कुर्व्वन्त्याद्य तया दुर्गाव्रतोद्यापमहोत्सवं ।
तां निमन्त्रयितुं राधां प्रेषितास्मि वयस्यया ॥ ॥६९॥

साद्य लब्धा मयान्विष्य न गृहे नापि कानने ।
दिष्ट्या लब्धासि तुलसी कथ्यतां कुत्र ते सखी ॥ ॥७०॥

ततः सा तुलसी ज्ञात्वा शैव्यां कौटिल्यमाश्रितां ।
अवदत्तां स कौटिल्य शठे शाठ्यं हि यन्नयः ॥ ॥७१॥

कुर्व्वाणया ब्रतमहोत्सवमम्बिकायाः
सा श्यामया स्वसुहृदाद्य निमन्त्र्य नीतां ।
वृन्दाटवीपरिवृढां स्वगृहं तथास्यां ।
भारोऽप्यधायि विनयैः स सखीकुलायाम् ॥ ॥७२॥

तुलसीं दृष्ट्वा सा क्षुब्धचित्ता सती विव्यथे ॥६७॥ कृष्णस्याग्रे वृन्दया सह संलापयन्त्या तस्या राधायाः प्रेष्ठसंख्यास्तुलस्या आलोकनात् सा शैव्या राधामागतां मत्वा दुःखिता सैव्या तां तुलसीं स व्याजं छलसहितं व्याजहार ॥६८॥ दुर्गाया व्रतस्य उद्‌यापन महोत्सवं कुर्व्वत्या तया चन्द्रावल्याऽद्य तां राधां निमन्त्रयितुं प्रेषितास्मि ॥६९॥ मयाऽद्यान्विष्य गृहे सा राधा न लब्धा काननेऽपि न लब्धा। हे तुलसि ! दिष्ट्यात्वं लब्धासि कुत्र ते सखी वदेति शेषः ॥७०॥ तुलसी कौटिल्यमाश्रितां शैव्यां ज्ञात्वा स कौटील्यं यथा स्यात्तथा तां शैव्यामवदत्। यद्‌यस्मात् शठे जने शाठ्यं नयः

लिवालाओ इधर मैं भी क्रीड़ा सामग्री का सम्पादन करूँ।।६६।। उस समय ही चन्द्रावली की प्रिय सखी शैव्या सङ्केत कुञ्जमें चन्द्रावली को ठहराकर कृष्ण को ले जाने की इच्छासे वहाँपर आगई, एवं चन्द्रावली प्रदत्त गुञ्जाहार को श्रीकृष्ण के गलेमें डाल दिया और वृन्दा के साथ तुलसी को निकट में देखकर अतिशय क्षुब्ध तथा दुःखी बनगई।।६७।। शैव्या श्रीकृष्ण के सामने राधाकी प्रियसखी तुलसी के साथ वृन्दाको आलाप करती हुई देखकर श्रीराधा के आने की सम्भावना से दुःखित चित्तसे छलसे तुलसी को कहने लगी।।६८।। हे सखि ! तुलसि ! आज सखी चन्द्रावली श्रीदुर्गाव्रत का उद्‌यापन महोत्सव करेगी, इसलिए श्रीराधा को निमन्त्रण दे कर लाने के लिए मुझको यहाँ पर भेजी है।।६९।। हे तुलसी! आज श्रीराधा को घर और

ततो ललितया पुष्पफलमाल्यसमृद्धये ।
वृन्दां नेतुं प्रेषिता तां गृहीत्वा चलितास्म्यहं ॥ ॥७३॥

इति तां तुलसी भङ्ग्या प्रतार्य्य कुटिलामपि ।
ययौ वृन्दा धनिष्ठाभ्यामुदासीनेव माधवे ॥ ॥७४॥

पुनर्विवक्षुं तां शैव्यां कृष्णः कुञ्चितचक्षुषा ।
निवार्य्याह स्वमौदास्यं तुलस्यां व्यञ्जयन्निव ॥ ॥७५॥

मा किञ्चिद्वद यात्वेषा स्वसख्याः कुशलं वद ।
क्वेयमास्ते किं कुरुते प्रिया चन्द्रावली मम ॥ ॥७६॥

नीतिः ॥७१॥ अम्बिकाया व्रतमहोत्सवं कुर्व्वाणया स्वसुहृदा श्यामया निमन्त्र्याद्य सा राधा वृन्दाटवीपरिवृढा वृन्दावनेश्वरी स्वगृहं नीता। स सखीकुलायां तस्यां राधायां विनयैर्व्रतकार्य्यार्थं भारोप्यधायि एतेन तस्मादन्यत्र गमनं क्षणमपि न भावीति ध्वनिः ॥७२॥ ललितया पुष्पादिसमृद्धये वृन्दां नेतुं प्रेषिताहं तां वृन्दां गृहीत्वा चलितास्मि ॥७३॥ माधवे उदासीनेव सा तुलसी तां शैव्यां वृन्दा धनिष्ठाभ्यां सह ययौ ॥७४॥ कृष्णः पुनर्वक्तुमिच्छुः सैव्यां कुञ्चितचक्षुषा निवार्य्य तुलस्यां स्वं स्वीयमौदासीन्यं व्यञ्जयन्निवाह ॥७५॥ मा किञ्चिद्वद एषा तुलसी यातु स्वसख्या चन्द्रवल्याः कुशलं वद कुत्र मम प्रियेयं चन्द्रावली आस्ते किं कुरुते ॥७६॥ सैव्या

कानन में ढूँढ़कर देख नहीं पाये हैं, तुमने देखी होगी कह सकती, तुम्हारी सखी कहाँ ? (७०) अनन्तर तुलसी शैव्या की कुटिलता को समझ गई, और शठके साथ शठता आचरण से दोष नहीं होता है, यह विचार कर सैव्या को अलीक वाक्य द्वारा वञ्चना करने के निमित्त कही ।।७१।। अद्य राधा की सखी श्यामा अम्बिका का व्रत महोत्सव करेगी। इसलिए श्रीराधा को निमन्त्रण देकर घरमें बुलाकर ले गई है, और सखीगण के साथ सबकार्य्य सम्पन्न करने के लिए नम्रता से सबकार्य भार भी सौंप दी है।।७२।। अनन्तर पुष्प, फुल, माल्य समृद्धि के निमित्त वृन्दा को लिवा लाने के लिए ललिता सखी मुझको भेजी है, मैं उनको लेकर साथ ही जारही हूँ।।७३।। उस प्रकार वाक्चातुरी के द्वारा कुटिल भावाश्रिता शैव्या को प्रतारण कर राधाके प्रति औदासीन्य प्रकाशकर वृन्दा तथा धनिष्ठा के साथ वहाँसे चली गई।।७४।। इधर श्रीकृष्ण,-सैव्या कुछ कहना चाहती है, यह देखकर इङ्गित से मना करके तुलसी के प्रति उदासीनता को प्रकट करके शैव्या को कहने लगी।।७५।।

सातिहृष्टाथ तं प्राह निरुद्धाऽपि धवाम्बया ।
दुर्गार्च्चाच्छद्मना नीता यत्नाच्चन्द्रावली मया ॥ ॥७७॥

सखीस्थल्युपशल्ये तां त्वत्सङ्गोत्कलिकाकुलां ।
संरक्ष्य पद्मया तूर्णं त्वामन्वेष्टुमिहागता ॥ ॥७८॥

चिन्तितोऽन्तर्वहिर्हृष्यन् प्रत्युत्पन्नमतिर्हरिः ।
अवदद्वञ्चयन् शैव्यां छद्मनानन्दयन्निव ॥ ॥७९॥

अहं तद्दर्शनोत्कण्ठो दिष्ट्या नीतेयमाल्यसौ ।
गौरीतीर्थं लम्भयैनां गुरूणां वञ्चनक्षमम् ॥ ॥८०॥

यावत् प्रमदराधाख्ये गाः सञ्चारयतो वने ।
अवधार्य्यागतोऽहं स्यां गवां सम्भालने सखीन् ॥ (युम्मकं) ॥८१॥

सातिहृष्टा सती तं श्रीकृष्णं प्राह, धवाम्बया करालया श्वश्रूवा निरुद्धापि मया दुर्गापूजाच्छलेन चन्द्रावली आनीता ॥७७॥ सखीस्थली गोवर्द्धननिकटे सखीस्तरा इत्याख्या तस्या उपशल्ये समीपवर्त्तिस्थलविशेष तां पद्मया सह संरक्ष्याहं त्वामन्वेष्टु-मागताहंस्मीति शेषः ॥७८॥ अन्तर्मनसि चिन्तितः वहिर्हृष्यन् प्रत्युत्पन्नमतिस्तां प्रति उत्पन्ना मतिः कर्त्तव्याकर्त्तव्यविचारवती वुद्धिर्यस्य स हरिः शैव्यां व्यन्जयन् अवदत् ॥७९॥ अथ कृष्णप्रच्छानन्तरं सा सैव्या अतिहृष्टा सैव्यावञ्चनं श्लोकषट्केनाह, हे सखि सैब्ये ! अहं तस्या दर्शनोत्कण्ठः, इयमसौ आली दिष्ट्या भाग्येन मम भाग्येन नीता त्वयेति शेषः । गुरुणां वञ्चनक्षमं गौरीतीर्थमेनां लम्भय प्रापय ॥८०॥

हे शैव्ये ! अभी कुछ मत कहो, पहले तुलसी को जाने दो, निज सखी का कुशल मङ्गल कहो, प्यारी चन्द्रावली कहाँ है, और क्या कर रही है ? ७६ अनन्तर शैव्या सहर्ष श्रीकृष्ण को वोली, चन्द्रावली सास के द्वारा घर में अवरुद्ध होनेपर भी सम्प्रति श्रीदुर्गा पूजा के छलसे मैं उनको लिवालाई हूँ।।७७।। तुम्हारे सङ्गप्राप्त करने की उत्कण्ठिता चन्द्रावली को सखीस्थली अर्थात् गोवर्द्धन के समीपवर्त्ती सखीस्तरा नामक स्थान के निकट में पद्माके साथ बैठाकर सत्त्वर तुम्हारे सन्देश लेने के लिए आई हूँ।।७८।। प्रत्युत्पन्नमति श्रीकृष्ण अन्तर में चिन्तित एवं वाहर में आनन्दित होकर छलपूर्ण वाक्य से आपाततः सैव्या को आनन्दित करके प्यार से बोले।।७९।। सखि ! मैं उनके अदर्शन से उत्कण्ठित होगया हूँ मेरे सौभाग्य से यदि उनको

तमाहाथ वटुर्भङ्ग्या द्रुतं कृष्ण-धनिष्ठया ।
व्रजेन्द्रेण यदाज्ञप्तं तत्कुरुष्वेति सोऽब्रबीत् ॥ ॥८२॥

आमार्य्य वसुदेवेन दूतोऽत्र प्रहितः प्रगे ।
गुप्तं प्रस्थापिताश्चौराः कंसेन कानने गवाम् ॥ ॥८३॥

भवितव्यं सावधानैः सर्व्वैर्गोपालकैरिति ।
तदादिष्टं तातपादैर्मयीदानीं धनिष्ठया ॥ (युग्मकं) ॥८४॥

तत्प्रत्यूहैर्विलम्बश्चेत् कदाचित् सम्भवेन्मम ।
नोद्वेगः सखि। कार्य्यस्ते आगन्ताहं द्रुतं ध्रुवम् ॥ ॥८५॥

कियत्कालपर्य्यन्तं तदाह, प्रमदराधाख्ये प्रकर्षेण मदो हर्षो मया सह राधाया यत्र अतस्तदाख्ये सार्थनामापि परमादली इति ख्याते वने गाः सञ्चारयतः सखीन् गवां सम्भालने रक्षणे अवधार्य्य निश्चित्य सावधानी कृत्याहं यावदागतः स्यां तावत् गौरीतीर्थमेनां लम्भय इति पूर्व्वेणान्वयः ॥८१॥ वटुर्भङ्ग्या तं कृष्णमाह, हे कृष्ण ! व्रजेन्द्रेण धनिष्ठया यदाज्ञप्तं तत्कुरुष्वेति सः कृष्ण अब्रबीत् ॥८२॥ हे आर्य्य मधुमङ्गल। आं स्मृतं आं दान निश्चये स्मृत्योरिति मेदिनी। वसुदेवेन प्रगे अत्र व्रजे दूतः प्रहितः दूतवाक्यमाह, कंसेन गवां चौराः गुप्तं वने प्रस्थापिताः, हे नन्दराज ! सर्व्वै गोपालकः सावधानैर्भवितव्यं। इति तत् दूतकथनं ॥८३॥ तातपादैः पितृचरणैः, अत्र वहुवचनं पाद इति पदश्च दत्तं नन्दस्य गौरवार्थं अर्थात् प्रीता तेन धनिष्ठया इदानीं मयि

तुम लिवालाई हो तो गुरुजनों के उपद्रव शून्य गौरी तीर्थ में तुम उनको ले जाओ ।।८०।। फिरसे श्रीकृष्ण बोले। हे सखि ! मैं प्रमदराधा नामक स्थान में अर्थात् मेरे साथ राधा जहाँपर खुशी मनाती है, परमादली नामक वनमें गोचारण करने वाले सखाओं को गौओं के रक्षणावेक्षण में नियुक्त करके जबतक मैं नहीं आता हूँ, तबतक तुम अपनी सखी चन्द्रावली को गौरी तीर्थ में रखो ।।८१।। अनन्तर मधुमङ्गल भङ्गीसे श्रीकृष्ण को कहने लगे, हे सखे ! श्रीव्रजराज नन्द बाबाने धनिष्ठाके द्वारा जो संवाद भेजा है, उसका पालन करो, मधुमङ्गल के वाक्य को सुनकर श्रीकृष्ण बोले ।।८२।। हे आर्य मधुमङ्गल ! हाँ सुधि आई है, नन्द बाबाने वसुदेव के दूत के मुख से सुना है कि कंस राजके प्रेषित तस्करगण आकर वृन्दावन के सब गोधन चोरी करके ले जावेंगे ।।८३।। गोपालकगण सावधानसे रहें। यह सूचित करने

इति प्रतार्य्य तां शैव्यां गोदिशं स सखोऽव्रजत्।
मुरारिस्त्वरया हृष्टा सापि चन्द्रावलीं प्रति ॥ ॥८६॥

॥ ✲✲ ॥ श्रीचैतन्यपदारविन्दमधुप श्रीरूपसेवाफले,
दिष्टे श्रीरघुनाथदासकृतिना श्रीजीवसङ्गोद्गते।
काव्ये श्रीरघुनाथभट्टवरजे गोविन्दलीलामृते,
सर्गः संप्रति षष्ठ एष निरगात् पूर्व्वाह्नलीलामनु ॥ ✲✲ ॥ ६ ॥

आदिष्टम् ॥८४॥ हे सखि शैव्ये ! तत्प्रत्यूहैर्गवां रक्षणरूपविघ्नैः कदाचित् मम विलम्बश्चेत् सम्भवेत् ते त्वया नोद्वेगः कार्य्यः। अहं द्रुतं शीघ्रं निश्चितमागन्ता आगमिष्यामि ॥८५॥ इत्येनेन प्रकारेण तां शैव्यां प्रतार्य्य मुरारिः स सखः गोदिशं अव्रजत् सा शैव्या चन्द्रावलीं प्रति ययौ ॥८६॥

॥✲॥ इति श्रीगोविन्दलीलामृते पूर्व्वाह्नलीलामनु पूर्व्वाह्नलीलावर्णने सम्प्रत्येव षष्ठः सर्गो निरगात् पूर्णोऽभूत्। इति सदानन्दविधायिन्यां षष्ठं सर्गः ॥✲॥ ॥६॥ ॥✲॥

केलिए धनिष्ठा प्रातः काल में मेरे पास आई है।।८४।। हे सखि शैव्ये ! उस उपद्रव को शान्त करने के लिए आने में विलम्ब होगा, तुम उद्विग्न न होना, मैं शीघ्र आ रहा हूँ।।८५।। इस प्रकार से शैव्या को ठगकर मुरारि सखागण के साथ गोचारण के लिए चले गए, सैव्या भी आनन्द मनसे चन्द्रावली के निकट चलीगई।।८६।।

श्रीकृष्णचैतन्य महाप्रभु के पदारविन्द के मधुपानकारी भ्रमर स्वरूप श्रीरूप गोस्वामी की सेवा का फल, श्रीरघुनाथदास गोस्वामी से प्रेरणाप्राप्त, श्रीजीव गोस्वामीके सङ्गसे समुद्भुत, एवं श्रीरघुनाथभट्ट गोस्वामीजी के वरसे प्रादुर्भूत श्रीगोविन्दलीलामृत नामक काव्य में पूर्वाह्न लीलावर्णन षष्ठ सर्ग सम्पूर्ण हुआ।।६।।



श्रीगोविन्दलीलामृतम्

सप्तमः सर्गः

— ✻✻ —

कियद्दूरं ततो गत्वा निवृत्योद्धर्त्मना हरिः ।
राधाकुण्डं समायातः प्रियासङ्गोत्सुकः प्रियम् ॥ ॥१॥

परितो मणिसोपानावलिभिः परिवेष्टितम् ।
चतुर्भिर्मणिसंवद्ध–तीर्थैर्दिक्षु सुशोभितम् ॥ ॥२॥

तीर्थोपरि स्फुरद्रत्नमण्डपैः साङ्गनैर्युतम् ।
तत्तीर्थोभयपार्श्वस्थमणिकुट्टिममण्डितम् ॥ ॥३॥

प्रतिमण्डपपार्श्वस्थतरुशाखावलम्बनैः ।
युतं नानापुष्पवासश्चित्रैर्दोलाचतुष्टयैः ॥ ॥४॥

हरिः कियद्दूरं गत्वा ततो निवृत्त्य प्रियासङ्गोत्सुकः सन् उद्धर्त्मना अप्रसिद्धमार्गेण प्रियं राधाकुण्डं समायातः ॥१॥ राधाकुण्डं कीदृशं परितः सर्व्वतो मणिमयसोपानानां श्रेणीभिः परिवेष्टितः । चतुर्दिक्षु मणिभिः संवद्धैस्तीर्थैश्चतुर्भिर्घट्टैः शोभितं ॥२॥ तीर्थोपरि अङ्गनसहितैः स्फुरद्भीरत्नमयमण्डपैर्युक्तं । मण्डपोऽस्त्रीजनाश्रय इत्यमरः । तत्तेषां तीर्थानां चतुर्णां उभयपार्श्वस्थैर्मणिमयैरष्टभिः कुट्टिमै वेदीभिश्च मण्डितं भूषितं । कुट्टिमोऽस्त्रीनिवद्धा भूरित्यमरः ॥३॥ प्रतिमण्डपानां पार्श्वेषु स्थितानां द्विद्वितया स्थितानां तरूणां शाखा एवावलम्बनं बन्धनस्थानं येषां तैः नानापुष्पैर्वासोभिर्वस्त्रैश्च चित्रैर्मनोहरैर्दोलानां चतुष्टयैश्चतुर्भिर्युतं अवयरावयविनिरोभेदात् । अत्र चतुर्भिरित्यर्थे

अनन्तर श्रीकृष्ण कुछ दूर जाकर वहाँ से लौटकर श्रीराधासङ्ग प्राप्ति की अभिलाष से अलक्षित पथसे श्रीराधाकुण्ड पहुँच गये ।।१ ।। आहा! श्रीराधाकुण्ड की कैसी आश्चर्य्य शोभा है ? वह मणिमय सोपान समूह के द्वारा परिवेष्टित एवं मणिनिर्म्मित घाट चारों ओर से सुशोभित है ।।२।। उन चारों घाटों में आङ्गन के साथ दैदीप्यमान रत्नमण्डप एवं घाट चतुष्टयके उभय पार्श्व, मणिमय अष्ट वेदिका से भूषित हैं ।।३ ।। वहाँपर प्रतिमण्डप के चतुःपार्श्व में अवस्थित दो दो वृक्ष की शाखामें अनेक प्रकार के कुसुम एवं विविध वसन द्वारा मनोहर दोलाचतुष्टय झूल रहे हैं ।।४ ।। वहाँपर प्रत्येक मण्डप के चारों

याम्ये चम्पकयोः पूर्व्वे नीपयोराम्रयोः परे।
सौम्ये वकुलयोर्वद्धरत्नहिन्दोलिकान्वितम्॥ ॥५॥

पूर्वाग्नेय दिशोर्मध्ये प्रियकुण्डेन सङ्गतम्।
तत्रोर्द्धे स्तम्भकालम्बिविचित्रसेतुसमन्वितम्॥ ॥६॥

गल-हृदुदर-नाभि-श्रोणिजानुरुदघ्नैः
षडुदधि-वसुकोणैर्मण्डलाङ्गैश्च कैश्चित्।
शिशिरमनु समुष्णैः ग्रीष्मकाले सुशीतै-
र्विविधमणिनिवद्धैर्दिक्षु सोपानयुक्तैः॥ ॥७॥

चतुष्टयैरित्युक्तं। अत्र स्वार्थे तयट्प्रत्ययो वा ॥४॥ पूर्व्वश्लोके सामान्याकारेणोक्तान् वृक्षान् नामग्रहणपूर्व्वकमाह, याम्ये दक्षिणे भागे दिशीत्यर्थः। चम्पकयोः पूर्व्वे नीपयोः कदम्बयोः परे पश्चिमे आम्रयोः। सौम्ये सोमः कुवेरः तत्सम्वन्धिनि उत्तरे। तथाहि पञ्चमस्कन्धे, उत्तरे सौम्यां विभावरी नामेति सोमस्तु हिनदीधितौ वानरे च कुवेरे च पितृदेवे समीरणे इति मेदिनी। वकुलयोः शाखासु बद्धाया रत्नमय्यो हिन्दोलिका-स्ताभिश्चतुसृभिर्हिन्दोलिकाभिरन्वितं युक्तं। तथाच, श्रीराधाकुण्डस्य दक्षिणदिशायां मध्यस्थले तीर्थं तीर्थस्योपरि दक्षिणे रत्नमयविस्तृताङ्गन। अङ्गनस्य मध्ये रत्नमयं मण्डपं तस्य मण्डपस्य पार्श्वद्वये चम्पकवृक्षद्वयं तयोर्वृक्षयोः शाखाबद्धा हिन्दोलिका। एवं पूर्व्वादि दिक्षु ज्ञेयं ॥५॥ पूर्व्वदिक् अग्निकोणयोर्मध्ये कृष्णकुण्डेन सङ्गतं मिलितं तत्र राधाकुण्ड कृष्णकुण्डयोः सङ्गमे ऊर्द्धे स्तम्भालन्विचित्रसेतुना समन्वितं। कुण्डयोर्जलसंचारार्थं रत्नस्तम्भः स्तम्भोपरि सर्वेषां सञ्चारार्थं सेतु ॥६॥ पुनः कीदृशं कुण्डं तदाह, त्रिभिः अभितः सर्वदिक्षु पादपानां वृक्षाणां विततिभिः संवेष्टितं।

ओर अवस्थित दो दो वृक्ष की शाखामें नाना प्रकार कुसुम एवं विबिध वसन द्वारा सुसज्जित मनोहर दोला चतुष्ट्य झूल रहे हैं।।४।। उसका विशेष विवरण देते हैं,-दक्षिण दिक में चम्पक वृक्षद्वय की पूर्व दिक में कदम्ब वृक्षद्वय की, उत्तर दिक्में आम्रवृक्षद्वय की, एवं पश्चिम दिक् में वकुल वृक्षद्वय की शाखा में हिन्दोला दोलायमान हैं ।।५।। उस कुण्ड के पूर्व दिक् एवं अग्नि कोण के मध्यमें श्यामकुण्ड के साथ मिलित कुण्डद्वय के सङ्गमस्थल के मध्य में स्तम्भ है, इस स्तम्भ से कुण्डद्वय से जल निर्गमन होता है, इस स्तम्भोंके उपरि भागमें यातायातके लिए मनोरम सेतु निर्म्मित है।।६।। अनेकानेक वृक्षश्रेणी श्रीराधाकुण्ड कुण्डस्थ चतुर्दिक् को आच्छन्न

मणिरुचिजल-वीचि-भ्रान्तितृष्णाभिभूता
पतितविहगवृन्दाच्छालवालान्तरालैः।
परिजनयुत-राधाकृष्णयोर्नर्म्मगोष्ठी
प्रमदकृदुपवेशानल्पवेदी सुशोभैः ॥८॥

निचित-पृथुतलानां कुट्टिमैश्चित्रवर्णैः
कुसुमितवहुवल्ली श्लिष्टशाखाभुजानाम्।
घनदलफलपुष्पश्रेणिभारानतानाम्
विततिभिरभितः संवेष्टितं पादपानाम्॥ ॥९॥

कीदृशानां चित्रवर्णैः, कुट्टिमैर्वद्धस्थलैर्निचितं व्याप्तं पृथु विस्तीर्ण तलं तलदेशो येषां। कीदृशैः कुट्टिमैः, उच्चांशे मनुष्याणां गलादयो दघ्नः परिमाणं येषां तैः गलपरिमितैः हृत् उदरपरिमितैः, नाभिपरिमितैः, श्रोणिपरिमितैः, जानुपरिमितैः, ऊरुपरिमितैरिति भिन्नैः। पुनः किम्भुतैः, आकृत्यंशे षट्कोणैः। उदधयः पूर्व-दक्षिण-पश्चिमोत्तरभेदेन चत्वारस्तत्र संख्यककोणैः चतुष्कोणैः। वसवोऽष्टौ तत्संख्यककोणैः, कैश्चिन्मण्डलाङ्गैर्मण्डलाकारैः। पुनः कीदृशैः, शिशिरमनु शिशिरकाले सम्यगुष्णैः, ग्रीष्मकाले शीतैः शीतलैः, विविधमणिभिर्निवद्धैः, चतुर्षु दिक्षु सोपानयुक्तैः। मणीनां रुचिभिः कान्तिभिर्या जलस्य वीचीनां तरङ्गाणां भ्रान्तिस्तया हेतुभूतया तृष्णाभिभूतं च तदा पतितं चेति तत् विहगवृन्दं पक्षिसमूहो यत्र तादृशं अच्छानां निर्मलानां। आलवालानां वृक्षमूलजला-धाराणामन्तरालमभ्यन्तरं मध्यं येषां तैः। स्यादालवालमावालमिति अभ्यन्तरं त्वन्तरालमिति चामरः। पुनः कीदृशैः, परिजनयुतयोः श्रीराधाकृष्णयोर्नर्म्मगोष्ठ्याः प्रमदकृत् हर्षकृत् उपवेशः प्रवेशः स्थितिर्वा यासु तादृशीभिरनल्पीभिर्वह्वीभिः स्वचतुर्दिक्षु स्थिताभिर्वेदीभिः सुष्ठु शोभा येषां तैः। कीदृशानां वृक्षाणां, कुसुमितवहुवल्लीभिः श्लिष्टा

कर विराजित हैं। वे सबवृक्ष एवं कुसुमित लता निविड़ पल्लव तथा पुष्पभार से अवनत होकर हैं, उक्त तरुसमूह के मूलदेश में बड़े बड़े वेदी एवं प्रशस्त मणिकुट्टिम समूह आलबाल के समान शोभित हैं। सोपान समूह के द्वारा परिशोभित वह कुट्टिम समूह ग्रीष्मकाल में शीतल एवं शीतकाल में उष्णप्रद हैं, कुट्टिम की उच्चता कण्ठ, हृदय, उदर, नाभि, जानु एवं उरुदेश तक है, कुट्टिम समूह-कोई षट्कोण, सप्तकोण, कोई तो गोलाकार है, अकस्मात् उसकी ओर दृष्टि पड़ने से जल की तरङ्ग की भाँति प्रतीति होती है, पक्षिगण

सन्दानिकं ।
चतुष्कोणेषु वासन्ती चतुःशालाभिरावृतं ।
वानीरकेशराशोकनिकुञ्जैः परितोर्वृतं ॥ ॥१०॥

तद्बहिः पक्त्रिमापक्वफलपुष्पोत्कराकरैः ।
परितः कदलीषण्डैर्मण्डितं शीतलच्छदैः ॥ ॥११॥

तद्बहिर्वाह्योपवनाश्लिष्टपुष्पाटवीवृतं ।
स्वमध्यसलिला दीव्यत् स सेतुरत्नमन्दिरं ॥१२॥

नानापुष्पफलोच्चायि वनदेवीगणान्वितैः ।
सेवोपचारसंसक्तकुञ्जदासीशतावृतैः ॥१३॥

आलिङ्गिताः शाखारूपभुजा येषां तेषां। घनानां निविडानां दलफलपुष्पश्रेणीनां भारेणानतानां सम्यङ्नम्राणां ॥७-९॥ चतुष्कोणेषु वासन्तीलतानिर्म्मितचतुः शालाभिर्वृतं चतुर्दिक्षु गृहचतुष्टयैः चतुःशाला भवति। अतिमुक्तः पुण्ड्रकः स्याद्वासन्ती माधवीलतेत्यमरः। वानीरकुञ्ज नागकेशरकुञ्ज अशोककुञ्जैः परितः सर्व्वदिक्षु वृतं ॥१०॥ तद्बहिः पक्वापक्कफलानां पुष्पाणां चोत्कराः समूहास्तेषामाकरैरुत्पादकैः शीतलाश्छदाः पत्राणि येषां तैः। कदलीनां षण्डैः परितः सर्व्वतो दिक्षु मण्डितं ॥११॥ तद्बहिः वाह्योपवनैः सह श्लिष्टाभिर्लग्नाभिः पुष्पाटवीभिर्वृतं। स्वस्य तस्य कुण्डस्य मध्यवर्त्तिसलिके आदिव्यत् अतिकान्तिमत् स सेतुना सह रत्नमन्दिरं यत्र तत् ॥१२॥ अभितः सर्व्वदिक्षु सेवोपकरणानामागारनिकरैर्गृहसमूहैर्वृतं। कीदृशैः, नानापुष्पफलानां अच्चये आहरणे शीलं येषां तैर्वनदेवीगणैरन्वितैः। सेवोपचारसंसक्तेन कुञ्जदासी-शतेनावृतैः फलारामपुष्पवाटीमध्यस्थैर्वृन्दयाचितैः यथायोग्यं नियम्य स्थापितैः ॥१३-१४॥

जलपान करने के लिए तृष्णाकुल होकर जलपान करने के लिए उक्त कुट्टिम के चारों ओर आतेजाते रहते हैं, उक्त कुट्टिम समूह में श्रीराधाकृष्ण सखा एवं सखीगण के साथ निरन्तर विहार करते रहते हैं।।७-९।। घाटके चारों ओर वासन्ती की चतुःशाला एवं वानीर (वेतसवृक्ष) केशर, अशोककुञ्ज सुशोभित हैं।।१०।। उसके बाहरी भागमें पक्व अपक्वफल पुष्पादि समन्वित एवं शीतल पत्रविशिष्ट कदली वृक्षों से चतुर्दिक मण्डित हैं।।११।। राधाकुण्ड में श्रीकृष्ण सेवाके उपयोगी द्रव्य समूह एवं असंख्य गृह समूह हैं, प्रचुर नानाविध फल पुष्पादि संग्रहकारी वनदेवताके साथ सेवार्थ नियुक्त शत शत

फलाराममपुष्पवाटीमध्यस्थैर्वृन्दयाचितैः ।
सेवोपकरणागारनिकरैरभितोर्वृतम् युग्मकम् ॥ ॥१४॥

ऋतुराजादि सर्वर्त्तुगुणसेवितकान नम् ।
वृन्दासंमृष्टगन्धाम्भः संसिक्ताध्वाङ्गणालयम् ॥ ॥१५॥

तया तोरणकोल्लोच-पताकालम्वगुच्छकैः ।
पौष्पैश्चित्रित-कुञ्जाध्वदोलाचत्वरमण्डपम् ॥ ॥१६॥

नवकमलदलाली-पल्लवावृन्तनाना-
कुसुमरचितशय्योच्छीर्षचन्द्रोपधानैः ।
स मधुचषकताम्वूलाम्वुपात्रादियुक्तैः
सुवलित-तललीलागारकुञ्जप्रपञ्चम् ॥ ॥१७॥

कह्लाररक्तोत्पलपुण्डरीकं पङ्केरुहेन्दीवरकैरवाणाम् ।
क्षरन्मरन्दैश्च पतत् परागैः सुवासिताम्भः प्रसरं समन्तात् ॥ ॥१८॥

ऋतुराजो वसन्तस्तदादि षट्ऋतुगुणैः सेवितं काननं यत्र तत् वृन्दयादौ संमृष्टा पश्चात् गन्धजलेन संसिक्तामार्गाङ्गणालया यत्र तत् ॥१५॥ तया वृन्दया पौष्पैः पुष्पकृतैः तोरणवल्लोचश्चन्द्रातपश्च पताकाचालम्बश्च गुच्छकश्च एतैश्चित्रितानि मनोज्ञ कृतानि कुञ्जमार्गदोलाचत्वरमण्डपानि यत्र तत् ॥१६॥ नवकमलदलाली च नवपल्लबाश्च अवृन्तानि वृन्तरहितानि नानापुष्पाणि चतैः शय्यातल्पं उच्छीर्षं मस्तकाधीनं चन्द्राकारमधुपधानं च तैः। कीदृशैः स मधुचषकेण मधुसहितपानपात्रेण तथा ताम्बूल-जलपात्रादिभिश्च युक्तैः सुवलितं तलं तलदेशो येषां तेषां लीलागाररूप-कुञ्जानां प्रपञ्च विस्तारो यत्र तत् ॥१७॥ कह्लारश्च रक्तोत्पलं कोकनदं च पुण्डरीकं

कुञ्ज दासीगण द्वारा शोभित एवं उपवनों के द्वारा सुशोभित, पुष्पवाटी मध्यस्थित वनदेवताधिष्ठित गृह समूह विद्यमान हैं।।१२-१४।। वसन्तादि ऋतुगण के द्वारा सेवित कानन एव श्रीवृन्दा द्वारा सम्मार्जित, सुगन्धवारि द्वारा सिक्त पथसमूह; पुष्पगुच्छ, चन्द्रातप, तोरण, कुञ्जमार्ग, चत्वर, दोला मण्डप प्रभृति के द्वारा शोभित है।।१५-१६।। श्रीराधाकुण्ड के कुञ्ज गृहके मध्यमें अभिनव कमलदल, पल्लव, वृन्तशून्य कुसुम रचित शय्या, उपादेय उपाधान, मधुपूर्णा पान पात्र, ताम्बूल पात्र प्रभृति मनोहर द्रव्य समूह स्तर में सुसज्जित है।।१७।। कह्लार, रक्तोत्पल, पुण्डरीक, पङ्केरुह, इन्दीवर,

हंस-सारस-दात्यूह-मद्गु-कोकादि-पत्रिणाम् ।
वरटा लक्ष्मणादीनां कलालापैः श्रुतिप्रियम् ॥ ॥१९॥

सारीशुकानामन्योन्य पृथगासङ्गरङ्गिणाम् ।
कृष्णलीलारसोल्लासि-काव्यालाप-मनोहरम् ॥ ॥२०॥

जलदभ्रान्तिकृत् कृष्णकान्तिजप्रणयोन्मदैः ।
नदन्तृत्यच्छिखिव्रातैर्व्याप्तारामतटाजिरम् ॥ ॥२१॥

हारीत-पारावत-चातकादिक-प्रहृष्ट-नानाविधचित्रपक्षिणाम् ।
कृष्णेक्षणानन्दविफुल्लवर्ष्मणां कर्णामृतध्वानमनोज्ञ-काननम् ॥ ॥२२॥

राकेशार्व्वुद-निर्मञ्छ्य राधेशास्येन्दुपायिभिः ।
चकोरैर्न्यक्कृतत्यक्त-चन्द्रैर्वृत-नभस्तलम् ॥ ॥२३॥

श्वेतपद्मं च पङ्केरुहं पद्मश्च इन्दीवरं नीलोत्पलं च कैरवं कुमुदश्च एतेषां जलपुष्पाणां क्षरद्भिः पुष्परसैः पतद्भिः पुष्परजोभिश्च सुवासितैरम्भोभिर्जलैः समन्तात् चतुर्दिक्षु प्रसरति विसरतीति प्रसरं ॥१८॥ हंसादिपक्षिणां कलालापैर्मधुरालापैः श्रुतिप्रियं। हंसस्य योषिद्वरटा सारसस्य तु लक्ष्मणा इत्यमरः ॥१९॥ अन्योन्यपृथगासङ्गेन रङ्ग उत्सवे येषां तेषां सारीशुकानां कृष्णलीलारसस्य उल्लासो विद्यते यत्र तेन काव्यालापेन मनोहरं ॥२०॥ मेघभ्रान्तिकृत् कृष्णकान्ति-जन्य-प्रणयोन्मादैर्नदद्भिर्नृत्यद्भिर्मयूर-समूहैर्व्याप्ता आरामास्तटवर्त्ति अजिरमङ्गनं च यस्य तत् ॥२१॥ हारीत पारावत चातक आदयो येषां तेषां प्रकृष्ट नानापक्षिणां कृष्णदर्शनानन्देन विफुल्लं वर्ष्मशरीरं येषां तेषां

कैरब प्रभृति कुसुम समूह से निःस्यन्दित मधुबिन्दु एवं पराग समूह द्वारा सुवासित, एवं सुस्निग्ध वारि समूह पयः प्रणाली द्वारा निःसरित होकर निर्झर वारि की भाँति झर झर शब्द से चारों और बहने लगे।।१८।। दूसरी ओर हंस, दात्यूह, सारस, मद्गु, चक्रवाक वरटा (हंसी) लक्ष्मणा प्रभृति पक्षिगण के कलरव को श्रवण कर शुक शारी प्रभृति विहङ्गगण पारस्परिक आनन्दसे विभोर होकर कृष्णलीला विषयक मधुर काव्यालाप करने लगे।।१९-२०।। श्रीकृष्ण को देखकर मयूर निकर जलद की भ्रान्ति से शब्द करते-करते कुञ्ज के अङ्गन में नृत्य करने लगे।।२१।। हारीत, पारावत, चातक, एवं अन्य - अन्य विचित्र पक्षिगण श्रीकृष्णदर्शनसे हर्षाधिक्य से प्रफुल्ल देह होकर कानन के मध्य में कलरव करने लगे ।।२२।। असंख्य पूर्णचन्द्रविनिन्दित श्रीकृष्णके

विपक्व-जालकापक्वफलैः कुसुम-पल्लवैः ।
मुकुलैर्मञ्जरीभिश्च नम्रै र्वल्लीद्रुमैर्वृतम् ॥ ॥२४॥

अनेकपद्माकरमध्यसंस्थितं हरेर्विलासान्वित-तीरनीरकम् ।
नानाब्ज-कान्त्युच्छलितं निरन्तरं गुणैर्जितक्षीरसमुद्रमद्भुतम् ॥ ॥२५॥

स्वसदृक् तीरनीरेण कृष्णपादाब्जजन्मना ।
निजपार्श्वोपविष्टे नारिष्टकुण्डेन सङ्गतम् ॥ ॥२६॥

कर्णस्यामृततुल्यध्वनिना मनोज्ञः काननं यत्र तत् ॥२२॥ राकेशः पूर्णचन्द्रस्तस्याऽर्व्वुदेन निर्मञ्जनार्ह्रं राधेशस्य श्रीकृष्णस्य राधाकृष्णयोर्वा आस्येन्दुः पातुं शीलं येषां तैः । पुनः कीदृशैः, न्यक् कृतस्तिरस्कृतस्त्यक्तश्च चन्द्रो यैस्तैश्चकोरैर्वृतं आच्छन्नं नभस्तलं नभो यत्र तत् तलं स्वरूपतलयोरिति विश्वः । एतेन तत्रस्थ चकोराणां अप्राकृतत्वं सूचितं । यद्वा, चकोरतुल्यैः गोपीनां नयनैरिति ॥२३॥ विशेषेण पक्वैः जालकैः अल्पपक्वैः अपक्वफलैः कुसुमादिभिश्च नम्रैर्वल्लीद्रुमैर्वृतं ॥२४॥ पुनः कीदृशं, गुणैर्जितः क्षीरसमुद्रो येन तत् अद्भुतं क्षीरसमुद्रादपि । कथं तत्राह, अनेकानां पद्मानामाकर उत्पत्तेर्निवासस्य च स्थानं मध्यरूपं संस्थितिर्मर्य्यादाऽर्थात् मध्यं यस्य तत् । स तु एकस्या एव पद्माया लक्ष्म्या अकरमध्यसंस्थितं इदं हरेर्विलासैरन्वितं तीरं नीरं च यस्य तत् । स तु हरेर्विलासान्वित-नीर एव, इदं नानाब्जानां शुक्लरक्तादि वहुविधपद्मानां कान्तिभिर्निरन्तरं सर्व्वदैवोच्छलितं । स तु एकस्यैवाब्जस्य चन्द्रस्य कान्त्या

वदन शशधर की सुधा को पान करने के लिए मानो चकोर निकर चन्द्रमण्डल शोभित गगनमण्डल को छोड़कर आने लगे ।।२३।। श्रीराधाकुण्ड के तीर नीर श्रीकृष्ण के विलास के लिए कैसी आश्चर्य शोभासे शोभित है ? पक्व एवं अपक्व फलों के भार से, किशलय, कुसुम, मुकुल, तथा मञ्जरी के भारसे अवनत वृक्षवृन्द की छाया से निरन्तर तीर एवं नीर आच्छन्न है, प्रत्युत अनेक सरोवर मध्यगत पद्मपुष्प समूह से अतिशय शुक्लवर्ण हो जानेसे पवनान्दोलित, मन्द मन्द तरङ्ग माला लालित कुण्ड वारि को हठात् देखने से बोध होता है कि जैसे सरोवर समूह क्षीर समुद्र का उपहास कर रहे हैं।।२४-२५।। जिसके तीर, नीर स्वसदृश, कृष्ण पादपद्मोद्भव, स्वीय पार्श्व में अवस्थित, अर्थात् पूर्व एवं अग्नि कोण मध्यस्थ श्रीश्याम कुण्डके साथ मिलितहै। श्रीराधाकुण्ड की उत्पत्ति का विवरण वराह पुराण में

षड् विंशत्या कुलकं।
तीरे कुञ्जा यस्य भान्त्यष्टदिक्षु प्रेष्ठालीनां स्वस्वनाम्ना प्रसिद्धाः।
ताभिः प्रेम्णा स्वीयहस्तेन यत्नात् क्रीडातुष्ट्यै प्रेष्ठयोः संस्कृता ये।। ।।२७।।

तत्तत्काष्ठाप्रान्तविच्छिन्न-सीमा-रामोद्यानावेशनांशान्विताश्च।
तत्तत्सीमाभ्यन्तरोत्पन्नवृक्ष-श्रेणीयुग्माच्छन्नवर्त्मालियुक्ताः।। युग्मकं।। २८।।

पूर्णिमायामेवोच्छलितः स्यात्।।२५।। पुनः कीदृशं, स्वस्य सदृक् समानं तीरं नीरं च यस्य ते न कृष्णपादाब्जजन्मना निजपार्श्वे पूर्व्वाग्नेया दिशोर्मध्ये उपविष्टेन स्थितेन अरिष्टकुण्डेन सङ्गतं कृष्णपादाब्जजन्मना इत्यनेन कथितं। यत् कृष्णकुण्डस्य प्रकटकारणं तत् तत् सङ्गि-राधाकुण्डस्य प्रकटकारणञ्च। श्रीवराहपुराणादौ लिखितं तदनुसारेण श्रीविश्वनाथचक्रवर्त्तिठक्कुरेण दशमस्कन्धीयटीकायामरिष्टवधानन्तरं विस्तार्य्य विंशत्या श्लोकैः लिखितमस्ति।।२६।। पुनः कीदृशं तत्कुण्डं, यस्य तीरे अष्टदिक्षु उत्तरादि आवायव्यं तासु प्रेष्ठालीनां श्रीललिता विशाखा चित्रेन्दुलेखा चम्पकलता रङ्गदेवी तुङ्गविद्या सुदेवीनां क्रमेण आसां अष्टानां स्वस्वनाम्ना प्रसिद्धाः कुञ्जा भान्ति। कीदृशाः, प्रेष्ठयो राधाकृष्णयोः क्रीडातुष्ट्यै क्रीडातुष्ट्यर्थं ताभिः प्रेष्ठालीभिः प्रेम्ना यत्नाच्च स्वीयहस्तेन ये कुञ्जाः संस्कृता भवन्तीति शेषः।।२७।। पुनः कीदृशाः, तत्तत्तासां प्रेष्ठालीनां तेषां तेषां कुञ्जानां वा या याः काष्ठाः दिशः तासां प्रान्ते विच्छिन्नासु भिन्नासु सीमासु ये आरामा उपवनानि उद्यानानि राज्ञः साधारणवनानि राज्ञ इत्युपलक्षणं वनाध्यक्षपरं, अत्र श्रीकृष्णः गोपीजनो वा वनानि आवेशनानि शिल्पशाला एषामंशेन भागेनान्विता युक्ताः। आरामः स्यादुपवनं कुत्रिमं वनमेव यदिति। उद्यानं राज्ञः साधारणं वनमिति। आवेशनं शिल्पशाला इति चामरः। पुनः कीदृशाः, तत्तत्

सुविस्तृत रूपसे है।।२६।। उस श्रीराधाकुण्ड के तीर के उत्तरदिक् से आरम्भ कर वायु कोण पर्यन्त श्रीललिता विशाखा चित्रा इन्दुलेखा चम्पकलता रङ्गदेवी तुङ्गविद्या एवं सुदेवी प्रियतम सखियों के अपने-अपने नामसे बने हुए कुञ्जसमूह हैं, इनमें श्रीराधाकृष्ण लीलाविलासादि करते रहते हैं। इसलिए उनकी क्रीड़ा तुष्टि के निमित्त सखीगण स्वयं ही उक्त कुञ्जसमूह के संस्कारादि कार्य सम्पादन करती हैं।।२७।। सखीगणों के कुञ्ज समूह के प्रान्तभाग की विभिन्न सीमामें जो सव उपवन हैं उसके प्रान्त की सीमा में शिल्प समूह विराजित हैं, उसके मध्य में जोसब उत्पन्न हुए हैं, वे सब दोनों ओर श्रेणीवद्ध होकर अवस्थित होने से पथ समूह आच्छन्न होकर हैं।।२८।।

उपरि तनुतरङ्गाकारचित्राश्रिशुद्ध-
स्फटिकमणिचितान्यस्फारवर्त्मानि तानि ।
मरकतमणिवृन्दैराचिताभ्यन्तराणि
प्रतनुलहरिकुल्या भ्रान्तिमुत्पादयन्ति ॥ ॥२९॥

मणिचयरचनाभिः स्वेषु भित्तिभ्रमं द्राक्
स्वनिकट-मणिभित्तौ चात्मवुद्धिं दधद्भिः ।
उपवनयुगमध्ये द्वारवृन्दैर्युतानि
प्रविशदितरलोके दर्शनादेव भान्ति ॥ ॥३०॥

युग्मकं ॥

तासां तासां सीमानामभ्यन्तरैर्मध्ये उत्पन्नैर्वृक्षश्रेणी युग्मैराच्छन्नया वर्त्माल्या मार्गश्रेष्या युक्ताः ॥२८॥ सखीनां राधाकृष्णयोर्लीलासहायकारित्वं किं कर्त्तव्यं तासां कुञ्जानां कुञ्जवर्त्मनां कुञ्जोपवनानां च तयोर्लीलासहायकारित्वमद्भुतत्वं चास्तीत्याह उपरीति द्वाभ्यां । तानि पूर्व्वश्लोकोक्तानि कुञ्जसम्बन्धीन्यऽस्फारवर्त्मानि सङ्कीर्णपथानि भान्ति । कीदृशानि, उपरि उपरभागे तनुतरङ्गाकारे सूक्ष्मलहरी सदृशे चित्रे चित्ररचनायामश्रिभिः संयुक्तैः शुद्धैः स्फटिकमणिभिश्चितानि युक्तानि । पुनः किम्भूतानि, मरकतमणीनां समूहैरासमन्तात् चितानि अभ्यन्तराणि मध्यानि स्फटिकमणिकृतलहरीणां सन्धयो येषां तानि । अतः प्रविशतीतरलोके श्रीराधापरिकराद्भिन्नजने चन्द्रावली श्यामलादिपरिकरे जटिलादौवा दर्शनादेव दर्शनमात्रेणैव द्राक् शीघ्र प्रतनवः सूक्ष्म लहरयो यासु तासां कुल्यानामल्पकृत्रिमनदीनां भ्रान्ति भ्रममुत्पादयन्तिं कुर्वाणानि । यानि पश्यत इतरजनस्य इमानि वर्त्मानि न कुल्या एवेति भ्रमो जायते । ततस्तस्मात् सोपसरतीत्थं भूतानीत्यर्थः । कुल्याल्पा कृत्रिमा सरिदित्यमरः । पुनः किम्भूतानि, उपवनमणिभित्तौ द्वारवृन्दैर्युतानि । कीदृशैः, मणिचयेन याः स्वावरकरचनास्ताभिः करणैः प्रविशदितरलोके दर्शनादेव शीघ्रं

पहले जो सब क्षुद्र क्षुद्र मार्गका निर्देश किया गया है वे सव शुद्ध स्फटिकमय हैं, आश्चर्यजनक उन पथों के प्रति दृष्टिपात करने से बोध होता है कि वे सव नदी से उत्थित क्षुद्र क्षुद्र तरङ्ग मालाएँ हैं ।।२९।। उसके मध्य भागस्थित विचित्र कार्य निवह को दर्शन करने से कृत्रिम सरोवर की प्रतीति होती है, पथसमूह वन तथा उपवन से सुशोभित है, पथ के द्वार देश में मणिशिल्प को देखने से जनसाधारण को द्वार देशमें भित्तिभ्रम, एवं भित्ति समूह में द्वार

चकास्त्युदीच्यां दिशि तीर्थसन्निधावनङ्गरङ्गाम्बुजनाम चत्वरम्।
पद्माभकुञ्जाष्टदलैर्विराजितं सुहेम-रम्भावलिकेशरान्वितम्॥ ॥३१॥

सहस्रपत्राम्बुजसन्निभस्फुरत् सुवर्णसत्कुट्टिममञ्जुकर्णि कम्।
लीलानुकुल्योचितसन्ततोल्लसद्विस्तीर्णतालाम्वरमुन्नतप्रभम्॥ ॥३२॥

ललिता शिष्यया नित्यं कलावत्या सुसंस्कृतम्।
सर्व्वर्त्तु सुखसम्पन्नं नानाकेलिरसाकरम्॥ ॥३३॥

स्वेषु भित्तिभ्रमं स्वनिकटमणिभित्तौ आत्मबुद्धिं द्वारबुद्धिं च दधद्भिः दानार्थे सप्तमी क्वचिदिति गौणविधिः। श्रीस्तवावल्या सगर्वे गोविन्दे परिषदि ददावुत्तरमिममिति। यद्वा, दधद्भिः स्थापयद्भिः पुष्णद्भिर्वा। डुधाञ धारणपोषणयोः प्रविशदितरलोके दर्शनादेव द्रागिति पदचतुष्टयस्य काकाक्षिगोलकवत् वर्त्मद्वारविशेषणयोः सङ्गतिः लोहितादि मणिनिर्म्मितावरकत्वात्। द्वार्षु भित्तिभ्रमः तन्मध्यवर्त्ति-लीलादिमणिभित्तौ द्वारभ्रमो भवति। यद्वा, प्रतिविम्वद्वारा वा ॥२९॥३०॥ अथ तीरे कुञ्जा यस्य भान्तीति। यदुक्तं, तदेकैकं वर्णयिष्यमाणः सन्नादौ। श्रीललिताकुञ्जं वर्णयति चकास्ति इति चतुर्भिः। यस्य श्रीराधाकुण्डस्य उदीच्यां उत्तरदिशि। प्राच्यवाची प्रतीच्यस्ताः पूर्व्वदक्षिणपश्चिमाः। उत्तरादिगुदिची स्यादित्यमरः। तीर्थसन्निधौ ललितानन्ददं कुञ्जं चकास्ति। कीदृशं तत्कुञ्जं, अनङ्गसम्वन्धी रङ्गक्रीडा यत्र तथाभूतं च तदम्बुजाकार चेति। अतो अनङ्गरङ्गाम्बुजं नाम यस्य तदनङ्गरङ्गाम्बुजनाम तथाभूतं चत्वरमङ्गणं यस्य तत् अनङ्गरङ्गाम्बुजनाम चत्वरं। पुनः कीदृशं, पद्मवदाभा आकारो येषां ते कुञ्जा अष्टकुञ्जा येषु तैरष्टभिर्दलैः, किम्वा तैः कुञ्जरूपैरष्टभिर्दलैर्विराजितं। सुष्ठु सुवर्णरम्भाश्रेणीरूपकेशरैरन्वितं ॥३१॥ पुनः कीदृशं, सहस्रं पत्राणि यस्य तादृश-पद्मवत् सन्निभा आकारोयस्य तत्। स्फुरत् प्रकाशमानं सुवर्णसम्वन्धिसत्कुट्टिममेव मञ्जुर्मनोहरा कर्णिका यस्य तत्। लीलायाः आनुकूल्यस्य उचिते सन्ततं उल्लसन्ती विस्तीर्णता च लाघवं लघुता सङ्कोचश्च एते यस्य तत् उन्नता उत्कृष्टा प्रभा कान्तिर्यस्य तत् ॥३२॥ पुनः कीदृशं, ललितायाः सेव्यया कलावत्या

भ्रम होता है।।३०।। श्रीराधाकुण्ड के उत्तर दिक्के घाटके निकट में अष्टदल पद्मके आकारयुक्त अष्ट कुञ्जान्वित अनङ्गरङ्गाम्बुज नामक एक चमत्कार चत्वर विराजित है, सुन्दर हेमवर्ण रम्भातरु श्रेणी उसका केशर है, सहस्रदल कमलाकार हेम निर्म्मित कुट्टिम निवह उसकी कर्णिका है, लीला के अनुरूप

ललितानन्ददं राधाकृष्णयोः स वयस्ययोः।
निकुञ्जराजयोः पट्टमन्दिरं स्फुरदिन्दिरम्॥ ॥३४॥
चतुर्भिः कुलकं।

माणिक्य-केशरश्रेणीवेष्टितं स्वर्णकर्णिकम्।
वहिर्वहिः क्रमाद्वर्द्धमानसंख्या प्रमाणकैः॥ ॥३५॥

एकैकवर्ण-सद्रत्नकदम्बेन चितैः पृथक्।
रचितं वहुभिश्चारु समपत्राणि मण्डलैः॥ ॥३६॥

कलावतीनाम्नया सुष्ठु संस्कृतं। सर्व्वेषां ऋतूनां वसन्तादीनां सुख सम्पन्नं संयुक्तं। नानाकेलय एव रसन्ते आस्वाद्यन्त इति रसास्तेषामाकरः॥३३॥ पुनः किम्भूतं, निकुञ्जराजयोर्निकुञ्जेषु सर्व्वासां सखीनां निकुञ्जेषु प्रभोर्विलासिनीर्वयस्याभिः सखीभिः सहितयो- श्रीराधाकृष्णयोः पट्टमन्दिरं। स्फुरन्तीन्दिरा लक्ष्मीः शोभा नानारूपा सम्पत्तिर्वा यस्मिन् तत्॥३४॥ एवं श्रीललिताकुञ्जं वर्णयित्वा पद्माभकुञ्जाष्ट-दलैर्विराजितमिति। यदुक्तं, तत्स्पष्टार्थं अष्टदिक्षु तस्या अष्टसखीनां कुञ्जाश्रयरूपाणि कुञ्जरूपाणि वा अष्टदलानि वायुर्नैऋत्यग्निशिवाविदिक्षूत्तरदिश्यपि। प्राच्यवाची प्रतीचिषु दिक्ष्वेवं द्विविधक्रमात् वर्णयिष्यमाणः सन्नादौ वायुकोणदलस्य वर्णनैर्नवभिः श्लोकैः ततः श्रीललिताकुञ्जं विशिनष्टि यस्य श्रीललिताकुञ्जस्य वायव्यां दिशि दलं भातीति नवमश्लोकेनान्वयः। कीदृशं तद्दलं, अष्टदलानि पद्मपुष्पदलाकारैरुपकुञ्जाष्टकैर्वृ तमित्युतानि कुञ्जरूपाणि यस्य तदष्टदलं कुञ्जमेवाम्बुजमिवाम्बुजं अर्थादम्बुजनामकं

चिस्तार एवं लाघव होते रहते हैं, वह अतिशय उन्नत प्रभाविशिष्ट है। श्रीललिता देवी की शिष्या कलावती उसका संस्कार कार्य में नियत यत्नवती रहती है, समस्त ऋतुओं का सुख उसमें अनुभूत होता रहता है, नानाविध केलिरसका आकर स्वरूप वह ललितानन्दद कुञ्जराज सखीगण के कुञ्ज निकंर के साथ श्रीराधाकृष्ण के पट्टमन्दिर रूप में विराजित हैं, उक्त मन्दिर भी सामान्य नहीं है, उसमें समुदाय सम्पत्ति प्रतिभात होती रहती है।।३१-३४।। उक्त ललितानन्दद नामक कुञ्ज भी पद्माकार में परिणत है, उसकी केशर निकर माणिक्य रचित है, कर्णिका समूह सुवर्ण निर्मित है, एवं पत्र समूह एक-एक वर्णकि रत्नके द्वारा निर्मित है, कर्णिका के बाहर केशर है, केशर के बाहर पत्र होने से परिमाण एवं संख्या की वृद्धि क्रमशः होती

पञ्चेन्द्रियाह्लादकरैः शैत्याद्यब्जगुणैर्युतं ।
तद्बहिः क्रमशः स्वर्णैर्वैदूर्य्यैरिन्द्रनीलकैः ॥ ॥३७॥

स्फटिकैः पद्मरागैश्च चितैर्मण्डपपञ्चकैः ।
शोभितं मण्डलेष्वन्तर्नानारत्नविनिर्म्मितै- ॥ ॥३८॥

केवलैर्मिथुनीभावसङ्गतैर्मृगपक्षिभिः ।
देवैर्नृभिर्युतं चान्यैश्चित्रितैव सदीपनैः ॥ ॥३९॥

कुञ्जं तच्च तच्च तत् अष्टदलकुञ्जाम्बुजं तत् यस्मिन् तथाभूतं। किम्वा अष्टभिर्दलैरिव कुञ्जैरम्बुजमिवाम्बुजं, किम्वा मुखचन्द्रो विराजते इतिवदसमस्ततया स्थितं तदेव दलं इत्यर्थः। पुनः किम्भूतं, तद्दलं तदन्तरपि पद्माकारमिति वर्णयति षड्भिः, अस्य दलस्यन्तर्मध्यं सहस्रपत्र सारसमिव भातीति षष्ठश्लोकेनान्वयः। कथं तदाह, जानुदघ्नरत्नकुट्टिमागारमध्यकर्णिकं। जानुदघ्ना जानुपरिमिता या रत्नकुट्टिमा सा यत्र तन्मध्ये तथाभूतं, तस्यां कुट्टिमायां वा। यदगारं सदेव मध्ये कर्णिका यस्य तत्, कर्णिकायाः स्वतएव मध्यस्थत्वेऽपि मध्येति मध्यस्थाननिरूपणं। एको घट इतिवन्न पुनरुक्तिस्तदभिव्यक्तिरेव, पद्मत्व स्पष्टयति सार्द्ध पञ्चभिः। माणिक्य-केशरक्षेणीभिर्वेष्टिता स्वर्णकर्णिका प्रोक्तार्था जानुदघ्नरत्न-कुट्टिमागाररूपमध्यकर्णिका यस्य तत्। एवं पद्यार्द्धेन स केशरकर्णिकत्वं संव्यज्य सार्द्धपद्येन उक्तं सहस्रपत्रत्वं व्यञ्जयति, समानानां तुल्यानां पत्रालीनां मण्डलैर्वलयाकारैश्चारु यथा तथा रचितं। कीदृशैः वहिर्वहिः केशरक्षेणीभ्यो वाह्ये वाह्ये वाह्ये क्रमात् प्रथमात् द्वितीयात् तृतीयात् एव क्रमेण वर्द्धमानसंख्या प्रमाणकैः। वर्द्धमानैः अष्ट षोडशद्वात्रिंशदिति द्विति गुणरूपा संख्यैच प्रमाणं येषां तै। किम्वा वर्द्धमाना अष्ट षोडशद्वात्रिंशदिति द्विति गुणरूपा संख्यैव प्रमाणं येषां तै। पुनः कीदृशैः, एकैकवणैः सद्रत्नैः पृथक् कृत्वा रचितैः कृतैः। पुनः किम्भुतं, पञ्चेन्द्रियाणां त्वग्रसना नासादृक् कर्णानामाह्लादकरैः, शैत्याद्यैः शैत्य एव मधुसम्वन्धिमाधुर्य्यञ्च सौन्दर्य्यञ्च भ्रमरादिसम्वन्धिसौस्वर्य्यञ्च एतैः। पुनः कीदृशं, तद्वहिस्तेभ्यो वहिः क्रमेण स्वर्णादिभिः, पञ्चभिरत्नैश्चितैः कृतैर्मण्डपपञ्चकैर्मण्डितं।

रहती है।।३५।।३६।। कमल के सदृश पञ्चेन्द्रिय के आह्लादकर शैत्यादिगुणयुक्त उक्त मणिमन्दिरके बाहर स्वणवैदुर्य्य पद्मराग स्फटिक इन्द्रनीलमणिरत्न निर्म्मित पाँच मण्डप के द्वारा वह अतिशय शोभित है। मण्डप के मध्यस्थल में विविध रत्ननिर्म्मित मिथुन भावापन्न मृगपक्षी देवता,

पञ्चवर्ण-भूरि-चित्र-पत्र-पुष्पविस्फुरत्
केशरादि-शाखिशाखिकालिसद्वितानकम् ।
अन्तरस्य भाति जानुदघ्नरत्नकुट्टिमा-
गारमध्यकर्णिकासहस्रपत्र-सारसम् ॥ ॥४०॥

षड्भिः कुलकं ।

आमूलपुष्पिताशोकवल्लीमण्डलसञ्चयैः ।
सितारुण-हरित्-पीत-श्यामपुष्पैः प्रकल्पितैः ॥४१॥

पद्मपुष्पदलाकारैरुपकुञ्जाष्टकैर्वृतम् ।
प्रवीण-तादृशाशोकतरुकुञ्जा वराटकैः ॥४२॥

प्रथम-मण्डलदलबहिः स्वर्णमण्डपपञ्चकैर्द्वितीयो मण्डलदलवहिर्वैदूर्य्यमण्डपपञ्चकैः एवं क्रमेणेति ज्ञेयं। पुनः, मण्डलेषु मण्डलभित्तिष्वन्तर्मध्ये नानारत्नविनिर्म्मितैश्चित्रितैश्चित्रेरिवाचवितैः। किम्वा नानारत्नविनिर्म्मितैः पीत-रक्तादि-वर्णकैशित्रितैर्लिखितैश्च केवलैरेकान्तैर्मिथुनीभावसङ्गतैर्मिथुनीभूतैरतएव रसदीपनै रसप्रकाशकैर्मृगैः पक्षिभिश्च देवैर्नृभिर्मनुष्यैश्च अन्यैरिति गन्धर्व्वाप्सिरकिन्नराद्युपदेवैश्च युतं। पुनः, पञ्चवर्णानि शुक्ल-कृष्ण-रक्त हरित्-पीतानि भूरिणी चित्राणि मनोहराणि यानि पुष्पाणि पत्राणि च तैर्विस्फुरन्ती केशरादीनां नागकेशरादीनां शाखिनां वृक्षाणां शाखिकालिः शाखाश्रेणिरेव सद्वितानकं सच्चन्द्रातपो यत्र ॥३५-४०॥ पुनः किम्भूतं तदाह, पद्मपुष्पदलाकारैरुपकुञ्जाष्टकैरुपकुञ्जानामष्टभिर्वृतस्। अत्र सार्थेकः। कीदृशैः, सितारुणहरित्-पीत-श्यामाणि पुष्पाणि येषां तैरामूलं मूलमभिव्याप्य पुष्पितैर्वल्लीनां मण्डलसञ्चयैरुपादानहेतुभिः प्रकल्पितैः कृतैः। पुनः कीदृशैः, प्रवीणा, प्रशस्ता उच्च विस्तीर्णास्तादृश

मनुष्य, गन्धर्व, किन्नर प्रभृति की विचित्र प्रतिमूर्त्ति होने के कारण उक्त मण्डप किसी अनिर्वचनीय रसका उद्दीपन कर रहा है। एवं शुक्ल रक्तहरित् पीत, श्यामादि पञ्चवर्णपत्र वृक्ष एवं चन्द्रातप से शोभित उक्त मण्डप के मध्यभाग में सहस्रदल कमलके आकार जानु परिमित रत्नमय कुट्टिम सकल कर्णिका की भाँति शोभित है।।३७-४०।। (यह कुलक है) उक्त अनङ्गरङ्गाम्बुज नाम चत्वर के जो अष्टदल कहा गया है, उसका विवरण कहते हैं अशोकवृक्ष समूह-मूलसे अग्रभाग् पर्यन्त पुष्पित है, उसमें जो वल्ली समूह हैं, वह श्वेतरक्त, हरित्, पीत श्यामवर्ण के कुसुम से शोभित है, इस प्रकार पुष्पित वृक्षवल्लीयुक्त अष्ट उपकुञ्ज से शोभित है, वसन्त सुखद

वसन्तसुखदं यस्य भृङ्गकोकिलनादितम्।
वायव्यां दिशि भात्यष्टदलकुञ्जाम्बुजं दलम्॥ ॥४३॥

सन्दानितकम्।
श्रीपद्ममन्दिरं नाम नैर्ऋत्यां राजते दलम्।
चतुर्द्धारं चतुःपार्श्वे वातायनसमन्वितम्॥ ॥४४॥

नानामणिचितानेकचित्रभित्तिचतुष्टयम्।
अन्तः स कृष्णगोपीनां पूर्व्वरागादिचेष्टितैः॥ ॥४५॥

रासकुञ्जविलासैश्च ललिताचित्रितैर्युतम्।
पूतनारिष्टसंहाराद्यन्त-तच्चरितैर्बहिः॥ ॥४६॥

आमूलं सितादि पञ्चवर्णपुष्पयुक्त अशोकतरुकुञ्जा एव वराटकाः कर्णिका येषां तैः। वीजकोषो कराटक इत्यमरः। पुनः, वसन्तो वसन्तर्तुः सुखदो यस्य तत्। पुनः, भृङ्गकोकिलैर्ध्वनितमिति ॥४१-४३॥ श्रीललितानन्ददकुञ्जस्य नैर्ऋत्यां दिशि श्रीपद्ममन्दिरं नाम दलं राजते। कीदृशं, चतुष्पार्श्वे चतुर्द्वारं चत्वारि द्वारिणि यस्य तत्। पुनः वातायनैर्गवाक्षैर्युतं ॥४४॥ पुनः किम्भूतं तदाह, पद्यार्द्धेन। नानामणि-भिश्चितानि कृतानि अनेकानि चित्राणि यत्र तादृशं नानामणिभिश्चितं च तत् अनेकानि चित्राणि यत्र रचनानि यत्र तच्चेति तादृशं वा भित्तिचतुष्टयं यस्य तत्। पुनः सार्द्धैकेन, अन्तर्मन्दिरभित्तिर्मध्ये श्रीललितया चित्रितैः कृष्णेन सह गोपीनां पूर्व्वरागादिचेष्टितैस्तथा रासकुञ्जादिविलासैश्च युतं ॥४५॥ पूतनावधमारभ्याऽरिष्टासुरस्य संहारो अन्तो येषां तैस्तस्य कृष्णस्य चरितैर्बहिर्युतं ॥४६॥ पुनरर्द्धेन रत्नानि द्युतिरिव किञ्जल्काः केशरा

नामक अष्टदल पद्माकृति कुञ्ज उसका निदर्शन है। अपर कुञ्ज ललितान्दद कुञ्ज के वायुकोण में विराजित है, आमूल श्वेत प्रभृति पञ्चवर्ण विशिष्ट पुष्पयुक्ता अशोक तरुकुञ्ज समूह वसन्त सुखद नामक अष्टदल कुञ्जके बीज कोष स्वरूप है, कोकिल, भ्रमर उक्त कुञ्ज में निरन्तर मधुरध्वनि करते हैं।।४१-४३।। चतुष्पार्श्ई में चतुर्द्वार एवं गवाक्ष के द्वारा परिशोभित श्रीपद्ममन्दिर नामक कुञ्ज, ललितामन्ददकुञ्ज के नैऋत्यकोण में विराजित है, उसकी चारों भित्तिमें नानाविध मणिसमूह के द्वारा खचित बहुविध विचित्र चित्र है, उस मन्दिर की मध्यभित्ति में श्रीललिता देवीने श्रीकृष्ण के साथ गोपीगण की पूर्वरागादि चेष्टा, रास कुञ्जादि विलास एवं बहिर्देश में पूतना वधसे आरम्भ कर अरिष्ट वध पर्यन्त श्रीकृष्ण के यावती अद्भुत कार्य

रत्नालिद्युति–किञ्जल्कं सद्गर्भागारकर्णिकम् ।
वहिरब्जदलाकारैर्वृतं षोडशकोष्ठकैः ॥ ॥४७॥

तत्तद्युगान्तरालस्थइयष्टोपकोष्ठकैरपि ।
ऊर्द्धे तादृक् सन्निवेशस्फुरदट्टालिकान्वितम् ॥ ॥४८॥

अन्तरन्तः क्रमादुच्चनिर्भित्तिस्तम्भपङ्क्तिषु ।
स्फाटिकीषु सुविन्यस्तप्रवालवलभीकुले ॥ ॥४९॥

छादितेन महारत्नपटलैस्तिर्य्यगूर्द्धगैः ।
भ्राजितेन सुकुम्भेन शिखरेण विराजितम् ॥ ॥५०॥

अत्युच्चेन वनालोकसुखदेन निजेशयोः ।
मुक्तपार्श्वे–तृतीयोच्चखण्डेन च सुमण्डितम् ॥ ॥५१॥

यत्र तत् । सन् उत्तमो गर्भो यस्य तादृशमगारं गृहमेव कर्णिका यस्य तत् । पुनर्द्वाभ्यां, वहिरब्जदलाकारैः षोडशकोष्ठकोष्ठकैर्वृतं ॥४७॥ तत्तत्कोष्ठयुगस्यान्तरालस्थैर्मध्य-स्थैर्द्वयष्टभिः षोडशभिरुपकोष्ठकैरपि वृतं । पुनः किम्भूतं, तदाहार्द्धेन । ऊर्द्धेऽपि तादृक् उक्ताधः कोष्ठोपकोष्ठादिवत् स्फुरन्तीभिरट्टालिकाभिरन्वितं ॥४८॥ पुनः किम्भूतं तदाह, सोत्तरैकपदद्वाभ्यां । अन्तरन्तर्मध्ये क्रमादुच्चासु निर्भित्तिषु भित्तिरहितासु स्फाटिकीषु स्फटिकनिर्म्मितासु स्तम्भपङ्क्तिषु सुविन्यस्तेषु युक्ते धारिते प्रवालनिर्म्मितैर्वलभीकुले ॥४९॥ छादन वक्रदारुश्रेण्यां तिर्यगूर्द्धगैर्महारत्नकृतैः पटलैश्छादिभिर्जलादिनिवारकगृहाच्छादनैश्छादितेन । तथा शोभनकुम्भेन भ्राजि-तेनाऽत्युच्चेन शिखरेण विराजितं । गोपानसी तु वडभीच्छादने वक्रदारुणीति । पटलं

समूह प्रतिमूर्त्ति रूपमें चित्रित किया है ।।४४-४६।। रत्न समूह की कान्ति ही उसका किञ्जल्क है, एवं अभ्यन्तरवर्त्ति गृह समूह उसकी कर्णिका है, बाहर पद्मदलाकार सोलह कोष्ठ है, वह भी सोलह उपकोष्ठ से परिवृत है, मन्दिर के उर्द्धभाग भी उस प्रकार कोष्ठ एवं उपकोष्ठ से सुसज्जित होने के कारण उक्त सुशोभन अट्टालिका अपूर्व सौन्दर्य मण्डित है ।।४७-४८।। उपर्य्युपरि सन्निवेशित भित्तिशून्य स्फटिक निर्म्मित स्तम्भ समूह है, उस में प्रवाल निर्म्मित बड़भी छज्जा समूह हैं। उसके ऊपर महारत्न के द्वारा जल निवारक आच्छादन है, एवं उसके शिखर में सुशोभन कलश समूह शिखर रूपमें विराजित है ।।४९-५०।। उस मन्दिर के तृतीय खण्ड है, उसके तीनों ओर खुले हैं, और विविध रत्नोंसे जटित हैं, उसमें जो अत्युच्च अट्टालिका है,

अधो रत्नचितानेकचित्रचित्रेण भास्वता ।
उपकुट्टिमयुग्मान्तर्दिक्षु सोपानशोभिना ॥ ॥५२॥

कण्ठदघ्नातिविस्तीर्णकुट्टिमेनाभितोवृतम् ।
परितस्तावदुच्चानां प्रान्तोत्पन्नमहीरुहाम् ॥ ॥५३॥

फलैः पुष्पैश्च संश्लिष्टकुट्टिमप्रान्तदेशकम् ।
केलिरत्नाकरं राधाकृष्णयोः स वयस्ययोः ॥ ॥५४॥

एकादशभिः कुलकं ।

आग्नेय्यां भाति पद्माभरत्नहिन्दोलकुट्टिमम् ।
पूर्व्वापरदिगुत्पन्नप्रवीणवकुलागयोः ॥ ॥५५॥

साचि किञ्चिद्विनिर्गत्य गत्या वक्रोर्द्ध्वयोपरि ।
मिलिताभ्यां सुशाखाभ्यां छादितं मण्डपाकृति ॥ ॥५६॥

युग्मकं ॥

छदीति चामरः ॥५०॥ पुनः गताद्येकपदार्द्धाभ्यां । निजेशयोः श्रीराधाकृष्णयोर्वनदर्शन-सुखदेन मुक्ता भित्तिरहिताः पार्श्वाधत्वारः पार्श्वा यस्य तेन तृतीयरूपोच्च खण्डने च सुमण्डितं ॥५१॥ पुनः सार्द्धेन, कण्ठदघ्नातिविस्तीर्णकुट्टिमेनाभितः सर्व्वतो दिक्षु वृतं । कीदृशेन, रत्नैश्रितेनाऽनेकेनाऽपरिमितेन चित्रेण मनोहरेण चित्रेण चित्ररचनेन भास्वता दीव्यता । पुनः किम्भूतेन, उपकुट्टिमयुग्मान्तधतुर्द्धारोभयपार्श्ववर्त्त्यपि कुट्टिमद्वया-नामन्तर्मध्ये दिक्षु चतुर्षु दिक्षु यानि स्वसम्वन्धिसोपानानि तैः शोभिना ॥५२॥ पुनः सार्द्धेन, परितः सर्व्वतो दिक्षु तावदुच्चानां तस्य पद्ममन्दिरस्य तुल्योच्चानां प्रान्ते कुट्टिमाद्बहिरुत्पन्नानां महीरुहां वृक्षाणां फलैः पुष्पैश्च संश्लिष्टः कुट्टिमः प्रान्तदेशो यस्य तत् । पुनः वयस्याभिः सखीभिः सह वर्त्तमानयोः केलिरत्नानामाकरः खनिः ॥५३॥५४॥

वहाँपर अवस्थान पूर्वक श्रीराधाकृष्ण वन की शोभा दर्शन करते हैं।।५१।। उसके निम्नभाग में रत्नसमूह द्वारा खचित अनेकानेक चित्र देदीप्यमान कुट्टिम समूह हैं, उसके दो दो के मध्य में सोपान श्रेणी सीढ़ी है, एवं कण्ठ पर्य्यन्त उन्नत कुट्टिम के द्वारा परिवृत है, सोपान के चारों दिक में आकण्ठ बिस्तीर्ण अपर एक कुट्टिम है, उसके बहिर्भाग में समुद्भूत वृक्ष श्रेणी के फल फूलोंसे संश्लिष्ट है, वह सखीगण के साथ श्रीराधाकृष्ण की केलि के आकर स्वरूप है।। ५२-५४।। ललितानन्दद कुञ्ज के अग्नि कोणमें पद्माकार

तच्छाखामूलसंनद्धैः पट्टरज्जुचतुष्टयैः ।
दृढैर्वद्धचतुष्कोणं नाभिमात्रोच्चसंस्थितिः ॥ ॥५७॥
पद्मरागाष्टपट्टिभिः प्रवालजपदाष्टकैः ।
घटितं हस्तमात्रोच्चपट्टीवेष्टनकेशरम् ॥ ॥५८॥
अष्टपत्राम्बुजाकाररत्नानि चित्रकर्णिकम् ।
द्विद्विपारान्विताम्भोजदलाभाष्टदलैर्वृसम् ॥ ॥५९॥
रत्नपट्टीकेशरान्तर्द्वाराष्टक–सुसंयुतम् ।
दक्षिणे दलपार्श्वस्थारोहद्वारद्वयान्वितम् ॥ ॥६०॥

अथाग्निकोणस्थं हिन्दोलाम्बुजं षड्भिवर्णयिष्यमाणस्तत्कुट्टिमं वर्णयति द्वाभ्यां। ललितानन्ददकुञ्जस्याग्नेय्यां दिशि पद्माकाररत्ननिर्म्मितहिन्दोलकुट्टिमं भाति। कीदृशं, पूर्व्वपश्चिमदिगुत्पन्नयोः प्रवीणयोर्वकुलवृक्षयोर्वक्रोर्द्धया गत्या किञ्चित् साचि वक्रं विनिर्गता उपरि मिलिताभ्यां सुशाखाभ्यां मण्डपाकृति यथा स्यात्तथा छादितं ॥५५॥५६॥ तरोर्बकुलयोः शाखयोर्मूलयोः संनद्धैर्दृढं वद्धैः पट्टनिर्म्मित-रज्जुचतुष्टयैर्वद्धाश्चत्वारः कोणा यस्य तत्। मदनान्दोलनाभिदं हिन्दोलाम्बुजमाभातीति अष्टमश्लोकस्थेनान्वयः। कीदृशं, नाभिमात्रोच्चवन्धनानन्तरं पृथ्वीतः पृथक् शून्ये वर्त्तमाना संस्थितिः संस्थानं यस्य तत् ॥५७॥ पद्मरागमणिनिर्मिताभिरष्टपट्टीभिः प्रवालमणिनिर्म्मितैः पदाष्टकैरष्टभिः पद्मैश्च घटितं। हस्तमात्रोच्चाः पट्टीवेष्टनकेशरप्राया रत्नैर्निर्म्मितविशेषा यस्मिन् तत्। किञ्जल्कः केशरोस्त्रियामित्यमरः ॥५८॥ द्व्यष्टषोडशपत्राणि यस्य तदम्बुजस्याकाररत्नावलिभिश्चित्रा च कर्णिका यस्य तत्। द्विद्विपादैरन्वितानि यानि अम्भोजदलाकारणि अष्टदलानि तैर्वृतं ॥५९॥ रत्नपट्टीकेशरान्तरिति हस्तमात्रोच्चपट्टीवेष्टेनकेशरमित्युक्तानां रत्नपट्टीकेशराणामन्तर्मध्ये द्वाराष्टकेनाष्टदलानां सम्मुखे वहिरष्टभिर्द्वारैः संयुतं। दक्षिणे दक्षिणभागे दलस्य पार्श्वयोः

रत्नमय हिन्दोल कुट्टिम शोभित है, पूर्व एवं पश्चिमदिक् में समुत्पन्न प्रवीण वकुलवृक्ष की शाखाद्वय परस्पर मिलित होकर उर्द्धदेश में वक्ररीति से चन्द्रातप की भाँति उसको आवृत करके विद्यमान है।।५५-५६।। उक्त वकुल वृक्षद्वय की शाखा युगल के मूलदेश में एक हिन्दोला है, गूढ़ पट्टनिर्मित रज्जुके द्वारा चतुष्कोण आबद्ध होने के कारण उक्त हिन्दोला नाभिमात्र उच्चप्रदेश में दोलायमान है।।५७।। उक्त हिन्दोला में पद्मराग मणि निर्मित आठ पट्टी है, एवं प्रवालमणि निर्मित आठ पद्म है, एक हस्त परिमित

लघुस्तम्भद्वयासक्तपट्टीपृष्ठावलम्बकम् ।
पट्टतूली-लसन्मध्यं पार्श्वपृष्ठोपधानकम् ॥ ॥६१॥

नानाचित्रांशुकैश्छन्नं स्वर्णसूत्राम्बरैरपि ।
लसच्चन्द्रावलीमुक्तादामगुच्छवितानकम् ॥ ॥६२॥

यत्राष्टदलगालीनां मध्यगौ राधिकाच्युतौ ।
गायदन्यवयस्याभिर्वृन्दा दोलयतीश्वरौ ॥ ॥६३॥

स्वारूढराधाच्युतयोः सर्व्वाभिमुखताकरम् ।
हिन्दोलाम्बुजमाभाति मदनान्दोलनाभिधम् ॥ ॥६४॥

अष्टभिः कुलकं ।

स्थितेनारोहद्वारद्वयेनान्वितम् ॥६०॥

लघुहस्तद्वयासक्ता पट्टयेव श्रीराधाकृष्णयोः पृष्ठदेशस्यालम्बंपत्र तत् । पट्टतूल्या लसन्मध्यं येषां तानि पार्श्वपृष्ठोपधानानि यत्र तत् ॥६१॥

नानाविधचित्रांशुकैश्चित्रवस्त्रैः स्वर्णसूत्रनिर्म्मितवस्त्रैरपि छन्नमाच्छादितं लसन्तश्चन्द्रावल्यश्चन्द्रश्रेणयश्च यस्य मुक्तानां दामानि मालाश्च गुच्छाश्च ते यत्र तथाभूतं वितानकं चन्द्रातपो यत्र तत् ॥६२॥

यत्र हिन्दोलाम्बुजे अष्टदलगत ललिताद्यष्टसखीनां मध्यगौ ईश्वरौ प्रभु श्रीराधाकृष्णौ तदधस्थिताभिगायन्तीभिः अन्यवयस्याभिः सह वृन्दा दोलयति ॥६३॥

पुनः कीदृशं, तत् हिन्दोलाम्बुजम् । स्वस्मिंस्तत्र हिन्दोलाम्बुजे आरूढयो राधाकृष्णयोः सर्व्वाभिमुखताकरम् ॥६४॥

उच्चवेष्टन पट्टी ही उसकी केशर है।।५८।। अष्टदल पद्माकार रत्नश्रेणी की विचित्र कर्णिका है, हिन्दोला के दो जोड़ों में अन्वित पद्मदल के आकार आठ दलोंके द्वारा परिवृत है।।५९।। रत्न पट्टीके केशर समूहके मध्यमें आठ द्वार हैं, उसके दक्षिण दलके पासमें आरोहणके लिए दो द्वार विराजित है।।६०।। क्षुद्र-क्षुद्र स्तम्भद्वय में संसक्त श्रीराधाकृष्ण के पृष्ठदेश के अवलम्बन स्वरूप हिन्दोला के मध्यस्थलमें उपवेशनके लिए पट्टवस्त्र की तुली (तोषक) है, एवं पार्श्व में और पृष्ठोपधान (तकिया) भी शोभित है।।६१।। अनेक प्रकार चित्र विचित्र वसन, एवं स्वर्णसूत्र से जड़ित वसनसे आच्छादित कृत्रिम चन्द्रश्रेणी, मुक्तामाला एवं गुच्छामण्डित चन्द्रातप उसके ऊपर भागमें शोभित है।।६२।। वृन्दादेवी, हिन्दोलाम्बुज के अष्ट दलगत ललितादि सखीवृन्द के

ऐशान्यां भात्यष्टपत्रं माधवीकुञ्जसारसम् ।
माधवानन्ददं नाम नानालीलोपहारयुक् ॥ ॥६५॥

फुल्लमल्लीभिराश्लिष्टनम्रशाखाभुजव्रजैः ।
छादितं फुल्लपुन्नागैश्चन्द्रकान्तिचितान्तरम् ॥ ॥६६॥

पद्मपत्राकारकुञ्जैर्वेष्टितं स्वर्णकर्णिकम् ।
उदीच्यां मणिकिञ्जल्कं भाति कुञ्जं सिताम्बुजम् ॥६७॥ युग्मकम् ॥

नम्रशाखाभुजाश्लिष्टफुल्लहेमलताचयैः ।
तमालैः कल्पितं जिष्णुनीलरत्नावलीचितम् ॥ ॥६८॥

अथ ऐशान्यकोणकुञ्जं वर्णयति। श्रीललिताकुञ्जस्य ऐशान्यां दिशि माधवानन्ददं नाम माधवीकुञ्जसारसं माधवीभिर्निर्म्मितंकुञ्जं माधवीकुञ्जं तदेव सारसमिव सारसं तद्भाति। किम्भूतं, अष्टपत्राणि यस्य तत अष्टदिग्वर्त्त्यष्टकुञ्जान्येव पत्ररूपाणीति ज्ञेयं। पुनः नानालीलाया ये उपहाराः स्रक्चन्दनवसनाभरणशय्यासनादयस्तद्युक् ॥६५॥

उत्तरादिशाखायां सिताम्बुजं सितं शुक्लं अम्बुजाकारत्वात् तद्भाति अर्थात् सिताम्बुजमिति नाम ज्ञेयम्। कीदृशं, फुल्लमल्लीभिराश्लिष्टो नम्रः शाखारूपभुजसमूहो येषां तैः फुल्लैः पुन्नागैर्नागकेशरैः छादितं। चन्द्रकान्तिमणिभिश्चितं खचितमन्तर मध्यं यस्य तत्। पद्मपत्राकारकुञ्जैर्वेष्टितमित्यनेन रतिकुञ्जानां पद्मपत्राकारत्वेन मध्यस्थकुञ्जस्य पद्माकारत्वं ज्ञेयम्। स्वर्णनिर्म्मिता कर्णिका यस्य तत्, रत्ननिर्म्मिताः किञ्जल्का यस्य तत् ॥६६-६७॥

मध्यस्थ श्रीराधा को निम्नस्थ गायिका सखियोंके साथ झुलाती रहती है।।६३।। जब श्रीराधाकृष्ण मदनान्दोलन नामक स्वीय हिन्दोलामें विराजते हैं। तब श्रीराधाकृष्ण सबके सम्मुखमें ही अवस्थित हैं ऐसी प्रतीती होती है।।६४।। ललितानन्दद कुञ्ज के ईशान कोणमें अनेक विध लीलोपयोगी सामग्री से परिपूर्ण अष्टदल पद्माकृति माधवानन्दद नामक माधवीकुञ्ज अर्थात् माधवीलता के द्वारा निर्मितकुञ्ज सारस पक्षी के समान शोभित है।।६५।। प्रफुल्ल मल्लिका के द्वारा आश्लिष्ट, आनत शाखारूप भुज समूह द्वारा एवं प्रस्फुटित नागकेशर समूह के द्वारा समाच्छन्ना सिताम्बुज नामक कुञ्ज ललितानन्दद कुञ्जके उत्तर दिगक्रमें अपूर्व शोभासे विमण्डित होकर है। उसके मध्य देशमें चन्द्रकान्तमणि खचित कर्णिका समूह सुवर्णमय है,

नीलपद्मदलाकारैरुपकुञ्जाष्टकैर्वृतम् ।
सुवर्णकर्णिकं प्राच्यां भाति कुञ्जासिताम्बुजम् ॥६९॥ युग्मकम् ॥

अवाच्यां पद्मरागादिचितान्तर्बाह्यमण्डलम् ।
लवङ्गैश्छादितं फुल्लैर्भाति कुञ्जारुणाम्बुजम् ॥ ॥७०॥

कुञ्जं हेमाम्बुजं भाति प्रतीच्यां फुल्लचम्पकैः ।
वल्लीभिश्छादितं हेमाचितवाह्यान्तरालकम् ॥ ॥७१॥

एवमुत्तरादिकुञ्जा भान्ति राधा हरिप्रियाः ।
नानावर्णाकारभेदात् दृशां विस्मयकारिणः ॥७२॥ युग्मकम् ॥

प्राच्यां कुञ्जमिदमसितं कृष्णवर्णम्बुजाकारं च कुञ्जाऽसिताम्बुजं अर्थात्तन्नामकं भाति। कीदृशं, नम्रैः शाखारूपभुजैराश्लिष्टफुल्लहेमलताचयो ये तैस्तमाले कल्पितंकृतं। अत्र पुरुषकृतात्रालिङ्गनस्य रसपुष्टिकृत्त्वान् शाखाकर्तृ कलतालिङ्गनस्याऽसंभावशाखानां भुजेति पुरुषाङ्गविशेषः रूपकं कृत्वालिङ्गनकर्तृत्वं वर्णितं। यथा–श्रीभागवते, पृच्छतेमा लता वाहूनप्याश्लिष्टा वनस्पतेरिति। जिष्णुरिन्द्रस्तस्य नीलरत्नावलिभिश्चित, जिष्णुर्लेखर्षभः शक्रः इत्यमरः ॥६८॥

पुनर्नीलवर्णैः पद्मदलाकारैरुपकुञ्जाष्टकैर्वृतं। सुवर्णनिर्म्मिता कर्णिका यस्य तत् ॥६९॥

अवाच्यां दक्षिणदिशायां अरुणाम्बुजकुञ्जं भाति। पद्मरागादिमणिभिश्चितं अन्तर्मध्यं वाह्यमण्डलञ्च यस्य तत्। पुनः फुल्लैर्लवङ्गैश्छादितम् ॥७०॥

प्रतीच्यां पश्चिमदिशायां हेमाम्बुजं कुञ्जं भाति। फुल्लैश्चम्पकैश्चम्पक-वृक्षैर्हेमचम्पकवल्लीभिश्च छादितम्। हेम्नाचितं वाह्यमन्तरालं मध्यञ्च यस्य तत् ॥७१॥

किञ्जल्क समूह मणिमय है, पद्मपत्राकार कुञ्ज समूहके द्वारा उक्तकुञ्ज वेष्टित है।।६६-६७।। नीलवर्ण पद्माकृति असिताम्बुज कुञ्ज, ललितानन्दद कुञ्जके पूर्वभागमें शोभित है। यह कुञ्ज नम्र शाखारूप भुजद्वारा आलिङ्गित है, प्रफुल्ल हेमवल्ली समूहसे परिवेष्टित, तमाल प्रभृति वृक्ष समूहके द्वारा सुसज्जित एवं अत्युत्कृष्ट नीलरत्नावली खचित है, यह कुञ्ज नीलपद्मदलाकार अष्ट उपकुञ्जों के द्वारा परिवृत है, उसकी कर्णिका सुवर्ण निर्मित है।।६८-६९।। ललितानन्दद कुञ्जके दक्षिणदिक् में अरुणाम्बुज नामक कुञ्ज शोभित है, उसके मध्यमण्डल एवं बाह्यमण्डल पद्मराग प्रभृति मणिद्वारा खचित है एवं प्रफुल्ल लवङ्गलता द्वारा आच्छादित है।।७०।। ललितानन्दद कुञ्जके

प्रतिविदिशमुदञ्चच्चम्पकानाञ्चतुर्णा-
मरुण-हरित-पीत-श्यामपुष्पोच्चयानाम्।
वरपरिमलधाराक्षिप्तगन्धान्तराणाम्
प्रतिदिशमधिरोहन् माधवीवेष्टितानाम्॥ ॥७३॥

व्यतिसुमिलित-तिर्य्यङ्निर्गतैः कैश्चिदन्यै-
रुपरि घटितसङ्गैः स्निग्धशाखासमूहैः।
शुक-पिकमधुपानां नील-पीतारुणानाम्
मधुरनिनदरम्यैश्छादितः सौधतुल्यः॥ ॥७४॥

एवमुक्त प्रकारा राधाया हरेश्च प्रिया उत्तरादिकुञ्जा ललितानन्दद कुञ्जस्य उत्तराद्यष्टदिक् कुञ्जा भान्ति। कीदृशाः, नानावर्णाकारयोर्भेदात्। दृशां विस्मयकारिणः ॥७२॥

शिवहरिति ऐशान्यां दिशि प्रसिद्धो मदनसुखदनामा विशाखानन्ददः कुञ्जराजो विलसतीति षष्ठश्लोकेनान्वयः। कीदृशः कुञ्जराजस्तदाह, प्रथमं द्वाभ्यां प्रतिविदिशं विदिशं विदिक्षु ईशान कोणाग्नि कोणनैर्‌ऋतकोणमरुत्‌कोणेषु उदञ्जतामुत्फुल्लानां चम्पकानां चम्पकवृक्षाणां चतुर्णां। कीदृशानां, अरुणवर्ण-हरिद्वर्णपीतवर्ण-श्यामवर्णाः पुष्पाणामुच्चयाः समूहा येषां तेषां वरपरिमलधाराभिः श्रेष्ठस्य जनमनोहर-सुगन्धस्य परम्पराभिः क्षिप्तो गन्धान्तरोऽन्यो गन्धो यैस्तेषां प्रतिदिशं चतुर्दिक्षु अधिरोहन्तीभिर्माध-वीलताभिर्वेष्टितानां ॥७३॥

व्यति-परस्परं शोभनप्रकारेण मिलिताश्च ते तिर्य्यङ्निर्गताश्चेति तैः कैश्चिदन्यैरुपविघटितसङ्गैः प्राप्तसङ्गैः नील-पीतारुणवर्णानां शुक-पिकमधुपानां मधुरशब्देन रम्यैः स्निग्धशाखासमूहैः छादितः। अतएव सौधतुल्यः, सौधऽस्त्री राजसदनमित्यमरः ॥७४॥

पश्चिमदिक् में हेमाम्बुज नामक कुञ्ज शोभित है। वह प्रफुल्ल चम्पकवृक्षमें हेमचम्पकलता द्वारा आच्छन्ना एवं बाह्य, तथा मध्यदेश सुवर्ण परिवेष्टित होकर है।।७१।। इसप्रकार ललितानन्दद कुञ्ज के उत्तरादि अष्टदिक् में श्रीराधाकृष्ण की प्रियतम कुञ्ज समूह नानावर्ण, एवं नाना आकार भेदसे नयनों को विस्मयकारी होकर शोभित हैं।।७२।। इस कुञ्ज के ईशान कोण में सुप्रसिद्ध मदनसुखद नामक विशाखानन्दद कुञ्जराज विराजित है, उसके चारों ओर चम्पकतरु विद्यमान है, उक्त वृक्ष समूह अरुण, हरित, पीत, एवं श्यामवर्ण कुसुम की सौरभसे कुञ्जके चतुर्दिक् आमोदित होकर हैं।

स्थल-जल-जनिपुष्पैः पल्लवैः क्लृप्तनाना-
भरण-वसन-शय्या सद्वितानादिपूर्णः।
अरुणविषद-पीत-श्यामपद्मोत्पलाद्यै-
र्दिशि विदिशि सनालैः कल्पितानेकचित्रः॥ ॥७५॥

जठरशरशलाकैः पल्लवैश्चित्रपुष्पै-
र्घटितमृदुकवाटि-प्रावृत-द्वाश्चतुष्कः।
मदकल-चलभृङ्गाऽनीकिनीद्वारपालो
मणिचयचितभूमिद्व्यष्टपत्राब्जमध्यः॥ ॥७६॥

बहिरपि तत शाखाच्छादिताभिः समन्ता-
श्चतसृभिरतिभाभिर्वेष्टितो देहलीभिः।

पुनः कीदृशः, जलेषु स्थलेषु जनिरुत्पत्तिर्येषां तैः पुष्पैः वल्लवैश्च क्लुप्तैः कृतैर्नानाभरणादिभिः पूर्णः। सनालैररुण-शुक्ल-पीत श्यामवर्णैः पद्मोत्पलाद्यैर्दिशि विदिशि कम्पितमनेकचित्रं यत्र सः॥७५॥

जठरे मध्यदेशे शर एव शलाका कीलं येषां तैः पल्लवैश्चित्रपुष्पैश्च घटिताभिर्मृदुकवाटीभिः क्षुद्रकवाटैः प्रावृतं द्वाश्चतुष्कं यस्य सः। मदकला मदोत्कटा चञ्चला च भ्रमराणां यानीकिनी सेना सैव द्वारपाला यत्र सः। मणिसमूहेन चिता वद्धा भूमिरेव द्व्यष्टषोडशपत्राणि यस्य तथाभूतमब्जमब्जाकारं मध्यं यस्य सः॥७६॥

वहिरपि समन्तात् चतुर्दिक्षु तत शाखाभिर्विस्तृतशाखाभिश्छादिताभिर-

---

अधिकन्तु नील, पीत, हरितवर्ण के शुक, पिक एवं अलि समूह व्याकुल चित्तसे मधुर गानरत होनेके कारण एवं माधवीलता चम्पकशाखा समूहमें आनत भावसे उसके ऊपर आच्छन्न होनेके कारण उक्त कुञ्जकी प्रतीति सुशोभित राजभवन की भाँति हो रही है॥७३-७४॥ उक्त कुञ्जमें स्थलपुष्प, जलपुष्प, पल्लव, आभरण, वसन, शय्या, चन्द्रातप एवं श्याम, श्वेत, पीत, अरुण वर्णके मृणालके साथ, अरुण शुक्ल पीत श्याम वर्ण के कमल उत्पलादि कुसुम निचय दिग् विदिग् में चित्रित होकर शोभित हैं॥७५॥ पल्लव एवं विचित्र कुसुम निचयके द्वारा निर्मित शर शलाका ग्रथित क्षुद्र कपाट चतुष्टय कुञ्ज के चारों दरवाजे के आवरण रूपमें शोभित हैं। मदमत्त चञ्चल भ्रमरवृन्द द्वारपाल के समान घूम रहे हैं, कुञ्जकी मध्यभूमि मणि समूह द्वारा खचित होनेसे वह षोड़शदल कमलकी शोभासे

अनिशमिह विशाखाशिष्यया मञ्जुमुख्या
रचननिपुणमत्या संस्कृतोऽध्यक्षयास्य ॥ ॥७७॥

शिवहरिति तटस्थोऽप्येष राधावकारे-
र्विहरणरसवन्या प्लावितात्मा समन्तात् ।
मदनसुखदनामा लोचनानन्दधामा
विलसति स विशाखानन्ददः कुञ्जराजः ॥ ॥७८॥

षड्भिः कुलकम् ।
विचित्रवृक्षवल्लीभिश्चित्ररत्नैश्चितान्तरः ।
चित्रवर्णैः खगैर्भृङ्गैः कुट्टिमैः प्राङ्गणैर्वृतः ॥ ॥७९॥

चित्रमण्डपसंयुक्तश्चित्रहिन्दोलिकान्वितः ।
प्राच्यां चित्रानन्ददाख्यश्चित्रकुञ्जो विराजते ॥ ॥८०॥ युग्मकम् ॥

तिभाभिरतिकान्तिभिश्चतसृभिर्देहलीभिः पिण्डिकाभिर्वेष्टितः। अस्य कुञ्जस्याऽध्यक्षया सेवायामध्यक्षया इहकुञ्जे रचने नानाचित्ररचनायां निपुणमतिर्यस्यास्तरा मञ्जुमुख्या विशाखाशिष्यया सदा संस्कृतः ॥७७॥

तटस्थोऽपि प्रेमरसस्वरूपस्य श्रीराधाकुण्डस्य तटेस्थितः सन् सदा प्रेमरसपरिपूरितोऽपि। पुनः श्रीराधाया सह हरेर्विहरणरूपरसवन्यया रससमूहेन प्लावित आत्मा स्वरूपं यस्य सः ॥७८॥

राधाकुण्डस्य प्राच्यां पूर्वस्यां दिशि चित्रानन्ददाख्यश्चित्रकुञ्जो विराजते इति परेणान्वयः। कीदृशः, विचित्राभिरनेकवर्णाकारजात्यादिभिर्भिन्नवृक्षवल्लीभिस्तथा चित्ररत्नैर्मनोहररत्नैः चित्रे रचनायां युक्तरत्नैर्वा चित्रैर्वर्णकलिखितै रत्नैश्च रचितमन्तरं मध्यं यस्य सः। एवमनेकवर्ण-पक्षि-भृङ्गकुट्टिम-प्राङ्गणैर्वृतः ॥७९-८०॥

मण्डित है।।७६।। चारों ओर विस्तृत शाखा समूहसे आच्छादित एवं अति कान्ति विशिष्ट प्राचीर चतुष्टय द्वारा वेष्टित यह कुञ्ज है, इसकी अध्यक्ष श्रीविशाखाकी शिष्या मञ्जुमुखी है, वह नानाविध चित्र रचनामें निपुणा है एवं सर्वदा उस कुञ्जकी सेवामें रत रहती है। उक्त कुञ्ज प्रेमरस स्वरूप श्रीराधाकुण्ड की तटभूमिमें अवस्थित है एवं सर्वदा श्रीराधा सह श्रीकृष्णके विचरण रूप रस की वन्यासे आप्लावित हो रही है।।७७-७८।। और भी श्रीराधाकुण्डके पूर्वदिक्में चित्रानन्दद नामक विचित्र एक कुञ्ज है, विविध आकार विविधवर्ण, विविध जातिके वृक्ष एवं लता समूह एवं मनोहर रत्न,

स्फटिकैरिन्दुकान्तैश्चचितकुट्टिमचत्वरः ।
चित्रितः पुण्डरीकैश्च कैरवैर्मल्लिकादिभिः ॥ ॥८१॥

शुभ्रपुष्पदलैर्वृक्षैर्वल्लीभिश्च समन्वितः ।
शुभ्रालि-पिक-कीराद्यैः शब्दज्ञेयैर्निनादितः ॥ ॥८२॥

शुभ्रवेशौ तु राकायां राधाकृष्णौ सहालिभिः ।
क्रीडन्तावपि नेक्ष्येते कैश्चिद्यत्रागतैरपि ॥ ॥८३॥

पूर्णेन्दुनामा कुञ्जोऽयमिन्दुलेखासुखप्रदः ।
सुशुभ्रकेलितल्पादिराग्नेय्यां दिशि राजते ॥८४॥ चतुर्भिः कुलकम् ।

हेमवल्लीवृतैर्हेमपुष्पागैश्छादितोऽभितः ।
हेमपद्मावलीचित्रो हेमप्राङ्गणकुट्टिमः ॥ ॥८५॥

इन्दुलेखा सुखदोऽयं पूर्णेन्दुनामा कुञ्जः अग्निकोणे राजते इति चतुर्थेनान्वयः । अत्र वर्णनावेशेन साक्षात्कारस्फुरणात् कुञ्जविशेषणमङ्गुलिनिर्दिष्टोऽयं शब्दः प्रयुक्तः । स्फटिकैरिन्दुकान्तिमणिभिश्चितं बद्धं कुट्टिमं चत्वरश्च यत्र सः । पुण्डरीकैः शुक्लपद्मैः कैरवैः कुमुदैर्मल्लिकाभिश्च चित्रितः ॥८१॥

शुभ्राणि शुक्लाणि पुष्पाणि दलानि पत्राणि च येषां तैर्वृक्षैस्तादृशीभिर्लताभिश्च समन्वितः । पुनः शुभ्रैरलि-पिक-कीराद्यैर्निनादितः । कीदृशैः शब्दज्ञेयैः, शुक्लत्वात् कः शुकः पिक इति भेदाज्ञाने जातिशब्दैः स्वस्वध्वनिभिरेव भृङ्गोऽयं पिकोऽयं शुकोऽयं इति ज्ञायन्ते इति तैः ॥८२॥

राकायां पौर्णमास्यां शुभ्रवेशौ राधाकृष्णौ यत्र क्रीडन्तावपि तत्रागतैः कैरपि नेक्ष्येते ॥८३-८४॥

विचित्रवर्ण की पक्षी, भृङ्ग, कुट्टिम, प्राङ्गण द्वारा वह परिवृत है। चित्रित मण्डप, चित्रित हिन्दोलान्वित होकर वह शोभित है ।।७९-८०।। श्रीराधाकुण्डके अग्निकोणमें पूर्णेन्दुनामक श्रीइन्दुलेखा की कुञ्ज विराजित है। उसके कुट्टिम, प्राङ्गण, स्फटिक एवं चन्द्रकान्त मणिद्वारा निबद्ध है। उसमें श्वेतपद्म, कुमुद, मल्लिका प्रभृति शुभ्र पुष्प समूह चित्रित है, उक्त कुञ्ज शुभ्रवर्णा वृक्ष, लता, पुष्प, पत्र समूह युक्त है, और भ्रमर कोकिल शुक प्रभृति भी वहाँके शुभ्रवर्णके होते हैं, उन सब को देखनेपर पहचाननेमें सहसा नहीं आते हैं, केवल उनकी बोलीसे ही जातिभेद का ज्ञान होता है, और भी आश्चर्य यह है कि उसकुञ्जमें वे सब अविरत ध्वनि करते रहते हैं,

हेममण्डपिकायुक्तो हेमहिन्दोलिकान्वितः।
हेमाभालि-खगैर्युक्तो हेमलीलापरिच्छदः॥ ॥८६॥

लीलया पीतवसना पीतालेपविभूषणा।
यत्र प्रविष्ट श्रीराधा कृष्णेनापि न लक्ष्यते॥ ॥८७॥

गौराङ्गीवेशधृक् कृष्णः स्वप्रेयस्याः सहालिभिः।
शृणोति प्रेमसंलापं यत्रैताभिरलक्षितः॥ ॥८८॥

कदाचित् पद्मया यत्र प्रेरिता जटिलागता।
ददर्श कृष्णं नो राधां तेनैकासनगामपि॥ ॥८९॥

दक्षिणे चम्पकलतानन्ददो हेमकुञ्जः भातीति षष्ठेनान्वयः कीदृशः हेमलता-पुष्पवृक्षैश्छादितः। इत्यादिस्पष्टं, पूर्ववत् हेमवर्णभ्रमर-खगैर्युक्तः। लीलयाः परिच्छदः वस्त्रादिः॥८५-८६॥

लीलया कृष्णो मां ज्ञास्यति किं नेति गुप्तं सखीभिः सह कृतविचारणया पीतवस्त्रा पीतालेपः कौङ्कुमपङ्कोभूषणाणि स्वर्णलङ्काराणि तानि च तानि यस्य यस्यां वा सा राधा यत्र प्रविष्टा कृष्णेनापि न लक्ष्यते॥८७॥

एवं गौराङ्गीवेशधृक्। कृष्णः आलिभिः सह स्वप्रेयस्या राधायाः प्रेमसंलापं ताभिरलक्षितः सन् यत्र शृणोति॥८८॥

यत्र जटिला कृष्णं नो ददर्श, कृष्णेन सह एकासनगां राधामपि नो ददर्श। यद्वा, कृष्णं ददर्श नो राधाम्॥८९॥

पूर्णिमा रजनी में सखीवृन्दके साथ शुभ्रवेश धारण पूर्वक श्रीराधाकृष्ण क्रीड़ारत होनेपर अकस्मात् कोई आजानेपर वह उन सबको देख नहीं पाते हैं।।८१-८४।। श्रीराधाकुण्डके दक्षिणदिक् में चम्पकलतानन्दद हेमकुञ्ज विराजित है, जिस प्रकार काञ्चन भूमिमें अवस्थित वस्तुसमूह उसके समान वर्णकि हो जाते हैं, तद्रूप चम्पकलताकी हेमकुञ्ज, हेमलता, हेमवर्णकि वृक्षसमूहके द्वारा सर्वप्रकारसे व्याप्त है, तथा हेम पद्मावली द्वारा चित्रित है, उसका प्राङ्गण, कुट्टिम, मण्डप, हिन्दोला, अलिकुल, लीलाप्रयुक्त श्रीराधिका पीतवसन, पीत अनुलेपन, सुवर्ण आभरण द्वारा भूषित होकर प्रवेश करनेपर श्रीकृष्ण सहसा उनको देख नहीं पाते हैं। वहाँपर गौराङ्गी वेशधारी श्रीकृष्ण छिपकर निजप्रेयसी की सखियों के साथ परस्पर प्रेमालाप सुनते थे, किन्तु किसीनेभी श्रीकृष्णको नहीं देखा। औरभी आश्चर्य्य का विषय यह है

स्ववर्णकृत् स्वस्थितानां भाति काञ्चनभूरिव।
दक्षिणे चम्पकलतानन्ददो हेमकुञ्जकः ॥९०॥ षड्भिः कुलकं।

यत्र चम्पकवल्लयाः सा निकुञ्जेपाकशालिका।
आस्ते तदीशयोश्चित्र जग्धिवेदिकयान्विता॥ ॥९१॥

यस्यां पाकक्रियाचार्या सवृन्दा सा निजेशयोः।
सम्पादयति संमोदात् कदाचित् कुञ्जभोजनम्॥ ॥९२॥

तमालैः श्यामवल्लीभिः श्लिष्टशाखैर्धृतान्तरम्।
इन्द्रनीलचिताभ्यन्तर्भूमिकुट्टिमचत्वरः॥ ॥९३॥

राधया युगलीभावं गतोऽपि मुखरादिभिः।
नेक्ष्यते हरिरेकैव राधिका यत्र दृश्यते॥ ॥९४॥

राजते दिशि नैर्ऋत्यां रङ्गदेवीसुखप्रदः।
सर्व्वश्यामः श्यामकुञ्जो राधिका-रतिवर्द्धनः ॥९५॥ सन्दानितकं।

यथा काञ्चनभूः स्वस्मिन् स्थितानां वस्तूनां सुवर्णकृत् स्वर्णवर्णकृत् ॥९०॥

यत्र हेमकुञ्जे सा पाकशालिका राधाकृष्णयोश्चित्रया जग्धिवेदिकया सह भोजनवेद्या अन्विता आस्ते। जग्धिस्तु सह भोजनमित्यमरः ॥९१॥

सा का यस्यां स वृन्दा सा चम्पकलता निजेशयोः कुञ्जभोजनं संपादयति ॥९२॥

नैर्ऋत्यां दिशि रङ्गदेवीसुखप्रदः श्यामकुञ्जः राजते इति तृतीयेनान्वयः। यत्र मुखरादिभिः राधया युगलीभावं गतोऽपि हरिः नेक्ष्यते। राधिकैव दृश्येत। शेषः स्पष्टार्थः ॥९३-९५॥

कि–वहाँपर किसी समय श्रीराधाकृष्ण एक आसनमें उपविष्ट हैं, यह देखकर ईर्षा से जलती हुई पद्माने जटिलाको वहाँ भेजा, जटिला आकर वहाँपर श्रीकृष्णके साथ एकासनमें अवस्थिता राधाको देख नहीं पाई, किम्वा श्रीराधाकृष्ण एकासनमें उपविष्ट रहने परभी जटिलाने श्रीकृष्णको ही देखा किन्तु श्रीराधाको देख नहीं पाई।।८५-९०।। उक्त हेमकुञ्जमें श्रीचम्पकलता की प्रसिद्ध पाकशाला है। उसमें श्रीराधाकृष्ण की भोजन वेदिका निर्म्मित है, उक्त पाकशाला में किसी समयपर चम्पकलता सहर्ष पाकक्रियाचार्य स्वरूपा श्रीवृन्दाके साथ श्रीराधाकृष्ण हेतु एकत्र कुञ्ज भोजनक्रिया सम्पन्न कराती है।।९१-९२।। श्रीराधाकुण्ड के नैर्ऋत्य कोण में श्रीरङ्गदेवी का सुखप्रद सर्वत्र श्यामवर्णमय श्यामकुञ्ज विराजित है, उस में श्रीराधिका अत्यन्त सुखी होती

रक्तवल्लीवृतोरक्तपुष्पपत्रैर्द्रुमैर्वृतः।
शोण-रत्न-चिताभ्यन्तः कुट्टिमाङ्गनमण्डपः॥ ॥९६॥

रक्तहिन्दोलिकायुक्तः कृष्णेष्टः सर्व्वलोहितः।
तुङ्गविद्यानन्ददोऽस्ति पश्चिमेऽरुणकुञ्जकः॥ ॥९७॥ ॥युग्मकं॥

हरिद्वल्लीवृक्षचित्रो हरित् पक्ष्यलिसंयुतः।
हरिन्मणिचिताभ्यन्तर्बाह्यकुट्टिमचत्वरः॥ ॥९८॥

वायव्यां सर्व्वहरितो राधाकृष्णाक्ष्यकेलिभूः।
सुदेवीसुखदाभिख्यो हरित्कुञ्जो विराजते ॥९९॥ युग्मकं॥

उपरि लहरितुल्याकारचित्रैः स्फुरद्भिर्मरकतचयगर्भैः पुष्परागेन्दुकान्तैः।
घटितमितरलोके तोयवद्भासमानं मणिमयकुमुदाम्भोजालिहंसादियुक्तं ॥१००॥

तुङ्गविद्यानन्ददोऽरुणकुञ्जः पश्चिमे अस्तीति द्वितीयेनान्वयः। शेषं सुस्पष्टं ॥९६॥९७॥

वायव्यां सुदेवीसुखदाभिख्यो हरित्कुञ्जो विराजते। शेषःस्पष्टार्थः ॥९८॥९९॥

श्रीराधाकुण्डस्याष्टदिक्षु ललिताद्यष्टसखीनामष्टकुञ्जानुक्त्वा कुण्डमध्ये अनङ्गमञ्जर्य्याः स्थानमाह, सलिलकमल सद्म सलिले कमलवद्विद्यमानत्वात्। सलिलकमलं अर्थात् सलिलकमलं नाम तच्च तत् सद्म चेति सलिलकमल सद्मा लालसीति। अतिशयेन लसति कीदृशं, अनङ्गमञ्जरी राधायाः कनिष्ठाभगिनी तस्याः शंप्रदं सुखप्रदं। पुनः कीदृशं, मरकतमणिसमूहो गर्भे येषां तैः स्फुरद्भिः पुष्परागाः पद्मरागा इन्दुकान्ताश्च तैः पुष्परागेन्दुकान्तैरुपरि लहरितुल्याकारतया चित्रैर्घटितं। अतएव इतरलोके तोयवत् जलवत् भासमानं। मणिमयैमणिनिर्म्मितैः,

---

है, उसकी अभ्यन्तर भूमि इन्द्रनीलमणि के द्वारा खचित है, वह श्यामलता से वेष्टित है, तमाल शाखाओं के द्वारा आच्छन्न होने के कारण कुट्टिम चत्वर प्रभृति कुञ्जस्थ समस्त पदार्थ इन्द्रनीलमणि की प्रभासे व्याप्त होने पर कभी कभी मुखरा आदि वृद्धागण वहाँपर आने से भी श्रीराधाके साथ युगली भाव गत कृष्ण को सब देख नहीं पाती हैं, केवल श्रीराधा को ही देखतीं हैं ।९३-९५।। श्रीराधाकुण्ड के पश्चिम दिक् में श्रीतुङ्गविद्या का आनन्दप्रद कुञ्ज है। वहाँपर श्रीकृष्ण के वाञ्छित अरुणकुञ्ज, रक्तवर्ण की लता, रक्तवर्ण पुष्प, रक्तवर्ण के वृक्ष एवं कुट्टिम, आङ्गन है, मण्डप के अभ्यन्तर भाग भी रक्तवर्ण रत्नसे शोभित है, रक्तहिन्दोला, रक्तवर्ण आङ्गन है। उक्त

धनपति दिशि तादृक् सेतुवन्धानुषक्तम्
षडधिक-दशपत्राम्भोजवत् सन्निवेशम्।
सलिलकमल सद्मानङ्गयुङ्मञ्जरीश-
म्प्रदमतुलसुलावण्योल्लसल्लालसीति ॥१०१॥ युग्मकं ॥

श्रीराधेव हरेस्तदीय-सरसी प्रेष्ठाद्भुतैः स्वैर्गुणै-
र्यस्यां श्रीयुत माधवेन्दुरनिशं प्रेम्णा तया क्रीडति।
प्रेमास्मिन् वत राधिकेव लभते यस्यां सकृत् स्नानकृत्-
तत्तस्या महिमा तथा मधुरिमा केनास्तु वर्ण्यः क्षितौ ॥१०२॥

कुमुदाम्भोजालिहंसादिभिर्युक्तं। तादृक् यथा ललितादीनां तटस्थिताः कुञ्जा इदं जलेऽपि षोडशदलाम्भोजवत् सन्निवेश आकारो यस्य तत्। पुनः कीदृशं, धनपति दिशि सद्मतस्योत्तरदिशायां सद्म गमनार्थं सेतुवन्धेनानुषक्तं युत ॥१००॥१०१॥

हरेः श्रीराधा इव तदीय-सरसी राधा-सरसी प्रेष्ठा। यस्यां सरस्यां श्रीकृष्ण चन्द्रः अनिशं प्रत्यहं तया राधया सहप्रेम्ना क्रीडति। यस्यां सरस्यां सकृत् एकवारमपि स्नान कृज्जनः अस्मिन् कृष्णे राधिकेव प्रेम लभते। तत्तस्मात्तस्या महिमा मधुरिमा च क्षितौ केन वर्ण्योऽस्तु। यथा राधाप्रिया विष्णोस्तस्याः कुण्डं प्रियं तथा। सर्व्वगोरीषु सैवैका विष्णोरत्यन्तवल्लभा इति प्रमाणात् ॥१०२॥

कुञ्जके सकल स्थान लोहितवर्णमय हेतु उक्त कुञ्ज की अपूर्व शोभा है।।९६।।९७।। श्रीराधाकुण्ड के वायुकोण में श्रीसुदेवी सुखप्रद हरित् कुञ्ज है, उक्त कुञ्जमें श्रीराधाकृष्ण अक्ष क्रीड़ा करते हैं, हरिद्वर्ण की लता, हरिद्वर्ण के वृक्ष, हरिद्वर्ण की पक्षी है, हरिद्वर्ण की मणि से उसका अन्दर बाहर देशस्थ कुट्टिम, चत्वरप्रभृति पदार्थ समूह हरिद्वर्णसे शोभित हैं।।९८-९९।।

श्रीराधाकुण्ड के उत्तरदिक् में श्रीराधाकी कनिष्ठा भगिनी अनङ्गमञ्जरी का कुञ्ज है, वह मरकत मणिका है। पद्मराग एवं चन्द्रकान्तमणि द्वारा संघटित होनेसे दर्शकके निकट वह जलवत् भासमान हो रही है। षोड़शदल पद्मकी भाँति है, सेतुबन्ध शोभित है, मणिनिर्मित कुमुद कमल एवं हंसादि की प्रतिमूर्तिसे सुसज्जित है, उक्त मनोहर कुञ्ज को देखने से बोध होता है कि जैसे उसके ऊपरभाग में तरङ्गमाला उद्भावित हुई है।।१००-१०१।। जिस प्रकार श्रीराधा कृष्णकी प्रेयसी है, उसका कुण्ड भी उस प्रकार प्रिय है, व्रज के पूर्णचन्द्र माधव उसके गुणसे वशीभूत होकर निरन्तर वहाँपर क्रीड़ा

प्रियाकुण्डं दृष्ट्वा मुदितहृदयोऽप्यस्य विविधै-
र्गुणैस्तैस्तैरुद्दीपितविरहभावः स्मरवशः।
प्रियाप्राप्त्युत्कण्ठा कवलितमना नागरगुरु-
र्भ्रमान्नानोत्प्रेक्षां बकरिपुरमुस्मिन् स विदधे॥ ॥१०३॥

खेलच्चक्रयुगोरोजं फेनमुक्तास्रगुज्जवलम्।
रसोर्म्युच्छलितं मेने प्रियावक्षःसमं सरः॥ ॥१०४॥

नागरगुरुः श्रीकृष्णः प्रियाकुण्डं दृष्ट्वा अस्य कुण्डस्य तैस्तैर्गुणैरुद्दीपित राधायां विरहभावो यस्य सः। अतः स्मरवशः, तस्मादेव प्रियायाः प्राप्तौ या उत्कण्ठातया कवलितं ग्रस्तं मनो यस्य सः। वकरिपुर्भ्रमान् अमुस्मिन् कुण्डे नानोत्प्रेक्षां विदधे॥१०३॥

उत्प्रेक्षा तत्रस्थवस्तुनि श्रीराधिकाङ्गोपमामेवाह, प्रियायाः राधायाः वक्षःसमं वक्षःस्थलतुल्यं सरो राधाकुण्डं मेने। समतामाह खेलच्चक्रयुगमेव उरोजौ स्तनौ यत्र। फेणमेव मुक्ता स्रक् तया उज्ज्वलं रसोर्म्मिणा उच्छलितं च कुण्डपक्षे रसजलं रसप्रेम च॥१०४॥

प्रमुदित हरिणा सा प्रियतमा या इयं प्रियतमा किम्वा अतिशयेन प्रिया प्रियतमा सा चासौ सरसी चेति प्रियतमसरसी प्रेयसीव राधेव व्यलोकि। उभयोः साम्यमाह, मधुररसस्य शृङ्गारस्य सरसी पक्षे मधुरजलस्य तरङ्गो यत्र सा पङ्कजवदास्यं। पक्षे पङ्कजमेवास्यं तत् विभ्रती भ्रमरकैरलकैः परिवीतं वृतं। पक्ष भ्रमरा एव भ्रमारकास्तः परिवीतं युक्तं। प्रोल्लसत्खञ्जनाविवाऽक्षिणी नेत्रं यस्याः खञ्जन एव अक्षि नेत्रं यस्या

करते हैं।। जो जन एकबार मात्र उसमें स्नान करता है, वह श्रीकृष्णके प्रति ममता राधा की जैसी प्राप्त करता है। अतएव भूमण्डलमें ऐसा। कौन होगा जो उस सरसी की महिमा एवं मधुरिमा का वर्णन कर सकेगा।।१०२।। नागर गुरु श्रीकृष्ण,–प्रेयसी श्रीराधा का कुण्ड को देखकर अतिशय हृष्ट होने परभी, कुण्डके नानाविध गुण समूह के द्वारा श्रीराधा का विरहभाव उदित होने से कन्दर्प भावसे विभोर हो गये, एवं प्रियतमा की प्राप्ति के लिए जो उत्कण्ठा हुई, उससे भी ग्रस्त हृदय होनेपर बकरिपु श्रीकृष्ण भ्रमसे श्रीराधा कुण्डके प्रति अनेक प्रकार उत्प्रेक्षा करने लग गये।।१०३।। श्रीराधाकुण्ड में क्रीड़ारत चक्रवाक् युगलको देखकर प्रियाके वक्षोज युगल का, फेन को देखकर मुक्तामालाका, एवं तरङ्ग को देखकर माधुर्य्यरस विस्तार का बोध होनेपर कृष्णजी श्रीराधाकुण्डको श्रीराधाका वक्षःस्थल ही मानने लगे।।१०४।।

मधुररसतरङ्गा विभ्रती पङ्कजास्यम्
भ्रमरकपरिवीतं प्रोल्लसत्खञ्जनाक्षम्।
प्रमुदित-हरिणोच्चैर्हंसकारावरम्या
प्रियतमसरसी सा प्रेयसीव व्यलोकि॥ ॥१०५॥

स्वप्रेष्ठाऽरिष्टकुण्डोर्म्मि-चञ्चत् बाहूपगूहिता।
स्वकोकनदपाणिभ्यां क्षिप्तचलतत्करा॥ ॥१०६॥

समीरचञ्चदम्भोजचलास्येन बलादिव।
चुम्बितालि-कटाक्षेषत्तिर्य्यगम्बुजसम्मुखी॥ ॥१०७॥

सा। हंसकौ पादकटाटकौ, पक्षे हंसकास्तेषां आरावेण शब्देन रम्या। शब्दार्थश्लेषेण व्याख्येयं श्रीकृष्णस्य तु प्रेयसीरूपेण यथार्थज्ञानमित्याशयः॥१०५॥

स्वप्रेष्ठस्याऽरिष्टकुण्डस्य कृष्णकुण्डष्य उर्म्मिरूप-चञ्चलवाहुभिरुपगूहिता आलिङ्गिता स्वस्य राधाकुण्डस्य तस्य कोकनदरूप-पाणिभ्यां क्षिप्तौ तत्तस्याऽरिष्टकुण्डस्य चलौ चञ्चलौ तत्करौ कोकनदरूप-करौ यया सा। रक्तोत्पलं कोकनद इत्यमरः। कृष्णस्य करौ वाम्यवशात् यथा राधा स्वकराम्यां क्षिपति तथैव कुण्डद्वयस्य तरङ्गे चालितकोकनदानां व्यवहारो भवतीत्यर्थः॥१०६॥

समीरवेगेणन चञ्चत् गच्छत् यदम्भोजं तदेव कृष्णकुण्डस्य चलास्यं तेन बलादिव चुम्बिता प्रियतमसरसी अलिरेव कटाक्षस्तेन ईषत् तिर्य्यक् वक्रीभूतं यत् अम्बुजं तदेव सत् समीचीनं मुखं यस्याः सा। एकपद्मकृतमन्यपद्मस्य भ्रमरसहितस्य ईषत् तिर्य्यक्

श्रीकृष्ण उस प्रियतम सरसी को श्रीराधाकी भाँति देखने लगे। प्रेयसी श्रीराधा जिस प्रकार मधुररस तरङ्गमें व्याकुल है, सरसीभी उस प्रकार सुमधुर जलतरङ्गों से आकुल है, प्रेयसी का वदन जिसप्रकार कमल तुल्य है, सरसी भी उसप्रकार पङ्कजरूप वदन युक्त है, प्रेयसी का वदन जिसप्रकार अलकों अर्थात् स्वर्णकुन्तल के द्वारा परिवृत है सरसी भी तद्रूप भ्रमरावली के द्वारा आवृत है, प्रेयसी का खञ्जनतुल्य नयन, जिसप्रकार है, सरसी भी तद्रूप खञ्जन रूप नयन युक्त है, प्रेयसी जिसप्रकार हंसक अर्थात् पादाभरण रूप झङ्कार युक्त हैं, सरसी भी उसप्रकार हंसक विशिष्ट है।।१०५।। अनन्तर श्रीकृष्ण ने श्रीराधाकुण्डके समीपमें श्रीकृष्णकुण्ड को देखा, उसकी आश्चर्य शोभाकी बात क्या बोलूँ, तदीय तरङ्गरूप चञ्चलबाहु के द्वारा आलिङ्गित श्रीराधाकुण्ड के कोकनद पाणि के द्वारा ताड़ित श्रीकृष्णकुण्ड के कोकनदरूप कर, अर्थात् श्रीकृष्ण आलिङ्गनार्थ श्रीराधा को बाहुद्वय से ग्रहण करने से

भृङ्गी झङ्कारशीत्कारा विकलस्वर-गद्गदा।
प्रोद्यत्कुट्टमिता तेन राधिकेव व्यलोकि सा ॥१०८॥ सन्दानितकं।

समुद्भ्राम्यल्लीलाम्वुजमनिलजातोर्म्मि वलितम्
सरोयुग्मं वीक्ष्यानतशिरसि गोवर्द्धनगिरेः।
निजप्रेमोद्घूर्णास्खलितवपुषस्तस्य स हरि-
र्भ्रमत्तारं वाष्पोच्छलितमिव मेनेऽक्षियुगलम् ॥ ॥१०९॥

अल्पवक्रं तत् उत्तमं फुल्लतारूपस्मितयुक्तं अम्बुजरूपमुखं यस्याः। वलात् कृष्णकृतचुम्वनसमये राधा यथा कटाक्षेण सह ईषत् तिर्य्यक् सम्मुखी भवति, तथा ज्ञानमभूत् ॥१०७॥

भृङ्गीणां झङ्कारः शीत्कारो यस्याः सा। शीत्कारस्तु नायककृताधर-खण्डनादौ नायिकाया व्यथया दन्तावलम्वीशब्दविशेषः। वीनां पक्षिणां कलस्वर एव गदगदं यस्याः। एतैः प्रोद्यतकुट्टमिता कुट्टमितभावयुक्ता राधिकेव सा सरसी तेन कृष्णेन व्यलोकि। कुट्टमितं उज्ज्वलनीलमणौ यथा–स्तनाधरादिग्रहणे हृत् प्रीतावपि संभ्रमात्। वहिः क्रोधो व्यथितवत् प्रोक्तं कुट्टिमितं बुधैः ॥१०८॥

स हरिः समुद्भ्राम्याल्लीलाम्बुजं। अनिलजातोर्म्मिभिर्वलितं वीक्ष्य निजप्रेमोद्घूर्णया स्खलितं वपुर्यस्य तस्य गोवर्द्धनगिरेर्मयूराकारस्यानतशिरसि आनम्रशिरसि अक्षियुगलमिव मेने। कीदृशं, भ्रमत्तारं भ्राम्यल्लीलाम्बुजे मननं। वाष्पोच्छलितं उर्म्मीमननं। अतः मयूराकारगोवर्द्धनस्य दक्षिणदिशायां पुच्छं कुण्डद्वयं नेत्रमितिं प्रसिद्धं ॥१०९॥

श्रीराधा जैसे निज कोकनद सदृश हस्तद्वय के द्वारा कृष्ण को मना करती है, उस प्रकार श्रीराधाकुण्ड भी तरङ्ग कम्पित कोकनद पुष्परूप हस्तद्वय के द्वारा श्रीश्यामकुण्डकी तरङ्गों का निषेध करते हैं।।१०६।। आपने और भी देखा कि श्रीश्यामकुण्डस्थ कमल, समीरण द्वारा चालित होकर वेगसे श्रीराधाकुण्डस्थ भ्रमर मण्डित कमल के ऊपर गिरते हैं, इससे बोध होता है कि श्रीकृष्ण बलपूर्वक श्रीराधा के वदन कमलको चुम्बन करनेपर जिसप्रकार श्रीराधा ईषत् कटाक्ष निक्षेप के साथ वदन को वक्र करके रहती है तद्रूप।।१०७।। और भी श्रीकृष्ण श्रीराधा के स्तन, अधरादि ग्रहण करने से श्रीराधा जिस प्रकार हृदय में सन्तुष्ट होकरभी संभ्रम वशतः बाहर व्यथित की भाँति बाहर क्रोधको प्रकट कर कुट्टमित भावको प्रकाश करती है, तद्रूप भ्रमर झङ्कार से शीत्कार जात गद्गद स्वरसे अलीक कोप को प्रकट करते

इत्थं प्रियायाः स सरः समीक्ष्य ततुप्रत्यङ्गसंस्मारकमात्मनो गुणैः।
विन्दंस्तदानन्दममन्दमप्यभूत्तदागमौत्सुक्य विभिन्नधैर्यकः॥ ॥११०॥

प्रायः स एवंविधसन्निवेशकं ददर्श तत्पार्श्वगमात्मनः सरः।
कुञ्जैः स्वकान्ताग्रहतोऽतिसंस्कृतैर्विराजितं नर्म्मसखालि-निर्म्मितैः ॥१११॥

प्रियनर्म्मवयस्या ये सुवलो मधुमङ्गलः।
उज्ज्वलार्ज्जुन–गन्धर्व्वा–विदग्ध–भृङ्ग–कोकिलाः॥ ॥११२॥

दक्षसन्नन्दनाद्याश्च तेषां स्वस्वाभिधान्विताः।
तैर्विभज्यार्पिताः कुञ्जास्ते राधा ललितादिषु॥ ॥११३॥ युग्मकम्॥

वायोर्दिश्यस्ति सुवलानन्ददा कुञ्जशालिका।
राधयाङ्गीकृता यस्यास्तीर्थं मानसपावनम्॥ ॥११४॥

स श्रीकृष्णः इत्थमुक्तयकारेण प्रियायाः सरः वीक्ष्य। कीदृशं, आत्मनो गुणैः तत्तस्याः राधाया प्रत्यङ्गसंस्मारकं आनन्दमानन्दं विन्दन्नपि तत्तस्याराधाया आगमौतुसुक्येन विभिन्न धैर्य्यं यस्य तथाभूतोऽभूत्॥११०॥

स कृष्णः तत्तस्य राधाकुण्डस्य पार्श्वगं प्रायो वाहुल्येन एवम्विधा तीर्थहिन्दोलिकादिना तुल्यः सन्निवेशो रचना यस्य तादृशमात्मनः सरः ददर्श। कीदृशं स्वकान्ताग्रहतः राधाया आग्रहान् नर्म्मसखासमूहेन निर्म्मितैरतिसंस्कृतैः कुञ्जैर्विराजितं॥१११॥

सुवलाद्या ये प्रियनर्म्मवयस्यास्तेषां स्वस्वाभिधानान्विताः सुवलानन्ददाद्याः तैः सुवलादिभिः ते कुञ्जा विभज्य राधा ललिताद्यादिषु अर्पिताः॥११२-११३॥

यस्याः कुञ्जशालिकायास्तीर्थं मानसपावनाख्यं॥११४॥

देखकर श्रीकृष्णने उक्त सरसी को कुट्टमित भावयुक्त मानलिया।।१०८।। श्रीकृष्ण प्रकटित लीलाकमल एवं वचन से उत्पन्न उर्मियुक्त उक्त कुण्डयुगल को देखकर,—प्रेम घूर्णासे स्खलित देह, मयूरके समान नतशिरः प्रेम पुलक से पुलकित श्रीगोवर्द्धन गिरिके वाष्पपूरित नयनद्वय ही मानने लगे।।१०९।। श्रीकृष्ण,—श्रीराधाकुण्ड के शोभासे श्रीराधा के अङ्ग प्रत्यङ्गोद्दीप्त होनेपर आनन्द से हृदय पूर्ण हो जानेपर भी प्रेयसी के आगमन की उत्कण्ठासे पूर्णरूप से अधीर हो गए।।११०।। अनन्तर श्रीकृष्ण,–प्रिय नर्म सखा सुवल मधुमङ्गलादि के द्वारा सुचारु रूपसे निर्म्मित एवं सुसंस्कृत कुञ्ज निचय के द्वारा परिशोभित निजकुञ्ज को श्रीराधाकुण्ड के सदृश रमणीय मानने लगे।।१११।। तदनन्तर सुबल, मधुमङ्गल, उज्ज्वल, अर्ज्जुन, गन्धर्व,

नित्यं स्नात्यत्र सालीभिः कुण्डेऽस्मिन् विपुलाग्रहा।
कृष्णपादाब्जमाध्वीकपानीये कृष्णवत् प्रिये ॥ ॥११५॥

ललिताङ्गीकृतोदीच्यां कुञ्जशालातिचित्रिता।
मधुमङ्गलशन्दाख्या भाति श्रीराधिकाप्रिया ॥ ॥११६॥

विशाखाङ्गीकृतैशान्यामुज्ज्वलानन्ददापरा।
एवमन्यासु दिक्ष्वन्या भान्त्यन्याभिः कृताश्रयाः ॥ ॥११७॥

पूर्व्वपश्चिमदिङ्मार्गावीशेशा कुण्डयोः क्रमात्।
विस्तीर्णौ नृ-पशूनांस्तः स्नानपानार्थतीर्थगौ ॥ ॥११८॥

अत्र तीर्थे सा राधा आलिभिः सखीभिः सह नित्यं स्नाति सा। कीदृशी, अस्मिन् कुण्डे विपुलाग्रहा। अत्र कारणमाह, कृष्णपादाब्जस्य माध्वीकं पादोदकं पुष्परसः पानीयं जलं यत्र तत्र। कृष्णवत् प्रिये च अनेन श्रीकृष्णचरणामृतादौ कृष्णतुल्यादरोदृष्टः। भक्तैरवश्यमेव कर्त्तृव्य इति चायातः ॥११५॥ उत्तरे मधुमङ्गल-शन्दाख्या ॥११६॥

ऐशान्यामुज्ज्वलानन्ददा एवमन्या अर्ज्जुनानन्दादयः अन्यासु पूर्व्वादि दिक्षु अन्याभिश्चित्रादिभिः कृताश्रयाः प्रत्येकं भान्तिः ॥११७॥

ईशेशा कुण्डयोः कृष्णकुण्ड राधाकुण्ड राधाकुण्डयोः क्रमात् पूर्व्वपश्चिमदिशोर्मार्गो पन्थानौस्तः। कीदृशौ, नृ-पशूनां स्नानपानार्थं गोतीर्थं गतौ प्राप्तौ विस्तीर्णौच ॥११७॥

विदग्ध, भृङ्ग, कोकिल, दक्ष एवं सनन्द प्रभृति श्रीकृष्ण के कुञ्ज समूहका वर्णन कर रहा हूँ। उन्होंने श्रीराधा एवं ललिता प्रभृति को जो सब कुञ्ज समर्पण कर दिया है सम्प्रति उसका ही वर्णन करता हूँ।।११२-११३।। श्रीश्यामकुण्ड के वायुकोण में सुबलानन्दद नामक सुबलकी कुञ्जशाला है, श्रीराधा उस कुञ्जको निजत्व अभिमान से देखती है। उसमें जो-तीर्थ है, उसका नाम मानस पावन है, श्रीराधा प्रत्यह सखीगण के सहित उसमें स्नान करती है, उक्त कुञ्जमें श्रीराधाकी अत्यधिक आसक्ति है, कारण, उस कुञ्ज का पानीय श्रीकृष्णपादाब्ज माध्वीक-अर्थात् पुष्परस है, श्रीकृष्णवत् उक्त कुञ्ज श्रीराधाका अतिप्रिय है।।११४-११५।। श्रीकृष्ण कुण्ड के उत्तरदिक् में मधुमङ्गलानन्द नामक कुञ्ज है, उसको श्रीललिता देवीने अङ्गीकार किया है, यह कुञ्ज श्रीराधाका अतिप्रिय है, एवं अति चित्र विचित्रमय है।।११६।। ईशान कोणमें उज्ज्वलानन्दद नामक उज्ज्वल की कुञ्जशाला है, उसको

लीलानुकूलेषु जनेषु चित्तेषूत्पन्नभावेषु च साधकानाम्।
एवम्विधं सर्व्वमिदं चकास्ति स्वरूपतः प्राकृतवत् परेषु ॥११९॥

अथ वृन्दागतं वीक्ष्यानन्दिता नन्दनन्दनम्।
कर्णिकारावतंसौ द्वावभ्येत्योपजहार सा॥ ॥१२०॥

वृन्दा तत्तत्निजनिपुणतालङ्कृतं दर्शयन्ती
तत्तत्कुञ्जादिकमनुतटं सेश्वरीं स्मारयन्ती।
राधाकान्तं ककुभि सहजैर्भ्राजमानं गुणैः स्वैः
कुण्डैशान्यां मदनसुखदाख्यकुञ्जं निनाय॥ ॥१२१॥

ननु प्राकृतान्यकुण्डवदेव कुण्डद्वयं उक्तप्रकारेण भासमानं कथं स्यात्तत्राह, लीलानुकूला ये तेषु नित्यसिद्धेषु जनेषु। तथा साधकभक्तानां उत्पन्नभावेषु चित्तेषु स्वरूपतः। इदं सर्व्वं एवंविध उक्तप्रकारं चकास्ति। परेषु तद्भिन्नेषु प्राकृतवच्चकास्ति अत्र कारणं कृष्णेच्छैव पुरा लिखितमेव तस्येच्छा चेत्। अन्यमपि तथा दर्शयति क्वचित् ॥११९॥

अथ सा वृन्दा आगतं नन्दनन्दनं वीक्ष्य आनन्दिता सती, तन्निकटमभ्येत्यागत्य कर्णिकारावतंसौ कर्णिकारौ पद्मगन्धिपुष्पशेषौ तावेव अवतंसौ कर्णभूषणे तौ द्वौ उपजहार ददौ ॥१२०॥

वृन्दा सर्वेश्वरीं राधां स्मारयन्ती निजनैपुण्येनालङ्कृतं स्वैः स्वीयैः सहजैः गुणैर्भ्राजमानं तत्तत्पूर्व्वोक्तं कुञ्जादिकं तत्राप्यनुतटं तटं तटं प्रति कान्तं दर्शयन्ती कुण्डैशान्यां ककुभि राधाकुण्डस्य ईशानकोणे मदनसुखदाख्यं कुञ्जं निनाय॥१२१॥

विशाखाने अङ्गीकार किया है, इस प्रकार अर्ज्जुनादि सखाओं के पूर्वादि दिक् क्रममें जो सब कुञ्ज है, उन सबको चित्रा प्रभृति सखीगणों ने अङ्गीकार किया है।।११७।। श्रीश्यामकुण्ड एवं श्रीराधाकुण्ड के पूर्व पश्चिमदिक् में अर्थात् श्रीश्यामकुण्ड के पूर्वदिक् में एवं श्रीराधाकुण्ड के पश्चिमदिक् के घाट में मानव एवं पशुओं के स्नान पान के लिए दो विस्तीर्ण पथ हैं।।११८।।

यहाँपर शङ्का हो सकती है कि अन्य प्राकृत कुण्डों की भाँति यह अप्राकृत कुण्ड युगल कैसे वर्णनानुरूप प्रकाशित हो सकते हैं ? इस के उत्तर में कहते हैं,—लीला के अनुकूलकारी नित्यसिद्ध जनगण के निकट एवं साधक भक्त गणके उत्पन्न भावमयचित्त में वह अप्राकृत रूपमें प्रकाशित होते हैं, किन्तु प्राकृत व्यक्तियों के निकट वह प्राकृत वस्तुकी भाँति प्रतिभात होते हैं ।।११९।। अनन्तर श्रीवृन्दादेवी श्रीनन्दनन्दन को वहाँपर

स तद्दृष्ट्वातिहृष्टोऽभूत्तत्तत्स्थानेषु राधया।
कृतकर्त्तव्यलीलानां स्मृतिसङ्कल्पतत्परः॥ ॥१२२॥

विशाखया मञ्जुमुख्या वृन्दया च सुमण्डितम्।
कुञ्जं विलोक्य तं प्रीतस्तामाहोत्कलिकाकुलः॥ ॥१२३॥

दिष्ट्या वृन्दे यदि तव सखी सागता स्यादकस्मात्
निष्प्रत्यूहं यदि मम तया स्युश्च ते ते विलासाः।
कुण्डारण्यं मधुसुमधुरं कुञ्जगेहं तदास्मिन्
वैचित्री च त्वदुपरचिता कल्पते सत्फलाय॥ ॥१२४॥

राधया सह कृतलीलानां स्मृतिः कर्त्तव्यलीलानां सङ्कल्पः मानसं कर्म्म तत्परोऽभूत्। सङ्कल्पः कर्म्म मानसमित्यमरः॥१२२॥

विशाखया तच्छिष्यया मञ्जुमुख्या वृन्दया च। सुमण्डितं कुञ्जं वीक्ष्य तां वृन्दामाह॥१२३॥

हे वृन्दे! दिष्ट्या भाग्येन तव सा सखी आगता स्यात्। निष्प्रत्यूहं निर्व्विरोधं, यदि तया सह मम ते ते विलासाः स्यु। तदा कुण्डारण्यं कुञ्जं मधुसुमधुरं मधुना वसन्तेन सुमधुरं सुमनोहरं। तत्र त्वदुपरचिता तत्कृता वैचित्री च सत्फलाय कल्पते॥१२४॥

तुलसीसकाशात् तुलसीमुखात् सङ्केतकुञ्जं आगतं नागतं पथि शैव्यान्वितं च मां निशम्य असौ राधा नैष्यति नागमिष्यति। तत इतः स्थानात् कापि गत्वा मम प्रवृत्तिं

उपस्थित देखकर आनन्द से श्रीकृष्ण के समीप में जाकर उनके कर्णभूषण के लिए दो कर्णिकार पुष्पपद्मगन्धि पुष्पविशेष उनको उपहार रूपमें प्रदान किया।।१२०।। तत् पश्चात् श्रीवृन्दादेवी निज शिल्प नैपुण्य से अलङ्कृत निज निज गुणसे देदीप्यमान पूर्वोक्त कुञ्जादि के तट समूह को दिखाने लगी इससे श्रीकृष्ण को राधा का स्मरण कराना भी सम्पन्न हुआ। अनन्तर आपने श्रीराधाकुण्ड के ईशान्य कोण स्थित मदनसुखद नामक कुञ्ज में श्रीराधाकान्त को लिवा ले गई।।१२१।। तब श्रीकृष्ण कुञ्जशोभा को देखकर आनन्दित हो गये, एवं वहाँपर श्रीराधा के साथ पहिले किए हुए विलास को स्मरण कर कर्त्तव्य लीलासमूह निष्पन्न करने के लिये मनोयोग प्रदान किए।।१२२।। अनन्तर विशाखा एवं विशाखा की शिष्या मञ्जुसखी एवं वृन्दादेवी के द्वारा उक्त कुञ्ज को सुसज्जित देख कर अत्यन्त खुश हुए एवं

सङ्केतकुञ्जमागतं तुलसीसकाशात्
शैव्यान्वितं च यथि मां नु निशम्य राधा।
नैष्यत्यसौ तत इतः किल कापि गत्वा
तामानयेदिह निवेद्य मम प्रवृत्तिम्॥ ॥१२५॥

श्रीराधायाः सविध उभयीं माधवीयामवस्थां
शंसन्त्युच्चैर्मदनविषमां लालसोद्दीपनाञ्च।
कुर्व्वाणैनां प्रणयविकलां व्याकुलां तृष्णयाद्धा
तामानेतुं त्वरय ललितां मद्गिरा त्वं धनिष्ठे! ॥१२६॥

स्थापयैकां सखीं वृन्दे गोदिगध्वन्यसौ यथा।
सामन्वेष्टुं सखा कश्चिदागच्छेतं प्रतारयेत्॥ ॥१२७॥

वार्त्तां शैव्यां प्रतार्य्य गौरीतीर्थे प्रस्थाप्य सङ्केतकुञ्जं प्राप्तस्य मे तस्या मिलने अत्युत्कण्ठां निवेद्य तामिहानयेत्॥१२५॥

हे धनिष्ठे! त्वं तां राधामानेतुं मद्गिरा ललितां त्वरय। किं कुर्व्वाणा। श्रीराधायाः सविधे समीपे माधवीयां माधवस्य मम सम्बन्धिनीं वासन्तीयां वा। उच्चैरतिशयं मदनविषमां लालसोद्दीपनीञ्च उभयीमवस्थां शंसन्ती एनां राधां प्रणयविकलां तृष्णया व्याकुलाञ्च कुर्व्वाणा॥१२६॥

गोदिगध्वनि गवां दिङ्मार्गे एकां सखीं स्थापय। सा यथा कश्चित् सखा मामन्वेष्टुं आगच्छेच्चेत् तं सखायं प्रतारयेत्॥१२७॥

उत्कण्ठा से आकुल होकर श्रीवृन्दादेवी को कहने लगे।।१२३।। हे वृन्दे! सौभाग्य से तुम्हारी सखी राधा यदि अकस्मात् यहाँपर आ जाती है, और निर्विरोध से यदि क्रीड़ा विलास भा सुसम्पन्न होता है, तब ही यह कुण्डारण्य, कुञ्ज, वासन्तिक शोभा, एवं तुम्हारी सजावट की निपुणता भी सार्थक होगी।।१२४।।

हे वृन्दे! मैं कुञ्ज में न आकर पथमें शैव्यासे मिला था, तुलसी के मुख से यह कथा सुनकर राधा यहाँपर न भी आ सकती है, अतएव तुम सबके मध्य से कोई एक व्यक्ति वहाँ जाकर मेरी चतुरता को कहकर अर्थात् मैं शठता पूर्वक शैव्या को गौरीतीर्थ में भेज दिया हूँ, इधर राधासे मिलने के लिए अतिशय उत्कण्ठित होकर हूँ" उनको यहाँपर लिवा लाओ।।१२५।। तत्पश्चात् कृष्णने धनिष्ठा को कहा, हे धनिष्ठे! श्रीराधा को यहाँपर लिवा

गौरीतीर्थाध्वनि परां दक्षां स्थापय सा यथा।
पुनरायाति शैव्या चेदन्या वा ताञ्च वञ्चयेत् ॥ ॥१२८॥

पक्वरम्भाफले मग्नदृष्टिं लोलं वटुं हरिः।
वीक्ष्याह वृन्दामनयोः फलैस्त्वं पूरयोदरम् ॥ ॥१२९॥

वटुराहानया किं मे त्वमाज्ञापय मां सखे ! ।
दृष्ट्वा दृष्ट्वा यथावाञ्छं खादंस्तृप्यामि लोलुपः ॥ ॥१३०॥

तत्र तत्र प्रहितयोः सख्योर्निपुणयोस्तया।
कृष्णोऽप्युत्कण्ठितोऽतिष्ठत् प्रियाध्वनिनिहितेक्षणः ॥ ॥१३१॥

गौरीतीर्थाध्वनि परां दक्षाञ्च सखीं स्थापय। सा शैव्या पुनरायाति चेत् तां अन्या वा आयाति चेत्। ताञ्च वञ्चयेत् ॥१२८॥

हरिः पक्वरम्भाफले मग्नदृष्टिं वटुं वीक्ष्य वृन्दामाह, अनयोः कदलीवृक्षयोः फलैरुदरमस्य पूरय। अनयोरित्यत्र द्विवचनेन परिहासः कृतः एकवृक्षस्य फलैरस्योदरपूर्त्तिर्न स्याच्चेत् ॥१२९॥

अन्या वृन्दया किं त्वं मामाज्ञापय लोलुपोऽहं दृष्ट्वा दृष्ट्वा खादन् तृप्यामि ॥१३०॥

तत्र तत्र गोदिगध्वनि गौरीतीर्थाध्वनि च तया वृन्दया सख्योः प्रहितयोः सत्योः। कृष्णः प्रियायाः मार्गे दत्तनेत्रः सन्नतिष्ठत् ॥१३१॥

लाने के लिए ललिता को सत्वर वहाँपर भेज दो, ललिता राधाके पास जाकर मेरी दोहरीस्थिति का वर्णन करे। अर्थात् मैं मदनशर से जर्ज्जरित हूँ, एवं राधाकी प्राप्ति हेतु अत्यन्त व्याकुल हूँ।' यह कह कर उनको प्रणय विकला एवं तृष्णाव्याकुला करके सत्वर यहाँपर लिवा लाओ ॥१२६॥ हे वृन्दे ! तुम गोष्ठ पथमें एक सखी को रखो, क्या जाने, कोई सखा मुझे ढूंढने केलिए यदि आजाय तो उसे वञ्चना करने के लिए वह कार्य करेगी ॥१२७॥ दूसरी बात गौरीतीर्थ के पथ में भी एक सुचतुरा सखी को रखो यदि शैव्या अथवा अन्य कोई सखी आने लगे, तो वह सखी उन सब को ठगेगी ॥१२८॥ उधर मधुमङ्गल की दृष्टि को पक्व कदली फलों की ओर निबद्ध देखकर कृष्ण परिहासके छल से वृन्दाजी को कहने लगे, वृन्दे ! यह वटु कदलीफल के लिए लोलुप हो रहा है, अतएव एक वृक्षके फल से इसकी उदर पूर्त्ति नहीं होगी, दो वृक्षके फलों को दे कर इसकी उदर की पूर्त्ति करदो ॥१२९॥ कृष्णके

स्मितकमलमुखी सा यावदायाति तावत्
जलधिशतगभीरोऽप्यस्तधैर्य्यः स मेने।
क्षणमपि युगलक्षं हन्त यत्तन्न चित्रम्
प्रणयिनि सहजेयं प्रेमभाजां हि चेष्टा॥ ॥१३२॥

श्रीचैतन्यपदारविन्दमधुप–श्रीरूपसेवाफले
दिष्टे श्रीरघुनाथदासकृतिना श्रीजीवसङ्गोद्गते।
काव्ये श्रीरघुनाथभट्टवरजे गोविन्दलीलामृते
सर्गः सप्तम एष सुष्ठु निरगात् पूर्व्वाह्णलीलामयः॥७॥ ॥*॥

सा राधा यावदायाति तावत् समुद्रशतगभीरोऽपि स कृष्णः अन्तर्धैर्य्यरहितोऽभूत्। क्षणमपि युगलक्ष यत् मेने तत् न चित्रं। प्रेमभाजां जनानां प्रणयिनि जने इयं चेष्टा सहजा स्वाभाविकी भवति॥१३२॥

इति श्रीगोविन्दलीलामृते सदानन्दविधायिन्यां टीकायां सप्तम सर्गार्थः॥८॥

परिहासमय वाक्य को सुनकर मधुमङ्गलने कहा, सखे! मैं लालची हूँ, सच है, अतएव वृन्दाकी प्रतीक्षा की कई आवश्यकता नहीं है, तुम्हारी आज्ञा मिलनेपर मैं स्वयं ही देख देख कर इच्छानुसार फल खाकर तृप्त हो जाऊँगा।।१३०।। अनन्तर वृन्दा श्रीकृष्णके आज्ञानुसार गोष्ठ पथमें एवं गौरीतीर्थ के पथमें सुचतुरा दो सखियों को नियुक्त करने पर श्रीकृष्ण भी उत्कण्ठित होकर प्रियतमा के पथ के प्रति दृष्टिपात करके रह गए।।१३१।।

कैसी अचरच की बात है, जबतक प्रफुल्ल कमलवदनी श्रीराधा का आगमन नहीं होता है, तबतक शतसमुद्रके समान गाम्भीर्यशाली होने पर भी श्रीकृष्ण धैर्य्यच्युत होगए, एवं क्षणकाल को लक्षयुगके समान मानने लगे, यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है, कारण प्रेमी जनों की प्रियजन के प्रति उस प्रकार चेष्टा स्वाभाविकी ही होती है।।१३२।।

श्रीश्रीकृष्णचैतन्य महाप्रभुके पदारविन्द के मधुप स्वरूप श्रीरूप गोस्वामीजी की सेवाके फल स्वरूप श्रीरघुनाथ दास गोस्वामीजी प्रेरणा प्राप्त श्रीजीव गोस्वामीजी के सङ्गसे उत्पन्न, श्रीरघुनाथभट्ट गोस्वामीजी से वर प्राप्त श्रीगोविन्दलीलामृत में पूर्वाह्णलीलावर्णनमय सप्तमसर्गः समाप्त हुआ।।७।।



श्रीगोविन्दलीलामृतम्

अष्टमः सर्गः

मध्याह्नलीला

— ** —

मध्याह्नेऽन्योन्यसङ्गोदितविविधविकारादिभूषाप्रमुग्धौ
वाम्योत्कण्ठातिलोलौ स्मरमखललिताद्यालिनर्म्माप्तशातौ ।
दोलारण्याम्बुवंशीहृतिरतिमधुपानार्कपूजादिलीलौ
राधाकृष्णौ सतृष्णौ परिजनघटया सेव्यमानौ स्मरामि ।। ।।१।।

अथात्र घोषेश्वरनन्दनप्रिया पृथक् पृथक् सा युगपन्निजेन्द्रियैः ।
आकृष्टचिता प्रियसङ्गमोत्सुकैः स्वं सान्त्वयन्तीमवदद्विशाखिकाम् ।। ।।२।।

मध्याह्ने राधाकृष्णौ स्मरामि। कीदृशौ ? अन्योन्यसङ्गेनोदिता विविधविकारा अष्ट सात्त्विका आदिपदेन सञ्चार्य्यादयस्त एव भूषास्ताभिः प्रमुग्धौ अतिमनोहरौ। वाम्येन उत्कण्ठया चातिलोलौ। लोलश्चलमतृष्णयोः। स्मरमखे कन्दर्पयज्ञे ललिताद्यालीनां नर्म्मणा परिहासवाक्येनाप्तशातौ आप्तं याभ्यां। तौ दोलालीलारण्य-लीलाजलक्रीडावंशीहृतिमधुपानसूर्य्यपूजादिरूपा लीला ययोस्तौ ।।१।।

अथानन्तरमत्र स्वगृहमध्ये। सा नन्दनन्दनप्रिया श्रीराधा प्रियस्य श्रीकृष्णस्य सङ्गमोत्सुकैर्निजेन्द्रियैर्युगपत् एकदा पृथक् पृथक् आकृष्टचित्ता सती स्वमात्मानं सान्त्वयन्तीं विशाखामवदत् ।।२।।

मध्याह्न कालमें मैं उन श्रीराधाकृष्ण का स्मरण करता हूँ । मध्याह्न में आप दोनों परस्पर सङ्गप्राप्ति के कारण विविध विकार अर्थात् अष्टसात्त्विक एवं सञ्चारादि भावरूप भूषणों से अति मनोहर, वाम्य उत्कण्ठासे अतिशय सतृष्ण, कन्दर्प लीला तथा ललितादि सखीगण के परस्पर परिहासमय वाक्य से सुखी होते हैं, एवं दोलालीला, अष्टलीला, जलक्रीड़ा, वंशीहरण रमण, मधुपान एवं सूर्य्यपूजादि रूप लीलाओं में तत्पर होकर परिजनों के द्वारा सुसेवित होते हैं ।।१।। अनन्तर निजगृह में श्रीव्रजेन्द्रनन्दन प्रिया श्रीवृषभानुनन्दिनी राधा प्रियतम श्रीकृष्णके सङ्ग प्राप्तिके लिए एककालीन पृथक् पृथक् रूपसे इन्द्रियगण समुत्सुक होनेपर उससे आकृष्ट चित्त होकर अपने को सान्त्वना देती हुई विशाखा को कही ।।२।। हे सखि ! जो निज

सौन्दर्य्यामृतसिन्धुभङ्गललनाचित्ताद्रिसंप्लावकः
कर्णानन्दिसनर्म्मरम्यवचनः कोटीन्दुशीताङ्गकः।
सौरभ्यामृतसंप्लवावृतजगत् पीयूषरम्याधरः
श्रीगोपेन्द्रसुतः स कर्षति बलात् पञ्चेन्द्रियाण्यालि मे ॥३॥

नवाम्बुदलसद्द्युतिर्नवतड़िन्मनोज्ञाम्बरः
सुचित्रमुरलीस्फुरच्छरदमन्दचन्द्राननः।
मयूरदलभूषितः सुभगतारहारप्रभः
स मे मदनमोहनः सखि! तनोति नेत्रस्पृहाम्॥ ॥४॥

इन्द्रियैरिति यदुक्तं तदेव व्यक्तमाह। हे आलि! मे पञ्चेन्द्रियाणि स कृष्ण आकर्षति। कीदृशः? सौन्दर्य्यरूपामृतसमुद्रस्य तरङ्गैः स्त्रीणां चित्तपर्व्वतानां संप्लावकः इत्यनेन नेत्रेन्द्रियं कर्णमानन्दयितुं शीलं यस्य तादृश नर्म्मसहितं वचनं यस्येति कर्णां। कोटीन्दुशीताङ्गकः इति स्पर्शेन्द्रियं। सौरभ्येत्यादिना घ्राणं पीयूषेत्यादिना रसनां॥३॥

अथैकैकमेषां पञ्चेन्द्रियाणां नामग्राहपूर्व्वकमाकर्षणं कथयन्ती सती, कृष्णस्य रूपादिपञ्चगुणानुक्तानपि प्रेमोत्कण्ठया पुनस्तान् पञ्चश्लोक्या स्पष्टयन्ती रूपं स्पष्टयति नवाम्बुदेत्याद्येकेन। हे सखि! स मदनमोहनः मदनस्य कन्दर्पस्य मोहनः। यद्वा, मदयति सम्भोगांशे हर्षयति विप्रलम्भांशे ग्लापयति चेति मदनः। मदी हर्षग्लापनयोः। ताभ्यां मोहयति स्ववशीकरोति इति मोहनः स चासौ स चेति सः। श्रीकृष्णः मे मम नेत्रे स्पृहां तनोति। स्वसौन्दर्य्यरूपगुणेनेति शेषः। कीदृशः? नवाम्बुदादपि लसन्ती

सौन्दर्य्य रूप अमृत समुद्र की तरङ्गके द्वारा रमणीगण के चित्तरूप पर्वत को संप्लावित करते हैं, जिनका परिहासमय वचन, कर्णद्वय को आनन्द दान करता है, जो कोटिचन्द्रनिन्दित शीतलाङ्ग हैं, जिनका अमृत तुल्य रमणीय अधर स्वीय सौरभामृत द्वारा जगत्को आप्लावित करता हैं, वह श्रीव्रजेन्द्र नन्दन बलपूर्वक मेरी पञ्चेन्द्रिय को, अर्थात् सौन्दर्य्यरूप अमृतसे नयन युगल को, नर्म्मवाक्यामृत से कर्णद्वय का कोटिचन्द्रविनिन्दित शीतलाङ्ग के द्वारा स्पर्शेन्दिय को सौरभके द्वारा घ्राणेन्द्रिय को एवं अधरामृत के द्वारा रसनेन्द्रिय को आकर्षण करते हैं।।३।। हे सखि! नवजलधर से भी जिन की अङ्गकान्ति अति सुन्दर परिधेय वसन, नूतन विद्युन्माला से भी मनोज्ञ, विचित्र मुरलीके द्वारा जो शोभित, जिनके वदनचन्द्र शरतकालीन चन्द्रसे भी समुज्ज्वल, जो शिखिपिञ्छ से विभूषित हैं, जिनके गलदेश में नक्षत्र मालाकी भाँति हार

नदज्जलदनिस्वनः श्रवणकर्षि सत् सिञ्जितः
सनर्म्मरससूचकाक्षरपदार्थभङ्ग्युक्तिकः ।
रमादिक–वराङ्गनाहृदयहारिवंशीकलः
स मे मदनमोहनः सखि ! तनोति कर्णस्पृहाम् ॥ ॥५॥

द्युतिर्यस्य सः। नवतडितोऽपि मनोज्ञमम्वरं यस्य सः। सुष्ठु चित्रया रुचिरया मुरल्या स्फुरत् शोभमानं शरत् पूर्णचन्द्र इवाननं यस्य सः। अनेन मुखस्य चन्द्ररूपकेण मुरल्यास्तद्गलदमृतधारात्वमायात्वं तरया ध्वनिस्तु गर्ज्जितमिति वोद्ध्यं। मयूरदलभूषितः मयूरदलैः चन्द्रकचारुमयूरशिखण्डकमण्डलवलयितकेशमित्युक्त्या चूडायामामूलाग्रं पार्श्वद्वये वलयीकृतैः विम्बा, चूडाग्रे त्रिशाखाकारैः त्रिभिः शिखिपिञ्छैर्भूषितः। अनेन कृष्णस्य मेघरूपकेण वर्हाणामिन्द्रधनुस्त्वमायातं। सुभगताग्हारप्रभः। तारा इव हारो मुक्तावली मुक्तामाला। हारो मुक्तावलीत्यमरः। सुभगश्चासौ स चेति सुभगतारहारस्तस्य प्रभा शोभा यस्मिन्। भूषणभूषणाङ्गमित्युक्तो मेघे चन्द्रताराणामस्फुरणात्। कृष्णस्याद्भुतमेघत्वं। त्रिभङ्गेत्यादि द्वितीय-तृतीयपादपाठभेदेतु श्लोकस्यापि विशेषणाभ्यां मेघ इव मेघः। तत्र त्रिभङ्गरुन्निराकृतिर्मधुरवन्यवेशोज्ज्वलः। सुधांशुमधुराननः कमलकान्तिजिल्लोचनः। इति विशेषणचतुष्टयेन सोऽप्याकृतिमान्। तत्रापि त्रिभङ्गललितः। तत्रापि मधुरवन्यवेशेन शोभितः। तत्राप्यत्याह्लादकाभ्यां चन्द्रपद्मद्वयाभ्यां संयुक्तः। अनेनापि अद्भुतमेघत्वमायातं। अतो मम नेत्रयोश्रोतकत्वमुह्यं ॥४॥

अथ शब्दं स्पष्टयति नदज्जलदेत्येकेन। हे सखि ! स कृष्णो मम कर्णस्पृहां तनोति। स्वशब्देनेति शेषः। कीदृशः ? नदज्जलदेति। नदतो जलदस्य निःस्वन इव निस्वनः कण्ठध्वनिर्यस्य गम्भीर इत्यर्थः। पुनः किम्भूतः श्रवणकर्षि कर्णकर्षि सदुत्तमं सिञ्जितं भूषाणानां ध्वनिर्यस्य सः।

भूषणानान्तु सिञ्जितमित्यमरः। पुनः नर्म्मणा परिहासेन सह वर्त्तमानैरतएव सरससूचकैः। किम्वा सनर्म्मरसस्य सूचकैरक्षरैः। अनेन ज्ञातं अन्येषां वचनानि वा रससूचकानि स्युः कृष्णस्य वचनानामक्षराण्यपि रससूचकान्येवेति। तैर्जातानां पदानां विभक्त्यन्तशब्दानां या अर्थभङ्गी अर्थकौशलं। किम्वा सनर्म्मरससूचिकान् क्षरति

दोदुल्यमान है, वह नन्दनन्दन मेरे नयनों की तृष्णा को वर्द्धित करते रहते हैं।।४।। हे सखि ! जिनके कण्ठशब्द मेघके समान सुगम्भीर, जिनके भूषणों की ध्वनि कानों का आकर्षण करती है, जिनके सपरिहास वचन से विविध प्रकार भङ्गी प्रकटित होती है, एवं जिनकी मुरलीध्वनि लक्ष्मी प्रभृति

कुरङ्गमदजिद्वपुःपरिमलोर्म्मिकृष्टाङ्गनः
स्वकाङ्ग–नलिनाष्टके शशियुताब्जगन्धप्रथः।
मदेन्दुवरचन्दनागुरुसुगन्धिचर्च्चार्च्चितः
स मे मदनमोहनः सखि ! तनोति नासास्पृहाम् ॥ ॥६॥

हरिन्मणिकवाटिकाप्रततहारिवक्ष स्थलः
स्मरार्त्ततरुणीमनःकलुषहन्तृदोरर्गलः।
सुधांशुहरिचन्दनोत्पलसिताभ्रशीताङ्गकः
स मे मदनमोहनः सखि ! तनोति वक्षःस्पृहाम् ॥ ॥७॥

श्रवणकृतां हृदयान्न निर्यातीत्यक्षरपदानां या अर्थभङ्गी सोक्तौयस्य। किम्वासैवोक्तिर्यस्य। यद्वा, रससूचकाक्षर पदार्थभङ्गया सह वर्त्तमानोक्तिर्यस्य। यद्वा, सनर्म्मरस-सूचकाक्षरपदार्थानां भङ्गी भङ्गवान् लहरीमान् समुद्रः अर्थान्नर्म्मरससमुद्रः तद्रूपोक्तिर्यस्य सः। पुनः रमादिकानामुत्तमस्त्रीणां हृदयहारी वंश्याः कलो मधुरास्फुटध्वनिर्यस्य सः। पुनः रमादिकानामुत्तमस्त्रीणां हृदयहारी वंश्याः कलो मधुरास्फुटध्वनिर्यस्य सः। वयन्तु मानुष्यस्तत्रापि युवत्यः अर्व्वाचीनाः तत्रापि सजातीयः तत्रापि तस्य सम्भोग्याः तस्य वाञ्छनीयाः प्रियाश्च। अतस्तत्कर्त्तृकमस्मच्चित्ताकर्षणं किं विचित्रमिति ॥५॥

स कृष्णो मम नासास्पृहां तनोति स्वसौरभेणेति शेषः। कुरङ्गमदोमृगमदस्तज्जिद्वपुषः। परिमलोर्म्मिभिराकृष्टा अङ्गना उत्तमा नार्य्यो येन सः। स्वकीयाङ्गरूपनलिनाष्टके पादद्वय-करद्वय-नेत्रद्वय-नाभि-मुखरूपाष्ट-कमलेषु शशी कर्पूरस्तद्युताब्जस्य गन्धं प्रथयति विस्तारयति यः सः। मदः कस्तूरी च इन्दुः कर्पूरश्च वरचन्दनश्च अगुरुः कृष्णागुरुश्च एतैः कृताभिः सुगन्धि-विशिष्टचर्च्चाभिरङ्गलेपकैरर्च्चितो लिप्तः ॥६॥

महिलागणके हृदय को आकृष्ट करती है, वह मदनमोहन मेरे कर्णद्वय के आनन्द विस्तार कर रहे हैं।।४।। हे सखि ! जिनके मृगमदजयि श्रीअङ्ग की सौरभ तरङ्ग के द्वारा अङ्गनागण वशीभूत होती है। जो निज देहरूप अष्टपद्म से अर्थात् पदद्वय, करद्वय, नेत्रद्वय, एवं नाभि एवं मुखरूप अष्टकमल से, कर्पूरयुक्त पद्म की सुगन्ध को परिवर्द्धित कर रहे हैं, और जो मृगमद, कर्पूर, उत्कृष्ट चन्दन, कृष्णागुरु प्रभृति द्रव्य द्वारा निर्मित अङ्गविलेपनयुक्त हैं, वह मदनमोहन मेरी नासिका को सुखी कर रहे हैं।।६।। हे सखि ! जिनका

व्रजातुलकुलाङ्गनेतर–रसालितृष्णाहर–
प्रदीव्यदधरामृतः सुकृतिलभ्यफेलालवः।
सुधाजिदहिवल्लिका–सुदलवीटिकाचर्व्वितः
स मे मदनमोहनः सखि ! तनोति जिह्वास्पृहाम् ॥ ॥८॥

तथागता सा तुलसीसभां तां गुञ्जावलीं गन्धफलीयुगञ्च।
निवेदयन्ती ललिताकराब्जे वृत्तं समस्तं मुदिता शशंस॥ ॥९॥

स्वस्पर्शेन वक्षःस्पृहां तनोति कीदृशः ? इन्द्रनीलमणिनिर्म्मितकवाटिके इव प्रततं विस्तीर्णं हारि मनोहरं वक्षःस्थलं यस्य सः। स्मरार्त्ततरुणीनां मनसः कलुषं मनस्तापस्तस्य हन्तृणी नाशके दोषौ राहूतद्रूपार्गले यस्य सः। अर्गलाभ्यां रोधेनेव वाहुभ्यामालिङ्गनेन मनस्ताप नाशयतीत्यर्थः। सुधांशुश्चन्द्रश्च हरिचन्दनमुत्तम-चन्दनञ्च उत्पलं पङ्मञ्च सिताभ्रः कर्पूरश्चैतेभ्योऽपि शीतं शीतलमङ्गं यस्य सः। अथ कर्पूरमस्त्रियां घनसारश्चन्द्रसंज्ञः सिताभ्रो हिमवालुकमित्यमरः ॥७॥

स्वाधरामृतरसेन जिह्वास्पृहां तनोति कीदृशः ? ब्रह्मस्यातुलकुलाङ्गजास्तु-लनारहितव्रजसुन्दर्य्यस्तासामितररसश्रेणिषु या तृष्णा तां हरतीति तथाभूतं। सत् प्रदीव्यदधरामृतं यस्य सः। किन्तदिति व्यञ्जयन्ती तस्य दुर्लभतामाह, सुकृतीति सुकृतिभिः सुष्ठुच ततकृतं कर्म्म हरितोषं यदित्यादुचक्तशुद्धभक्तिस्तदुचक्तैरेव लभ्यः फेलाया भक्ष्यःपेयादीनां भुक्तावशेषस्य लवो यस्य सः। एवं सामान्यतः कृष्णाधरामृतमात्र स स्पृहां शसन्ती सती, विशेषतः कृष्णेन स्वमुखात् पूर्व्वमर्पित ताम्बूलचर्व्वितं स्पृहयन्ती सती, पुनस्तं विशिनष्टि सुधाजिदिति। सुधाजिता अहिवल्लिका ताम्बूलवल्ल्या तस्याः सुदलैः शोभनपत्रैर्निर्म्मिता या वीटिकास्तासां चर्व्वितं चर्व्वणं यस्य सः ॥८॥

वक्षःस्थल विस्तीर्ण इन्द्रनीलमणि कवाटिका की भाँति अति मनोहर है, जिनके बाहुयुगल कन्दर्प शरसे व्यथित युवतीगणके मानस कलुष अर्थात् मनःपीड़ाको विनष्ट करने में अर्गल स्वरूप है, एवं चन्द्र, चन्दन, उत्पल, कर्पूर की भाँति जिनका अङ्ग सुशीतल है, वह श्रीमदनमोहन मेरे वक्षःस्थलका आनन्द विस्तार कर रहे हैं ।।७।। हे सखि ! जिनका सुमिष्ट अधरामृत, उपमा रहित व्रज रमणीगण की इतर रससमूह की स्पृहा को हरण करता रहता है, पुण्यफल राशि न होने से जिनका अधरामृत लाभ सम्भव नहीं है, एवं जिनकी चर्वित ताम्बूल वीटिका अमृत की पराजित

श्रवसोरवतंसकद्वयीं हृदि गुञ्जास्रजमप्यमूं शुभाम्।
हरिसङ्गसमृद्धसौरभां प्रियसख्या ललिता मुदा दधे॥ ॥१०॥

तत्स्पर्शतः फुल्लसरोजनेत्रा कृष्णाङ्गसंस्पर्शमिवानुभूय।
कम्पाकुला कण्टकिताङ्गयष्टिरुत्कापि गन्तुं स्थगिता तदासीत् ॥११॥

धीरता वामता सूक्ष्ममेधालीभिः प्रबोधिता।
त्वरयन्ती सखीर्याने भङ्ग्या परिजहास सा॥ ॥१२॥

अथ सा तुलसी तां सभामागता सती, कृष्णदत्तां गुञ्जावलीं गन्धफलीं चम्पककलिका तयोर्युगञ्च ललिताकरे निवेदयन्ती समस्तं वृत्तं वार्त्ता शशंस कथयाञ्चकार॥९॥

ललिता प्रियसख्या राधायाः स्रवसोः कर्णद्वये अमूमवतंसकद्वयीं कर्णभूषणद्वयीं गन्धफलीयुगं ददौ, हृदि गुञ्जस्रजमपि ददौ। किम्भूतां, शुभां कृष्णप्राप्त्यनुकूलरूपां, पुनः हरिसङ्गाद्धेतोः समृद्धं सौरभं यस्यास्तां ताञ्च॥१०॥

तत्तयोरवतंसद्वयी गुञ्जास्रजोः स्पर्शात् फुल्लसरोज इव नेत्रे यस्याः सा राधा कृष्णाङ्गस्पर्शमिवानुभूयकम्पपुलकयुक्ता तदा गन्तुमुत्कण्ठितापि स्थगितासीत्॥११॥

स्वकीयधीरतावामतासूक्ष्ममेधारूपाभिः सखीभिः प्रबोधिता स्वीयधैर्य्यादिना विवेकवती सा राधा याने श्रीकृष्णनिकटगमने त्वरयन्ती ललितादिसखीः परिजहास॥१२॥

करती रहती है, वह मदनमोहन, मेरी जिह्वास्पृहा को बढ़ाते रहते हैं।।८।। श्रीराधा इस प्रकार उत्कण्ठिता होकर श्रीकृष्ण विषय में निज लालसा को प्रकट कर रही थी, उस समय तुलसी उस सभामें आकर कृष्णप्रदत्त गुञ्जामाला एवं चम्पककलिकाद्वय को ललिता को देकर यावतीय वृत्तान्त को कही।।९।। उस समय ललिताने हर्षान्विता होकर श्रीकृष्ण प्राप्तिके अनुकूलरूप एवं कृष्णसङ्ग हेतु समृद्ध सौरभ सम्पन्न उस चम्पक कलिकाद्वय को श्रीराधा के कर्णयुगल में एवं गुञ्जामाला को श्रीराधाके कण्ठमें पहिना दी।।१०।। तब विकसित पद्मनेत्र श्रीराधा, गुञ्जाहार एवं चम्पककलिकायुगल के स्पर्शमात्र से श्रीकृष्णाङ्ग स्पर्शसुखानुभव से कम्प एवं पुलकसे शोभिता हो गई, और श्रीकृष्ण समीप में गमन हेतु उत्कण्ठित होकर भी स्थगिता हो गई।।११।। श्रीराधा अपनी धीरता, वामता एवं

पश्यताग्रे दिदृक्षा चेद्गत्वालं मदपेक्षया।
शैव्या वाग्वागुराबद्धं कृष्णसारं मृगेक्षणाः॥ ॥१३॥

विधेयः पद्मिनीनां वः प्रयत्नः कृष्णपद्मिनः।
चन्द्रावलीसखीवारीपतितस्य समुद्धृतौ॥ ॥१४॥

न हठात् क्रियते सुपण्डितैरविचारात् कृतमप्यनर्थकं।
सुविचार्य्य कृतं हि कल्पते सुधियां साधु फलोपपत्तये॥ ॥१५॥

ललिताह सत्यमेतद्यन्न सङ्केतगो हरिः।
किन्तु शैव्यादिभिर्वीतस्तद्यानं मानहानये॥ ॥१६॥

परिहासमाह, हे मृगेक्षणाः! द्रष्टुमिच्छा चेत् अग्रे गत्वा मदपेक्षायामलं व्यर्थं शैव्याया वागेव वागुडा मृगबन्धनीतया बद्धं कृष्णसारमुखं। पक्षे, कृष्णस्य सारं धैर्य्यं कृष्ण एव सारस्तं वा पश्यत॥१३॥

चन्द्रावल्याः सखी सैव वारी गजबन्धनी वारी हस्तिग्रहणार्थं गर्त्तविशेषो वा, तत्र पतितस्य वो युष्माकं पद्मिनीनां हस्तिना कृष्णरूपपद्मिनः हस्तिनः समुद्धृतौ सम्यगुद्धारे युष्माभिः प्रयत्नो विधेयः॥१४॥

सुपण्डितैः कर्त्तव्यमपि हठात् न क्रियते। अचिरात् कृतमप्यनर्थकं व्यर्थं स्यात्। सुविचार्य्य कृतं कार्य्यं सुधियां साधु फलाय कल्पते॥१५॥

एतत् सत्यं यद्यस्मात् हरिः सङ्केतगो न, किन्तु शैव्यादिभिर्विशेषेण इतः युक्तस्तस्मात् तद्यानं गमनं मानहानये स्यादिति। यद्वा, हरिः सङ्केतगः शैव्यादिभिर्वीतो हरितथेति भावः॥१६॥

सूक्ष्मबुद्धिरूपा सखियों के द्वारा प्रबोधिता अर्थात् निज धैर्य्यादि द्वारा विवेकवती होकर श्रीकृष्णके निकट जाने के लिए जल्दी करनेवाली ललिता आदि सखियों की वचनभङ्गी के द्वारा परिहास करने लगी॥१२॥ मृगाक्षिगण! यदि तुम सबको देखने की इच्छा हो गई है, तो मेरी अपेक्षा क्यों करती हो, पहले ही जाकर देखलो, शैव्याके वाक्यरूप वागुरा के द्वारा (मृगबन्धनी के द्वारा) कृष्णसार बद्ध होकर है, अर्थात् शैव्या के वाग्जाल से कृष्ण का धैर्य्य अपहृत हुआ है॥१३॥ परिहास करती हुई फिरसे कही, हे सुन्दरीगण! चन्द्रावली को सखीरूप वारी अर्थात् गजबन्धनी में हस्ती पकड़ने की गड्ढे में, कृष्णरूप पद्मी (हस्ती) गिरगया है, तुमसब तो पद्मिनी हो, उसे वहाँसे निकाल लेनेकी चेष्टाकरना कर्त्तव्य है॥१४॥ हे सहचरीवृन्द!

अथेशा कृष्णसङ्गाशोत्कलिकाव्याकुलान्तरा।
तस्य दुर्लभतास्फूर्त्त्या मनस्येतदचिन्तयत्॥ ॥१७॥

ननन्दा विद्वेष्ट्री पतिरतिकटुः सापि कुटिला
धवाम्बा मे पद्माप्रभृतिरिपुपक्षश्च बलवान्।
वनं व्याप्तं सर्व्वं व्रजधनजनैरह्नि सखिभि-
र्वृतः कृष्णो लभ्यः कथमिह भवेद्विघ्नबहुले॥ ॥१८॥

निष्प्रत्यूहं हरेः सङ्गो दुर्लभो मेऽद्य दुर्विधेः।
इत्याकुलधियस्तस्याः शुभासीच्छकुनोन्नतिः॥ ॥१९॥

ईशा राधा कृष्णस्य सङ्गे या आशा तया वा उत्कलिका उत्कण्ठा तया व्याकुलमन्तरं यस्याः सा। तस्य कृष्णस्य दुर्लभतास्फूर्त्त्या ॥१७॥

चिन्तामाह, विघ्नबहुले अह्नि दिवसे कृष्णः कथं लभ्यो भवेत्। ननन्दा विद्वेष्ट्रीत्यादिविघ्नाः ॥१८॥

दुर्विधेर्मे अद्य निष्प्रत्यूहं निर्विघ्नं हरेः सङ्गे दुर्लभः। इत्याकुलधियस्तस्याः शुभा शकुनोन्नतिरासीत्। शकुनं शुभसूचकं ॥१९॥

सुपण्डितगण कर्त्तव्य कार्य भी अकस्मात् सम्पन्न नहीं करते हैं, अविचार पूर्वक कर्म करने से कृत कर्म्म भी व्यर्थ होता है, इस हेतु आप सब सुविचार कर ही कार्य करते हैं, सुतरां उन सबका उक्त कार्य सत्फल के लिए ही होता है।।१५।। श्रीराधाके वाक्य को सुनकर ललिता बोली, सखि! तुमने जो कहा सो ठीक है, कारण श्रीकृष्ण सङ्केत स्थानमें नहीं गये हैं। किन्तु शैव्यादि सखियों के साथ हैं, अतएव इस अवस्था में वहाँ पर जाने से मान हानि होने की सम्भावना ही है।।१६।। अनन्तर श्रीराधा श्रीललिताके कथन को सुनकर श्रीकृष्ण सङ्ग-प्राप्ति की आशा से उत्कण्ठित होकर व्याकुलभाव से दुर्लभतास्फूर्ति होने के कारण मनमें इस प्रकार सोचने लगी।।१७।। ननद भी सर्वदा मुझे विद्वेष करती है, पति भी अति कटुभाषी है, सास जटिला अतिशय कुटिल है, पद्मा प्रभृति गोपीगण हमारे अतिबलवान् शत्रुपक्ष हैं, दिन में समस्त वनप्रदेश गो, एवं गोपाल से परिवृत हैं। श्रीकृष्ण सखागण के साथ ही रहते हैं। अतएव इस प्रकार विघ्न सङ्कुल अवस्थामें कृष्ण की प्राप्ति कैसे हो सकेगी?।।१८।। हाय! मैं कितनी हतभाग्य हूँ। आज निर्विघ्न से कृष्ण मिलन भी दुर्ल्लभ हुआ। यह कह कर श्रीराधा व्याकुल हो गई, उस समय कृष्ण दर्शनके लिए मङ्गल सूचक ध्वनि

सुलभो वृषभः स गिरौ कमपि प्रसभं गणको वहिरित्यवदत्।
निजवामकुचोरुभुजानयनं प्रियसङ्गतये स्फुरदाशु समम्॥ ॥२०॥

भविकशकुनजातामोदपूर्णापि गाढप्रणयविसरजासम्भावनालीनचित्ता।
हृदयदयितवार्त्ताप्राप्तितृष्णास्रवन्त्या सममहह! धनिष्ठामागतां सा ददर्श ॥२१॥

स्वमिलनमुदितां तां वीक्ष्य राधा धनिष्ठां
हृदयदयितपादैः प्रेरितां मन्यमाना।
उदित-विविधभावव्याकुलाप्यस्य वार्त्ता-
श्रवणकुतुकदिग्धा-व्याजतस्तामपृच्छत्॥ ॥२२॥

शकुनमाह, वहिर्गणकः कमपि जनमवदत्। गिरौ स वृषभः प्रसभं हठात् सुलभः। इत्येकः शकुनः नरेङ्गिताख्यः। एकस्य चिन्तयां अन्यं प्रति तदानुकूल्यस्य प्रातिकूल्यस्य वा कथनं नरेङ्गिताख्यं। वृषभस्य सुलभकथनेन कृष्णस्य सुलभरूपः। अन्येऽपि शकुन आह, निजवामकुचादिकं सममेकदा प्रियसङ्गताय अस्फुरत्॥२०॥

भविकः कुशलो यः शकुनस्तज्जातामोदेन पूर्णापि गाढःप्रणयस्य विसरेण समूहेन जाता या सम्भावना तत्र लीनं चित्तं यस्याः सा। हृदयदयितस्य प्राणप्रियस्य वार्त्ताप्राप्त्या उत्पन्ना तृष्णाख्या स्रवन्ती नदी तया समं आगतां धनिष्ठां सा ददर्श। अहह! हर्षे स्रवन्ती निम्नागापगा इत्यमरः॥२१॥

उठी।।१९।। बाहर कोई एक गणक पण्डित किसी से कह रहा है, पर्वत में वृषम दर्शन सुलभ है, अर्थात् पर्वत में सत्वर वृषभ लाभ होगा, श्रीराधा, इङ्गित पूर्व वचन को शुभसूचक वाक्य मानकर सोचने लगी, वृषभ सुलभ है, कहने से श्रीकृष्ण प्राप्ति सुलभ है, कारण, यदि वृषभ शब्दका अर्थ श्रेष्ठ है, तब श्रीकृष्ण ही तो श्रेष्ठ हैं, तब तो मेरा कृष्णसङ्ग लाभ अवश्य होगा, इसमें कोई सन्देह नहीं है, अनन्तर आपने और भी शुभलक्षण को देखा, प्रिय सङ्गके लिए उस समय निज वाम कुच, वाम उरु, वाम भुज, वाम नयन स्पन्दित होने लगे।।२०।। अनन्तर श्रीराधा, गणक पण्डित के मुखसे शुभ सूचक वाक्य एवं निज वामाङ्गके स्पन्दन से आनन्दिता होने परभी प्रणय की गाढ़ता से उद्भूत जो सम्भावना अर्थात् कृष्णके सान्निध्य प्राप्ति होगी अथवा नहीं ? इस चिन्ता से विभोर होगई, इस समय धनिष्ठा श्रीकृष्ण के समीपसे श्रीराधा के निकट आ पहुँची। तब श्रीराधा धनिष्ठा को देखकर समझ गई कि धनिष्ठा ही प्रणवल्लभ की प्राप्तिरूप तृष्णा नदी वनकर ही आई है, अतएव इससे प्राणनाथ का सम्वाद जान पाऊँगी।।२१।। तब श्रीराधा

कुत इह सखि ! वृन्दारण्यतो माधवश्रीः
कथय किमनुभूता लोकिता गोत्रवर्य्यः ।
व्रजधनजनपाता सङ्गतश्चेक्षितोऽसौ
कथयतु भवती सा कीदृशी वा स कीदृक् ॥ ॥२३॥

विकसितवनमालाकृष्टपुष्टालिवृन्दा
विकचतिलकलक्ष्मीः कोकिलालापरम्या ।
हृदि युवतिजनानां काममुद्दीपयन्ती
स्फुरति सखि ! विशाला माधुरी माधवस्य ॥ ॥२४॥

राधा धनिष्ठां वीक्ष्य श्रीकृष्णप्रेषितां मन्यमाना तस्मादेव उदितविविधभावेन व्याकुलापि तस्य कृष्णस्य वार्त्तायाः श्रवणकौतुकेन युक्ता छलेन तामपृच्छत् ॥२२॥

हे सखि ! कुतः कस्मात् स्थानादागता । साह वृन्दावनात्, राधाह माधवस्य कृष्णस्य वसन्तस्य च श्रीः किमनुभूता । साह आलोकिता, असौ गोत्रवर्य्याः पर्व्वतश्रेष्ठो गोवर्द्धनः कुलश्रेष्ठः श्रीकृष्णः स च ईक्षितः मयेति शेषः । कीदृशः ? व्रजधनानां गवां व्रजजनानां गोपानाञ्च पाता रक्षिता । पक्षयोरेकोऽर्थः । सङ्गतः हृदयङ्गमः सुन्दरः । कृष्णपक्षे, सङ्गतः संप्राप्तः सङ्केतकुञ्जं प्राप्तः धनिष्ठा प्राह, ईक्षित इति श्रुत्वा राधाह । सा माधवश्रीः कीदृशी गोत्रवर्य्यश्च कीदृक् भवती कथयतु ॥२३॥

हे सखि ! माधवस्य वसन्तस्य च विशाला माधुरी स्फुरति । कीदृशी ? विकसितवनश्रेणीभिः । पक्षे, वनमालया चाकृष्टं पुष्टश्चालिवृन्दं भ्रमरसमूहो यया सा ।

हँसमुखी धनिष्ठा को उपस्थित देखकर, प्राणनाथने ही इसको भेजा है, यह जानकर जो भाव उत्पन्न हुआ, उससे व्याकुल चित्त भी श्रीकृष्ण वार्त्ता श्रवण के लिए कौतुकी होकर छलसे धनिष्ठा को पूछने लगी ।।२२।। सखि ! तुम कहाँ से आ रही हो ? धनिष्ठा वोली, वृन्दावन से, श्रीराधा वोली, वहाँपर माधव का सौन्दर्य ''वसन्त का श्रीकृष्ण का'' कैसा है कहो ? धनिष्ठा वोली, मैंने व्रजसम्वन्धीय गो गोपों का रक्षक गोत्रवर्य को (गोवर्द्धन श्रीकृष्ण को) देखा है, श्रीराधा बोली, कह तो माधव कैसा है, गोत्रश्रेष्ठ भी किस प्रकार है, अर्थात् वसन्त की शोभा एवं कृष्णको शोभा कैसी है ? गोवर्द्धन पर्वत एवं श्रीकृष्ण किस प्रकार हैं ? प्रश्नद्वय का तात्पर्य्य है ।।२३।। धनिष्ठा माधवश्री को अर्थद्वयके द्वारा वर्णन करके कही, सखि ! वसन्त की विशाल माधुरी, विकसित वनश्रेणी के द्वारा भ्रमर श्रेणी को आकृष्ट करके, तिलक

विविधोत्कलिकाकीर्णां दर्शनात् स्मरवर्द्धिनीम्।
माधवीयामवस्थां कः सखि! वर्णयितुं क्षमः॥ ॥२५॥

धरोद्धर्त्ता धातूच्चयरचितचित्रावयववान्
ध्वनद्वेणुर्धेनुव्रज–जलदभीतिव्रजहरः।
वयःक्रीडोन्मीलः सकलसुरभीवर्द्धनकृती
विरावोच्चैःशृङ्गो लसति सखि! गोवर्द्धनधरः॥ ॥२६॥

विकचा प्रफुल्ला च तिलकवृक्षस्य। पक्षे, तिलकस्य श्रीः शोभायत्र सा। कोकिलस्यालापेन शब्देन। पक्षे, कोकिलस्यालाप इव य आलापस्तेन रम्या। युवतिजनानां हृदि कामं कन्दर्पमभिलाषं चोद्दीपयन्ती उभयपक्षे समोऽर्थः ॥२४॥

हे सखि! माधवीयामवस्थां कः वर्णयितुं क्षमः सामान्याकारेण किञ्चित् शृणु विविधाभिरुत्कृष्टकलिकाभिः। उत्कलिकाभिरुत्कण्ठाभिः कीर्णां व्याप्त्यां दर्शनात् स्मरवर्द्धनीमित्युभयपक्षे समा ॥२५॥

माधवीयां माधुरीमुक्त्वा स गोवर्द्धनः कीदृगित्यस्य प्रत्युत्तरमाह। गोवर्द्धनश्चासौ धरः पर्व्वतश्चेति सः। पक्षे, कृष्णः गोवर्द्धनः। पक्षे, धरां पृथ्वीं उद्धरतीति महीध्रे शिखरिक्ष्माभृदहार्य्यधरपर्व्वता इत्यमरः। कृष्णपक्षे, धरं गोवर्द्धनपर्व्वतं उद्धरति स्म। धातूनां गैतूनां गैरिकादीनां उच्चयेन रचितचित्राण्यवयवानि यस्य सः। उभयपक्षे साम्यं। ध्वनन्तो वेणवो यस्य। वेणवः कीचकास्ते स्युर्य्ये स्वनन्त्यनिलोद्धुता इत्यमरः। पक्षे,

---

वृक्षके पुष्पको विकसित करके कोकिलों के मनोरम आलाप द्वारा युवतियों के हृदय में कामोद्दीपन करके अतिशय रूपमें विलसित है। कृष्णपक्ष का अर्थ यह है-हे सखि! श्रीकृष्ण की माधुरी की कथा क्या कहूँ? वह विशाल माधुरी, विकसित वनमाला के द्वारा भ्रमर कुलको पुष्ट करके, तिलकशोभा से मुखशोभा को प्रकाशितकर कोकिल सदृश सुमिष्ठ वचन से युवतीवृन्द के हृदय में अभिलाष को उद्दीप्त करके विराजित है।।२४।। हे सखि! माधवसम्बन्धीय अवस्था का वर्णन करने में कौन समर्थ होगा? तब सामान्य रूपसे वर्णन करती हूँ, सुनो! उक्त माधवीया अवस्था विविध उत्कृष्ट कलिका द्वारा व्याप्त है एवं उसके दर्शन से ही कन्दर्प की वृद्धि होती है। कृष्णपक्ष में-सम्प्रति श्रीकृष्ण उत्कण्ठा से व्याप्त होगये हैं, उनकी अवस्था को देखने से ही मदन का उदय होता है।।२५।। दूसरी वात,-गोत्रश्रेष्ठ को किस प्रकार देखी हो? श्रीराधा के प्रश्न वाक्य के उत्तर में धनिष्ठाने एक वाक्य में ही

तद्वाग्भङ्गीमधुलीनां पानोन्मत्तहृदप्यसौ ।
कान्तोदन्तं स्फुटं श्रोतुं संवादमनयाकरोत् ॥ ॥२७॥

यानं क्व ते सम्प्रति ते समीपे किमर्थमावेदयितुं प्रवृत्तिम् ।
कस्य व्रजेन्दोः सखि ! कीदृशी सा स्वशत्रुकन्दर्पतमोऽभिभूतिः ॥२८॥

छायाद्वितीयोऽयमसौ सहायी निरायुधोऽयं स च शस्त्रपूर्णः ।
स्वरूपसम्पज्जयजातरोष–स्तं वाधतेऽसौ स्वमधौ समृद्धः ॥ ॥२९॥

ध्वनन् वेणुर्यस्य सः। धेनूनां ध्रुवस्य च जलदात् यज्ञभङ्गानन्तरं कुपितेन्द्रप्रेरितात् मेघात् यो भीतिव्रजः भयसमूहस्तं हरतीति सः। उभयपक्षे, वयसां पक्षिणामुन्मीलतीत्युन्मीलः उदयो यस्मिन् सः। पक्षे, वयः कैशोरं तद्योग्यक्रीडया उन्मीलति प्रकाशते यः सः। बयः पक्षिणि वाल्यादौ यौवने च नपुंसकमिति मेदिनी। सकलगवानां वर्द्धने कृति कुशलः, द्वयो साम्यं। यद्वा, कृष्णस्तु सुराणां देवानां भीतानां वर्द्धने छेदने कृती कुशलः। वृधु च्छेदने, वीना पक्षिणां रावो यस्मिन् उच्चैरुच्चं शृङ्गं शिखरं यस्य स चासौ स चेति सः। कृष्णपक्षे, विशिष्टरावैः शब्दैः उच्चैरुत्कृष्टं शृङ्गं वाद्यरूपं माहिष शृङ्गं यस्य सः लसति ॥२६॥

तस्या वाक्यभङ्गी सैव मधूली मधु तासां पानेनोन्मत्तं हृद्यस्यास्तथाभूताऽप्यसौ राधाकान्तस्य उदन्तं वार्त्ता स्फुटं श्रोतुमनया सह सम्वादमकरोत् ॥२७॥

ते तव क्व कुत्र यानं गमनं, साह ते तव समीपे किमर्थं साह प्रवृत्तिमावेदयितुं

गोवर्द्धन एवं कृष्ण का वर्णन किया है, सखि ! जिनके अङ्गप्रत्यङ्ग गैरिक प्रभृति धातुओं से चित्रविचित्र, जहाँपर निरन्तर वेणु ध्वनि होती है, जो कुपित इन्द्रके द्वारा प्रेषित जलद से भीत धेनुवृन्दके भयहर्त्ता है, जहाँपर पक्षिगण उपविष्ट है, जो समूह की उन्नति कार्य में कुशल है, जिसकी उच्चश्रृङ्ग समूह पक्षिवृन्द की कलध्वनि से परिपूर्ण है, वह धाराधर गोवर्द्धन इस प्रकार विराजमान है। कृष्णपक्ष में— जिनके अङ्गसमूह गैरिक धातुसमूह के द्वारा चित्रविचित्र है, जो वंशीध्वनि कर रहे हैं, जो मेघों के भयसे भी गो समूह के भयहारी हैं, जो कैशोर अवस्था में स्थित हैं, जो देवगणों के भय निवारण में जागरूक हैं, जिनके श्रृङ्गवाद्य से अपूर्व ध्वनि निर्गत होती है, वह धराधर के उद्धार कर्त्ता गोवर्द्धन- धर कृष्ण विराजित हैं ।।२६ ।। तब श्रीराधा धनिष्ठा के वचनामृत पानसे उन्मत्त हृदय होकर प्राणकान्त के वृतान्त को सुस्पष्टरूपसे सुनने के लिए उसके साथ वार्त्तालाप प्रारम्भ कर

समाच्छन्नं कुर्व्वन्नुपरि कुसुमैः स्वैरिव शरैः
समन्तात्सामन्तैरलिपिक–वसन्तानिलमुखैः।
भवत्कुण्डारण्यं न्यरुणदिह कृष्णं रतिपति–
र्वहिःस्थानीकिन्या इव स तव सङ्गं स्पृहयति॥ ॥३०॥

वहुधा कृतरक्षणं प्रियं पतितं दैवबलेन सङ्कटे।
तव सङ्गतिमात्रतारणे त्वरितं त्राहि न चेत् कृतघ्नता ॥३१॥

कस्य प्रवृत्तिं, साह व्रजेन्दोः। कीदृशी सा प्रवृत्तिः स्वस्य तस्य कृष्णचन्द्रस्य शत्रुः कन्दर्पः स एव तमो राहुरन्धकारो वा तेनाभिभूतिस्तत्कृत-पराभव एषा प्रवृत्तिः। एषा यस्यां वा साप्रवृत्तिः। तमो ध्वान्ते गुणे शोकेक्लीवं वा ना विधुन्तुदे इति मेदिनी ॥२८॥

पीडादाने कारणमाह, अयं कृष्णः छायाद्वितीयः एकः। असौ कन्दर्पः सहायी सहायसहितः अयं कृष्णः निरायुधः शस्त्ररहितः। कन्दर्पः शस्त्रपूर्णः। स्वरूप सौन्दर्य्यं तदेव सम्पत् तस्या जयेन कृष्णकृतजयेन जातरोषः। तत्रापि स्वमधौ वसन्ते समृद्धः इत्थम्भूतस्तं कृष्णं बाधते ॥२९॥

रतिपतिः कन्दर्पः स्वैः स्वीयैः शरैरिव कुसुमैरुपरि समाच्छन्नं कुर्व्वन् सन् भवत्कुण्डारण्यं प्रति श्रीकृष्णं न्यरुणत्। कुण्डारण्ये प्रवेश्य तं रुद्धमकरोदित्यर्थः। अतः स कृष्णो वहिःस्थाया अनीकिन्याः सेनाया इव तव सङ्गंस्पृहयति। तव सङ्गे सति ते सर्व्वे स्वयमेवाभिभुताः सन्तः अनुकूलाः स्युरित्यभिप्रायः ॥३०॥

दिया।।२७।। श्रीराधा ने धनिष्ठा को पूछा, सखि! सम्प्रति तुम कहाँ जा रही हो ? धनिष्ठा वोली, तुम्हारे पास जा रही हूँ। श्रीराधा वोली, क्यों ? धनिष्ठा वोली प्रवृत्ति विज्ञापन के लिए, श्रीराधा वोली, किस की वार्त्ता ? धनिष्ठा,–व्रजविधु की, राधा-वह वार्त्ता कैसी है ? धनिष्ठा,— कृष्णचन्द्र का शत्रु कन्दर्परूपी राहु है, उसके भयसे आप अभिभूत होगये हैं, यह उनका सम्बाद है।।२८।। उसका कारण यह है कि–श्रीकृष्ण असहाय है, केवलमात्र छाया ही सहायक है, कन्दर्प सपरिकर युक्त है, एवं कृष्ण अस्त्रहीन हैं, और कन्दर्प अस्त्रसमूह से परिपूर्ण है, श्रीकृष्ण के सौन्दर्य सम्पद से पराजित कन्दर्प क्रुद्ध होकर निजाधिकृत वसन्तकाल में समृद्धशाली होकर श्रीकृष्ण को पीड़ा प्रदान कर रहा है।।२९।। पीड़ाका प्रकार इस प्रकार है— रतिपति कन्दर्प, निज विविध कुसुमके द्वारा ऊपरसे, एवं अलि पिक वसन्त, दक्षिण अनिलरूप सैन्यवृन्द के द्वारा चतुर्दिक से कृष्ण को कुण्डारण्य में घेर लिया

त्वत्सङ्गत्या यदा भाति तदा मदनमोहनः।
अन्यत्र विश्वमोहोऽपि स्वयं मदनमोहितः॥ ॥३२॥

धृतानल्पाकल्पः कृतकुसुमतल्पो हृदि वल-
द्विकल्पः सङ्कल्पान् विदधदिह जलपंस्तव कथाम्।
स शूरोऽपि क्रूरातनुकदनदूरोज्झितधृति-
हरिः कुञ्जे गुञ्जन्मधुपपिकपुञ्जे निवसति॥ ॥३३॥

देवबलेन सङ्कटे पतितं प्रियं त्वरितं त्राहि। चेद्यदिन त्रायास्तदा तव कृतघ्नता स्यात्। मम कृतघ्नता कथं। तव सङ्गार्थं तव कुण्डे आगतस्य सङ्कटमभूत्। ननु सङ्कटात् त्रातुं मे किं बलं तत्राह। तव सङ्गतिमात्रेण तारणं यस्यात् तस्मिन् सङ्कटे। अत्र किं प्रमाणं। एवम्प्रकारेण वहुधा कृतं रक्षणं यस्य तं प्रियं। वस्तुतस्तु तव सङ्कटेऽपि वहुधा कृतं रक्षणं येन तं प्रियं अतः कृतघ्ना मा भव॥३१॥

तव वाक्ये मे न प्रतीतिः स तु मदनं मोहयतीति मदनेन मोहितः स कथं भवेत्तत्राह। त्वत्सङ्गत्या यदा भाति तदा स मदनमोहनः। अन्यत्र तव सङ्गाभावे एकस्य मदनस्य का वार्त्ता स्थावरजङ्गमात्मकसर्व्वविश्वमोहोऽपि स्वयं मदनेन मोहितः स्यात्॥३२॥

धृतोऽनल्पाकल्पो वहुभूषा येन सः, कृतः कुसुमतल्पः पुष्पशय्या येन सः। हृदि

है, इसलिए आप बाहर स्थित सेनाकी भाँति आपकी सहायता के अभिलाषी हैं। तात्पर्य यहहै कि–आपके सङ्गसे, अलि पिक, वसन्त प्रभृति सैन्यगण स्वयं ही पराजित हो जायेंगे ।।३०।। हे सखि! दैवसे आज प्रियतम का महासङ्कट आगया है, तुम सत्वर वहाँ जाकर उन्हें परित्राण करो, अन्यथा तुम कृतघ्न वनोगी, कारण, तुम्हारे लिए तुम्हारे कुण्डमें आकर ही वे सङ्कट में पड़ गये हैं, यदि कहो कि,-उस सङ्कटसे रक्षा करने की शक्ति मेरी नहीं है ? इससे मैं कहती हूँ—हे राधे! तुम्हारे सङ्गमात्रसे ही वे विपदोत्तीर्ण हो जायेंगे। इस प्रकार अनेकबार तुमसे उनकी रक्षा हुई है। अतएव हे सुन्दरि! सम्प्रति यदि तुम सङ्गदान के द्वारा प्रियतम का सङ्कटसे उद्धार नहीं करोगी, तो तुम अवश्य ही कृतघ्न दोषसे लिप्त हो जाओगी।।३१।। हे राधे! यदि कहो कि, तुम्हारे वाक्यसे मेरा विश्वास नहीं होता है, जो मदन को मोहन करने वाला है, वह मदन के द्वारा कैसे अभिभूत होगा ? इस आशङ्का को निर्म्मूल करने के लिए धनिष्ठा कहती है, सखि! जव वे तुम्हारे साथ मिलित रहते हैं तब ही मदनमोहन होते हैं, अन्यथा विश्व विमोहनकारी होकर भी

नवीनजलदद्युतिः कनकपीतपट्टाम्बरः
स्फुरन्मकरकुण्डलो घुसृणचारुचर्च्चाश्चितः।
प्रफुल्लकमलेक्षणः कनकयूथिकामाल्यवान्
शिखण्डकृतशेखरः स्फुरति साध्वि ! कुञ्जेहरिः॥ ॥३४॥

श्रीतारुण्यमहामृताब्धिविलसत्सौन्दर्य्यपाथःस्फुर-
ल्लावण्योच्चतरङ्गभङ्गिविलसत्कन्दर्पभावभ्रमे।
श्रीवंशीध्वनिवात्ययोत्थितपतद्योषाक्षिचेतस्तृण-
स्तम्बानाशु निमज्जयन्नपि हरिस्त्वद्वीथिमुद्वीक्षते॥ ॥३५॥

वलन् विकल्पोऽन्यसम्भावना यस्य सः। सङ्कल्पान् विदधन इह सङ्कल्प-विधाने तव कथां जल्पन् स हरिः शूरोऽपि क्रूरकन्दर्पस्य कदनेन खेदेन दूरे उज्भिता त्यक्ता धृतिर्येन सः। इत्थम्भूतः सन् कुञ्जे निवसति॥३३॥

तदपि धैर्य्यं धृत्वा श्रीकृष्णसौन्दर्य्यादिश्रवणोत्सुकां तां प्रति सुमधुरतया पुनराह नवीनेत्यादि। सुगमार्थः॥३४॥

श्रीतारुण्यमेव महामृताब्धिस्तत्र विलसत् सौन्दर्य्यं पाथो जलं तत्र स्फुरल्लावण्यरूपोच्चतरङ्गभङ्ग्यासह त्रिलसन् कन्दर्पभाव एव भ्रमस्तस्मिन्

स्वयं मदन से विमोहित होते हैं॥३२॥ दूसरीबात यह है सखि ! कृष्णचन्द्र विविध वेशभूषा से सुसज्जित होकर कुसुम शय्या में लेटे हुए हैं, उनके हृदय में बलवत् अन्य सम्भावना उपस्थित होने पर भी उन्होंने संकल्प लिया कि तुम्हारी कथा को छोड़कर किसी की बात नहीं करेंगे। हे सुमुखि ! वे स्वयं वीर होने पर भी क्रूर कन्दर्प की पीड़ा से धैर्य्य को छोड़कर बैठे हैं, वे तो केवल कोकिल भ्रमर गुञ्जित कुञ्ज में रह रहे हैं॥३३॥ विवरण को सुनकर श्रीराधा यद्यपि अधैर्य्य हो चुकी थी, तथापि धैर्य्यधारण कर श्रीकृष्ण के सौन्दर्य्यादि को सुनने के लिए उत्सुक हो गई यह देखकर धनिष्ठा सुमधुरवाक्य से पुनर्वार कहने लगी, हे साध्वि ! श्रीकृष्णके रूप की कथा क्या बोलूँ ? नवीन जलधर के समान उनकी अङ्गकान्ति, कनकके समान परिधेय पीत वसन, कर्णद्वय में मकराकृति कुण्डल, सर्वाङ्ग — कुङ्कुमादि सुचारुलेपन से भूषित, प्रफुल्ल कमल की भाँति लोचनयुगल, गले में स्वर्ण यूथिका की माला, एवं मस्तक में शिखि पिच्छ की चूड़ा शोभित है॥३४॥ सखि ! श्रीकृष्ण के रूपकी कथा और भी कहूँ, सुनो, उनका तारुण्य ही महासमुद्र

वकभिदि सुविदग्धे स्वां सुवैदग्ध्यधाराम्
नवतरुणिमपूर्णे नव्यतारुण्यलक्ष्मीम्।
शशिमुखि ! रतितृष्णामप्यमुष्मिन् सतृष्णे
सफलय वरवेशे वेशभङ्गीं समर्प्य ॥ ॥३६॥

प्रेमोद्भ्रान्तं द्रुतस्वान्तं स्मराक्रान्तं त्वदाश्रितम्।
मूर्च्छान्तां क्लान्तिमायान्तं कान्तं कान्ते ! द्रुतं व्रज ॥ ॥३७॥

इति सखीवचनामृतपानजप्रकटभावचयाचितविग्रहा।
अतिशयोत्सुकताजडताकुला द्रुतविलम्बितयानमतिर्वभौ ॥ ॥३८॥

श्रीवंशीध्वनिरूपा वात्या चक्रवातस्तया उत्थित-पतित योषाणां स्त्रीणां अक्षि चेतस्तृणस्तम्बान् शीघ्रं निमज्जयन्नपि हरिस्त्वद्धीर्थि तव पन्थानमुद्वीक्ष्यते ॥३५॥

बकभिदि सुविदग्धे स्वां सुवैदग्ध्यधारां समर्प्य सफलय। एवं हे शशिमुखि ! नवतरुणिमपूर्णे तस्मिन् स्वां नव्यतारुण्यलक्ष्मीं समर्प्य सफलय। एवं अमुष्मिन् कृष्णे सतृष्णे स्वां रतितृष्णां समर्प्यं सफलय। एवं वरवेशे तस्मिन् वेशभङ्गीं समर्प्य सफलय। अन्यथा अविदग्धादौ स्ववैदग्ध्यादेः समर्पणं वृथा भवति। कस्मिंश्चिदपि असमर्पणे च विफलमेव सर्व्वं स्यादिति भावः ॥३६॥

मूर्च्छा अन्ते यस्याः एवम्भूतां क्लान्तिमायान्तं। हे कान्तेप्रिये ! कान्तं प्रियं श्रीकृष्णं ॥३७॥

है, उस तरुणिमा का जो सौन्दर्य्य प्रकाशित हो रहा है, वह जलस्वरूप है, उसमें स्फूर्त्तिशील लावण्यरूप उच्च तरङ्गके साथ विलासयुक्त कन्दर्प भाव ही भँवर है, एवं सौन्दर्य्य जाल वंशीध्वनि ही चक्रवात है, उसमें निपतित रमणीगण के नयन एवं चित्तरूप तृणगुच्छ समूह निमज्जित हो जाते हैं, ऐसा होने पर भी वह हरि तुम्हारे पथ की ओर दृष्टि देकर ही रह रहे हैं।।३५।। अतएव हे सखि ! उस सुविदग्ध बकारि को निज सुवैदग्ध्य की धारा को अर्पण कर सफल बनाओ । श्रीकृष्ण नवतरुणाई से परिपूर्ण हैं, उनको अपनी तारुण्य शोभा समर्पण कर सफल करो, वह कृष्ण तुम्हारे प्रति सतृष्ण हैं, तुम उनको निज रति तृष्णा को अर्पण कर सफल करो, वह उत्तम वेषविभूषित हैं, तुम ही उनको निज वेषभङ्गी को अर्पणकर सफल करो। हे शशिमुखि ! अन्यथा सबकुछ ही वृथा होगा।।३६।। हे सखि ! श्रीकृष्ण,-प्रेमसे उद्भ्रान्त, आर्द्रचित्त, कन्दर्पशरसे आक्रान्त, तुम्हारी

ततस्तदैवागत-कुन्दवल्ल्याः स्वस्य प्रयाणाय कृतत्वरायाः ।
सा सव्यहस्तेन करं दधाना परेण लीलाकमलं चचाल ।। ।।३९।।

पुरतस्तुलसी धनिष्ठया सविशाखा ललिता च पार्श्वतः ।
परितश्च सखीततिः परा स्वसखीं तां परिवार्य्य सान्वयात् ।। ।।४०।।

स्वसमसहचरीभिः कृष्ण–राधाङ्घ्रिसेवो–
पकरणवलिताभिर्दासिकाभ्याञ्च युक्ता ।
अनुसरति युताभ्यां सूर्य्यपूजोपचारैः
प्रणयसहचरी तां मञ्जरी रूपपूर्व्वा ।। ।।४१।।

सख्या वचनामृतपानजन्यप्रकटभावसमूहेनाचितं व्याप्तं शरीरं यस्याः सा। अत्युत्सुकतया या जडता तया व्याप्त सती। द्रुतं शीघ्रं विलम्बितञ्च यानं गमनं यस्यां तथाभूता मतिर्यस्याः सा बभौ। गतिरिति पाठे तदभिन्नेत्यर्थः ।।३८।।

सा राधा सव्यहस्तेन आगत–कुन्दवल्लयाः करं दधाना। परेण दक्षिणकरेण लीलाकमलं दधाना चचाल ।।३९।।

पुरतः धनिष्ठया सह तुलसी पार्श्वद्वये ललिता विशाखा च। चतुर्दिक्षु परा अन्या सखीततिः तां राधां परिवेष्ट्य अन्वयात् ।।४०।।

कृष्णराधाङ्घ्रिसेवोपकरणयुक्ताभिः स्वसमसहचरीभिर्युता। तथा सूर्य्यपूजो-पचारैर्युताभ्यां दासिकाभ्यां तुलसीधनिष्ठिकाभ्याञ्च युक्ता प्रणयसहचरी रूपपूर्व्वा मञ्जरी तां राधां अनुसरति ।।४१।।

शरणागत, एवं मूर्च्छादशातक पहुँच चुके है, अतएव हे कान्ते ! शीघ्र कान्त को प्राप्त करो, अर्थात् उनके निकट गमन करो ।।३७।। धनिष्ठाके वचनामृत पानसे श्रीराधाके अङ्गमें प्रेम विकार सुस्पष्ट रूपमें प्रकाशित हुआ, उससे आप अत्युत्सुका तथा व्याकुल होकर द्रुतविलम्बित अवस्था में पहुँच गई ।।३८।। इस समय कुन्दवल्ली आकर सूर्य्यपूजा के लिए प्रस्थान करने के लिए जल्दी करने लगी, तब श्रीराधा वामहस्त से कुन्दवल्ली का हस्त पकड़ कर दक्षिण हस्तसे क्रीड़ा कमल को घुमाने लगी ।।३९।। जव श्रीराधा,–सूर्य्यपूजा के लिए जा रही थी, उस समय उनके आगे धनिष्ठा के साथ तुलसी पार्श्वद्वय में ललिता विशाखा एवं चतुर्दिक में अन्यान्य सखीगण निज प्रियसखी श्रीराधा को वेष्टन कर चलने लगी ।।४०।। एवं श्रीरूप मञ्जरी, श्रीराधाकृष्ण के श्रीचरण की सेवाकी सामग्रीयों से युक्त आत्मतुल्य सखीगण

व्रजाद्विनिष्क्रम्य ददर्श सा पुरः सुमङ्गलां स्त्रीं दधिपात्रधारिणीम्।
चाषं द्विजातिं नकुलं मृगावलीं धेनुं सवत्सां वृषभञ्च दक्षिणे ॥४२॥

सरसि विकचपद्मे वेष्टिते भृङ्गपङ्क्त्या
मदिरयुगलमुद्यल्लास्यमालोक्य वाला।
प्रचलदलकपालोसङ्गिरिङ्गत्सुनेत्र-
स्वरमणमुखविम्वभ्रान्तिभाक् स्तम्भितासीत्॥ ॥४३॥

इति शुभशकुनेक्षोद्भूतमुन्मन्थराणाम्
विविधकुटिलहास्योल्लासमातन्वतीनाम्।
प्रणयसहचरीणां श्रेणिभिः पूर्णपार्श्वा
मदगजगुरुयाना काननाभ्यर्णमाप॥ ॥४४॥

सा राधा शकुनं शुभसूचकं ददर्श। शकुनमाह, सुमङ्गलां स्त्रीमित्यादि। चाषपक्षिणं नीलकण्ठाख्यं ॥४२॥

वाला राधा सरसि सरोवरे प्रफुल्लकमले भृङ्गपङ्क्त्या वेष्टिते खञ्जयुगलं नृत्यसहितमालोक्य स्वरमणस्य मुखविम्वभ्रान्तिभाक् सती स्तम्भितासीत्। सनृत्यखञ्जनयुतेपद्मे तुलसीधनिष्ठिकाभ्यां मुखस्य भृङ्गश्रेणौ अलकावल्या भ्रान्तिः ॥४३॥

प्रणयसहचरीणां श्रेणीभिः पूर्णपार्श्वा। मत्तगजात् गुरुश्रेष्ठं यानं गमनं यस्याः सा काननस्य निकटमाप। कीदृशीनां अतिशुभ-शकुनदर्शनेन या मुत् हर्षस्तया मन्थराणां गर्वितानां विविधकुटिलहास्योल्लासमातन्वतीनां ॥४४॥

के साथ सूर्य्यपूजा के उपकरण से अलङ्कृत धनिष्ठा, तुलसी के साथ मिलकर श्रीराधा के पीछे-पीछे चलने लगी ।।४१।। श्रीराधा जब व्रज की सीमाको पारकर चलने लगी तो सामने दधिपात्र धारिणी एक सधवा स्त्री, दक्षिणदिक् में नीलकण्ठ पक्षी, ब्राह्मण, नकुल, मृगश्रेणी, सवत्साधेनु एवं एक वृषभ दिखाई पड़े ।।४२।। तत्पश्चात् श्रीराधा, सरोवरस्थ प्रफुल्ल कमल में भ्रमरपङ्क्ति वेष्टित नर्त्तनशील खञ्जनयुगल को देखकर स्वरमण श्रीकृष्ण की अलकावली एवं नयनयुगल समन्वित मुखबिम्ब की भ्रान्ति से स्तम्भित हो गई ।।४३।। अनन्तर उक्त समुदाय शुभलक्षण सन्दर्शन से आनन्दिता श्रीराधा, गर्ववती, एवं नानाविध कुटिल हास्योल्लास विस्तार कारिणी प्रिय सहचरी

इयमथतरुवल्लीवृन्दमुत्फुल्लयन्ती
मदकल–कलकण्ठीकाकलीकण्ठनादा ।
मधुकरकलभृङ्गीझङ्कृतोच्छिञ्जितोर्म्मि–
र्वनमनुवनजाक्षी माधवश्रीर्विवेश ॥ ॥४५॥

फुल्लश्यामलतोज्ज्वलं सुतिलकश्रीयुक् विशालार्ज्जुन–
प्रोत्फुल्लोच्चहलिप्रियं शिखिदलश्रेणीभिराभूषितम् ।
पुन्नागामलचम्पकालिकृतमालालङ्कृतं पल्लवै–
र्दीव्यत्काञ्चनविद्रुमादिवलितं तापिञ्छकान्त्युल्लसत् ॥ ॥४६॥

वनजाक्षी राधामाधवस्य वसन्तस्य श्रीः शोभा इव वनमनु वने विवेश। साम्यमाह। मदोत्कटकोकिलस्य काकली मधुरास्फुटसूक्ष्मध्वनिरिव कण्ठस्य नादो यस्याः सा। मधुकरचटकीनां झङ्कतादपि उत्कृष्टा शिञ्जितस्य भूषाशब्दस्य ऊर्म्मिस्तरङ्गे यस्याः सा ॥४५॥

सा राधा पुरतः सर्वेष्टदं प्रेष्ठस्य वपुरिव वनमपश्यदिति परेणान्वयः। उभयसाम्यमाह। वनपक्षे, श्यामवर्णलता श्यामलताख्या तयोज्ज्वलं। कृष्णपक्षे, फुल्ला या श्यामलता श्यामवर्णस्तयोज्ज्वलं। तिलकनाम्ना वृक्षेण, पक्षे ललाटस्थसुतिलकेन श्रीयुक् विशाला उत्कृष्टा अर्ज्जुनवृक्षाः प्रोत्फुल्ला उच्चा हलिप्रियाः कदम्बवृक्षाश्च यत्र

समूह के द्वारा परिवेष्टिता होकर मदमत्त गजेन्द्र विनिन्दित चालसे काननके समीप में पहुँच गयी ।।४४।। अनन्तर श्रीराधा मदमत्त कोकिल की मधुरास्फुट सूक्ष्मध्वनि के समान कण्ठध्वनि को विस्तार कर एवं भ्रमर, चटक पक्षिगणों की झङ्कृति की अपेक्षा उत्कृष्ट भूषण शब्द की तरङ्गों का विस्तार कर तरुलता समूह को प्रफुल्लित करते-करते वसन्तश्री की भाँति वनमें प्रविष्ट हुई ।।४५।। उसके बाद श्रीराधाने देखा कि उक्त कानन श्रीकृष्ण कलेवर की भाँति शोभा का विस्तार कर रहा है, जैसे, वन प्रफुल्ल श्यामलतासे उज्ज्वल है, श्रीकृष्ण भी श्यामवर्ण हैं, कानन, तिलपुष्प की शोभासे शोभित है, श्रीकृष्ण भी ललाटस्थ तिलकसे शोभित है, कानन, उत्कृष्ट अर्ज्जुन, प्रफुल्ल कदम्ब वृक्षसमूह से व्याप्त है, श्रीकृष्ण भी विशाल, अर्जुन प्रभृति सखा तथा बलदेव से अन्वित है, वन, मयूरश्रेणी से भूषित है, श्रीकृष्ण भी मयूरपुच्छ से भूषित हैं, बन-पुन्नाग, अमल चम्पकश्रेणी से समावृत है, श्रीकृष्ण भी पुन्नाग एवं चम्पक मालासे समलङ्कृत है। बन, पल्लवाकीर्ण काञ्चन विद्रुमादि वृक्षसे परिवृत है, कृष्ण भी काञ्चन प्रवालादि द्वारा विभूषित है,

गुञ्जापुञ्जविराजितं श्रमहरच्छायाकदम्बाश्रयम्
वेणुध्वानमनोहरं प्रविलसत्श्रीपीतनैरर्च्चितम्।
फुल्लन्मन्मथसङ्कुलं वरवयःशोभाविलासास्पदम्
सा पश्यत् पुरतो वनं वपुरिव प्रेष्ठस्य सर्वेष्टदम् ॥४७॥ युग्मकम्॥

पतति नयनमस्या यत्र यत्रात्र वस्तु-
न्यखिलमिदमघारेस्तत्तदङ्गायमानम्।
मदयदपि हृदन्तःशस्त्रतामेत्य सद्यः
प्रहरति विषमेषोश्चित्रमेतच्च तच्च॥ ॥४८॥

तत्। पक्षे, विशालाख्यः अर्ज्जुनाख्यः प्रोत्फुल्ल उच्च उत्कृष्टो हली श्रीबलदेव इमे प्रिया यस्य तत् तेषां प्रियम्वा। शिखी मयूरस्तस्य पिच्छश्रेणीभिराभूषितमित्युभयत्र साम्यं। पुन्नागः अमला निर्म्मला चम्पकालिः कृतमालाश्च एभिर्वृक्षैः। पक्षे, पुन्नागादिपुष्पैः कृतमालया अलङ्कृतं। पल्लवैर्दीव्यत् साम्यं काञ्चनविद्रुमादिवृक्षैः। स्वर्णप्रवालादिभिर्वलितं भूषितं। तापिञ्छास्तमालास्तेषां कान्त्या। पक्षे, तमालस्येव कान्त्योल्लसतुञ्जापुञ्जेति साम्यं। पुनः श्रमहराणां छायानां कदम्बस्य समूहस्याश्रयं। वृक्षलतानां समूहत्वात्। किम्वा श्रमहराणां छायानां कदम्बस्य समूहस्याश्रयं। वृक्षलतानां समूहत्वात्। किम्वा श्रमहरच्छायायुक्ताश्च ते कदम्बाश्चेति मध्यपदलोप्येव। पक्षे, तादृक् कदम्ब आश्रयो यस्य तत्। वेणुर्वंशो मुरली च। प्रविलसत्श्रीपीतनैराम्रातकैः आ समन्तात् चर्व्वितं युक्तं। पक्षे, श्रीपीतनेन केशरेणालिप्तं। फुल्लद्भिर्मन्यमथाख्यैर्वृक्षैः सङ्कुलं व्याप्तं। वरवयसां प्रेष्ठपक्षिणां शोभायाः विलासस्य चास्पदं। कृष्णपक्षे व्यक्तमन्मथेन सङ्कुलं व्याप्तं वरवयः कैशोरवयस्तेन शोभाविलासानामास्पदं ॥४६॥४७॥

बन-तमाल-तरुसे शोभित है, श्रीकृष्ण भी तमाल तुल्य श्याम कान्ति से रञ्जित है।।४६।।

वन, गुञ्जापुञ्जसे शोभित है, श्रीकृष्ण भी गुञ्जामाला से अलङ्कृत है, वन, श्रमहरण छायायुक्त कदम्ब तरु समूह का आश्रय है, श्रीकृष्ण भी उस प्रकार निविड़ छाया सम्पन्न कदम्ब तरु का अवलम्बन करके है। वन, वेणु (बांस) के शब्द से व्याप्त है, कृष्ण भी वेणुवाद्य से रमणीय है, वन,— आम्रातक से पूर्ण है, श्रीकृष्ण भी केशर द्वारा आलिप्त है, वन, प्रफुल्ल मदन वृक्षसे शोभित हैं, श्रीकृष्ण भी कमल कलापसे परिपूर्ण है, वन उत्तम-उत्तम

लसत्सहचरीयुक्ता मत्तालिनवमालिका।
विशाखालिकृतच्छाया विकसन्मदनाकुला॥ ॥४९॥

फुल्लमञ्जुलताहृद्या सर्व्वदारूपशोभिता।
सुशीतलकुचस्फीता कृष्णगोतर्पिवैभवा॥ ॥५०॥

तत्र वने यत्र यत्र वस्तुनि अस्या नयनं पतति इदमखिलं वस्तु अघारेस्तत्तदङ्गवत् प्रतीयमानं मदयत् हर्षयदपि हृन्मध्ये विषमेषोः कन्दर्पस्य शस्त्रतामेत्य सद्यः प्रहरतीति एतच्चित्रं तच्च वने कृष्णवपुर्ज्ञानञ्च चित्रं ॥४८॥

वयस्याभिः कर्त्रीभिः श्रीराधेव सुखदा अटवी ददृशे। इति तृतीयेनान्वयः। उभयसाम्यमाह। राधापक्षे सहचरी सखी, अटवीपक्षे झिण्टी। मत्तालिभिः सह नवमालिका यत्र। अत्र साम्यं, विशाखानाम्नी सखी तया विविधशाखाश्रेणीभिः कृता छाया यत्र सा विकसन्मदनेन कामेन। पक्षे, धुस्तूरेण चाकुला। फुल्लमञ्जुलतया मनोज्ञतया। पक्षे, मञ्जुर्मनोज्ञा लता तया हृद्या। सर्व्वदा रूपेण शोभिता। पक्षे, सर्वदारुभिः काष्ठैः। सुशीतलकुचवृक्षेण स्फीता। लकुचो निकुचो डहुरित्यमरः। पक्षे, सुशीतलकुचेन स्फीता। कृष्णस्य गवामिन्द्रियाणां। पक्षे, गोजातीनाञ्च तर्पणशीलं

पक्षिसमूह की शोभा विलास का आस्पद है, श्रीकृष्ण भी कैशोर वयस हेतु शोभा बिलास का आस्पद है, श्रीराधा सम्मुख में उस वनको सन्दर्शन करके प्रियतम के बपु की भाँति अनुभव करने लगी।।४७।। अनन्तर उस वन की जिस वस्तुकी ओर दृष्टि पड़ी वह ही उनके पास श्रीकृष्ण के अङ्ग सदृश प्रतीयमान होने से कन्दर्प शर की भाँति अन्तर में निविष्ट होकर श्रीराधा के हृदय को जर्जरित करदिया।।४८।। तब सखीगण भी श्रीराधा को अटवी सदृश देखने लगीं, कारण,—श्रीराधा, जिस प्रकार सखीगण के द्वारा परिवेष्टित है, वन भी उस प्रकार झिण्टी वृक्षके द्वारा परिशोभित है, श्रीराधा जिस प्रकार भ्रमर शोभित मल्लिका कुसुम की मालासे अलङ्कृत है, वनंभी उस प्रकार मल्लिका समूह से सुशोभित है। श्रीराधा जिस प्रकार विशाखा सखीकी अनुगता है वन भी तद्रूप विशाखा, अर्थात् विविध शाखा वेष्टित है, श्रीराधा जिस प्रकार मदन व्याकुला है, वन भी उस प्रकार धतूरे पुष्पों से व्याप्त है।।४९।। श्रीराधा जिस प्रकार मनोज्ञा, वन भी तद्रूप मनोहर लता समाकीर्ण है, श्रीराधा, सर्वदा रूप सम्पन्ना, बनभी सर्वप्रकार के काष्ठ से शोभिता है। श्रीराधा सुशीतल कुचद्वय से स्फीता है, वनभी लकुच वृक्ष द्वारा व्याप्त है,

सुवयःसुषमापूर्णा व्याकुला वहुवारकैः ।
श्रीराधेव वयस्याभिः सुखदा ददृशेऽटवी ॥ ॥५१॥

सन्दानितकम् ॥

यूथेश्वरीभिः ससखीकुलाभिरन्विष्यमाणो वनगह्वरेषु ।
कथं न लभ्यो निपुणाभिरेताः प्राप्ताः कथं हास्यति वा स लुब्धः ॥५२॥

इति निजहृदि राधा सन्दिहानापसव्ये
वनमनु विलसन्तं कृष्णसारं मृगीभिः ।
शिखिवरमपि सव्ये केकिनीभिः समीक्ष्य
प्रियमृगशिखिबुद्ध्या भ्रान्तितः शङ्कितासीत् ॥५३॥ युग्मकम् ॥

वैभवं यस्याः सा। कैशोरस्य शोभया पूर्णा। पक्षे, सुवयसां पक्षिणां वहुविधवारकैः श्वश्रुवादिभिर्व्याकुला। पक्षे, निसोडावृक्षैध व्याप्ता ॥४९-५१॥

निपुणभिर्यूथेश्वरीभिरन्विष्यमाणः स कृष्णः कथं न लभ्य एव। लुब्धः स कृष्णः एताः प्राप्ताः। यूथेश्वरीः कथं त्यक्ष्यति। इति राधा हृदि सन्दिहाना दक्षिणादिशि वने मृगीभिर्मृगं वामे केकिनीभिर्मयूरं समीक्ष्य कृष्णस्य मृगशिखिवुद्ध्या शङ्किताभूत् ॥५२॥५३॥

श्रीराधा जिस प्रकार श्रीकृष्ण की इन्द्रियों की तृप्तिद सम्पत्ति धारण करती है, वन भी कृष्णवर्ण गो गणको निज तृणरूप वैभव द्वारा तृप्त करता है।।५०।।

श्रीराधा जिस प्रकार कैशोर वयस शोभा से परिपूर्णा है, वन भी उस प्रकार सुन्दर पक्षियों से परिशोभित है, एवं श्रीराधा जिस प्रकार प्रतिकूल परायणा श्वश्रू प्रभृति द्वारा व्याकुला है, वन भी तद्रूप लिसोड़ा वृक्षसे परिव्याप्त है।।५१।। अनन्तर श्रीराधा वन की उस प्रकार सुन्दरता को देखकर मन ही मन विवेचना करने लगी, यह सब निपुण यूथेश्वरीगण निज-निज सखीके साथ मिलकर जब श्रीकृष्ण को ढूंढ़ रही हैं, तब क्यों नहीं श्रीकृष्ण मिलेंगे, कारण, लुब्ध श्रीकृष्ण सब गोपियों का सान्निध्य प्राप्तकर उन सबकी उपेक्षा कभी नहीं कर सकेंगे।।५२।। श्रीराधा निज हृदय में इस प्रकार सन्देह भी करने लगी, इस समय दक्षिण दिक् में मृगीगणके साथ विलासशील कृष्ण-सार मृगको एवं वामदिक् में मयूरीगण के साथ विलासरत मयूर को देखकर प्रियतम की भ्रान्ति होनेसे शङ्किता होगई।।५३।। तदनन्तर सुवर्ण के द्वारा

तमालमष्टापदवद्धमूलं सा वेष्टितं फुल्लसुवर्णयूथ्या।
शाखाग्रनृत्यच्छिखिनं समीक्ष्य निर्णीतचेता विचिकित्सिताभूत् ।।५४।।
प्रेमेर्ष्याभुजगीदष्टा नष्टपण्डा प्रचण्डधीः।
चण्डीशचण्डकोदण्डभ्रूदण्डाह धनिष्ठिकाम् ।। ।।५५।।
किमिदमयि धनिष्ठे कुत्र किं पश्यताग्रे
वनमिदमिह किन्तद्वन्यजातं न चान्यत्।
नटनमिदमपूर्व्वं यच्छठेन्दोः पुरस्तात्
कलयसि न हि धूर्त्ते! मुद्रिताक्षी किमासीः।। ।।५६।।

सा राधा अष्टापदेन स्वर्णेन वद्धमूलं फुल्लसुवर्णयूथ्या वेष्टितं शाखाग्रनृत्यच्छिखिनं तमालं समीक्ष्य निर्णीतं कृष्णोऽयमिति निश्चितं चेतो यस्याः सा सत्यपि पुनः विचिकित्सिता संशयिता अभूत्। विचिकित्सातु संशयः। यद्वा, पूर्व्वं विचिकित्सितापि पश्चादष्टापदवद्धमूलं इति पीताम्बरावृतं स्वर्णयूथ्या वेष्टितं इति नायिकयान्वितं। शाखाग्रनृत्यशिखिनं इति मयूरपुच्छचूडान्वितं तमालं वीक्ष्य इति श्यामवर्णं कृष्णं मत्वा कृष्णोऽयमेव इति निर्णीतचेतोऽभूत् ।।५४।।

प्रेमेर्ष्यैव भुजगी सर्पी तया दष्टा चैषा नष्टा पण्डा सदसद्विवेचना यस्याः साः। अतः प्रचण्डा उग्रा धीर्यस्याः सा। चण्डीशस्य चण्डकोदण्डवत् प्रचण्डपिनाकधनुरिव भ्रूदण्डौ यस्याः सा राधा धनिष्ठिकामाह ।।५५।।

बद्धमूल, प्रफुल्ल स्वर्णयूथी परिवेष्टित, एवं शाखाके अग्रभाग में नृत्यकारी मयूर युक्त तमाल वृक्षको देखकर यह ही श्रीकृष्ण होंगे, इस प्रकार मन मनमें अवधारण करके भी संशयवती होगई।।५४।।

कारण,–श्रीराधा पहले ही संशयवती थी, पश्चात् स्वर्ण द्वारा बद्धमूल, इसमें पीताम्बर,–स्वर्णयूथिका के द्वारा वेष्टित है, इससे नायिका समन्वित है, शाखा के अग्रभाग में नृत्यशील मयूर, इससे मयूर पुच्छान्वित तमाल वृक्ष को देखकर यह श्यामवर्ण कृष्ण है, इस प्रकार आपका निर्णय हुआ।।५४।।

उस समय प्रेमेर्षा रूपी भुजङ्गी द्वारा दंशित होने से श्रीराधा की सदसद् विवेचना बुद्धि विनष्ट होगयी, राधा प्रचण्डा अर्थात् उग्रबुद्धियुक्ता होकर हरधनु की भाँति भ्रूदण्डको घूमाती हुई धनिष्ठाको बोली।।५५।। अयि धनिष्ठे! यह क्या है? धनिष्ठा वोली, कहाँ? क्या है? राधा वोली, सामने देखो, अर्थात् यद्यपि तुम देख ही रही हो, तथापि अच्छी तरह आँख खोलकर

ललिताप्रभृतीरथावदत् प्रियसख्योऽद्भुतमत्र शर्म्मदं।
युगपन्नटनं शठेशयोर्नटनट्योरनयोर्नु पश्यत॥ ॥५७॥

निजवाङ्मधुना विमोहिता स्ववशीकृत्य भृशं धनिष्ठिका।
हरिणा निजधार्ष्ट्यनर्त्तने विहितासौ वत कूटनर्त्तकी॥ ॥५८॥

रतहिण्डकहिण्डितासकौ छलदूत्याभिधनृत्यपण्डिता।
नियतीह विधातुमुत्सुका शठनृत्ये भवतीः सभासदः॥ ॥५९॥

अयि धनिष्ठे! इद किं? साह कुत्र किं। यद्वा, अन्यथा क्रोधे कोमल-सम्बोधनासम्भवात्। अयि राधे! कुत्र किं राधाग्रे पश्यत। यद्यपि पश्यसि, तथापि साधु पश्येति चकारार्थः। साह बनमिदं। राधाह, इह वने किं तत्। साह वन्यजातं अन्यत् न। राधाह शठेन्दोः। विधुः श्रीवत्सलाञ्छन इत्यमरात् विधुपर्य्यायेऽस्य वाच्यत्वात् नतु हर्षजनकत्वेन कृष्णस्य पुरस्तात् इदमपूर्व्वनटनं न कलयसि न पश्यसि। हे धूर्त्ते! किं मुद्रिताक्षी आसीस्त्वं॥५६॥

राधा धनिष्ठामुक्त्वा सुवर्णयूथ्या सह पवनान्दोलितं तं तमालं दृष्ट्वा अन्यनायिकया युतं नटन्तं कृष्णं मत्वा ललिता प्रभृतीः प्रति अवदत्। नु भोः प्रियसख्यः! अत्र शठेशयोर्नटनट्योर्युगपत् अद्भुतं शर्म्मदं सुखदं। अत्र श्रीराधायाः दुःखदत्वेऽपि नाट्यवत् दर्शनेन सुखदं। यद्वा, तयोर्नटनट्योः सुखदं। यद्वा, मम विडम्बनाकर्त्रीणां युष्माकं सुखदं इति नटनं पश्यत॥५७॥

राधाह श्लोकचतुष्टयेन। पुनः हरिणा निजवाङ्मधुना विमोहिता धनिष्ठिका स्ववशीकृत्य असौ निजधार्ष्ट्यनर्त्तने कूटनर्त्तकी विहिता॥५८॥

असकौ धनिष्ठा रतहिण्डकेन रतिचौरेण हिण्डिता प्रेरिता छलदूत्याभिधनृत्ये पण्डिता शठनृत्ये उत्सुका अतः शठनृत्ये भवतीः सभासदो विधातुमिह नयति प्रापयति॥५९॥

देखो, धनिष्ठा,–यह तो वन है, राधा, इस बनमें यह सब क्या है? धनिष्ठा, यह सब वन्य वस्तु है। अपर कुछ नहीं है, श्रीराधा, सामने-धूर्त्तचूड़ामणि श्रीकृष्णचन्द्र नृत्य कर रहे हैं, यह क्या तुम देख नहीं पाती हो? हे धूर्त्ते! तुम क्या आँख मूँदकर खड़ी हो रही हो।।५६।। अनन्तर श्रीराधा, धनिष्ठा को उस प्रकार कह कर स्वर्णयूथिका के साथ पवनान्दोलित तमालवृक्ष को देखकर–''अन्य नायिका समन्वित नृत्यशील कृष्ण हैं, यह मानकर ललिता प्रभृति सखीगण को कहने लगी,–प्रिय सखियो! शठराज नट नटी का एक-कालीन अद्भुत सुखप्रद नृत्य देखो।।५७।। सखियो! निज वाक्यामृत के द्वारा

कलयत स सुरङ्गाख्याऽपि जात्या कुरङ्गः
प्रणयसहचरीं स्वां रङ्गिणीं वञ्चयित्वा।
विलसति हरिणीभिर्मां विलोक्याप्यमुञ्च-
न्ननु हरिशठतास्मिन् सङ्गतः संससर्ज ॥ ॥६०॥

मत्सङ्गिनीं प्रणयिणीं दयितां मयूरीं
वीक्ष्यापि सम्मुखगतां वत केकिनीभिः।
निःशङ्कमुल्लसति ताण्डविकः कलापी-
सङ्गेन धाष्टर्यमिह संक्रमितं वकारेः ॥ ॥६१॥

कृष्णस्य शठतास्मिन् कुरङ्गे सङ्गतः सङ्गदोषात् कृष्णसंसर्गजाता अभूदिति कलयत पश्यत हे सख्यः! स सुरङ्गाख्यः कुरङ्गः मृगः। श्लेषेण शोभनं रङ्गं यस्य स सुरङ्गः इति न, किन्तु कुत्सितं रङ्गं यस्य स कुरङ्ग इत्याभिप्रायः। स्वां रङ्गिणीं प्रणयसहचरीं वञ्चयित्वा अन्याभिः हरिणीभिर्विलसति मां विलोक्यापि एता अमुञ्चन्। यथाहरिः मांदृष्ट्वापि एनामश्चन् विलसति तथा ॥६०॥

शठे शठतामुक्त्वा पक्षिणोऽप्याह। स ताण्डविकः कलापी मयूरः सम्मुखगतामुक्तस्वरूपां मयूरीं वीक्ष्यापि केकिनीभिरन्यमयूरीभिः सह निःशङ्कमुल्लसति। वकारेः सङ्गेन इह मयूरेऽपि धाष्टर्यं संक्रमितं सङ्गतमभूत् ॥६१॥

धनिष्ठाको कृष्ण अतिशय विमोहित एवं वशीभूत करके निज धृष्टतारूप नृत्यमें इसको छलनर्त्तकी बनाता है।।५८।। हे सखियो! रतिचोर श्रीकृष्ण के द्वारा प्रेषिता यह धनिष्ठा छलदूत्य नामक नृत्यकार्य में विशेष पण्डित है, शठनृत्यमें भी उत्सुका है, अतएव शठनृत्य में दर्शक बनाने के लिए ही तुम सबको यहाँपर ले आई है।।५९।।

सखियों! और भी देखो! यह सुरङ्ग नामक कुरङ्गमृग, संसर्ग से श्रीकृष्ण के समान शठताचरण कर निज प्रणय सहचरी रङ्गिणी को वञ्चना करके दूसरी हरिणी के साथ खेल रहा है, अर्थात् कृष्ण जिस प्रकार मुझे देखकर भी दूसरेके साथ विलास करते हैं, उस प्रकार वह भी कर रहा है।।६०।। श्रीराधा शठ कुरङ्ग में शठता का वर्णन करके पतिमें सङ्गदोषसे शठता आ जाती है, उसको दिखाती है, सखियो! और भी देखो! मेरी सङ्गिनी सन्मुखस्थ निज प्रणयिणी प्रियतमा मयूरी को देखकर भी निःशङ्क चित्तसे अपर मयूरीयों के साथ यह ताण्डविक मयूर खेलता रहता है। कैसा

अथावदत् स्मेरमुखी धनिष्ठा त्वयैव सर्वा निजचित्रनृत्ये।
वयं कृताः साध्वि ! सभासदोऽस्मिन् प्रीताः स्म दृष्ट्वा यददृष्टपूर्व्वम् ॥६२॥
दुर्लभे सुलभे चार्थे यत्रासक्तिस्तु रागजा।
तत्र नित्यं रागभाजां प्रत्यूहा शङ्किनी मतिः॥ ॥६३॥
आगच्छताल्योऽद्भुतनृत्यमेतत् कृष्णाय तूर्णं विनिवेदयामः।
स्निह्यत्यमुष्यां स यथा विलासी गुणिन्यलं रज्यति यद्गुणज्ञः ॥६४॥
अथ सा स्मितसंवृताननं स्वसखीवृन्दमवेक्ष्य विस्मिता।
पुनरप्यवलोकनाल्लतातरुसङ्गं त्ववधार्य्य लज्जिता॥ ॥६५॥

धनिष्ठाह त्रिभिः। त्वया सर्वा वयं निजस्य तवास्मिन् चित्रं नृत्ये आश्चर्य्य-वाग्विलासे सभासदः कृताः। अदृष्टपूर्व्वं यत् तव नृत्यं तद्दृष्ट्वा वयं प्रीता अभवामेति शेषः। स्म प्रसिद्धं न तु तव कटूक्त्या अप्रीता इत्यर्थः ॥६२॥

यत्र दुर्लभे सुलभे चार्थे वस्तुनि रागजन्यासक्तिर्भवति तु पुनः रागभाजाजनानां। तत्र वस्तुनि नित्यं सदा प्रत्यूहो विघ्नस्तेनाशङ्किनी मतिर्भवति ॥६३॥

हे आल्यः आगच्छत राधाया एतदद्भुतं नृत्यं कृष्णाय तूर्णं विनिवेदयामः। स विलासी श्रीकृष्णः यच्छ्रवणेन अमुष्यां राधायां स्निह्यति। यद्यस्मात् गुणज्ञो जनः गुणिनि जने अलं रज्यति ॥६४॥

सा राधा स्वसखीवृन्दं स्मितसहितसंवृताननमवेक्ष्य। पुनरवलोकनात् लतातरोः सङ्गं नतु कृष्णान्यनायिकयोः सङ्गमवधार्य्य प्रेमात्मकं निश्चयं कृत्वा लज्जिताभूत् ॥६५॥

आश्चर्य्य है ! बकारि के सङ्गसे इसमें धृष्टता संक्रमित हुई है ।।६१।। अनन्तर हँसमुख धनिष्ठा श्रीराधिका को बोली, हे साध्वि ! तुमने निज चित्र नृत्य में अर्थात् आश्चर्य वाग्बिलास में सबको श्रोता किया है, कुछ भी हो, हम सब अदृष्ट पूर्व यह नृत्य कौशल को देख वहुत सन्तुष्ट हुई हैं ।।६२।। हे राधे ! जिस वस्तुके प्रति प्रबल अनुराग होता है, वह सुलभ हो, अथवा दुर्लभ हो किन्तु अनुरागी जनकी मति उसमें निरन्तर विघ्न सम्भावना से आकुल रहती है ।।६३।। धनिष्ठ सखियों से कही, सखियो ! आओ ! हमसब राधा के अद्भुत नृत्य (वाग् विलास) को श्रीकृष्ण से कहे। आप तो विलास परतन्त्र हैं ही, उसमें भी इस विवरण को सुनकर इसके प्रति अतिशय प्रीतिशील हो जायेंगे, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है, अर्थात् गुणज्ञ व्यक्ति, गुणीजन के

इत्थं माधवसङ्गरङ्गविकसद्वृन्दावनालोकना-
त्तां कृष्णाद्भुतमाधुरीव वसुधा पानातितृष्णाकुलाम्।
प्रेमोन्मादविघूर्णितान्तरतया नानाभ्रमव्याकुलाम्
तत्कृष्णाप्तिसमुत्सुका विजहसुः सख्यश्चलन्त्यो द्रुतम्॥ ॥६६॥

मदनरणवाटिकाख्य-प्रियकेलिकुसुमवनस्य मध्ये सा।
कुञ्जस्थितरविमूर्त्तेः, सविधं समुपस्थिताकस्मात्॥ ॥६७॥

प्रणम्य तां भक्तिभरेण तन्वी वद्धाञ्जलिर्वल्गु वरं ययाचे।
निर्विघ्नगोविन्दपदारविन्दसङ्गोऽस्तु मे देव! भवत्प्रसादात्॥ ॥६८॥

प्रतिमाफुल्लदृग्वक्त्रप्रसादोत्फुल्लमानसा।
पुनस्तां प्रणिपत्येयं सखीभिः सह निर्गता॥ ॥६९॥

तत्तस्य श्रीकृष्णस्य आप्तौ समुत्सुका। यद्वा, तत्तस्याः कृष्णाप्तिविषये समुत्सुका द्रुतं चलन्त्यः सख्यः तां राधांः विजहसुः। कीदृर्शी इत्थमित्यादि। माधवस्य श्रीकृष्णस्य सङ्गे यो रङ्गस्तेन विलसद्वृन्दावनस्य अवलोकनात् श्रीकृष्णमाधुरी-सुधापानायातितृष्णाकुलां प्रेमजन्योन्मादविघूर्णितान्तरत्वेन। तथाच, महाभावविशेषस्य गतिं कामप्युपेयुषः। भ्रमाभा प्रेमवैचित्री दिव्योन्माद इतीर्य्यते। उद्घूर्णाश्चित्र-जल्पाद्यास्तद्भेदा वहवो मताः। इत्युज्जवलनीलमण्युक्तप्रेमवैचित्रीकथनं। प्रेमघूर्णया नानाभ्रमव्याकुलां ॥६६॥

सा रविमूर्त्तेर्निकटं समुपस्थिता ॥६७॥

तन्वी श्रीराधा तां मूर्त्तिं प्रणम्य ययाचे ॥६८॥

प्रति अनुरक्त होते ही हैं।।६४।। धनिष्ठाकी बातको सुनकर राधाने देखा कि, सखियां मुँह ढँककर हँस रही हैं, राधिका विस्मित होकर देखने लगी, तो देखी, कि लता एवं तरु का ही सङ्ग है, वृक्षमें लता वेष्टित है, किन्तु कृष्णके साथ अन्य नायिका का सङ्ग नहीं है, यह निश्चय कर लज्जिता होगई।।६५।। श्रीराधा की महाभाव अवस्था प्रकट होगई, महाभावमें विशेष अवस्था होती है, उसमें भ्रान्ति, प्रेमवैचित्री दिव्योन्माद उदघूर्णाचित्रजल्प प्रभृति अनेक अवस्था होती हैं, उसमें से प्रेमोद्घूर्णा का वर्णन करते हैं, उस समय सखी-गण कृष्णप्राप्ति के लिए समुत्सुका श्रीराधा की कृष्णसङ्ग रङ्गमें विभोर देखकर परिहास करने लगीं।।६६।। अनन्तर श्रीराधा प्रियतम श्रीकृष्णकी मदनरथ वाटिका नामक केलि कुसुम काननस्थ कुञ्जस्थित सूर्य्य

श्रीसूर्य्यपूजासम्भारसहिते परिचारिके।
स्थिते तत्रैव तद्वाटीदेवीभिर्ललिताज्ञया॥ ॥७०॥

दिशि दिशि विसरन्तीं श्रीमदङ्गान्मुरारे–
र्मृगमदपरिलिप्तेन्दीवराणामिवोच्चैः।
पथि परिमलधारां प्राप्य राधोन्मदिष्णुः
सपदि तमनु भृङ्गीवोत्पतिष्णुस्तदासीत्॥ ॥७१॥

कृष्णः कान्तातनुसुरधुनीसौरभाच्छामृतोर्म्मी
धारामाराद्विपिनवलयं प्लावयन्तीमकस्मात्।
काश्मीराक्ताम्बुजपरिमलोल्लङ्घिनीं घ्राणपूर्णा–
माघ्रायासीत् पुलकजटिलो भृङ्गवत् प्रोत्पतिष्णुः॥ ॥७२॥

प्रतिमाया उत्फुल्लदृग्वक्त्रेयः प्रसाद अनुमितः इदं सूर्य्यवक्त्रं मद्विषयकप्रसादवत् उत्फुल्लनयनत्वात् प्रसादस्तेन उत्फुल्लमानसा सती तां प्रणिपत्य निर्गता। इयं राधा॥६९॥

ललिताज्ञया तद्वाटीदेवीभिः सह परिचारिके तुलसीधनिष्ठिके तत्रैव वाटिकायां स्थिते॥७०॥

मुरारेरङ्गसङ्गात् कस्तूरीलिप्तनीलपद्मानामिव परिमलस्य दूरगामिसुगन्धस्य धारां प्राप्य राधा उन्मदिष्णुः अतिशयेन उन्मदा तमनु कृष्णं अनुलक्षीकृत्य तत्र उत्पतिष्णुः उड्डीय पतितेच्छुरासीत्॥७१॥

कान्तायास्तनुरेव सुरधुनी गङ्गा तस्या अच्छा निर्मला अमृतमिव या तरङ्गधारा तां। आरात् समीपे। विपिनस्य वलयं परिसर प्लावयन्तीं। केशरलिप्तपद्मगन्ध-मुल्लङ्घिनीं।घ्राणपूर्णामाघ्राय पुलकजटिलः जटावत् अतिशयपुलकयुक्तः सन् भ्रमरवत् प्रोत्पतिष्णुः प्रकर्षेण उत्प्लुत्य पतितेच्छुरासीत्॥७२॥

प्रतिमाके निकट सहसा उपस्थित हो गई।।६७।। अनन्तर श्रीराधा भक्तिभावसे सूर्य्य-देवकी प्रतिमा को प्रणाम कर कृताञ्जलि होकर प्रार्थना की, हे देव! आपके अनुग्रह से निर्विघ्नसे मेरा गोविन्दपदारविन्द का सङ्गलाभ हो।।६८।। श्रीराधा, प्रतिमा को प्रसन्न देखकर पुनर्वार प्रणाम किया, और सखियोंके साथ वहाँसे निकल गई।।६९।। तत् पश्चात् श्रीललिताके आदेश से तुलसी धनिष्ठा वनदेवीगणके साथ श्रीसूर्यपूजाकी सामग्री को लेकर वहाँपर रह गई।।७०।। तब दिक्‌विदिक् में प्रसरणशील

परिमलमिलनान्मिलितां वनमनु दयितां दवीयसीं मत्वा।
हरिणा प्रहिता वृन्दा तामानेतुं समुत्सुकेन॥ ॥७३॥

कुञ्जे नराख्यमथ कुञ्जनृपस्य धाम-
प्राप्ता ददर्श मिलितां स्वगतिप्रवृत्त्यै।
राधोत्सुकेन हरिणा प्रहितां हि वृन्दाम्
स्वाभीष्टसिद्धिमिव मूर्त्तिमतीं पुरः सा॥ ॥७४॥

कृष्णोत्तंसचरं तस्यै वृन्दापीन्दीवरद्वयम्।
तदङ्गसङ्गगन्धान्धीकृतपुष्पन्धयं ददौ॥ ॥७५॥

तत्स्पर्शसौरभ्यमवाप्य कृष्णोपस्पर्शगन्धानुभवेन मत्ता।
समुद्भवद्भावपिधानयत्ता सम्वादमुत्काशु तया व्यधत्त॥ ॥७६॥

समुत्सुकेन हरिणा वनमनु वने परिमलस्य मिलनात् मिलितां दयितां दवीयसीं दूरस्थां तामानेतुं वृन्दा प्रहिता ॥७३॥

कुञ्जनृपस्य श्रीकृष्णस्य कुञ्जरा इति प्रसिद्धं कुञ्जे नराख्यं धामप्राप्ता राधा स्वस्या मम गतेः प्रवृत्त्यै तत्र मद्गमनार्थं हरिणा प्रहितां स्वाभीष्टसिद्धिं मूर्त्तिमतीमिव मिलितां वृन्दामग्रे ददर्श ॥७४॥

वृन्दा कृष्णकर्णभूषणं नीलपद्मद्वयं तस्यै ददौ। कीदृशं ? कृष्णाङ्गसङ्गगन्धेनान्धीकृताः पुष्पन्धया भ्रमरा येन तत् ॥६५॥ सम्यक् उद्भवद्भावस्य पिधाने आच्छादने यत्ता यत्नवती तया सह सम्वादं व्यधत्त ॥७६॥

श्रीकृष्णको कस्तुरीलिप्त नीलकमल-गन्ध की भाँति अत्युत्कृष्ट परिमलधारा को प्राप्तकर श्रीराधा उन्मत्त होगई, एवं श्रीकृष्णको लक्ष्य कर भ्रमरी की भाँति उड़कर जाने की इच्छा की।।७१।। अनन्तर श्रीकृष्ण श्रीराधा की तनुरूपा सुरधुनी की निर्मल अमृततुल्य तरङ्ग धारा, जो समीपवर्त्ती विपिन की परिसर भूमिका प्लावित कर रही थी, एवं केशरलिप्त पद्मगन्धको तिरस्कार कर रही थी, नासापुटसे उसका आघ्राण लेकर अतिशय पुलकित हो गए एवं भ्रमरके समान छलाँग- मारकर जाने की इच्छा की।।७२।। श्रीराधाके अङ्ग परिमलसे वन आमोदित हो गया, श्रीराधा कुछ दूरमें है, यह जानकर, उनको लिवालाने के लिए उत्सुक होकर आपने वृन्दाको भेजा।।७३।। श्रीराधा कुञ्जरा में उपस्थित हो गई, वहाँ वृन्दाको आती हुई देखकर सोचने लगी कि श्रीकृष्ण उत्सुक होकर मुझे लिवा लाने के लिए इसको अवश्य भेजे हैं, आप वृन्दाको मूर्त्तिमती अभीष्ट सिद्धि की भाँति देखने लगी, अर्थात्

कस्माद्वृन्दे ! प्रियसखि हरेः पादमूलात् कुतोऽसौ
कुण्डारण्ये किमिह कुरुते नृत्यशिक्षां गुरुः कः।
तं त्वन्मूर्त्तिः प्रतितरुलतं दिग्विदिक्षु स्फुरन्ती
शैलूषीव भ्रमति परितो नर्त्तयन्ती स्वपश्चात् ॥७७॥

भ्रान्ता वृन्दे ! त्वं न मूर्त्तिर्ममैषा पद्माल्यासावुत्पतिष्णुर्द्विरेफः।
तृष्णाधृष्णक् भ्राम्यते शैव्ययासौ तद्गन्धोद्यद्धारया वात्ययैव ॥७८॥

वात्याहत्याचश्चुना लम्भितासौ शैव्या वात्या सापि सार्द्धं स्वसख्या।
गौरीसङ्गोत्केन तेन स्वसङ्गाद्गौरीतीर्थं तत् सपर्य्याच्छलोक्त्या ॥७९॥

हे वृन्दे ! कस्मादागता ? वृन्दाह, हरेः पादमूलात्। असौ कृष्णः कुत्र ? कुण्डारण्ये। किं कुरुते ? नृत्यशिक्षां। गुरुः कः ? प्रतितरुलतं तरुलताः प्रति। अव्ययीभावसमासः। दिग्विदिक्षु शैलूषीव उत्तमनटीव स्फुरन्ती त्वन्मूर्त्तिः तं कृष्णं स्वपश्चात् नर्त्तयन्ती भ्रमति ॥७७॥

हे वृन्दे ! त्वं भ्रान्ता, एषा मूर्त्तिर्मम न। तृष्णाधृष्णक् तृष्णया अधैर्य्यः द्विरेफः कृष्णः भ्रमरश्च पद्माल्याश्चन्द्रावल्याः पद्मश्रेणेश्चासौ तत्तस्याः चन्द्रावल्या गन्धस्य उद्यद्धारा यत्र तया वात्यया चक्रवातेन। शैव्यया असौ द्विरेफः भ्राम्यते एव ॥७८॥

वृन्दाह, वात्याया हत्या नाशः दूरीकरणं तत्र चश्चुना निपुणेन गौर्य्यास्तव सङ्गोत्सुकेन तेन कृष्णेन स्वसख्या चन्द्रावल्या सार्द्धं सासौ शैव्या वात्यापि तत्तास्याः गौर्य्याः सपर्य्या सत्कार एव छलोक्तिस्तया स्वसङ्गात् गौरीतीर्थं लम्भिता प्रापिता ॥७९॥

इससे हीं अभीष्ट पूर्त्ति होगी।।७४।। श्रीवृन्दादेवीने कृष्णके अङ्ग सौरभयुक्त नीलपद्म के कर्णभूषण युगल को श्रीराधाके हाथमें प्रदान किया, जिसके गन्धसे भ्रमरगण मत्त होकर घूम रहे थे।।७५।। अनन्तर श्रीराधा नीलकमल युगलके स्पर्श एवं सौरभ प्राप्त कर कृष्णाङ्ग स्पर्श के गन्ध का अनुभव कर अतिशय उन्मत्ता होगई, विविध प्रकार भावोदय उनके अङ्गमें हो रहा था, तथापि उसको सङ्गोपन करने के लिए यत्नवती होकर उत्सुक चित्तसे श्रीवृन्दाके साथ कथोपकथन में प्रवृत्त हो गई।।७६।। श्रीराधा जिज्ञासा की,–वृन्दे ! तुम कहाँसे आ रही हो? वृन्दा बोली,–श्रीकृष्णके पादमूल से श्रीराधा पूछी, श्रीकृष्ण कहाँ है? वृन्दा-तुम्हारे कुण्डके तीरस्थ कानन में। श्रीराधा बोली, क्या कर रहें हैं? वृन्दा-नृत्यशिक्षा, राधा, किससे, गुरु कौन है? वृन्दा-तुम्हारी मूर्त्ति दिग् विदिक् में प्रति तरुलता में तुम्हारी मूर्त्तिकी स्फूर्त्ति होती रहती है, और कृष्णको उन मूर्त्तिके पीछे-पीछे नचाती रहती

तद्वार्त्तया नः किमिहास्त्यरिष्टकुण्डोत्थपातालजगाङ्गवारि।
स्नात्वा यथार्याचरणानुशासनं मित्रं समभ्यर्च्च्य गृहं प्रयामः ॥८०॥

क्व यानं ते वृन्दे! तव चरणराजीवसविधे
किमर्थं ते राज्याद्भुतभविकविज्ञापनकृते।
वदैतत् किं श्रीमाधवसुविभवालंकृतमिदम्
मुहुर्वृन्दारण्यं लसति भवदालोकनकृपाम्॥ ॥८१॥

अथावदत् कुन्दलता प्रगलभा विमुञ्च वृन्दे! निजकूटदूत्यम्।
मय्यर्पिता सूर्य्यसमर्च्चनार्थं निजार्यया कृष्णसुशङ्कयेयम्॥ ॥८२॥

अवहित्थया राधाह, नस्तद्वार्त्तया किं? कृष्णकुण्डस्य बारि जले स्नात्वा यथा आर्या जटिला तस्याश्चरणमिति गौरवेणानुशासनमाज्ञानुरूपं मित्रं सूर्य्यं ॥८०॥

राधाह, हे वृन्दे! ते क्व कुत्र यानं गमनं? वृन्दाह, ते चरणपद्मनिकटे। किमर्थं ते राज्यस्याद्भुतमङ्गलकथनार्थं। एतदद्भुतमङ्गलं किं? श्रीमाधवोवसन्तः श्रीकृष्णश्च स एव सुविभवस्तेनालङ्कृतं इदं वृन्दावनं भवदालोकनरूपकृपां लसति अभिलषति वाञ्छति ॥८१॥

निजार्य्यया मयि इयं सूर्य्यपूजार्थमर्पिता ॥८२॥

है ॥७७॥ श्रीराधा बोली,–वृन्दे! तुम भ्रान्ता हो गई हो, वह मूर्त्ति मेरी नहीं है, तृष्णाकुल श्रीकृष्ण अधैर्य्य भ्रमर की भाँति चन्द्रावली की गन्ध वहन कारिणी सखी पद्मासे तथा समीरण रूपा शैव्या के सङ्गसे विभोर होकर घूम रहे हैं ॥७८॥ वृन्दा बोली, राधे! वात्या हत्ताचञ्चु अर्थात् तृणावर्त्त विध्वंशन निपुण श्रीकृष्ण हैं, तुम तो गौरी हो, तुम्हारे सङ्गप्राप्ति के लिए उत्सुक होकर स्वीय सखी चन्द्रावली के साथ वह वात्या अर्थात् बातुल सदृशी शैव्याको गौरी पूजाके छलसे अपने पाससे गौरीतीर्थ में भेज दिये हैं ॥७९॥ तब श्रीराधा अभिप्राय को गोपन कर बोली, वृन्दे! हमें उस बातकी आवश्यकता ही क्या है? श्वश्रु जटिला के आदेश से अरिष्ट कुण्डमें स्नान कर भगवान् सूर्यदेव की पूजा करके घर लौट जायेंगी ॥८०॥ पुनर्वार श्रीराधा, वृन्दाको पूछने लगी, वृन्दे! तुम कहाँ जाओगी? वृन्दा बोली, तुम्हारे चरणपद्मके समीप में, श्रीराधा, क्यों? वृन्दे, तुम्हारे राज्यका अद्भुत मङ्गल कहने के लिये। राधा, इतना अद्भुत मङ्गल क्या है? वृन्दा, श्रीमाधवरूप, वसन्त, तथा कृष्ण, विभवसे श्रीवृन्दाबन अलङ्कृत होकर तुम्हारी अवलोकनरूप कृपा की वाञ्छा कर रहा है ॥८१॥ अनन्तर प्रगल्भा कुन्दलता

पातालगङ्गाजलजेऽरिष्टमर्दिसरस्यमूम् ।
संस्नाप्य निभृतं नेष्ये पूजायै सूर्य्यवेदिकाम् ॥ ॥८३॥

न यामस्तत्र चेत् कृष्णो मनोगङ्गामयामहे ।
कृष्णगन्धिदिश्यासौ यन्न नेया जटिलाज्ञया ॥ ॥८४॥

वृन्दाब्रवीत् कुन्दलते ! किमर्थं हरेर्भिया हिण्डसि चित्तगङ्गाम् ।
उपायमेकं शृणु येन तत्र गता अपि द्रक्ष्यति वःस नैव ॥ ॥८५॥

कृष्णः कान्तासरसि मदनोदघूर्णितात्मास्ति कुञ्जे
यूयं वासन्तिकवनपथा पूर्व्वतः सुष्ठु गत्वा ।
तीर्थे पादाम्बुजरसमयेऽरिष्टहन्तुः प्रशस्ते
स्नात्वा कामं व्रजत निभृतं साध्वि ! केनाप्यदृष्टाः ॥ ॥८६॥

कृष्णकुण्डे अमूं राधां संस्नाप्य सूर्य्यपूजार्थं ॥८३॥

चेद्यदि कृष्णः तत्र कृष्णकुण्डे तदा तत्र न यामः । मानसगङ्गामयामहे यास्यामः । यत्र कृष्णस्य गन्धो नास्ति, तवासौ राधा नेया ॥८४॥

हरेर्भिया किमर्थं मानसगङ्गां हिण्डसि गच्छसि । येन उपायेन तत्र गता वो युष्मान् स कृष्णः न द्रक्ष्यति ॥८५॥

हे साध्वि ! तव पातिब्रत्यमहं जानामि । इति श्लेषः । कृष्णः राधाकुण्डे । मदनेनोद्घूर्णितात्मा मनो यस्य तथाभूतः कुञ्जेऽस्ति । तासां शीघ्रगमनार्थं इदमुक्तं

वृन्दाको कहने लगी, वृन्दे ! तुम निज कपट दूत्यको छोड़ो, इनकी सास जटिलाको कृष्णकी ओरसे बड़ी शंका सदा ही रहती ही, इसलिए उन्होंने सूर्य्यपूजा करवाने के निमित्त राधाको हमारे हाथ सौंप दिया है।।८२।। अतएव मैं इनको श्यामकुण्ड में स्नान कराकर गोपनसे श्रीसूर्य्यपूजा के निमित्त श्रीसूर्य्यकुण्डको ले आऊँगी ।।८३।। हे वृन्दे ! श्रीकृष्ण यदि श्याम कुण्डमें विराजते हैं, तो वहाँ नहीं जाऊँगी, श्रीराधाको मानसी गङ्गामें ले जाऊँगी, जटिलाने मुझसे कहा है, जिस दिग्में कृष्णकी गन्ध है, वहाँपर राधाको न ले जाना, अतएव कृष्णगन्धि दिक्की ओर मैं नहीं जाऊँगी ।।८४।। तब वृन्दा बोली, कुन्दलते ! श्रीकृष्णके भयसे मानसगङ्गाको क्यों जाओगी? श्यामकुण्डको जाने पर भी कृष्ण जैसे तुम सबको न देख सके, उसका एक उपाय मैं कहती हूँ, सुनो ।।८५।। हे साध्वि ! सम्प्रति श्रीकृष्ण मदनावेशसे उद्घूर्णित चित्त होकर श्रीराधाकुण्डके तीरस्थ कुञ्ज में पड़े हुए हैं, तुम सब पूर्वदिक् के माधवी वनके पथसे स्वच्छन्द गमन कर वृषमर्दन श्रीकृष्णके

अवदल्ललिता कुन्दलते ! किं निजदेवरात् ।
हरेर्विभेषि मुग्धेव प्रगल्भाप्यप्रगल्भतः ॥ ॥८७॥

यामः स्वकुण्डं पश्यामो माधवीयां श्रियं वने ।
स्नात्वा पुनः समेष्यामः किं नः कृष्णः करिष्यति ॥ ॥८८॥

स्त्रीणां स्वैरं क्रीडनस्थानतो नः पुंभिर्द्रष्टुं स्थातुमप्यत्ययोगात् ।
तूर्णं वृन्दे ! याहि निःसारयामुं गोपातुर्वा तत्र किं कार्य्यमस्य ॥८९॥

अहमतिमृद्वी हरिरतिचण्डः सुकरः कथमिह वर्ज्जनदण्डः ।
अपसार्य्यस्ते सखि ! स शिखण्डी यदसि प्रखरा गुरुरतिचण्डी ॥९०॥

वासन्तिकवनपथा इति वासन्तिकवनं पन्था यासां तथाभूता यूयं ननु तृतीयान्तं तदा पथेनेति पदं भवति। यद्वा, महाकविप्रयोगात्। कृष्णकुण्डे स्नात्वा केनाप्यदृष्ट्वा व्रजत। इत्यादिसंलापविनोदमात्रं सर्वं ॥८६॥

निजदेवरात् कृष्णात् अप्रगल्भापि प्रगल्भापि त्वं मुग्धा इव विभेषि ॥८७॥

स्वकुण्डे राधाकुण्डे यामः। वासन्तीं श्रियं पश्यामः राधाह ॥८८॥

हे वृन्दे ! तूर्णं याहि। नः स्त्रीणां स्वैरं यथेप्सितं क्रीडास्थानतः अमुं कृष्णं निःसारय बहिः कुरु। कथम्भूतात् पुंभिर्द्रष्टुं स्थातुश्चाप्ययोगात्। गोपातुर्गोपालस्यास्य तत्र किं कार्य्यं ? ॥८९॥

वृन्दाह, अहं अतिमृद्वी कृष्णः अतिचण्डः। कृष्णस्य वर्ज्जनदण्डः कथं मत्कर्त्तृकः सुकरः स्यात्। हे सखि ! त्वया स प्रसिद्धः शिखण्डी अपसार्य्यः। यद्यस्मादसि त्वं प्रखरा गुरुरतिचण्डी च ॥९०॥

पादपद्मके रसमय प्रशस्त तीर्थ में स्नानकर निभृत में यथेष्ट गमन करो, कोई भी तुम सबको नहीं देखेगा।।८६।

बात को सुनकर ललिता बोली,–कुन्दलते ! कृष्ण तो तुम्हारे देवर है, तुम प्रगल्भा होकर भी अप्रगल्भ हरिके निकटसे मुग्धारमणी की भाँति क्यों भीता हो रही हो ? ।।८७।। तब श्रीराधा बोली,–सखि ! हम तो अपने ही कुण्डको जायेंगी, वनमें माधवी शोभा, कृष्ण तथा बसन्त की शोभा को देखूँगी। एवं स्नानकर पुनर्वार आ जाऊँगी, कृष्ण हमें क्या करेंगे ? ।।८८।। वृन्दे ! तुम शीघ्र जाओ, हम स्त्री जाति हैं, हमारे यथेप्सित क्रीड़ास्थान से कृष्णको निकाल कर बाहर कर दो, वह स्थान, पुरुषों के दर्शन अवस्थान योग्य नहीं है, कृष्ण तो गोपाल है, सर्वदा गोचारण करना उनका कर्म है, वहाँपर रहने की आवश्यकता क्या है ?।।८९।। वृन्दा बोली,–राधे मैं तो

कुन्दवल्याह वृन्दे ! त्वं भ्रान्ता चण्ड्यानया कथम्।
स निष्कास्यः पशुपतिर्व्याप्यमर्द्धाङ्गमस्य तु॥ ॥९१॥

वृन्दाहाप्तसुभद्रश्रीः कुन्दवल्ल्येव दृश्यते।
मधुसूदनसम्भोग्या पुन्नागाङ्गाश्रयोन्मुखी॥ ॥९२॥

स्मेरासु सर्वास्ववदद्विलोक्य श्रीराधिकामुत्कलिकान्वितां सा।
तां भावगाम्भीर्य्यसुमन्थराङ्गीं कृष्णस्य तृष्णां विनिवेदयन्ती ॥९३॥

मत्प्रश्नमेकं ललिते ! वद द्रुतं कादम्विनीं वीक्ष्य दिगन्त उद्गतां।
पिपासया मुह्यति चातकेश्वरे समीरणाल्याः करणीयमाशु किम् ॥९४॥

चण्ड्या कोपिन्यैव पार्व्वत्यानया स पशुपतिः पशूनां धेनूनां पतिः पालकः। श्रीकृष्णः स एव पशुपतिर्महादेवः कथं निष्कास्यः अस्य तु पशुपतेरर्द्धाङ्गमनया व्याप्यं वर्त्तते इति श्लेषः ॥९१॥

कुन्दपुष्पस्य वल्ली कुन्दवल्ली तन्नामा गोपी च। मधुसूदनेन भ्रमरेण कृष्णेन च सम्भोग्या दृश्यते। कीदृशी ? आप्ता सुभद्रा श्रीर्यया सा। आप्ता सुभद्रनाम्नो गोपस्य श्रीः सम्पत्तिर्यया उपनन्दस्य पुत्रः सुभद्रः सुभद्रगृहस्वामिनीत्यर्थः। पुन्नागवृक्षस्याङ्गं पक्षे कृष्णस्याङ्गं तस्याश्रये सम्मुखी अङ्गमाश्रयितुमभिलाषयुक्ता ॥९२॥

तच्छ्रुत्वा सर्वासु स्मेरासु वृन्दा कृष्णस्य तृष्णां निवेदयन्ती सती, तां राधामुत्कण्ठितां। भावस्य गाम्भीर्य्येण मन्थराङ्गीमवलोक्यावदत् ॥९३॥

अति मृद्वी हूँ, श्रीकृष्ण, अति प्रचण्ड स्वभाव के है, अतएव कैसे स्थान से निष्कासन कर देना हमसे सम्भव होगा ? हे सखि ! तुम तो प्रखरा हो, अति प्रचण्डा भी हो, तव शिखिपुच्छधारीको निष्कासन करना तुम्हारा ही कर्त्तव्य कर्म है।।९०।। यह सुनकर कुन्दवल्ली बोली,–तुम भ्रान्ता हो गई हो, चण्डी अर्थात् श्रीराधा कैसे पशुपति को अर्थात् कृष्णको निष्कासित करेगी, कारण चण्डी तो पशुपति के अर्द्धाङ्ग में व्याप्त होकर रहती है।।९१।। यह सुनकर वृन्दा श्लेषसे कहने लगी, हे सखीगण ! यह सुभद्रश्री अर्थात् शोभनरूप सम्पन्ना कुन्दलता को देख रही हूँ। यह मधुसूदन 'भ्रमर' भोग्या होकर भी पुन्नाग वृक्षको आश्रय करने के लिए उन्मुखी हुई है। श्लेषार्थ में-हे सखीगण ! यह सुभद्र पत्नी कुन्दवल्ली को देख रही हूँ। यह कृष्ण संभोग्या है, श्रीकृष्ण के अङ्गको आश्रय करने की अभिलाषवती हुई है।।९२।। यह सुनकर सखी सब हँसने लगीं, वृन्दा,–श्रीकृष्ण की तृष्णाको कह रही थी, इस समय श्रीराधाको उत्कण्ठिता एवं भाव गाम्भीर्य्य से अलसाङ्गी होते देखकर बोली।।९३।। ललिते ! मेरा एक प्रश्न है, शीघ्र उसका उत्तर दो, प्रश्न यह

दिशि दिशि निशि चाह्नि प्रस्फुरन्ति प्रचण्डा
अविरतगतिकाली प्रेर्य्यमाणाः पुरोऽमुम्।
नवनवरसपूरैः कालिकाः सेचयन्त्यो
न भवति परमेका प्रेक्षणीयास्य सैव॥ ॥९५॥

स चेत्तदेकनिष्ठः स्यात् सापि तां त्वरितं तदा।
समानाय्य पुरोऽस्यामुं पाययेदमृतं मुदा॥ ॥९६॥

नीरसा अपि ताः शश्वदाशुगाल्योविचालिताः।
चपलाः कालिकाः क्वापि भवन्त्येता न तन्मुदे॥ ॥९७॥

कादम्बिनीं मेघमालां वीक्ष्य पिपासया चातकेश्वरे मुह्यति सति, समीरणश्रेण्याः आशु किं करणीयमिति वृन्दा अवदत्। अत्र कादम्बिनी राधा चातकः कृष्णः पवनाल्यो यूयं यत् कर्त्तव्यं तत् कुरुत॥९४॥

अविरता गतिर्यस्य स अविरतगतिः। को वायुस्तस्य समूहैः प्रेर्य्यमाणाः कालिकाः मेघपङ्क्तयः प्रचण्डाः निशि अहनि च। पुरोऽग्रे अमुं चातकेश्वरं। नवनवरसपूरैः सेचयन्त्यः स्फुरन्ति। पक्षे, वायुरिवाली सखी तया प्रेर्य्यमाणा यूथेश्वरी नायकं रसैः सेचयन्ती स्फुरति सा यूथेश्वरीं कालिका च अस्य नायकस्य चातकेश्वरस्य च परं केवलं सा एकैव प्रेक्षणीया न भवति, अपि तु भवत्येव। युष्माभिः प्रेरिता राधाकृष्णं रसैर्बहुधा सिक्तं। ईदृशस्य कृष्णस्य तादृशी राधा प्रेक्षणीया भवत्येव इत्यर्थः। मेघपङ्क्तौ कालिका। कालिका मेघजाले स्यादिति च॥९५॥

स चातकेश्वरः चेद्यदि तदेकनिष्ठो मेघमालैकनिष्ठः स्यात्। तदा सा पवनाली तां मेघश्रेर्णी समानय्यामुं चातकेश्वरममृतं पाययेत्॥९६॥

है, यदि चातक दिक्प्रान्त की मेघमालाको देखकर पिपासा व्याकुल होता है, तो पवनरूपा सहचरी को उस समय क्या करना उचित होगा? अर्थात् जहाँ पर श्रीराधा कादम्बिनी, श्रीकृष्ण चातक है, एवं तुम सब सखीश्रेणी समीरण हो, अतएव इस समय जो करना है करो॥९४॥ सखियां बोली- वृन्दे! तब निशीथमें हो अथवा दिवसमें, समीरणके द्वारा परिचालित प्रचण्ड मेघमाला सम्मुखवर्त्ति चातकेश्वर को सिञ्चनकर स्फूर्त्तिशीला होती है, कारण मेघमालाको छोड़कर चातक की दूसरी गति ही नहीं है, मेघमाला को भी चातकको छोड़कर दूसरे की अपेक्षा ही नहीं है॥९४॥ हे वयस्यागण! वह चातक यदि केवल मेघमालानिष्ठ होता है, तब पवनश्रेणी मेघमालाको लाकर

तद्यात यूयं स्वच्छन्दं स्नात्वारिष्टारितीर्थके।
कुरुताल्यो मित्रपूजां तिष्ठाम्यत्रास्ति मे कृतिः॥ ॥९८॥

यातासु तासु लघुसूक्ष्मधियं शुभाञ्च
सा शारिके सुचतुरा न्यदिशत् प्रवृत्त्यै।
आद्यां व्रजाय सुजवामभिमन्युमातु-
श्चन्द्रावलेरथ परां गिरिजालयाय॥ ॥९९॥

सेवासम्भारसंस्कारागारमागत्य वीक्ष्य तान्।
सम्भारान् प्रशशंसोच्चैः सा मुदा तत्कृतो जनान्॥ ॥१००॥

ता एताश्चपलाश्चञ्चलाः कालिका नीरसा अपि शश्वद्वारं वारं आशुगाली पवनश्रेणी तया विचलिता मेघा यथा मुदे आनन्दाय न भवन्ति। पक्षे, नीरसा अपि यूथेश्वर्य्य आशुगा इव सख्यस्ताभिश्चालिता तत्तस्य चातकस्य नायकस्य मुदे न भवन्ति अपि तु भवन्त्येव किमुत सरसा॥९७॥

व्यक्तमाह, अरिष्टारितीर्थके कृष्णकुण्डस्य पावनाख्यघट्टे स्नात्वा सूर्य्यपूजां कुरुत। मे कृतिः कार्य्यमस्ति अत्र तिष्ठामि॥९८॥

तासु ललितादिषु यातासु गतासु सा वृन्दा सुचतुरा द्वे शारिके लघु यथा स्यात्तथा आद्यां सूक्ष्मधियं शारिकां सुजवां गन्तुं वेगवतीं व्रजाय अभिमन्युमातुः प्रवृत्त्यै चेष्टाज्ञानार्थं। परांशुभां। चन्द्रावलेः प्रवृत्त्यै गिरिजालयाय गौरीतीर्थाय न्यदिशत्॥९९॥

राधाकृष्णादीनां सेवोपयोगिसम्भारान् वस्तूनि वीक्ष्य सम्भारकृतो जनान् प्रशशंस॥१००॥

चातकेश्वर को अमृत पान करायेगी।।९६।। हे सखीगण! सखियो सुना! चञ्चल मेघमाला नीरस होकर भी यदि पुनः पुनः पवनश्रेणीके द्वारा चालित होती है, तब क्या चातक के लिए सुखकर नहीं होती है?।।९७।। हे सखीगण! सुनो, तुम सब स्वच्छन्द से जाकर कृष्णकुण्डके पावन नामक घाटमें स्नानकर सूर्यपूजा करो, मेरा कुछ कार्य है, मैं थोड़ी देर यहाँ रहूँगी।।९८।। अनन्तर सखीगण वहाँसे गमन करने पर सुचतुरा श्रीवृन्दादेवी, वेगवती दो सारिका को वृत्तान्त जानने के लिए नियुक्त किया, उसके बीचमें सूक्ष्म बुद्धि नाम्नी सारिका को अभिमन्यु की माता की प्रवृत्ति को जानने के लिए व्रजमें एवं शुभा नाम्नी सारिका को चन्द्रावली की चेष्टा को जानने के लिए गौरीतीर्थ को जानेके लिए आदेश दिया।।९९।। तदनन्तर वृन्दादेवी सेवासम्भार संस्कार गृहमें आकर श्रीराधाकृष्ण को सेवोपयोगी सामग्री समूहको

वसन्तकेलिर्हिन्दोललीलामाध्वीकपानयोः।
वनरत्यम्बुकेलीनां मिथो वेशकृते तयोः॥ ॥१०१॥

वन्याशनास्वापयोश्च शुकपाठाक्षलीलयोः।
तत्तत्स्थानेषु सा तत्तत्सामग्रीस्तैरयोजयत् ॥१०२॥ युग्मकम्॥

तत्तल्लीलापरिकरान् सर्व्वान् स्थावरजङ्गमान्।
नन्दितांस्त्वरितांश्चके तयोरागतिवार्त्तया॥ ॥१०३॥

तयोर्मिथोदर्शनलब्धि-राकासमुच्छलद्भावचयामृताब्धौ।
सा संप्लवेच्छा त्वरितान्तरासीत् स्थिता हरेः सन्निधिकुञ्जलीना ॥१०४॥

तावन्नान्दीमुखी तासां पश्चादागत्य सोत्सुका।
तयोर्लीलावलोकाय स्थिता सा वृन्दया सह॥ ॥१०५॥

सा वृन्दा तैः परिचारकेस्तत्तत्स्थानेषु वसन्तकेल्यादिस्थानेषु। तत्तत्सामग्री-र्वसन्तकेल्यादिसामग्रीरयोजयत्। वसन्तकेलिः हिन्दोललीला। मधुपानवनकेलि-रतिकेलिजलकेलिनां तयोराधाकृष्णयोर्मिथोवेशकृते। वन्यभोजनशयनशुकपाठाक्षलीला दशप्रकारलीलासामग्रीः ॥१०१॥१०२॥

तयोराधाकृष्णयोरागमनवार्त्ता तत्तल्लीलायां हिन्दोलनादिलीलायां परिकरान् आनन्दितान् त्वरितांश्च चक्रे ॥१०३॥

तयो राधाकृष्णयोः परस्परदर्शनलाभ एव राका पूर्णचन्द्रः पूर्णचन्द्रयुक्ता रात्री राका। कलाहीने सानुमतिः पूर्णे राका निशाकरे इत्यमरः। यद्वा, लक्षणया तत्पतिः

देखकर अतिशय आनन्द के साथ सामग्री सम्पादनकारिणी वनदेवी की भूरि -भूरि प्रशंसा की॥१००॥ बादमें श्रीवृन्दादेवीने परिचारिकागण के द्वारा श्रीराधाकृष्ण की बसन्त केलि, हिन्दोल लीला, मधुपान, रतिकेलि, जलकेलि, समस्त केलि के उपयोगि वेशरचना की सामग्री, एवं वन्यभोजन, शयन, शुकपाठ अक्षलीला ये दस प्रकार लीलोपयोगी सामग्रीको यथास्थान में रखवाई॥१०१॥१०२॥ इसके बाद श्रीवृन्दादेवीने श्रीराधाकृष्ण की आगमन वार्त्ता के द्वारा उक्त लीला समूह के परिकरों को आनन्दित एवं त्वरान्वित किया॥१०३॥ अनन्तर आप श्रीराधाकृष्ण के परस्पर दर्शनलाभ रूप पूर्णचन्द्र के द्वारा जो भाव समूह रूप सुधासागर उच्छलित होगा, उसमें स्नान करेंगे, अर्थात् सबकुछ दर्शन करेंगे, इस इच्छासे अन्तःकरण त्वरान्वित होनेपर श्रीहरि के निकटवर्त्ति कुञ्जमें जाकर छिपकर रह गयी॥१०४॥

कृष्णोऽप्याराद्बकुलविटपिश्रेणियुग्मान्तराध्व-
न्यागच्छन्तीं प्रियसहचरीवेष्टिनां वल्लभां ताम्।
दृष्ट्वा साक्षादुदितमदनोऽपि प्रतीयाय नायं
स्फूर्त्त्या तस्यास्तदभिगमने यन्मुहुर्वञ्चितोऽस्ति॥ ॥१०६॥

कान्तापि कान्तमवलोक्य चमत्कृतात्मा
तं भूरिभावविवशा न हि निश्चकाय।
यत् प्राक् तमालमनु तद्भ्रमतः प्रलापा-
दालीकुलस्य हसितैरतिलज्जितासीत्॥ ॥१०७॥

मिथस्तत्तद्गुणानन्त्यानुभवाक्रान्तमानसौ।
दर्शनानन्दमत्तौ तौ सवितर्कं तदोचतुः॥ ॥१०८॥

पूर्णचन्द्रस्तेन समुच्छलति भावसमूहरूपामृतसमुद्रे स्नानेच्छया त्वरायुक्तमन्तरं मनो यस्याः सा वृन्दा हरेः सन्निधिकुञ्जे लीना सती स्थितासीत्॥१०४॥१०५॥

अयं कृष्णोऽपि वकुलवृक्षश्रेणीद्वयमध्यमार्गे आगच्छन्तीं तां वल्लभां राधां साक्षात् दृष्टोदितमदनोऽपि तस्याः स्फूर्त्त्या पूर्व्वं तद्विरहकातरेण स्वेनानुभूतया हेतुना राधेयं न हि तस्याः स्फूर्त्तिरेवेयमिति बुद्ध्या तदभिगमनेन प्रतीयाय प्रतीतो नाभूत्। यद्यस्मात् तत्तया राधया मुहुर्व्वञ्चितोऽस्ति भवति॥१०६॥

कान्तापि भूरिभावविवशा तं कान्तमवलोक्य न हि निश्चिकाय यद्यस्मात् प्राक् तमाले कृष्णभ्रान्त्या प्रलापेन सखीनां हसितैरतिलज्जासीत्॥१०७॥१०८॥

इस अवसर पर नान्दीमुखी श्रीराधाकृष्ण की लीला सन्दर्शनार्थ उत्सुकचित्ता होकर सबसे पीछे, श्रीवृन्दाके साथ एकत्र अवस्थान करने लगी।।१०५।। अनन्तर कृष्ण भी बकुलवृक्षश्रेणी दोनोंके मध्यमें पथसे प्राणबल्लभा राधाको सखिगणों से परिवेष्टिता होकर आते देखकर मदनावेशमें विभोर हो जाने से श्रीराधा का आगमन में विश्वास नहीं किए कारण उनके आगमन में आप अनेक बार वञ्चित हो चुके हैं।।१०६।। उधर श्रीराधिका भी श्रीकृष्ण को देखकर विस्मित होगई और अनेक भावोंसे विवश हो जाने के कारण निश्चय ही न कर सकी वह कृष्ण है, कारण इसके पहले भी श्रीराधा तमाल वृक्ष को देखकर श्रीकृष्णभ्रमसे प्रलाप करने लगी थी, उसको देखकर सखियों ने उपहास भी किया था, उससे राधा विशेष लज्जित हुई थी।।१०७।। तब श्रीराधा एवं श्रीकृष्ण,-परस्पर के स्वभावसिद्ध गुणके अनन्त अनुभव से आक्रान्त चित्त होकर उभयके दर्शनसे उभयही आनन्द से

किं कान्तेः कुलदेवता किमुत वा तारुण्यलक्ष्मीरियाम्
सम्पद्वा किमु माधुरी तनुमती लावण्यबन्या नु किम् ।
किम्वानन्दतरङ्गिणी किमथवा पीयूषधारास्रुतिः
कान्तासावुत वा ममेन्द्रियगणानाह्लादयन्त्यागता ॥ ॥१०९॥

या मे नेत्रचकोरचन्द्रवदना नासालिनी पद्मिनी
जिह्वाकोकिलिका-रसालदधरा ※ कर्णेज हृच्छिञ्जिता ।
देहानङ्गदवार्त्तवारणसुधास्रोतस्वतीमूर्त्तिका
सैवेयं दयितोदिता फलितवान् मद्भाग्यकल्पद्रुमः ॥ ॥११०॥

वितर्कमेवाह इयं किं कान्तेः शोभायाः कुलदेवता किमुत वा तारुण्यलक्ष्मीस्तारुण्यशोभा किमु वा शरीरधारिणी माधुरीसम्पत् किं नु लावण्यवन्या लावण्यजलसमूहः किम्वा आनन्दनदी किमथवा अमृतधारायाः सुतिः क्षरणं उत वा असौ ममेन्द्रियगणानाह्लादयन्ती कान्ता आगता ॥१०९॥

निश्चयं सैवेयं मे प्रिया उदिता अन्यत्र एतादृशगुणस्य सम्भावनैव नास्त्येवेत्याह। या राधा मे नेत्रचकोरस्य चन्द्रवद्वदना नासाभ्रमर्य्याः पद्मिनी जिह्वा-कोकिलाया रसालवत् आम्रमुकुलवदाचरन् अधरो यस्याः सा। कर्णाविव एणौ मृगौ तौ हरति मोहयतीति तथा। किम्वा तयोर्हृदयाकर्षि शिञ्जितं भूषाया ध्वनिर्यस्याः सा। यथा मधुरगानश्रवणेन मृगस्य हृत्तदाकृष्टं भवति। तथा मे कर्णौ भवत इति भावः। देह एव अनङ्गरूपेण दवेन वनाग्निना आर्त्तः पीडितो वारणो हस्ती तस्य सुधानदी मूर्त्तिर्यस्याः सा। अतः मम भाग्यरूपकल्पवृक्षः फलितवान् ॥११०॥

अतिशय मत्त होगए एवं परस्पर के प्रति वितर्क कर परस्पर कहने लगे ।।१०८।। श्रीकृष्ण राधाको देखकर वितर्क कर कहने लगे, आहा-यह क्या शोभाकी कुलदेवता है, अथवा तारुण्य लक्ष्मी है, किम्वा शरीरधारिणी माधुर्य्य सम्पत् है, अथवा लावण्यजलराशि है, किम्वा आनन्द तरङ्गिणी, अथवा वर्षित अमृत धारा है, अथवा मेरी इन्द्रियों को आनन्द प्रदान करते -करते वह कान्ताका ही आगमन हुआ ।।१०९।। श्रीकृष्णने पुनर्वार वितर्क कर कहा, आहा ! जो मेरे नयन चकोर की चन्द्रवदना, जो नासारूपी भ्रमर की पद्मिनी, जो जिह्वा कोकिला के आम्रमुकुल सदृश है, जिन के भूषण शब्दसे कर्णरूप हरिण युगल आकृष्ट हो रहे हैं, जो अनङ्गरूप दावानलदग्ध मत्त हस्ती के लिए अमृतनदी स्वरूप है, उस प्रियतमा का क्या आगमन

तापिञ्छः किं किमु जलधरः कन्दलो वैन्द्रनीलः
सानुः किम्वाञ्जनशिखरिणः क्षीवभृङ्गव्रजो नु।
कृष्णापूरः किमुत निचयः किं स्विदिन्दीवराणाम्
पुञ्जीभूतो व्रजमृगदृशां किं न्वपाङ्गावलोकः॥ ॥१११॥

अयं किं कन्दर्पः स खलु वितनुः किं नु रसराट्
स नो धर्म्मी किम्वामृतरसनिधिः सोऽतिविततः।
किमुत्फुल्लप्रेमामरतरुवरः सोऽपि न चरः
स वासौ मत्प्रेयान् जयति मम भाग्यं क्व नु तथा ॥११२॥ युग्मकम्

श्रीराधायाः मनोगतमाह, अयं तापिञ्छस्तमालः किं किमु मेघः। ऐन्द्रनीलः कन्दल ऐन्द्रनीलमणेर्नवाङ्कुरो वा। किम्बा अञ्जनमयपर्व्वतस्य सानुः शिखरं क्षीवो मत्तो भ्रमरसमूहो नु किमुत कृष्णायाः पूरः प्रवाहः किं स्वित् नीलपद्मानां निचयः समूहः किं नु व्रजमृगदृशां पुञ्जीभूतोऽपाङ्गावलोकः ॥१११॥

कन्दर्पः किं न स कन्दर्पो वितनुस्तनुरहितः अयन्तु शरीरी रसराट् किं नु न सधर्म्मिणो अपि तु धर्म्म एव अयं धर्म्मिणो निषेधे किम्बा अमृतसमुद्रः न स समुद्रोऽतिविस्तृतः किमुत्फुल्लप्रेममयकल्पवृक्षः स वृक्षश्चरो जङ्गमो न अपि तु स्थावरः। स वासौ मम प्रेयान् जयति। नु भोस्तथा मम भाग्यं क्व कुत्र ॥११२॥

हे सखि विशाखे! सत्यं ब्रूहि सोऽयं कान्तः पुरतः स्फुरति कीदृशः मम

होगा? जो भी हो मेरा भाग्यरूप कल्पवृक्ष फलवान हो गया है।।११०।। अनन्तर श्रीराधा भी मनमें विचार कर वितर्क करने लगी-यह क्या तमालवृक्ष है? क्या नवजलधर? क्या इन्द्रनीलमणि का अङ्कुर? क्या अञ्जनमय पर्वतका शिखर है? क्या मत्त मयूर समूह है? अथवा व्रज हरिणनयनीगण के पुञ्जीभूत अपाङ्ग अवलोकन है? ।।१११।। यह क्या कन्दर्प है? नहीं वह तो शरीर हीन है, यह तो शरीरी है, तब क्या यह रसराज है? नहीं, वह तो धर्मी है, तब क्या अमृत रसका सागर हैं? वह तो अति विस्तृत है, तब क्या यह उत्फुल्ल श्रेष्ठ कल्पतरु है? वह तो स्थावर है, गमनशक्ति हीन है, तब यह हमारे प्रियतम है? नहीं, वैसा भाग्य मेरा कहाँ है? ।।११२।। अनन्तर श्रीराधा विशाखा को कहने लगी, हे सखि विशाखे। सम्मुख में नेत्ररूप भ्रमर के पद्मरूप विराजमान व्यक्ति कौन है? यह क्या मेरा कान्त है? किम्वा मैं भ्रान्त हो गई हूँ, सत्य कहो, तब विशाखा पुलकाङ्गी गद्गद् स्वरसे रुद्धकण्ठी सखियों के परिहास से चञ्चलाक्षी राधाको

कान्तः सोऽयं स्फुरति पुरतो नेत्रभृङ्गारविन्दः
किम्वा भ्रान्तास्म्यहमिति सखि ! ब्रूहि सत्यं विशाखे !
इत्थं पृष्टा पुलकिततनुं गदगदारुद्धकण्ठी–
मालीहासैश्चपलनयनां तामवादीन्मुदासौ ॥ ॥११३॥

कस्तूर्य्याः सत्तिलकमलिके यस्तवोरोजयुग्मे
चित्रं विन्दुः सुमुखि ! चिवुके नेत्रयुग्मेऽञ्जनश्रीः
श्रुत्योरिन्दीवरविरचितः कुन्तले चावतंसः
सोऽयं कान्तः स्फुरति सखि ! ते भाग्यराशिर्व्रजामुम् ॥११४॥

इत्थं मिथोदर्शनतो विशुद्धप्रेमस्वभावोद्गतभाववृन्दैः ।
विक्षुब्धसोल्लासमनस्तनू तौ क्षणं न काञ्चित् ययतुः प्रवृत्तिम् ॥११५॥

नेत्रभृङ्गयोररविन्दं विलासास्पदमित्यर्थः . किम्वा भ्रान्तास्मि इत्थं पृष्टासौ विशाखा तां राधामवादीत् कीदृर्सी ? आलीनां हासैश्चपलनयनां ॥११३॥

हे सखि ! ते भाग्यराशिः तव पुञ्जीभूतभाग्यरूपो यः सोऽयं कान्तः स्फुरति । अमुं कान्तं व्रज सोयं सोऽयं कः यस्तवालिके ललाटे कस्तूर्य्याः सत्तिलकं स्तनयोर्यश्चित्रं चिवुके विन्दुः नेत्रयोरञ्जनश्रीः कर्णयोर्नीलपद्मविरचितः अवतंसस्तथा केशे भूषारूपं कस्तूर्य्यादिः सत्तिलकादिकं यथा ललाटाद्येकैकाङ्गस्य भूषणं तथायं तव सर्व्वाङ्गस्य भूषणं यस्य वर्णसाम्यात् । कस्तूरीतिलकादिकं सदा स कान्तः स्वयमयमागत इत्यर्थ ॥११४॥

इत्थं परस्परदर्शनात् विशुद्धप्रेम्नः स्वभावेनोद्गतभावसमूहैर्विक्षुब्धे सोल्लासे च मनः शरीरे ययोस्तौ । श्रीराधाकृष्णौ क्षणं किञ्चिदपि प्रवृत्तिं चेष्टां न ययतुः स्तब्धौ बभूवतुः ॥११५॥

॥ ※ ॥ इति श्रीगोविन्दलीलामृते मध्याह्नलीलावर्णने अष्टमः सर्गः ॥ ※ ॥

कहने लगी ।।११३।। हे सुमुखि ! जिसको तुम सामने देख रही हो, वह तुम्हारे ललाट के कस्तुरी तिलक हैं, स्तनयुगल के चित्र हैं, चिबुकके कस्तूरीविन्दु हैं। नेत्रद्वय की शोभा हैं, अञ्जन स्वरूप हैं, कर्णयुगल के नील कमल रचित भूषण हैं, केशकलाप के अवतंस हैं, वह ही तुम्हारे सौभाग्य राशिरूप कान्त विराजित हैं, हे सखि ! तुम उनकी शरणापन्न हो जाओ ।।११४।। इस प्रकार श्रीराधा एवं श्रीकृष्ण,-परस्पर दर्शन हेतु विशुद्ध प्रेम स्वभावतः उद्बुद्ध होने पर भावसमूह के द्वारा विक्षुब्ध एवं निस्तब्ध होकर सम्पूर्णरूप से चेष्टाशून्य हो गये ।।११५।।

श्रीचैतन्यपदारविन्दमधुप–श्रीरूपसेवाफले
दिष्टे श्रीरघुनाथदासकृतिना श्रीजीवसङ्गोद्गते।
काव्ये श्रीरघुनाथभट्टवरजे गोविन्दलीलामृते
सर्गः साम्प्रतमष्टमोऽयमगमन्मध्याह्नलीलामनु ॥✻॥ ८ ॥✻॥

श्रीकृष्णचैतन्य महाप्रभु के पदारविन्द के मधुपानकारी भ्रमर स्वरूप श्रीरूप गोस्वामी की सेवा का फल, श्रीरघुनाथदास गोस्वामीजी की प्रेरणासे श्रीमज्जीव गोस्वामीजी के सङ्गसे उद्भूत श्रीरघुनाथभट्ट गोस्वामी के वर स्वरूप श्रीगोविन्दलीलामृत काव्य में सम्प्रति मध्याह्नलीला का अष्टमसर्ग समाप्त हुआ॥ ✻ ॥ ८ ॥ ✻ ॥



श्रीगोविन्दलीलामृतम्

नवमः सर्गः

— ✻✻ —

अथानयोर्मानसनर्त्तकौ तौ प्रेमा स्वशिष्यौ तनुनर्त्तकीभ्यां।
शिक्षागुरुर्नर्त्तयितुं प्रवृत्तो वृन्दासखीवृन्दसभासदग्रे ॥ ॥१॥
चापल्यौत्सुक्यहर्षाद्यैर्भावालङ्करणैस्तयोः।
मनोनटौ स्वशिष्यौ तावलश्चक्रेमुदा गुरुः ॥ ॥२॥

वृन्दासखीवृन्दसभायां सखीनामग्रे शिक्षागुरुः प्रेमा अनयोः राधाकृष्णयोस्तनु-रूपनर्त्तकीभ्यां सह तौ मानसनर्त्तकौ नर्त्तयितुं प्रवृत्तः प्रेमजन्यतनुमनसोर्वहुचाञ्चल्य-मभूदित्यर्थः ॥१॥

गुरुः प्रेमा मुदा हर्षेण तयोराधाकृष्णयोस्तौ स्वशिष्यौ मनोनटौ चापल्यादि-भावरूपालङ्कारैरलश्चक्रे। तयोर्मनसि चापल्यादिभावोऽभूत् ॥२॥

तत्पश्चात् वृन्दा प्रभृति सभासद्गणके समक्षमें प्रेम नामक शिक्षागुरु श्रीराधाकृष्णके मनोरूप अपने दो शिष्यको श्रीराधाकृष्ण की तनुरूपा नर्त्तकी द्वयके साथ नृत्य कराने के लिए प्रवृत्त हो गए, अर्थात् प्रेमके कारण दोनों के तन एवं मन अतिशय चञ्चल हो गए।।१।। अनन्तर उक्त प्रेमगुरुने आनन्दसे श्रीराधाकृष्ण

उद्भास्वरैस्तु जृम्भाद्यैः सुदीप्तैः सात्त्विकैरपि।
आकल्पैः समलङ्कृत्य श्रीराधातनुनर्त्तकीम् ॥ ॥३॥

अयत्नजैस्तु शोभाद्यैः सप्तभिर्दशभिस्तथा।
स्वभावजैर्विलासाद्यैर्भावाद्यैस्त्रिभिरङ्गजैः ॥ ॥४॥

जृम्भाद्यैरुद्भास्वरैः सूदीप्तैः सात्त्विकैरप्याकल्पैर्भूषणैः श्रीराधायास्तनुनर्त्तकीमलङ्कृत्य। उद्भास्वरा यथा, उज्ज्वलनीलमणौ। उद्भासन्ते स्वधाम्नीति प्रोक्ता उद्भास्वरा वुधैः। नीव्युत्तरीयधम्मिल्लभ्रंशनं गात्रमोटनं। जृम्भा घ्राणस्य फुल्लत्वं निश्वासाद्याश्च ते मताः। सात्त्विकाः। स्तम्भः स्वेदोऽथ रोमाञ्चः स्वरभेदोऽथ वेपथुः। वैवर्ण्यमश्रुप्रलय इत्यष्टौ सात्त्विका मताः। धूमायितज्वलितदीप्तोदीप्त सात्त्विकानां मध्ये उद्दीप्तानां भिदा एव सूद्दीप्ताः सात्त्विकाः। अत्रैव परमावधिः। सात्त्विकानां तैः सूदीप्तैः सात्त्विकैः ॥३॥

अयत्नजैः शोभाद्यैः सप्तभिस्तथा स्वभावजैर्विलासाद्यैर्दशभिरङ्गजैर्भावाद्यैस्त्रिभिः ॥४॥

श्रीराधाकृष्ण के मनोरूप निज शिष्यद्वय को प्रथमतः चापल्य, औत्सुक्य, हर्षादि नानाविध भावरूप अलङ्कार से भूषित किया, अर्थात् तत्कालीन श्रीराधाकृष्णके मनोमध्य में चापल्य प्रभृति भावों का उदय हुआ ॥२॥

"अथ चापलम्"

रागद्वेषादिभिश्चित्तलाघवं चापलं भवेत्।
तत्रा विचार पारुष्यस्वच्छन्दाचरणादयः ॥

अस्यार्थः–रागद्वेषादिके द्वारा मनकी जो लघुता है, उसको चपलता कही जाती है, इसमें अविचार, निष्ठुर वाक्यप्रयोग, स्वच्छन्दचारिता प्रभृति आचरण होते हैं।

अथौत्सुक्यम्।

कालाक्षमत्वमौत्सुक्यमिष्टेक्षाप्तिस्पृहादिभिः।
मुखशोषत्वराचिन्ता निश्वासस्थिरतादि कृत् ॥

अस्यार्थः–अभीष्ट वस्तु की दर्शनस्पृहा, प्राप्ति स्पृहानिमित्त विलम्ब की असहिष्णुता को औत्सुक्य कहा जाता है। इसमें मुखशोष, त्वरा, चिन्ता, दीर्घनिश्वास एवं स्थिरतादि अवस्था होती है। बादमें प्रेमगुरुने श्रीराधा की तनुरूपा नर्त्तकी को जृम्भादि उद्भास्वर एवं सुदीप्तादि सात्त्विक भावरूप भूषणके द्वारा अलङ्कृत किया ॥३॥ पश्चात् शोभादि सात भाव अयत्नज है, विलासादि दस,–स्वभावज है, एवं भाव प्रभृति तीन अङ्गज है ॥४॥

तथा चकितमौग्ध्याभ्यां द्वाविंशत्या मनोहरम्।
निरमासीद्भूषितां तामलङ्कारैः क्रमेण सः ॥५॥ सन्दानितकं ॥

तथा चकित-मौग्ध्याभ्यां सह मिलित्या शोभादि द्वाविंशत्या। मनोहरं यथा स्यात्तथा स प्रेमा क्रमेण उक्तैरलङ्कारैस्तां राधां भूषितां निरमासीत्। अकरोदिति तृतीयश्लोकेनान्वयः। अयत्नजाः शोभाद्या यथा तत्रैव। शोभाकान्तिश्च दीप्तिश्च माधुर्य्यं च प्रगल्भता। ऊदार्य्यं धैर्य्यमित्येते सप्तैवस्यूरयत्नजाः। स्वभावजास्तत्रैव। लीलाविलासी विच्छित्तिर्विभ्रमः किलकिञ्चितं। मोट्टायितं कुट्टमितं विव्वोको ललितं तथा। विकृतिश्चेति विज्ञेया दशा तासां स्वभावजाः। भावाद्याः तत्रैव। भावो हावश्च हेला च प्रोक्तास्तत्र त्रयोऽङ्गजाः ॥५॥

अथोद्भास्वरः– उद्भास्वन्ते स्वधाम्नीति प्रोक्ताउद्भास्वराबुधैः ।
नीव्युत्तरीय धम्मिल्लभ्रंसनं गात्रमोटनम् ॥

अस्यार्थः–भावविशिष्ट व्यक्तिके शरीरमें जो कुछ प्रकाश होता है, उसको पण्डितगण उद्भास्वर कहते हैं।

अथ दीप्ताः ॥

प्रौढ़ां त्रिचतुरां व्यक्तिं पञ्च वा युगपद्गताः।
सम्बरीतुमशक्यास्ते दीप्ता धीरैरुदाहृताः ॥

अस्यार्थः–वृद्धिप्राप्त तीन, चार, पाँच सात्त्विकभाव यदि एक समयमें उदित हो, एवं उसका सम्वरण करना असम्भव होने से सुधीगण उसको दीप्त कहते हैं।

उद्दीप्तः ॥

एकदा व्यक्तिमापन्नाः पञ्चषाः सर्व्व एव वा।
आरूढ़ाः परमोत्कर्षमुद्दीप्ता इति कीर्त्तिताः ॥

अस्यार्थः–एककालीन यदि पाँच, छै, अथवा समुदायभाव उदित होकर परमोत्कर्ष को प्राप्त हो, तो सुधीगण उसे उद्दीप्त कहते हैं।

सूद्दीप्तः ॥

उद्दीप्ता एव सूद्दीप्ता महाभावे भवन्त्यमी।
सर्व्व एव परां कोटिं सात्विका यत्र विभ्रति ॥

अस्यार्थः–सात्त्विक भावसकल महाभावमें परमोत्कर्षता को प्राप्त करते हैं। इस हेतु उद्दीप्तभाव समूह महाभाव अवस्थामें सूद्दीप्त होते हैं।

अथ सात्त्विकाः ॥

ते स्तम्भस्वेदरोमाञ्चाः स्वरभेदोऽथ वेपथुः।
वैवर्ण्यमश्रुप्रलय इत्यष्टौ सात्त्विकाः स्मृताः ॥

अस्यार्थः-स्तम्भ, स्वेद, रोमाञ्च, स्वरभेद, कम्प, वैवर्ण्य, अश्रु, प्रलय यह अष्टसात्त्विक नामसे प्रसिद्ध है। **अथ धूमायिताः ।।**

अद्वितीया अमी भावा अथवा सद्वितीयकाः।
ईषद्व्यक्ता अपह्नोतुं शक्या धूमायिता मताः ।।

अस्यार्थः-यह भावसमूह यदि स्वयं अथवा द्वितीय भावके साथ युक्त होकर अत्यल्प प्रकाशित होता है एवं गोपन किया जा सकता है, तो उसको धूमायिता कहते हैं। **अथ ज्वलिताः ।।**

ते द्वौ त्रयो वा युगपद्यान्तः स्वप्रकटां दशां।
शक्याः कृच्छ्रेण निह्नोतुं ज्वलिता इति कीर्त्तिताः ।।

अस्यार्थः-उक्त भावनियम से यदि दो अथवा तीन युगपद् स्वीय प्रकट दशाको प्राप्त होते हैं, एवं वह यदि कष्टसे गोपन किया जा सके तो ज्वलित कहा जाता है। **अथ अयत्नजाः। तत्र शोभाः ।।**

सा शोभारूपभोगाद्यैर्य्यत् स्यादङ्गविभूषणं ।।

अस्यार्थः-रूप एवं भोगादि के द्वारा अङ्गका जो विभूषण होता है, उस को शोभा कहते हैं। **अथ कान्तिः ।।**

शोभैव कान्तिराख्याता मन्मथाप्यायनोज्जला।

अस्यार्थः-कन्दर्पविलास से तृप्त होनेपर उससे जो उज्ज्वल शोभा होती है, उसको कान्ति कहते हैं। **अथ दीप्तिः ।।**

कान्तिरेव वयोभोगदेशकालगुणादिभिः।
उद्दीपितातिविस्तारं प्राप्ता चेद्दीप्तिरुच्यते ।।

अस्यार्थः-वयस, भोग, देश, काल, गुणादि के द्वारा कान्ति ही यदि उद्दीपित होकर अतिशय विस्तृता होती है तो उसको दीप्ति कहते हैं।

अथ माधुर्य्यम् ।।

माधुर्य्यंनाम चेष्टानां सर्वावस्थासु चारुता ।।

अस्यार्थः-समस्त अवस्था में चेष्टासमूह की मनोहारिता को माधुर्य्य कहते हैं ।।

अथ प्रगल्भता ।।

निःशङ्कत्वप्रयोगेषु बुधैरुक्ता प्रगल्भता ।।

अस्यार्थः-सम्भोग विषयमें जो निशङ्कत्व, सुधीगण उसे प्रगल्भता कहते हैं।

अथौदार्य्यम् ।।

औदार्य्यं विनयं प्राहुः सर्वावस्थागतं बुधाः ।।

अस्यार्थः-सकल अवस्थामें ही जो विनय, उसको पण्डितगण औदार्य्य कहते हैं ।।

अथ धैर्य्यम् ।।

स्थिरा चित्तोन्नतिर्यातु तद्धैर्य्यमिति कीर्त्यते ।।

अस्यार्थः–चित्तकी उन्नति यदि स्थिर होती है, अर्थात् उन्नति अवस्था में चित्तकी जो स्थिरता, उसको धैर्य्य कहते हैं।

अथ स्वभावजाः। तत्र लीलाः।।

प्रियानुकरणं लीलारम्यैर्वेशक्रियादिभिः।।

अस्यार्थः–रम्यवेश, क्रियाके द्वारा प्रिय व्यक्तिका जो अनुकरण उसे लीला कहते हैं।।

अथ विलासः।।

गतिस्थानासनादीनां मुखनेत्रादि कर्मणां।
तात्कालिकन्तु वैशिष्ट्यं विलासः प्रियसङ्गजम्।।

अस्यार्थः–गतिस्थान आसनादि एवं मुखनेत्रादि कर्मसमूह का प्रिय सङ्गम हेतु जो तात्कालिक वैशिष्ट्य, उसको विलास कहते हैं।

अथ विच्छित्तिः।।

आकल्पकल्पनाल्पापि विच्छित्तिः कान्तिपोषकृत्।।

अस्यार्थः–वेश रचना की न्यूनता होने परभी शीर पुष्टिकारी को विच्छित्ति कहते हैं।

अथ विभ्रमः।।

वल्लभप्राप्तिवेलायां मदनावेश संभ्रमात्।
विभ्रमो हारमाल्यादिभूषास्थानविपर्य्ययः।

अस्यार्थः–वल्लभ के समीपमें अभिसार के समय मदनावेशसम्भ्रम से हारमाला प्रभृति का जो विपर्य्यय रूपसे धारण, उसका नाम विभ्रम है।

अथ किलकिञ्चितम्।।

गर्वाभिलाषरुदितस्मितासूयाभयक्रुधाम्।
सङ्करीकरणं हर्षादुच्यते किलकिञ्चितम्।।

अस्यार्थः–गर्व, अभिलाष्, रोदन, हास्य, असूया, भय, क्रोध, हर्षके कारण उक्त सात भावों का एकसमयमें प्रकट होना किलकिञ्चित होता है।।

अथ मोट्टायितम्।।

कान्तस्मरणवार्त्तादौ हृदि तद्भावभावितः।
प्राकट्यमभिलाषस्य मोट्टायितमुदीर्य्यते।।

अस्यार्थः–कान्तका स्मरण, तदीय वार्त्तादि श्रवणसे हृदय में कान्त विषयक भावकी भावना हेतु जो अभिलाष का प्राकट्य होता है, उसको मोट्टायित कहा जाता है।।

अथ कुट्टमितं।।

स्तनाधरादिग्रहणे हृत्प्रीतावपि सम्भ्रमात्।
बहिःक्रोधो व्यथितवत् प्रोक्तं कुट्टमितं बुधैः।।

अस्यार्थः–स्तन, अधरादि ग्रहण से हृदय में प्रीति होने परभी सम्भ्रम की कारण व्यथित की भाँति जो बाहर क्रोधका प्रकाश होता है, पण्डितगण उसे कुट्टमित कहते हैं।

अथ विव्वोकः ।

इष्टेऽपि गर्व्वमानाभ्यां विव्वोकः स्यादनादरः ।।

अस्यार्थः–गर्व, मानके द्वारा इष्ट अर्थात् कान्तदत्तवस्तुके प्रति यदि अनादर होता है, तो उसको विव्वोक कहा जाता है।

अथ ललितम् ।।

विन्यासभङ्गिरङ्गाणां भ्रूविलासमनोहरा ।
सुकुमारा भवेद्यत्र ललितं तदुदाहृतम् ।।

अस्यार्थः–जिससे अङ्गसमूह की विन्यास भङ्गि, सौकुमार्य्य एवं भ्रूविक्षेप की मनोहारिता प्रकटित होती है, उसको ललित कहा जाता है।।

अथ विकृतम् ।।

ह्री मानोर्ष्यादिभिर्यत्र नोच्यते स्वविवक्षितं ।
व्यज्यते चेष्टयैवेदं विकृतं तद्विदुर्बुधाः ।।

अस्यार्थः–लज्जा, मान, ईर्ष्या इत्यादि के द्वारा जहाँपर निज विवक्षित विषय को कहते नहीं है किन्तु निज चेष्टासे ही प्रकट करते हैं, उसको पण्डित गण विकृत कहते हैं।

तत्र भावः ।।

प्रादुर्भावं व्रजत्येव रत्याख्यो भाव उज्ज्वले ।
निर्व्विकारात्मके चित्ते भावः प्रथमविक्रिया ।।

अस्यार्थः–शृङ्गार रसमें निर्विकारात्मक चित्तमें रति नामक स्थायीभाव का प्रादुर्भाव होनेपर सर्वप्रथम जो विक्रिया होती है, उसको बुधगण भाव कहते हैं।।

अथ हावः ।।

ग्रीवा रेचकसंयुक्तो भ्रूनेत्रादि विकाशकृत् ।
भावादीषत्प्रकाशो यः स हाव इति कथ्यते ।।

अस्यार्थः–जिससे गर्दन टेढीकर देखते हैं, भ्रूनेत्रादिकी भी विकाशकारी अवस्था होती है, तथा भावसे ईषत् प्रकाशक होता है, उसको हाव कहा जाता है।

अथ हेला ।।

हाव एव भवेद्धेला व्यक्तशृङ्गारसूचकः ।।

अस्यार्थः–वह हाव सुस्पष्ट रूपसे शृङ्गार सूचक होनेपर हेला नाम होताहै। तथा उस प्रसङ्ग, "चकित एवं मौग्ध्य" यह दोनों के साथ शोभादि द्वाविंशति भावरूप अलङ्कार द्वारा मनोहर रूपसे क्रमशः श्रीराधा की तनुरूप नटीको विभूषित किया।।४।।

अथ चकितम् ।।

प्रियाग्रे चकितं भीतेरस्थानेऽपि भयं महत् ।।

अस्यार्थः–प्रियतमके सामने भयका कारण न होने परभी जो सहसा गुरुतर भय उपस्थित होता है, उसका नाम चकित है।

अङ्गजैर्भावहावाद्यैः शोभाद्यैस्तैरयत्नजैः ।
स्वभावजैर्यथायोग्यैः सुदीप्तैः सप्तसात्त्विकैः ॥ ॥६॥

उद्भास्वरैश्च जुम्भाद्यैरेभिः सद्भावभूषणैः ।
अलश्चक्रेसुनिपुणां श्रीकृष्णतनुनर्त्तकीम् ॥७॥ युग्मकम् ॥

तयोर्द्वयोरङ्गलक्ष्मी रङ्गस्थल्यां सुनर्त्तनम् ।
प्रवृत्तमासीत्तद्दृष्ट्वा मुदमापुः सभासदः ॥ ॥८॥

क्रमात्ते नर्त्तक्यौ प्रकटितकलाकौशलभरै-
र्मिथस्तृप्ते दृप्ते निजपर-परां तन्निपुणताम् ।
वितन्वाने बाढं ननृततुरहो येन मुदिता
द्रुतं सभास्ताभ्यां तनु हृदयरत्नान्यपि ददुः ॥ ॥९॥

एभिर्भावादिभिः सद्भावभूषणैः श्रीकृष्णस्य तनुनर्त्तकीमलश्चचक्रे । भावाद्याः पूर्व्व पूर्व्व श्लोक एव दर्शिताः ॥६॥७॥

राधाकृष्णयो रङ्गशोभैव रङ्गस्थली नृत्यभूमिस्तस्यां सुनर्त्तनं प्रवृत्तमासीत् । तन्नर्त्तकं दृष्ट्वा सभासदो ललितादयः मुदं प्रापुः ॥८॥

श्रीराधाकृष्णयोस्ते द्वे तनुनर्त्तक्यौ प्रकटितकलानां कौशलातिशयैर्मिथः परस्परं तृप्ते दृप्ते गर्व्विते च निजां स्वकीयां परादुत्तमादपि परां सर्व्वोत्तमां तत्तस्मिन्नर्त्तने निपुणतां वितन्वाने क्रमात् रहो ननृततुः । येन नर्त्तनेन सभ्याः ललितादयः । ताभ्यां सम्प्रदान-विषयाभ्यां तनु हृदयरूपरत्नानि ददुः । राधाकृष्णयोर्मिथः प्रेमजन्याङ्गमाधुर्य्य

अथ मौग्ध्यम् ॥

ज्ञातस्याप्यज्ञवत् पृच्छा प्रियाग्रे मौग्ध्यमीरितम् ॥

अस्यार्थः-प्रियतमके निकट ज्ञान वस्तुके प्रति अज्ञके समान जिज्ञासाका नाम मौग्ध्य है ॥५॥

उसके वाद अङ्गज हाव-भावादि, अयत्नज शोभादि, स्वभावज दश, एवं सुदीप्तादि सप्त सात्त्विक, एवं उद्भास्वर जृम्भा प्रभृति सद्भावरूप भूषण समूह के द्वारा सुनिपुण श्रीकृष्ण की तनु नर्त्तकी को भूषित किया ॥६-७॥ अनन्तर उन दोनों नर्त्तकी का, श्रीराधाकृष्ण के अङ्ग लक्ष्मीरूप रङ्गभूमि में नृत्य आरम्भ होने पर उसको देखकर ललिता प्रभृति सभासद्गण अतिशय आनन्दानुभव करने लगे ॥८॥ उक्त तनुरूप नर्त्तकी द्वय प्रकटित कला समूहके कौशलातिशयके द्वारा

राधायास्तनुनर्त्तकी मधुरिमभ्राजिष्णुरङ्गस्थले
स्वीय श्रीनयनद्वयोत्तम–नटौ कृष्णस्तथा नर्त्तयत्।
येनान्तर्मुदितासकौ स्वनयनप्रान्तावलोकोत्पलैः
शश्वत्तत्सुखदैरमण्डयदमुं सभ्याश्च पश्चान्मुदा ॥१०॥

पुरः कृष्णालोकात् स्थगित–कुटिलास्यागतिरभू-
त्तिरश्चीनं कृष्णाम्बरदरवृतं श्रीमुखमपि।
चलत्तारं स्फारं नयनयुगमाभुग्नमिति सा
विलासाख्य स्वालङ्करण–वलितासीत् प्रियमुदे ॥ ॥११॥

चापल्यादिकं च दृष्ट्वा सखीनां तनवो अश्रुरोमाञ्चादिना मनांसि च तल्लग्नेन तदर्पितान्यभूषन्निति तात्पर्य्यार्थः ॥९॥

उक्तार्थमेव स्पष्टमाह। राधायास्तनुनर्त्तकी तस्या मधुरिमैव भ्राजिष्णुरङ्गस्थलं तत्र श्रीकृष्णः स्वीयनयनरूपोत्तम–नटौ तथा नर्त्तयत्। येन नर्त्तनेनान्तर्मुदिता सती असकौ उसौ स्वार्थेऽक्। राधा स्वनयनयोरन्तेनावलोकनरूपकमलैः शश्वत् तत्तस्य कृष्णस्य सुखदैरमुं कृष्णममण्डयत्। सभ्याश्च मुदा पश्चादमुममण्डयन्। अत्र नेत्रनर्त्तकयोर्नृत्य-कोशलं दृष्ट्वा यथा तरोर्मूलनिषेचनेन तृप्यन्ति तत्स्कन्धभुजोपशाखा इतिवत् तयोर्नेत्रनर्त्तकयोरतितुष्ट्यर्थं तयोराचार्य्यं कृष्णममण्डयन्निति भावः ॥१०॥

परस्पर तृप्त, गर्वित होकर निज नर्त्तन विषयमें सर्वोत्तम निपुणता का विस्तार कर क्रमशः निर्जनमें नृत्य करने लगे। उसको देखकर ललितादि सभासद्गण परितुष्ट होकर दोनों नटीको देह मन प्राणरूप रत्न समूहको पारितोषिक रूपमें देने लगे। अर्थात् श्रीराधाकृष्णके परस्पर प्रेमजन्य अङ्गमाधुर्य्य चापल्यादि को देख कर सखियों के तनुसकल अश्रु रोमाञ्चादि के साथ मनः समूह भी उसमें समर्पित होगये।।९।। अनन्तर श्रीकृष्ण श्रीराधाके तनुरूप नर्त्तकी को मधुरिमामय आश्चर्य रङ्गस्थल में निज नयनद्वय रूप उत्तम नटद्वयको उक्त रूपसे नृत्य कराने लगे, जिस नृत्यसे हर्षिता होकर श्रीराधा श्रीकृष्णके सुखप्रद स्वीय नयन युगलके कोण के द्वारा अवलोकन रूप कमल समूह से श्रीकृष्णको विभूषित करने लगी, अर्थात् श्रीराधाके अङ्गप्रत्यङ्ग में श्रीकृष्णके नयनपात होने लगे, श्रीराधाभी निज नेत्रकोण के द्वारा श्रीकृष्णके अङ्गप्रत्यङ्ग में नेत्रपात करने लगी, यह सब देखकर सखीगण अतिशय आनन्दानुभव करने लगी।।१०।। तदनन्तर श्रीराधा सम्मुख में प्रियतम श्रीकृष्ण को देखकर उनके आनन्द विधानके लिए निज विलासाख्य

आकृष्टा पुरतस्तदोत्सुकतया सख्येव सा लज्जया
पश्चाद्वामतया नृजुप्रणयतः सव्ये स्वगेहाध्वनि।
सा सव्येऽप्यवहित्थया प्रबलया पुष्पावचित्त्यैबला-
दित्थं भावचयोद्‌गतिप्रचलिता कृष्णस्य सासीन्मुदे॥ ॥१२॥

इत्थं कृष्टा प्रियाग्रे सा बलिष्ठाभिः समन्ततः।
मनोवृत्ति-वयस्याभिर्न निर्याता न च स्थिता॥ ॥१३॥

पुरः कृष्णालोकात् प्रियस्य मुदे आनन्दाय सा विलासाख्य स्वस्य स्वोज्ञातावात्मनि स्वं त्रिष्वात्मीये सेवोऽस्त्रियां धने इत्यमरः। अलङ्कारेण युतासीत्। विलासाख्यालङ्कारमाह। कृष्णदर्शनादस्यागतिः स्थगितकुटिलाभूत्। मुखमपितिरश्चीनं नीलवस्त्रेण दरं स्वल्पमावृतं चाभूत्। नयनयुगं चलन्ती तारा यत्र तत् स्फारं विस्तृतं आभूग्नमल्पवक्रं चाभूत्। उज्ज्वलनीलमणौ विलासलक्षणं यथा। गतिस्थानासनादीनां मुखनेत्रादिकर्म्मणां। तात्कालिकन्तु वैशिष्टं विलासः प्रियसङ्गजः॥११॥

तदा सख्या इव उत्सुकतया उत्सुकस्य भाव उत्सुकतातया कर्त्र्या बलात् सा राधा पुरतोऽग्रे आकृष्टा। लज्जया सा राधा बलात् पश्चादाकृष्टा वामतया अनृजुवक्रस्तद्रूपप्रणयेन च सव्ये वामे स्वगेहाध्वनि च बलादाकृष्टा। प्रबलया अवहित्थया आकारगोपनेन सा सव्ये स्वस्या सव्ये दक्षिणे पुष्पावचितै-पुष्पावचयार्थं बलादाकृष्टा इत्थं भावसमूहस्य उद्‌गत्या उदयेन प्रचलिता नाना दिक्षु चलिता सा राधा कृष्णस्य मुदे आसीत्॥१२॥

अलङ्कारसे विभूषित हो गई, कारण श्रीकृष्ण दर्शनसे उनकी गति कुटिल स्थगित हो गई, उनका बदन भी नील वसनसे किञ्चित् आवृत हो गया एवं चञ्चलतारा विशिष्ट विशाल नयनयुगल ईषद्‌वक्र होनेसे उसमें विलासाख्य अलङ्कार दृष्ट होने लगा।।११।। तब श्रीराधा, श्रीकृष्ण सङ्ग हेतु अभिलाषवती होनेसे बोध होने लगा, जिस प्रकार उत्सुकतारूप सखी ही बलपूर्वक उनको आगे पकड़कर ले जा रही है, और लज्जारूपा सखी जैसे बलपूर्वक उनको पीछेकी ओर खींच रही है, वासना रूपा सखी जैसे कुटिल प्रणय के कारण बलपूर्वक वाँये ओर निज गृहके पथमें ले जाने लगी एवं बलबती अबहित्या रूपा अर्थात् आकार गोपनरूपा सखी जैसे आकार गोपनके द्वारा पुष्प चयन निमित्त बलप्रकाश पूर्वक दक्षिण के ओर खींचने लगी, श्रीराधा, इस प्रकार भावसमुदय के उदय के कारण नानादिक में भ्रमणकर श्रीकृष्ण का आनन्द विस्तार करने लगीं।।१२।। श्रीराधिका इस प्रकार

ह्रिया तिर्य्यग् ग्रीवा चरण कटिभङ्गी सुमधुरा
चलच्चिल्लीवल्लीदलित–रतिनाथोर्ज्जितधनुः ।
प्रियप्रेमोल्लासोल्लसित ललिता लालित–तनुः
प्रियप्रीत्यै सासीदुदित–ललितालङ्कृतियुता ॥ ॥१४॥

इत्थं प्रियाग्रे वलिष्ठाभिर्मनोवृत्ति वयस्याभिः कृष्टा आकर्षिता सा न निर्गता न स्थिता मनोवृत्तिभिः प्रियेण विहरिष्यामीत्यादिभिस्तस्मान् न निर्याता। अस्याग्रहं स्वादरञ्च वर्द्धयिष्यामीत्यादि मनोवृत्तिभिः न च स्थिता न स्थिरतया स्थिताः ॥१३॥

स्थातुं गन्तुं चासमर्था प्रियप्रीत्यै उदित ललितालङ्कारेण युतासीत्। ललितालङ्कार-युतायाः प्रकारमाह। ह्रियेत्यादि चलचिल्ली भ्रूःसैव वल्लीतया दलितो निर्ज्जितः कन्दर्पस्योर्ज्जितधनुर्यया सा। प्रियस्य प्रेम्णो य उल्लासस्तेनोल्लसिता सा चासौ ललितया लालितातनुर्यस्याः सा। प्रियप्रेमोल्लासोल्लसिता चासौ ललिता चेति तया लालिता क्रोडीकृत्य हस्तस्पर्शादिना सेविता तनुर्यस्याः सा। तस्य मानवृद्धौ ललिताया हर्षो भवतीति भावः। ललितं यथोज्जवलनीलमणौ। विन्यासभङ्गिरङ्गानां भ्रूविलास-मनोहरा। सुकुमारा भवेद्यत्र ललितं तदुदीरितं ॥१४॥

बलवती मनोवृत्ति रूपा वयस्या के द्वारा आकृष्टा होकर जा भी नहीं सकती, और रूककर रहभी नहीं सकती अर्थात् प्रियके साथ मिलकर विहार करेंगी, इस मनोवृत्ति से जा भी नहीं सकती, श्रीकृष्णके आग्रह एवं आदर वृद्धि करूँगी'' इस प्रकार मनोवृत्ति उनको स्थिर होकर रहने नहीं देती थी।।१३।। तब श्रीराधा जाने में, तथा रहने में असमर्था होकर लज्जा से ग्रीवा देश वक्र, चरण एवं कटी की मनोहर भङ्गी कन्दर्प के ऊर्जितधनु निर्जय कारिणी चञ्चलभ्रूलता सम्पन्ना एवं प्रियतमके प्रेमोल्लास से उल्लसिता एवं ललिता द्वारा हस्त स्पर्शादि द्वारा लालिताङ्गी होकर प्रियतमकी प्रीतिके निमित्त ललित नामक अलङ्कार से अलङ्कृता हुई।।१४।।

अथ ललितम्।।

विन्यासभङ्गिरङ्गानां भ्रूविलासमनोहरा।
सुकुमारा भवेद्यत्र ललितं तदुदाहृतं ।।

अस्यार्थः—जिससे अङ्गसमूह की विन्यासभङ्गि, सौकुमार्य्य, भ्रूविक्षेप, के मनोहारित्व प्रकाश होता है, उसको ललित कहा जाता है।।

तब श्रीराधाके तनुरूप नर्त्तकी के गुणसमूहसे श्रीकृष्णके मानसनट परितुष्ट

हरिमानस नटवर्य्ये राधातनुनर्त्तकीगुणैस्तोषात्।
गतवति तां परिरब्धुं तत्तनुनट्यपि तदनुगता जाता ॥१५॥

व्यत्यस्ताकल्पगात्री–द्रुतमभिसरणावेशतस्तं प्रिये तच्चा–
ञ्चल्यं वेश एष प्रथयति मनसोऽप्येह्यमुं संस्करोमि।
इत्थं स्पर्शोत्सुक स्वप्रिय–परिहसिताऽवाङ्मुखी सङ्कुचन्ती
लोलाक्षी-विभ्रमालङ्कृतिरुचिरतनुस्तस्य तुष्टिं व्यतानीत् ॥१६॥

ह्रिया भिया वामतयाऽवहित्थया कृतावकर्षा कुसुमग्रहाय सा।
तिरश्चलन्ती हरिणोत्सुकचेतसा पुरो निरुद्धा मुमुदे चुकोप च॥ ॥१७॥

राधातनुनर्त्तक्या गुणैस्तोषात् तोषं प्राप्य तां राधातनुतर्त्तकीं परिरब्धुं हरिमानस नटवर्य्ये गतवति सति तत्तस्य श्रीकृष्णस्य तनुनट्यपि तत्तस्य हरिमानस नटवर्य्यस्य अनुगता जाता। यथा। श्रीकृष्णस्य मनोवृत्तयः श्रीराधाङ्गमय्यो जातास्तथा तस्य तनुरपि राधानिकटे गता इत्यर्थः ॥१५॥

हे प्रिये द्रुतं शीघ्रं अभिसरणस्य मन्निकटागमनस्यावेशात् व्यत्यस्तं स्थानान्तरं गतं आकल्पो भूषणं गात्रेषु यस्यास्तथाभूता त्वं तस्मात् एष वेशः मम मनसश्चाञ्चल्यं अपिशब्दात् हस्तादेरपि चाञ्चल्यं प्रथयति एहि अमुं वेशं संस्करोमि। इत्थमनेन प्रकारेण स्पर्शोत्सुकेन प्रियेण परिहसिता सती विभ्रमालङ्कृतिभिः रुचिरा तनुर्यस्याः सा तस्य कृष्णस्य तुष्टिं व्यतानीत्। विभ्रमालङ्कृतिमाह। अवाङ्मुखी सङ्कुचन्ती लोलाक्षी च। विभ्रमो यथोज्ज्वलनीलमणौ। वल्लभप्राप्तिवेलायां मदनावेशसम्भ्रमात्। विभ्रमो हारमाल्यादिभूषा स्थानविपर्य्ययः ॥१६॥

होकर श्रीराधाके तनुनर्त्तकी को आलिङ्गन करने के लिए आगे बढ़ने से श्रीकृष्णकी तनुनटी भी हरिमानस नटके अनुगामिनी होनेसे अर्थात् श्रीकृष्ण की मनोवृत्ति सकल श्रीराधाके अङ्गमयी होनेपर श्रीकृष्णतनुभी श्रीराधाके निकट जाकर उपस्थित हुआ।।१५।। तब श्रीकृष्ण श्रीराधाको बोले-हे प्रिये ! तुम जो शीघ्र मेरे पास आ गई हो, इससे तुम्हारे अङ्गभूषण समूह विपर्य्यस्त होने से तुम्हारा यह वेश मेरा मन एवं हस्तादि अङ्गसकल को चञ्चलकर रहा है, अतएव मेरे निकट आओ। मैं पुनर्वार सुसज्जित कर दूँ, यह कह कर श्रीराधाङ्ग स्पर्शके लिए उत्सुक श्रीकृष्ण परिहास करते रहनेसे श्रीराधा अवाङ्मुखी, सङ्कुचिता, चञ्चलाक्षी एवं विभ्रम नामक अलङ्कारसे विभूषित तनु होकर श्रीकृष्ण की तुष्टिविधान करने लगी।।१६।।

बाष्पव्याकुलितारुणाञ्चलचलन्नेत्रं रसोल्लासितं
हेलोल्लासचलाधरं कुटिलित–भ्रूयुग्ममुद्यत्स्मितं।
कान्तायाः किलकिञ्चिताञ्चितमसौ वीक्ष्याननं सङ्गमा–
दानन्दं तमवाप कोटिगुणितं योभून्नगीर्गोचरः।। ।।१८।।

श्रीकृष्णनिकटे गन्तुमुत्सुकापि ह्रियादिभिः कृतावकर्षा लज्जादिभिर्वलादाकृष्टा सा राधा कुसुमस्य ग्रहाय पुष्पचयनार्थं तिरश्चलन्ती पुरोऽग्रे उत्सुकचेतसा हरिणा निरुद्धा सती अन्तर्मुमुदे वाह्ये चुकोपच।।१७।।

कान्ताया निरोधजन्य-किलकिञ्चिताञ्चितमाननं वीक्ष्य असौ कृष्णः सङ्गमात् कोटिगुणितं तमानन्दमवाप य आनन्दः गिरां गोचरोनाभूत्। किलकिञ्चितमाह। वास्पव्याकुलितारुणाञ्चल-चलन्नेत्रमित्यत्र। वाष्पव्याकुलितमिति रुदितं (१)अरुणाञ्चल-मिति क्रोधः (२) चलन्नेत्रमिति भयं (३) रसोल्लासितमिति गर्व्वः (४) हेलोल्लास-चलाधरमित्यभिलाषः (५) कुटिलितभ्रूयुग्ममित्यसूया (६) उद्यत्स्मितमिति स्मितं (७) उज्ज्वलनीलमणौ यथा। गर्व्वाभिलाषरुदित-स्मितासूया भय-क्रुधां। सङ्करीकरणं हर्षादुच्यते किलकिञ्चितं।।१८।।

अथ विभ्रमः।।

वल्लभप्राप्तिवेलायां मदनावेशसंभ्रमात्।
विभ्रमो हारमाल्यादिभूषा स्थानविपर्य्ययः।।

बल्लभके समीपमें अभिसार के समय प्रबल मदनावेग सम्भ्रमसे हार एवं माल्यादि का स्थान विपर्य्यय को विभ्रम कहते हैं।

यद्यपि श्रीराधा श्रीकृष्णके निकट जाने की उत्सुका थी, तथापि लज्जा, भय, वामता, अवहित्थ्या द्वारा बल पूर्वक आकृष्टा होनेसे कुसुमचयन निमित्त बक्रता से जाने लगी, यह देखकर उत्सुकचित्त श्रीकृष्णके जाकर पथरोध करने से श्रीराधा अन्तर में हर्ष, बाहर श्रीकृष्णके प्रति कोप प्रकाश करने लगी।।१७।। उस समय श्रीकृष्ण, श्रीराधाके रसोल्लास विशिष्ट वाष्पाकुलित अरुण चञ्चललोचन, हेला विलसित अधर, कुटिल भ्रूद्वय, उद्‌गत हास्य प्रभृति किलकिञ्चित रस विशिष्ट आनन को अवलोकन कर सङ्गम से जो कोटिगुण आनन्दानुभव किए थे, वह वाक्य का विषय नहीं है।।१८।।

अथ हेला।।

हाव एव भवेद्धेला व्यक्तश्रृङ्गारसूचकः।।

अथ सा सविधस्थ केशरद्रुमशाखां मुकुलाकुलामनु।
अतिसंभ्रमतः स्वदोर्ल्लतां कुसुमादानमिषादुदक्षिपत्॥ ॥१९॥

पुन्नागयोरुत्कलिकायुजोस्तयोरुत्फुल्लतासीत् युगपत्तदाद्भुता।
एकस्य तत् स्पर्श मुदा परस्य तद्दोर्मूलसंदर्शनज प्रमोदतः॥ ॥२०॥

तारुण्य भट्टगुरुतः समधीतकाम
न्यायादिशास्त्रचयया स सतीर्थयापि।

सा राधानिकटस्थ केशरवृक्षस्य पुन्नागवृक्षस्य मुकुलाकुलां शाखामनु मुकुलव्याप्त शाखायां अतिसंभ्रमात् स्वस्य वाहुलतां पुष्पग्रहणच्छलेनोदक्षिपत्। ऊर्द्धमक्षिपत् श्लेषेण वाहुप्रसारणरूपालिङ्गनभङ्गीं चकार इत्यर्थः॥१९॥

पुन्नागयोः केशरवृक्ष श्रीकृष्णयोः उत्कलिका वृक्षपक्षे उत्कृष्टकलिका कृष्णपक्षे उत्कण्ठा तद्युजोर्युगपत्। एकदा तदैवाद्भुता उत्फुल्लतासीत्। तत्र हेतुमाह। एकस्य वृक्षस्य तस्याः स्पर्शजन्यानन्देन अपरस्य कृष्णस्य तस्याः दोर्मूलदर्शनजानन्देन॥२०॥

तारुण्यावस्थैव भट्टाख्य गुरुस्तस्मात् समधीतः कामरूप न्यायादिशास्त्रस्य चयः समूहो यया तया सतीर्थयापि एकस्मात् गुरोस्तारुण्यभट्टात् पठितयापि तया राधिकयापि

हाव यदि स्पष्टरूपसे शृङ्गार सूचक होता है, तब उसको हेला कहा जाता है। गर्व, अभिलाष, रोदन, हास्य, असूया, भय, क्रोध, हर्ष हेतु यह सात भावोंका जो एककालीन उदय, उसको किलकिञ्चित कहते हैं। यहाँपर वाष्पाकुलितं-पदसे रोदन, अरुणाञ्चलं-क्रोध, चलन्नेत्रम्-भय, रसोल्लसितं-गर्व, हेल्लोल्लास चलाधरं-अभिलाष, कुटिलित भ्रूयुग्मं-असूया, ''उद्यत्स्मित्'' पद से स्मित यह सात भावका वर्णन है। अनन्तर श्रीराधा पुष्प ग्रहण के छल से निकटस्थ पुन्नाग वृक्षकी मुकुल परिशोभित शाखाकी ओर सम्भ्रमसे निज बाहुलताको उठाई, अर्थात् श्रीराधा बाहु प्रसारणरूप भङ्गीके द्वारा श्रीकृष्णको आलिङ्गन करने की अभिलाषवती होगई।।१९।। तब श्रीराधाके कोमलकर स्पर्शसे एवं बाहुद्वयके उत्तोलनको देखकर उत्कृष्टकलिका युक्त पुन्नाग तरु एवं उत्कण्ठा व्याकुल पुरुषश्रेष्ठ श्रीकृष्ण उभयही एककालीन प्रफुल्लित हो उठे।।२०।। अपर तारुण्यावस्था स्वरूप भट्टाचार्य गुरुदेव के समीप से श्रीराधाकृष्ण-कामरूपन्यायादि विविध शास्त्र समूहका अध्ययन करने से उभय सतीर्थ होनेसे भी श्रीकृष्ण निज विजय की इच्छासे सतीर्था शीराधा से विवाद करलिये, यह

चित्रं न तन्निजजयाय तयोद्गृह्ना-
न्नैयायिको हि गुरुणापि विवादमिच्छेत् ॥ ॥२१॥
केयं मे कुसुमं चिनोति नहि काप्येषास्म्यहं त्वं तु का
मां जानासि न किं न वेद्मि तदितो गच्छास्म्यहं पुष्पपः।
यामि क्व भ्रमरीं तमेव ननु सा पुष्पेषु लब्धान्तरे-
त्युक्त्वास्या मधुसूदनः स सविधं विन्दन्नवादीत् पुनः ॥ ॥२२॥

सह स श्रीकृष्णः निजजयाय उद्गृह्नात् विवादमकरोत् तच्चित्रं नहि यस्मान् नैयायिकः गुरुणापि विवादमिच्छेत् किमाश्चर्य्यं गुरोः शिष्यया तया ॥२१॥

विवादवाक्यमादौ श्रीकृष्ण आह इयं का मे मम कुसुमं चिनोति राधाह कापि नेति एषाहमस्मीति सहसा जिज्ञासायां अन्यमनस्कानां एतादृशी प्रत्युक्तिर्भवति। स आह का त्वं साह किं मां न जानासि स आह न वेद्मि साह न जानासि चेत् इत स्थानात् गच्छ स आह अहं पुष्पपोऽस्मि क्व कुत्र यामि साह भ्रमरस्त्वं भ्रमरीं याहि याहि त्वमिति पाठे तु राधोक्तिः। स आह। ननु सा भ्रमरी त्वमेव सा कीदृशी पुष्पेषु लब्धान्तरा पुष्पेषु कुसुमेषु लब्धमन्तरमन्तःकरणं यस्याः सा त्वमपि पुष्पेषुः कन्दर्पस्तत्र तद्विषये तथा इत्युक्त्वा स मधुसूदनः कृष्णस्तस्याः सविधं निकटं विन्दन् पुनरवादीत् ॥२२॥

विवाद विचित्र नहीं है, कारण नैयायिक विद्यार्थी गुरुदेवके साथभी विवाद करता है, तव सतीथकि साथ श्रीकृष्ण जो विवाद करेंगे, इसमें आश्चर्य्य क्या है ? ॥२१॥ श्रीराधाकृष्ण के परस्पर विवाद यह है कि-प्रथमतः श्रीकृष्ण बोले, यह कौन है ? जो मेरा पुष्पचयन कर रहा है ? श्रीराधा बोली, कोई नहीं, यह मैं हूँ। श्रीकृष्ण पूछे-तुम कौन हो ? श्रीराधा बोली, तुम क्या मुझे नहीं जानते हो ? श्रीकृष्ण बोले, तुम कौन हो, यह तो मैं जानता नहीं । श्रीराधा बोली, न जानते हो, न जानो, पर यहाँसे प्रस्थान करो, श्रीकृष्ण बोले, मैं तो पुष्पप (पुष्प रक्षक) हूँ, कहाँ जाऊँगा ? पुष्पप शब्दका भ्रमर अर्थको लेकर श्रीराधा बोली, तुम तो भ्रमर हो, न, तो भ्रमरीके पास जाओ, श्रीकृष्ण बोले, तुम ही तो भ्रमरी हो, राधा बोली, वह कैसे ? श्रीकृष्ण बोले, तुम्हारा अन्तःकरण जब पुष्पमें ही लुब्ध है, तब तुम ही हो, पुष्पेषु शब्दका कन्दर्प अर्थ करके राधा बोली, तुमही तो कन्दर्प हो, तुम्हारे पास ही आऊँगी। यह सुनकर श्रीकृष्ण श्रीराधाके निकट जाकर पुनर्वार बोले ॥२२॥

मुग्धासि सत्कुलवधूः सुमनोहरन्ती
साध्वी परस्य पुरुषस्य न लज्जसे त्वं।
चित्रं तदेतदथवा सततं भ्रमन्त्याः
स्वातन्त्र्यतः प्रतिवनं कथमस्तु लज्जा॥ ॥२३॥

साधारणं वनमिदं ननु मित्रपूजा सूत्कण्ठिता वयमवैति च मालतीनां।
पुन्नाग एष विकचोऽपि न सङ्गमित्थमौष्ठ्यादिवर्णपदचालनयात्थ मन्ये॥२४

उक्तिप्रत्युक्त्या विवदमानः कृष्णस्त्रयोविंशत्यादीनष्टत्रिंशान्तान् षोडशश्लोकानाह त्वं मुग्धा सुन्दरी असि तत्रापि सत्कुलवधूस्तत्रापि साध्वी भूत्वापि परस्य पुरुषस्य परसम्वन्धि पुन्नागवृक्षस्य सुमनः पुष्पं पक्षे परपुरुषस्य सुष्टु उत्तमं मनः तत् हरन्ती चोरयन्ती न लज्जसे तदेतच्चित्रं। अथवा स्वातन्त्र्यतः स्वेच्छया प्रतिवनं भ्रमन्त्यास्तव कथं लज्जास्तु भवतु नेत्यर्थः॥२३॥

ननु भोः इदं बनं साधारणं सर्व्वस्वामिकमिति ज्ञात्वा मित्रस्य सूर्यस्य पूजा सूत्कण्टिता बयमागताः एष पुन्नागवृक्षः विकचोऽपि उत्फुल्लोऽपि मालतीनां सङ्गं नावैति न जानाति। अनेन इदं बनं मम स्वामिनोऽभिमन्योर्गृहं न मित्रस्य सुहृदः प्रियस्य भवतः पूजासु सेवासूत्कण्ठिता वयं भवान् विकचोऽप्यु-सुकोऽप्यस्माकं सङ्गं नावैति न जानाति न करोतीति औष्ठ्यादिवर्णपदचालनया औष्ठ्य ओष्ठेनोच्चार्य्यो यः पवर्गस्तस्यादिवर्णः पकार स यत्रास्ति तेषां पदानां विभक्त्यन्तशब्दानां पुन्नागपूजेत्यादीनां चालनया विकाशनेनार्थाद्वर्णोच्चारणच्छलादोष्ठविकासनेन किम्बा स्वार्थेण्यः। ओष्ठ एव औष्ठ्य आदिशब्देन दन्तास्तेषां वर्णो शोण शुक्लौ पदे पादौ च एषां चालनया अर्थात् कथाच्छलेन हसनेन पुष्पतोलनादिच्छलेनेतस्ततश्चलनेन च। किम्वा ओष्ठादिवर्णानां बनमित्यादीनां आदिपदेन दन्त्यानां साधारणेत्यादीनाञ्च पदयोश्च चालनया त्वमात्थ वदसि स्वाभियोगं तनोषीत्यहं मन्ये॥२४॥

तुम तो परम रूपवती हो, उसमें भी सत्कुलवधु हो, उसमें भी पतिव्रता होकर भी परपुरुष पुन्नागवृक्ष के सुमनः कुसुम, उत्तम पुरुषके मनको चुराती रहती हो, इससे लज्जिता नहीं होती हो, यह तो अचरजकी बात नहीं है, कारण स्वेच्छाचारिणी होकर वन वनमें घूमनेवाली रमणी की लज्जा कहाँ होती है?॥२३॥ पुनर्वार श्रीकृष्ण बोले, हे सुन्दरि! यदि कहो, कि यह वन, साधारणके हैं, अर्थात् इसमें सबका समान अधिकार है, यह जान कर सूर्यपूजाके निमित्त हमसब उत्कण्ठिता होकर आई हैं। यह पुन्नागवृक्ष प्रफुल्ल होकर भी मालतीका सङ्ग करना नहीं जानता है, ओष्ठादि वर्णपद चालनाके द्वारा, अर्थात्

मुग्धासि वेत्सि न किमप्यवधेहि वच्मि
सम्मालतीचयवृतः पुरुषोत्तमोऽयम् ।
ताभिर्युनक्ति न कदापि युनक्ति चापि
दिष्ट्यानिलैः सुमुखि प्रत्यनुकूलपूर्णैः ॥ ॥२५॥

स्वामी वनस्य विदितः स्मरचक्रवर्त्ती
तेनार्पितं मयि मुदा विपिनावकत्वम् ।
तस्याग्रतो मम विलुण्ठसि यस्य गर्व्वा-
त्तारुण्य रत्नघटयुग्ममिदं हरामि ॥ ॥२६॥

हे सुमुखि मुग्धासि किमपि न वेत्सि अवधेहि श्रृणु अहं वचिम । अयं पुरुषोत्तमः पुन्नागवृक्षः सन्मालतीसमूहेन वृतोऽपि प्रत्यनुकुलपूर्व्वैरनिलैः करणैस्ताभिर्मालतीभिः कदाचित् न युनक्ति न युक्तो भवति। दिष्ट्या भाग्येन युनक्ति चापि प्रतिकूल-पवनरूप-विपक्ष-सखीजनैः-करणैस्ताभिर्युष्माभिर्न युनक्ति अनुकूल-पवनरूप-स्वपक्ष-सखीजनैः करणैर्युनक्ति चापि ॥२५॥

वनस्य स्वामी स्मरचक्रवर्त्ती विदितः ख्यातः तेन मयि विपिनरक्षकत्वं मुदा अर्पितं। तस्य विपिनरक्षकस्य मयाग्रे यस्य तारुण्य रत्नघटयुग्मस्य गर्व्वादिदं वनं त्वं विलुण्ठसि तत्तारुण्य रत्नघटयुग्मं हरामि ॥२६॥

औष्ठवर्ण पवर्ग है, प, फ, ब, भ, म, इसमें आदिवर्ण पकार है, वह जिसमें है, अर्थात् पुन्नाग, पूजा, इत्यादि पद चालना विकासन द्वारा, अर्थात् वर्णोच्चारण से छल कर ओष्ठको प्रकाश कर निज अभियोग को कहते हैं। वह मैं जान गई हूँ। इस श्रीराधा की उक्तिसे सुस्पष्ट हुआ है कि यह वन मेरा है, स्वामी अभिमन्युका घर नहीं है, तुम तो मित्र, सुहृद् सूर्य हो, तुम्हारी पूजा (सेवा) के लिए हमसब उत्कण्ठिता हैं, तुम विकच, अर्थात् उत्सुक होकर भी हमारे सङ्ग नहीं कर रहे हो ।।२४।। दूसरी बात्, हे सुमुखि ! तुम तो मुग्धा हो, कुछ भी नहीं समझती, सुनो, मैं कहता हूँ। यह पुन्नागवृक्ष, शोभना मालती समूहके द्वारा परिवृत होकर भी प्रतिकूल पवन के द्वारा उक्त मालतीके साथ कभी संयुक्त नहीं होता है, कभी तो सौभाग्यसे अनुकूल पवन से संयुक्त भी होता है। इससे श्रीकृष्ण का अभिप्राय प्रकट हुआ कि, प्रतिकूल विपक्ष सखीजन द्वारा कभी तुमसब मुझसे वियुक्त हो जाती हो, अनुकूल, अर्थात् स्वपक्षपाती सखीगण के द्वारा संयुक्त भी होती रहती हो ।।२५।। पुनर्वार श्रीकृष्णने कहा, हे सुन्दरि ! इस बनका स्वामी-महाराज

तां प्रार्थ्य तद्विचिनुयामिति किं ब्रवीषि
नेक्षे कदापि ललनां किमु संलपामि।
धैर्य्यं रहो युवतिदर्शनतः क्व यूना-
मित्यात्थ किं सखिभिरस्मि सदा परीतः॥ ॥२७॥

नैका त्वमस्यावयवाभिधचौरलक्षै-
र्नित्यं वृता स्वसदृशालिचयान्विता च।
राजन्वतो जनपदस्य परां विभूतिम्
मुष्णस्यमुष्यनिपतेन्मयि राजदण्डः॥ ॥२८॥

श्रीकृष्ण विपिनरक्षकं तां प्रार्थ्य तत्पुष्पं विचिनुयामिति किं ब्रवीषि। कदापि ललनामहं नेक्षे किमुत तया सह संलपामि। संलापो भाषणं मिथः। युनां रहो निर्जने युवतिदर्शनात् क्व कुत्र धैर्यमिति त्वमस्मद्दर्शनादधैर्यः सन् पुष्पतोलनमादिष्टवानिति ध्वनितं। एकस्य मे चित्तं कदाचिद्वा त्वादृश युवतयो भावहावादिभिर्हरिष्यन्ते इत्याशङ्क्य किं आत्थ सदा सखिभिः परीतो व्याप्तोऽहमस्मि भवामि निर्जने वनेऽहमेको न भवामीत्यर्थः ॥२७॥

त्वमेकैव नासि अपि त्ववयवाभिधचौरलक्षैर्वृता स्वतुल्यालिसमूहेनान्विता च भूत्वा राजन्वतो राजसहितस्य राजकर्त्तृकस्य जनपदस्य देशस्य परां सर्व्वोत्तमां विभूतिं धनं

कन्दर्प है, सब लोक इसको जानते हैं, आपने खुशीसे मुझे इसका रक्षक बनाया है, विपिन रक्षक मेरे सामने तुम तारुण्यरूप रत्नघटद्वय के गर्वसे इस बनका लुण्ठन कर रही हो, तुम्हारे तारुण्य रत्नघटद्वयको मैं चुरा लेता हूँ। इससे तुम्हारा गर्व नहीं रहेगा।।२६।। पुनर्वार कृष्णने कहा, यदि कहो, वनरक्षक ! तुम्हें कहकर ही मैं पुष्प उठा रहा हूँ, उसका उत्तर यह है, जव मैं स्त्रीका दर्शन ही नहीं करता हूँ, तब तुम्हारे साथ बातचीत होने की सम्भावना ही कहाँ है ? विशेष कर युवा पुरुषोंका धैर्य्य, निर्जन में युवति को देखनेसे क्या रहता है ? यदि कहो, हम सबको देखकर अधैर्य्य होकर ही तुमने हमें पुष्पचयन के लिए आदेश किया है ? देखो मैं एकक नहीं हूँ, कारण तुम सब की भाँति युवतिगण भाव हावादिके द्वारा यदि मेरे चित्तको अपहरण कर ले, तो मैं क्या करूँगा ? इस आशङ्कासे सर्वदा सखागण को लेकर मैं रहता हूँ। इस निर्जन वनमें मैं एकाकी नहीं हूँ।।२७।। श्रीकृष्णने फिरसे कहा-हे सुन्दरि ! तुम भी एकाकिनी नहीं हो, तुम्हारे अवयव नामक लक्ष लक्ष चौर एवं आत्मतुल्य कुछ सखीगणके साथ मिलकर राजाधीन इस

नित्यं वनाद्विचिनुमः कुसुमान्यमुष्मा–
दृष्टः कदापि न भवानिह रक्षकः किम्।
स्वप्नेऽपि न श्रुतचरः स्मरचक्रवर्त्ती
तत् किं वृथा प्रलपसीति किमात्थ सत्यम् ॥२९॥

गुप्त प्रतापवलतो वनमावयोस्तत्–
कस्तावदेष विशतादिति गर्व्वितेन।
गोचारणव्यसनिना च मयातियत्ना–
न्नावेक्षितुं हृतधनं विहितं त्वयैतत्॥ ॥३०॥

मुष्णासि। अमुष्य मोषणस्य राजदण्डो मयि निपतेत्। राजन्वतः कन्दर्पसहितस्य देशस्य धनं त्वं हरसि मम तु कन्दर्पजन्या महती पीडा जायते तच्छान्तिर्मम यथाद्य कर्त्तव्यमिति भावः ॥२८॥

अमुष्माद्वनात् नित्यं कुसुमानि विचिनुमः। कदापीह रक्षको तवाय दृष्टः स्वप्नेऽपि स्मरचक्रवर्त्ती न श्रुतपूर्व्वः तत् किं प्रलपसि प्रलापोऽनर्थकं वचः किमात्थेति सत्यं ॥२९॥

युष्माकं वाक्यं सत्यं अत्र कारणं शृणुतेत्याह कृष्णः स्मरचक्रवर्त्ती च अहं च आवां तयोरावयोः प्रतापवलात् वनं गुप्तं रक्षितं तद्वनं कस्तावत् विशतात् इति गर्व्वितेन गोचारणव्यसनिना च मया वनं अति-यत्नान्नावेक्षितं न दृष्टं इति एतद्वनं त्वया हृतधनं विहितं कृतं ॥३०॥

जनपदके उत्तम धनसम्पद की चोरी कर रही हो, इस चोरीके लिए राजदण्ड मेरे प्रति होगा, तात्पर्य्यार्थ यह है कि–हे सुन्दरि! तुम कन्दर्प के साथ इस देशका धनकी चोरी कर रही हो, किन्तु कन्दर्प पीड़ा मेरी महती हो रही है, अतएव उसको शान्त करना अवश्य कर्त्तव्य है।।२८।। फिरसे कृष्णने कहा,–यदि कहो कि–प्रतिदिन इस बनमें कुसुम चयन करती रहती हूँ, कभी भी रक्षक नहीं है, कन्दर्प महाराजका नाम तो स्वप्नमें भी नहीं सुना है, तुम क्या कह रहे हो ? मैं कहता हूँ, हे मुग्धे! यह सत्य है।।२९।। ''इसका कारण सुनो'' मेरे एवं कन्दर्प महाराज के प्रतापसे ही वन सम्पदा की रक्षा होती है, इसमें घुसपैठ कौन कर सकता है ? इस गर्वसे गर्वित होकर मैं गोचारण में व्यस्त रहता हूँ, इससे तुमने फायदा उठा लिया है और वनमें घूसकर पुष्पादि धनापहरण कर रही हो ।।३०।।

गुप्तेन साद्य विधृतासि मयात्र दिष्ट्या
सन्दण्ड्य पूर्व्वमिह राजकृते त्वदर्थम्।
स्वार्थं पुनर्गणयुतैव यदार्प्यसे त्वं
राज्ञे तदा श्रुतचरं तमपीक्षितासे ॥ ॥३१॥

सामान्यकानन इहास्ति न रक्षकोऽपि
ज्ञात्वेऽपि ते ननु मयाऽत्र कृतोऽपराधः।
क्षन्तव्य एव भवता करुणामयत्वात्
तन्मुञ्च मामिति किमात्थ न मेऽत्र शक्तिः॥ ॥३२॥

गुप्तेन कर्त्तरि क्तः लीनेन किम्बा गोपनेन भावे क्तः गुप गोपनकुत्सनयोः। मया तु दिष्ट्या भाग्येनाद्य सा त्वं विधृतासि। त्वदर्थं त्वन्निमित्तं राजकृतं स्वार्थं स्वस्य मम धनं इह पूर्व्वमादौ त्वां नखादिप्रहारेण संदण्ड्य गणयुता त्वं यदैव राज्ञेऽर्प्यसे तदा त्वदुक्तमश्रुतचरं तं स्मरचक्रवर्त्तिनं ईक्षितासे द्रक्ष्यसीत्यर्थः। राजकृते इति पाठे पूर्व्वमादौ राजकृते राजार्थं त्वदर्थं तव धनं संदण्ड्य पुनः स्वार्थं त्वया हृतं मम धनं संदण्ड्य राज्ञे त्वमर्प्यसे ॥३१॥

इदं सामान्यकाननं अत्र वने रक्षकोऽपि नास्तीति ज्ञात्वा एतेऽपराधो मया कृतः। सोऽपराधः कारुण्यमयत्वात् करुणया भवता क्षन्तव्यः तत्तस्मान्मां मुञ्चेति किमात्थ। अत तव मोचने मे मम शक्तिर्न ॥३२॥

आज मैं ने गुप्तरूपसे रहकर सौभाग्य से तुम्हें पकड़ लिया तुमने जो धनापहरण किया है, उस अपराध का प्रतिविधान स्वरूप पहले नखराघात, एवं राजाके लिए अर्थदण्ड करने के बाद ही मैं तुम्हें राजाके पास ले जाऊँगा। तब तुम्हें पता चलेगा, कि कन्दर्पराज कौन है ? ॥३१॥ कृष्णने फिर से कहा, यदि कहो "कि यह साधारण वन है, इसका रक्षक कोई नहीं है, यह जानकर यहाँ आगई हूँ, आप तो दयालु हो, निज कारुण्यसे अपराध क्षमा करके मुझे मुक्त करदो" इसलिए मैं कहता हूँ, हे सुन्दरि ! तुम क्या कह रही हो, तुम्हें मुक्तकर देने की शक्ति मेरी नहीं है ॥३२॥ कारण यह है कि,–अरण्यस्थ स्थावर जङ्गम प्रभृति प्रजावृन्द राजाको तुम्हारे चरित्र विज्ञापित कर चुके हैं, राजा तुम्हें अश्रुतचर जानकर क्रोध एवं आग्रह से अधीर होकर सब भार मेरे प्रति सौंप चुके हैं, एवं तुम्हारे निकट प्रार्थना भी की है, अतएव तुम्हें ले जाकर कन्दर्प राजाके हाथमें सौंपूँगा ॥३३॥ कृष्णने कहा, हे सुन्दरि ! यदि कहो, यह राज्य अति क्षुद्र

वन्यप्रजाभिरखिलं चरितं यतस्ते
विज्ञापितं स्थिरचरादिभिराकुलाभिः।
श्रुत्वा नृपोऽश्रुतचरां स रुषाग्रहेण
तां याचते मयि विधाय स शास्त्रदण्डम्॥ ॥३३॥

ज्ञातुं हि योजनचतुष्टयमित्यरण्यं
राज्यं नृपोऽप्यतनुरत्र तृणादिवित्तम्।
कास्ताः प्रजा इति वदस्यवधेहि यास्ताः
साध्व्यः समस्त–जगतामुपजीव्यलक्ष्म्यः॥ ॥३४॥

शक्त्यभावे कारणमाह आकुलाभिः स्थिरचरादिभिर्वन्यप्रजाभिस्ते तवाखिलं चरितं राज्ञे यतः विज्ञापितं। स नृपः अश्रुतचरां त्वां श्रुत्वा रुषा आग्रहेण समग्रदण्डं मयि विधाय स शास्त्रदण्डमिति पाठे शास्त्रोक्तं दण्डं मयि कृत्वा त्वां याचते। अतस्त्वां राज्ञे समर्पयिष्याम्येवेति भावः ॥३३॥

योजनचतुष्टयमरण्यं राज्यमिति। अत्र नृपोऽप्यतनुस्तनुरहित इति च। भङ्ग्युक्त्याऽतनुरनल्पो महि योजनचतुष्टयराज्यस्य राजा क्षुद्र इत्यर्थः। इति वा तृणादिवित्तं धनमिति च ज्ञातं। ताः प्रजाः काः इति वदसि चेत्। अवधेहि। हे राधे शृणु यास्ताः प्रजाः समस्तजगतामुपजीव्यलक्ष्यो जीवनरक्षणसम्पदः अतः साध्व्य उत्तमाः ॥३४॥

त्वत्तनुरेव चौरी तया हृतं सर्व्वस्वं यासां ताः हृतसर्व्वस्वाः निर्धनाः प्रजा इतस्ततः भ्राम्यन्तीति तत्र तव केनाङ्गेन कस्याः किं धनं नीतमिति विवरणे अङ्गानां नामाभावेऽपि धनहरणसङ्गत्या तदेवाह। तव चरणतलेन किशलयं पल्लवं जलजातं रक्तकमलादिकं हृतं एवमग्रेऽपि ज्ञेयं। नखेनादर्शं दर्पणं। गत्या मत्तहस्ति हंसाः जङ्घया करभः

है। केवल चार योजन परिमित है, राजा भी अनन्त हैं, स्थानका सम्पद् भी तृणादि है, यह तो मैं भी जानता हूँ। यदि पूछो, कि यहाँ की प्रजा कौन है ? तो श्रवण करो ! निखिल जगतके जीवन रक्षाके सम्पद स्वरूप पतिव्रता स्त्रीगण ही इस राजा की प्रजा हैं।।३४।। हे सुमुखि ! तुम्हारे तनुरूपा चोरी, सकल प्रजाका सर्वस्वापहरण करचुकी है, सम्प्रति वे सब हृतसर्वस्व होकर इधर उधर भटक रही हैं, तुम्हारे किस किस अङ्गने क्या क्या चोरी की है, उसका विवरण सुनो, तुम्हारे चरण तलने नवीनपत्र एवं जलजात कमल, नखके द्वारा दर्पण, गमनसे हस्ती, एवं मत्तहंस, जङ्घाके द्वारा करिशावक एवं स्वर्ण कदली,

किशलय–जलजातादर्शमत्तेभ–हंसाः
करभ–कनकरम्भासम्पुटी हस्तिहस्ताः।
स्मररथपद–कृष्णाकूल–सद्वेदि–सिंहा
अमृतह्लद–भुजङ्गी पर्ण–कामासनानि॥ ॥३५॥

कमलमुकुल–ताल–श्रीफलेभेशकुम्भा
विशं मनसिजपाशाशोकसत्पल्लवांश्च।
रतिपति–वरशक्तिव्रात–सद्गन्धफल्य-
स्तडिदलिचय–मुक्ता–हीर–जाम्बूनदाद्याः॥ ॥३६॥

करिशावकः मणिवन्धादाकनिष्ठं करस्य करभो वहिः। कनकवर्णकदली च जानुना संपुटी कनकसंपुटी कटी इत्यर्थः। ऊरुणा हस्तिनो हस्ताः शुण्डानि नितम्वेन स्मररथस्य पदं चक्रं तदुपरिभागेन सद्वेदिः उपवेशस्थानं मध्यदेशेन सिंहाः नाभिना अमृतह्लदः रोमावल्या भुजङ्गी उदरेण पर्णं अश्वत्थपत्रं उरसा कामस्यासनं शय्या॥३५॥

स्तनेन कमलकलिका तालफलं विल्वफलं हस्तिश्रेष्ठस्य कुम्भस्थलश्च। हस्तेन विशं मृणालं कन्दर्पस्य पाशाश्च करतलेन अशोकवृक्षस्य सत्पल्लवः अङ्गुलीभी रतिपतेर्या वराः शक्तयस्तासां व्रातः समूहः तद्रूपाः सद्गन्धफल्यः सच्चम्पककलिकाः चिवुकाधः कान्त्या तडित् गण्डादुपरि चुर्णकुन्तलैः अलिचयः दन्तपङ्क्त्या मुक्ता हीराश्च सर्व्वाङ्गकान्त्या जाम्बूनदं स्वर्ण आदिशब्देन गोरोचना हरितालादि॥३६॥

जानुद्वारा कनक सम्पुट, उरु, हस्तिशुण्ड, नितम्ब, कन्दर्परथ के चक्र, नितम्ब के उपरि भागद्वारा सद्वेदी, अर्थात् उपवेशन स्थान, मध्यदेश से सिंह नाभिद्वारा अमृतह्लद, रोमवल्ली द्वारा भुजङ्गी, उदरसे अश्वत्थपत्र वक्षःस्थल के द्वारा कन्दर्प शय्याका अपहरण हुआ है।।३५।। स्तन द्वारा कमल कलिका, तालफल, बिल्वफल, हस्तिश्रेष्ठका कुम्भस्थल, हस्तसे मृणाल, कन्दर्पपाश, करतल द्वारा अशोक वृक्षका पल्लव, अङ्गुलिनिचयके द्वारा रतिपति की उत्कृष्ट शक्ति स्वरूप चम्पक कलिका समूह, चिबुककी कान्तिद्वारा तड़ित् गण्डस्थलके उपरिभागस्थ चूर्णकुन्तल द्वारा–भ्रमरनिकर दन्तपङ्क्ति द्वारा मुक्ताहार, सर्वाङ्ग कान्ति द्वारा सुवर्ण, गोरोचना, हरिताल अपहृत हुए है।।३६।। नासिका द्वारा शुक, कण्ठस्वर से कोकिल, नृत्यसे मयूर, नेत्रचाञ्चल्य द्वारा मत्स्य, मृगचकोरी, खञ्जन, नीलकमल, कटाक्ष द्वारा, मदन तीक्ष्ण बाण, भ्रूके द्वारा कन्दर्प धनु, कर्णयुगल द्वारा परस्पर सम्बन्ध सूचक धनुका गुण, ओष्ठाधर द्वारा, जवाकुसुम, बन्धुजीव,

शुक-पिक-शिखि-भृङ्गी-कुन्द-रक्तोत्पलाद्याः
शफर-मृग-चकोरी-खञ्जनेन्दीवराणि।
स्मर-खरशर-चापज्या जवा बन्धुजीवाः
शिखर-दर-चमर्यः सूक्ष्म-कृष्णालहर्य्यः॥ ॥३७॥

अन्या या याः कति ता गण्या वृन्दावनमनु विभवैर्धन्याः।
त्वत्तनुचौर्य्या हृत सर्व्वस्वा भ्राम्यन्तीतस्तत इह निःस्वाः॥३८॥

चतुर्भिः कुलकम्॥
इति तदुदित-नर्माकर्ण्य कर्णामृतं सा
भ्युदित-तनुविकारान् शश्वदावृत्ययत्नात्।
लपनमिदमसत्यं कामिनः काः स्वकर्णे
विदधति तदितो यामीति नीचैर्वदन्ती॥ ॥३९॥

नासिकया शुकः कण्ठस्वरेण पिकः नृत्येन शिखी मयूरः नेत्रचाञ्चल्येन भृङ्गी सम्मुखस्थित–शुक्लदन्तचतुष्टयेन कुन्दं पदतलेन रक्तोत्पलाद्याः नेत्रेण शफरो मत्स्यः मृगश्चकोरी च खञ्जनश्चेन्दीवरं नीलकमलञ्च कटाक्षेण स्मरस्य खरशरस्तीक्ष्णवाणः भ्रूवा स्मरस्य चापं धनुः कर्णयोः पारस्परिकसम्वन्धेन ज्यागुणश्च ओष्ठाधराभ्यां जवापुष्पं बन्धुजीवञ्च वान्धुलीति ख्याते पार्श्वस्थ-दन्तैः शिखरं पक्वदाडिमबीजाभं माणिक्यं शिखरं विदुः। कण्ठेन दरः शङ्खः केशैश्चमरी त्रिवल्या सूक्ष्मा यमुनालहर्य्यः॥३७॥

अन्या या याः प्रजाः वृन्दावनमनु समग्रवृन्दावने विभवैर्धन्याः ताः कति गण्या गणनीया न गण्या इत्यर्थः॥३८॥

इति तत्तेन उदितं नर्म्मपरिहासवाक्यं चौर्य्यादिकथनं कर्णामृतं व्याजस्तुत्या स्वस्या अङ्गानां सर्व्वोत्तमसौन्दर्य्यकथनरूपमाकर्ण्य सा राधा शश्वदभ्युदिततनु-विकारान् मुहुरुत्पन्नान् शरीरे सात्त्विकादिविकारान् यत्नादावृत्य लज्जोदयादाह। कामिनः

पार्श्वस्थ दन्तसकल के द्वारा शिखर, कण्ठ द्वारा शङ्ख, केश द्वारा चमरी, त्रिवलीद्वारा सूक्ष्मयमुना की लहरी अपहृत है।।३७।। और क्या कहूँ जो सब प्रजा वृन्दावनीय विभव से धन्या हैं, वह भी संख्यातीत है, वे सब भी तुम्हारे तनुरूप चोरी के द्वारा हृत सर्वस्व होकर वनमें यहाँ वहाँ भटकते फिरते हैं।।३८।। इस प्रकार श्रीकृष्णके परिहासरूप चौर्य्यादि कथन एवं व्याजस्तुति द्वारा निजाङ्ग समूह के सर्वोत्तम सौन्दर्य्य कथनरूप कर्णामृत श्रवणकर निरन्तर शरीर में जो सव सात्त्विकादिभाव समूह उदित हो रहे हैं, लज्जासे सबको आवृत करके श्रीराधा

दयितमपि मनाक् तं वीक्ष्य सावज्ञदृष्ट्या
द्रुतगतिचलिताग्रे मुग्ध विब्बोकदिग्धा।
क्व चलसि ननु धूर्त्ते मामनादृत्य भङ्ग्या
हरिरिति सवदंस्तामंशुकान्ते दधार ॥४०॥ युग्मकम् ॥

अनुभूयैव तत्स्पर्शमानन्दोत्थैर्विचालिता।
नानाभावैः प्रियं राधा तिर्य्यग् ग्रीवा व्यलोकयत् ॥ ॥४१॥

तारा-नर्त्तन-सूचितात्यवमतिः स्मेरा तदास्याम्बुजम्
धावन्ती तृषितालिनीव कुटिलप्रान्ता निवृत्ता ततः।
किञ्चिद्बाष्पकलाकुलाऽरुणतया स्पृष्टाञ्चलोल्लासिनी
राधा दृष्टिरमज्जयत् प्रियमपारानन्दवारांनिधौ ॥ ॥४२॥

स्वकर्णे इदमसत्यं लपनं कथनं का विदधतिधारयन्ति तत्तस्मादितो यामीति अवहित्थया नीचैर्वदन्ती सती दयितमपि तं कृष्णं सावज्ञदृष्ट्या मनाक् वीक्ष्य मुग्ध विब्बोकेन स्वभावजालङ्कारेण दिग्धा युक्ता अग्रे द्रुतगति यथा तथा चलिताऽभूत् स हरिरपि हे मुग्धे भङ्ग्या मामनादृत्य क्व चलसीति तां वदन् अंशुकान्ते वस्त्रान्ते दधार। विब्बोकः उज्ज्वलनीलमणौयथा। इष्टेऽपि गर्व्वमानाभ्यां विब्बोकः स्यादनादरः ॥३९॥४०॥

तत्तस्य स्पर्शमनुभूय एवानन्दोत्थैर्नानाभावैर्विचालिता राधा तिर्य्यग् ग्रीवा सती प्रियं व्यलोकयत् ॥४१॥

राधाया दृष्टिः प्रियमपारानन्दसमुद्रेऽमज्जयत्। कीदृशी दृष्टिः। तारया नर्त्तनेन सूचिता अत्यवमतिरत्यवज्ञा यया सा स्मेरा फुल्ला तृषितभ्रमरीव कृष्णमुखाम्बुजं धावन्ती

बोली, अहो! कौन ऐसी रमणी है, जो निज कर्णमें कामी पुरुषकी यह सब असत्य भाषण को धारण करे, अतएव मैं यहाँसे जा रही हूँ। यह कहकर श्रीराधिका प्रियतम श्रीकृष्णके प्रति अवज्ञा पूर्व्वक ईषत् दृष्टिपात करके मुग्धविम्वोक नामक स्वभावजात अलङ्कारयुक्त होकर आगे द्रुत पद सञ्चार से चलने लगी, तो श्रीकृष्णने रोककर कहा, हे धूर्त्ते ! भङ्गों से मेरी अवज्ञा कर कहाँ जा रही हो ? इस प्रकार आवेशसे कहते कहते प्रिया राधाके वसनाञ्चलको पकड़ लिया ।।३९-४० ।। तब श्रीराधा प्रियतम श्रीकृष्णके कर स्पर्शसे सुखानुभाव से आनन्दोत्पन्न नानाविध भावसमूह से चालित होकर वक्रग्रीवा से कृष्णके प्रति निहारने लगी ।।४१ ।।

अथ विब्बोकः ।।

इष्टेऽपि गर्व्वमानाभ्यां विब्बोकः स्यादनादरः ।।

आकृष्य तत् करधृतं वसनाञ्चलं सा
तिर्य्यग्दृगञ्चलकला स्मरवाणदृष्ट्या ।
विद्धं मुहुर्विदधती प्रियमुन्मदान्धा
प्रत्याह तं स्मितसुधा सुभगाननाब्जम् ॥ ॥४३॥

मधुर-सरस-रम्यं वस्तुजातं हि यद्यत्
निवसति किल लोके प्राकृतेऽप्राकृते वा ।
श्रियमुरु-तनुचौर्य्या त्वं हरन्नस्य साधुः
स्वयमसि तदिहान्यत्रापि चौर्य्यापवादी ॥ ॥४४॥

सति कुटिलः प्रान्तभागान्निवृत्ता किञ्चिद्वाष्पस्य जलस्य कलया आकुला व्याप्ता ॥ रक्तवर्णेन स्पृष्टेनाञ्चलेन कोणोनोल्लासिनी उत्साहयुक्ता ॥४२॥

कृष्णकरधृतं वसनाञ्चलमाकृष्य सा राधा कटाक्षवाणदृष्ट्या तं प्रियं मुहुर्विद्धं विदधती स्मितमुखं तं प्रत्याह। स यथा छलेन स्वस्या अपारसौन्दर्य्यादिकं अवर्णयत् तथैव छलेन तस्याऽप्यधिकसौन्दर्य्यं वर्णयामास ॥४३॥

प्राकृतेऽप्राकृते च लोके मधुर-सरस-रम्यं यद्यद्वस्तुजातं वस्तुसमूहो निवसति अस्ति अस्य वस्तुसमूहस्य श्रियं शोभां उरुर्महती या तनुचौरी तया हरन् सन् हि

गर्व, मान निमित्त इष्ट अर्थात् कान्तदत्त वस्तुके प्रति जो अनादर होता है, उसको विव्वोक कहते हैं ।।

उस समय में श्रीराधाके दृष्टि माधुर्य्य की बात की वर्णना क्या करूँ ? उक्त दृष्टि, नेत्रताराके नर्त्तनके द्वारा श्रीकृष्णके प्रति अतिशय अवज्ञा प्रकाश, भ्रमरी की भाँति श्रीकृष्णके मुख पद्मके प्रति धाविता होकर कुटिल गतिसे प्रान्तभाग से निवृत्त होना, किञ्चित् वाष्प जलकटणसे व्याकुला, एवं श्रीकृष्णके द्वारा वसनाञ्चलधृत होनेसे अरुणवर्णा से उल्लासवती होकर प्रियतम को परम आनन्द सागरमें निमग्न करने लगी ।।४२ ।। अनन्तर श्रीराधा उन्मदान्धा होकर हास्यवदन श्रीकृष्णके करधृत वसनाञ्चलको आकर्षण पूर्वक कटाक्ष बाणकी बर्षाके द्वारा उसको विद्ध करके कही ।।४३ ।। कृष्ण तुमने अपनी महती तनुरूपा चोरी के द्वारा प्राकृत अप्राकृत मधुर सरस रमणीय जितनी भी वस्तु है, उस सबकी शोभाका अपहरण करके इस जगत् में साधु बन गए हो, और दूसरेको चोर कहते रहते

साधुत्वे धार्म्मिकत्वे च यस्य ते भाति साक्षिणी।
कुमारीणां कोट्टवीणं मूर्द्धिन बद्धाञ्जलि–स्तुतिः ॥ ॥४५॥

व्रजभुवि युवराजः सर्व्वसाद्गुण्य पूज्यः
परिणयविधियोग्यानन्तकन्यायुतायाम्।
अभिनव–तरुणोऽप्यप्राप्तपाणिग्रहो
यत्तद्धृतनियमोऽसि ब्रह्मचारीति सत्यम् ॥ ॥४६॥

किम्वा साधारणः कश्चिद्भाति त्वयि गुणो महान्।
यमाकर्ण्य न कापि त्वां कन्यावृतवती क्वचित् ॥ ॥४७॥

यस्मात् त्वं इह जगति स्वयं साधुरचौरोसि तत्तस्मादन्यत्रापि चौर्य्यापवादी चौर्य्यरूपाप-कृष्टकार्यकथने शीलं यस्य तथाभूतोसि। व्याजस्तुत्याख्यालङ्कारोऽयं॥४४॥

यस्य ते साधुत्वे धार्म्मिकत्वे च कोट्टवीणां नग्नानां कुमारीणां मूर्द्धिन-बद्धाञ्जलिना सह स्तुतिः साक्षिणो भाति। एतादृशोऽदृष्टश्रुतचरः साधुधार्म्मिकस्त्वमेव आसीत् ॥४५॥

उभयोः विवाहस्य विधौ योग्यानन्तकन्यायुतायां व्रजभुवि युवराजः आदौ राजपुत्रः तत्रापि सर्व्वसाद्गुण्य पूज्यः अभिनव तरुणोऽपि त्वं यद्यस्मात् अप्राप्तपाणिग्रहोसि तत्तस्मात् धृतनियमो ब्रह्मचारी नैष्ठिकब्रह्मचारी असीति सत्यं विवाहस्य कारणसत्त्वेऽपि विवाहाभावो नित्यं परस्त्रीलाम्पट्यं त्वय्येव दृश्यते इति सत्यमिति पदेन ध्वनितं ॥४६॥

हो ।।४४।। कृष्ण! अधिक मैं क्या बहूँ। वस्त्र हरणके दिन कुमारिका सब तुमसे वस्त्रापहृत होने से नग्न वेशसे वस्त्र प्राप्तिके लिए मस्तकमें अञ्जलि बन्धन पूर्वक तुम्हारी स्तुति की, वह स्तुति ही तुम्हारी साधुता, धार्मिकता की प्रतीक है ।।४५।। कृष्ण ! इस व्रजभूमि में विवाह योग्य अनेक कन्या है, तुम तो निखिल सद्गुणमण्डित राजपुत्र, तरुण वयस्क हो, तथापि जब विवाह नहीं होता है, तब सुस्पष्ट ही जाना जाता है कि तुम बालब्रह्मचारी हो, अंतएव विवाह का कारण रहने पर भी विवाह न होना ही तुम्हारे स्त्रीलाम्पट्य दोषका सूचक है ।।४६।। अथवा तुम्हारे में कुछ असाधारण महद्गुण प्रतिभात हो रहा है, जिस गुणको सुनकर कोई भी कन्या तुम्हें वरण करना नहीं चाहती है ।।४७।।

तत्तापाद्भावता मन्ये तुरङ्गब्रह्मचर्य्यकम्।
अङ्गीकृत्य व्रजे स्वस्य ख्यापिता वटुता मृषा॥ ॥४८॥

वटुश्चेत् पररामाऽस्यावलोकने कुतुकी कुतः।
वंशीचौरीहृताभिर्वा परस्त्रीभिः कुतो रतिः॥ ॥४९॥

तद्भवान् वर्णिताख्यातिच्छलेन स्वार्थसाधकः।
कन्यानाञ्च सतीनाञ्च धर्म्मध्वंसाय दीक्षितः॥ ॥५०॥

कदाप्यनारोपितपुष्पवल्लीद्रुमैकपोतोऽपि वनाधिकारी।
असंख्य-गोचारण लून तत्तन्मूलोऽपि सत्यं विपिनावकस्त्वम्॥ ॥५१॥

किम्वा त्वयि कश्चिदसाधारणो महान् गुणो भाति। यं गुणमाकर्ण्य श्रुत्वा कापि कन्या त्वां क्वचिन्न वृतवती नावृणीत॥४७॥

तत्तापात् विवाहाभावजन्य-तापात् भवता तुरङ्गब्रह्मचर्य्यकं। तुरङ्गस्याश्वस्य तुरङ्गीदर्शनाच्चाञ्चल्यमिव चाञ्चल्यमङ्गीकृत्य स्वस्य मृषा वटुता व्रजे ख्यापिता॥४८॥

वटुरसीति चेत् परस्त्रीमुखदर्शने कुतुकी कुतः वंशीचौर्य्याहृताभिराकृष्टाभिः परस्त्रीभिः सह कुतो रतिः॥४९॥

तत्तस्मात् भवान् वर्णिता या ब्रह्मचर्य्यस्य ख्यातिः तद्रूपकपटेन स्वार्थ-साधको भवन् सन् कन्यानां सतीनाञ्च धर्म्मनाशाय दीक्षितोऽसीति शेषः॥५०॥

कदापि त्वं नारोपितः पुष्पादीनामेकोऽपि पोतः शिशुरङ्कुरोऽपि येन तथाभूतो भूत्वापि वनाधिकारी असंख्यगोचारणेन लूनं छिन्नं तत्तन्मूलं तेषां तृणगुल्मवृक्षाणां मूलं

विवाह न होने के दुःखसे ही तुमने तुरङ्ग ब्रह्मचर्य्यं व्रत ले लिया है ? अर्थात् घोटक जिस प्रकार घोटकी को देखकर निज चाञ्चल्य को प्रकट करता है, उसकी भाँति तुम चञ्चल होकर भी व्रजमें झूठी वटुता को प्रकाश करते रहते हो।।४८।। कृष्ण ! मैं मानती हूँ तुम बालब्रह्मचारी हो, तब मैं पूछती हूँ, तुम परस्त्री मुख देखने के लिए कुतुकी क्यों होते हो ? चोरी वंशीके द्वारा आकृष्ट परस्त्रीके साथ रति क्यों करते हो ? ।।४९।। मैं समझ गई हूँ, ख्याति के बिना निर्वाह नहीं होता है, इसलिए ब्रह्मचारी ख्यातिके छलसे, अर्थात् कपट भावको अवलम्बन कर स्वार्थ साधक होकर कुमारी, साध्वी सबके धर्म नाश करने के लिए दीक्षित हो गये हो ।।५०।। श्लेषसे श्रीराधा बोली, कैसी अचरब की बात है ? तुमने कभी इस वनके पुष्पादि वृक्षोंके एक अङ्कुरको भी नहीं लगाया, तो भी तुम वनक अधिकारी हो, ज्यादा क्या कहूँ! असंख्य गोचारण के द्वारा वनके तरुसकल को

सख्यास्माकं वृन्दया वर्द्धितं यद्वृन्दारण्यं ख्यातमेतद्विधात्रा।
मह्यं दत्तं तत् सरत्नाभिषेकं राजानङ्गस्त्वञ्च पातेति सत्यम्॥ ॥५२॥

इदं त्वसाधारणमस्मदीयं मत्कुण्डतीरोद्भवकेल्यरण्यम्।
मदीयसिंहासन धाम कामशर्म्मप्रदाख्यं त्विह भाति कुञ्जम्॥ ॥५३॥

आस्थानीयं कान्तवार्त्ता सुधाधुङ्नाम्न्यस्माकं भाति पुंसामगम्या।
यस्यां नित्यं मद्वयस्या निषण्णाः संसेवन्ते प्रेष्ठवार्त्तामृतानि॥ ॥५४॥

येन सोऽपि त्वं वनरक्षक इति सत्यं। नेति ध्वनिः। पोतः पाकोर्भको डिम्बः पृथुकः शावकः शिशुरित्यमरः। लूञ् छेदने धातुः॥५१॥

अस्माकं सख्या वृन्दया यद्वृन्दारण्यं वर्द्धितं ख्यातं सर्व्वत्र प्रसिद्धं तदेतत-वृन्दारण्यं विधात्रा स रत्नाभिषेकं रत्नैः सह अभिषेकः अर्थात् मम राजाभिषेको यत्र तत् मह्यं दत्तं इति च ख्यातं। तत्रानङ्गो राजा त्वं पाता रक्षिता इति सत्यं॥५२॥

इदन्तु बनं अस्मदीयमसाधारणं मम कुण्डस्य तीरे उद्भवो यस्य तादृशं केल्यरण्यं क्रीडावनं मदीय-सिंहासनस्य स्थानं कामशर्म्मदाख्यं कुञ्जमिह भाति॥५३॥

इहास्माकमास्थान्युपवेशनस्थली भाति। कीदृशी पुंसामगम्या। यस्यां कान्ता कमनीया मनोहराभिलषनीया वार्त्ता। पक्षे कान्तस्य प्रेष्ठस्य तव या वार्त्ता सैव सुधा तां दोग्धितया पूरयति तत्रस्थान् अस्मद्विधान् जनानिति शेषः। अतः कान्तवार्त्ता सुधाधुगिति नाम्नी यस्यामास्थान्यां निषण्णा उपविष्टा मद्वयस्या ललिताद्याः नित्यं प्रेष्ठवार्त्तामृतानि प्रियतमा वार्त्ताः पक्षे प्रियतमस्य तव वार्त्तान्ता एवामृतानि संसेवन्ते शृण्वन्ति कथयन्ति इह प्रपूरणे धातुः॥५४॥

निर्म्मूल करके भी, तुमही हो वनके रक्षक, और यह सच भी है।।५१।। और भी मेरी सखी वृन्दा है, उसके परिश्रमसे यह वृन्दावन सुशोभित हुआ है, यहाँ तक उसके नामसे ही इसका वृन्दावन नामकरण भी हुआ, विधाताने भी रत्नसमूहके द्वारा मेरा राज्याभिषेक करके इस वनको मुझे अर्पण किया है, यह तो प्रसिद्ध बात है, किन्तु इससे भी आश्चर्य लगता है कि कहाँसे तुम्हारा कन्दर्प राजा और तुम रक्षक होकर आ गये ? ।।५२।। और भी यह साधारण वन है, इसकी उत्पत्ति भी मेरे कुण्डके तीरमें ही हुई है, इसमें मेरा क्रीड़ावन, सिंहासनस्थान, कामशर्मद नामक कुञ्ज शोभित है।।५३।। यहाँपर कान्तवार्त्ता सुधाधुक नामक मेरा उपवेशन स्थान शोभित है, उसमें कमनीय मनोहर अभिलषणीया वार्त्ता, कान्त प्रियतम कृष्णकी वार्त्तारूप सुधाका दोहन होता रहता है। यह स्थान पुरुषके लिए

चिनुमः कुसुमं वयमिनसेवाविधये रोद्धुं यूयं के वा।
परनीवृतिनिजतार्पणयुक्तः किं ह्री प्रिययापि त्वं मुक्तः ॥५५॥

वटो न ते कृत्यमिहास्ति पुष्पारामेऽबलास्वैरविहारधाम्नि।
पशूनवंस्त्वं पशुपालसङ्गी तच्चारणाय व्रजशाद्वलेषु॥ ॥५६॥

स्मितरुचि-शिशिरात्तद्वक्त्रपीयूषरश्मे-
श्चल-नयनकुरङ्गोत्प्लावरम्यात् स्रवन्तीं।
पिवति हरिचकोरे नर्म्मपीयूषधारा-
मतृपदिह सखीनां दृक्चकोरीचयोऽपि॥ ॥५७॥

इनः सूर्य्यस्तस्य सेवार्थं वयं पुष्पं चिनुमः यूयं रोद्धुं के निवारयितुं केन के इत्यर्थः। परस्य नीवृतिदेशे निजतार्पणयुक्तस्त्वं ह्री लज्जा सैव प्रिया तयापि मुक्तस्त्यक्तः किमभूरिति शेषः। नीवृज्जनपदो देश इत्यमरः ॥५५॥

हे वटो अवलानां स्त्रीणां स्वैरं यथेष्टं विहारधाम्नि पुष्पारामे इह ते कृत्यं नास्ति। त्वं पशून् अवन् रक्षन् पशुपालसङ्गी तत्तेषां पशूनां चारणाय शाद्वलेषु नवतृणयुक्तेषु स्थलेषु व्रज शाद्वलः शादहरिते इत्यमरः ॥५६॥

तत्तस्या राधाया वक्त्रपीयूषरश्मेर्मुखचन्द्रात्। कीदृशात् स्मितरुचिभिः शिशिरात् शीतलात् स्मितरुचय एव शिशिराः शीतला यस्मिन् तस्माद्वा। चलनयनमेव कुरङ्गो मृगः तस्योत्प्लावेन संयोगेन रम्यात्। स्रवन्तीं नर्म्मपीयूष-धारां हरिचकोरे पिवति सति सखीनां दृक् चकोरीसमूहोऽपि अतृपत् ॥५७॥

अगम्य है, अर्थात् कोई पुरुष यहाँपर आ नहीं सकता है, इसमें मेरी वयस्या ललिता प्रभृति बैठकर प्रियतम की वार्त्तारूप अमृत समूह का पान श्रवण पुटसे करती रहती हैं।।५४।। देखो ! हम सब सूर्य पूजाके लिए पुष्पचयन करने की आवश्यकतासे ही यहाँपर आयी हैं, पुष्पचयनके लिए मना करने को तुम कौन होते हो ? हा कष्ट ! इस स्थानमें निज स्वत्त्व जमाने वाले तुम कौन होते हो ? तुम लज्जासे भी छुटकारा पा चुके हो ? ।।५५।। हे बालब्रह्मचारिन् ! स्त्रीगणके विहार स्थान इस पुष्पवाटिका में तुम्हारे रहने का कोई कार्य नहीं है, गोपालों के साथ गैया चराते रहते हो, जाओ गो चराने के लिए हरी-हरी घास जहाँ है, वहाँ चले जाओ।।५६।। तव श्रीकृष्ण ईषत् हास्यरुचिरूप सुशीतल एवं चञ्चल नयन कुरङ्गके संयोग से रम्य श्रीराधाके वदन सुधाकरसे विगलित परिहासामृतको पान करने लगे, यह देखकर सखीगण की नयनचकोरी समूह भी परितृप्त

तत्स्पर्शभीत्येव विवृत्य कन्धरां कटाक्षनीलोत्पलमालया प्रियम्।
सा भूषयन्त्यस्फुटभर्त्सनोक्तिका सावज्ञमग्रेऽपससार लीलया॥ ॥५८॥

कृष्णोऽथ कान्ता तनुचित्रनर्त्तकी लास्यावलोकोच्छलितातिलालसः।
द्रुतं समेत्योच्चलितेन पाणिना दधार चास्याश्चलकञ्चुकाञ्चलम्॥ ॥५९॥

कान्ता विभुग्नीकृतचिल्लिकार्मुका शोणाक्षिकोणेक्षणवाणसञ्चयैः।
विखण्डतूर्णं प्रियधैर्य्यकञ्चुकं लीलारविन्देन तताड तं मुहुः॥ ॥६०॥

तस्यारविन्दाहतिजातशातं विश्वाश्रयेऽस्यापि ममौ न देहे।
ततः स कम्पात् प्रससार वाह्ये प्रस्वेदवाष्पोत्पुलकच्छलेन॥ ॥६१॥

सा कृष्णस्पर्शभीत्या इव कन्धरां विवृत्य कटाक्षनीलकमलैः प्रियं भूषयन्ती अव्यक्ताभर्त्सनोक्तिर्यस्याः सा। सावज्ञं अवज्ञया सह यथा स्यात्तथा लीलयाग्रे-ऽपससार गतवती ॥५८॥

अथ कृष्णः राधातनुचित्रनर्त्तक्या नृत्यावलोकने उच्छलिता अतिलालसा यस्य सः। अस्याश्चलत्कञ्चुकाञ्चलं दधार ॥५९॥

कान्ता श्रीराधा विभुग्नीकृतं वक्रीकृतं। चिल्लिकार्मुकं भ्रूधनुर्यया सा। शोणवर्णाक्षिकोणावलोकनरूपवाणसमूहैः प्रियस्य धैर्य्यरूपकञ्चुकं कवचं तूर्णं विखण्ड्य लीलाकमलेन तं श्रीकृष्णं मुहुस्तताड ॥६०॥ .

अरविन्दस्याहत्याजातशातं लीलाकमलताडनजन्यसुखं तस्य अस्य श्रीकृष्णस्य विश्वाश्रयेऽपि देहे न ममौ न स्थानं प्राप। कथं तदाह। यतः स कम्पात् ततो देहात् वाह्ये प्रस्वेदबाष्पोत्पुलकच्छलेन प्रससार। कमलप्रहार-जन्यसुखेन कृष्णस्य सूद्दीप्तसात्त्विकोऽभूदित्यर्थः ॥६१॥

होगई।।५७।। अनन्तर श्रीराधा, श्रीकृष्णसे स्पर्श होने के भयसे भीत की भाँति होकर गर्दन को घुमाकर कटाक्षरूप नील कमल समूह के द्वारा प्रियतमको भूषित करने लगी एवं अस्फुट भर्त्सन युक्त वाक्यसे अवज्ञा कर प्रियतम के निकट से चलने लगी।।५८।। तब श्रीकृष्ण श्रीराधाके तनुरूपा आश्चर्य्य नर्त्तकी के नृत्यको देखकर अतिशय लालसासे उच्छलित होकर सत्वर आगे बढ़कर चञ्चल हाथसे प्रियतमाके अञ्चल को पकड़ लिये।।५९।। तब श्रीराधा निज भ्रूधनुको वक्रकर आरक्त नयनसे कटाक्षवाण निक्षेप कर सत्वर प्रियतमके धैर्य्यरूप कञ्चुकको चूर्ण करके लीला कमलके द्वारा बारम्बार ताड़ना करने लगी।।६०।। श्रीकृष्णकी मूर्त्ति विश्वाश्रय होने परभी श्रीराधा के लीला कमलके द्वारा ताड़ित होनेपर जो सुख

तत्स्पर्शसंफुल्लतनोर्नतभ्रुवश्छिन्ना स्वयं कञ्चुकबन्धवीटिका।
नीवी च चीनं स्खलदन्तरीयकं रुन्धे परं स्वेदजलं नितम्बके।। ॥६२॥
अथालिवर्गस्मितलोलनेत्रा तत्पाणिरोधाद्वसनं विमोच्य।
ततोपसृत्य द्रुत-नीविवन्धे सा दक्षहस्ताप्यभवद्विहस्ता॥ ॥६३॥
कृष्णोऽपि तावद्वरभाजि पूर्णे स्वेदाम्वुभिस्तत्-स्तनहेमकुम्भे।
स्मरोत्सवारम्भमिषेण पाणिमाधातुमुत्कोऽन्तिकमाप तस्याः॥ ॥६४॥

नतभ्रुवो राधिकायां कृष्णस्पर्शेन संफुल्लातनुर्यस्यास्तस्याः कञ्चुकवन्ध-वीटिका वन्धनरज्जुः स्वयं छिन्ना। नीवि च छिन्ना चीनं सूक्ष्मं स्खलदन्तरीयकं नितम्वे स्वेदजलं परं केवलं रुन्धे। परिधेयवस्त्रं नीवीवन्धनाभावेऽपि नितम्वे घर्म्मे लग्नं सत् तस्थावित्यर्थः ॥६२॥

आलिवर्गस्य स्मितेन लोले चञ्चले नेत्रे यस्याः सा कृष्णपाणिरोधात् वसनं विमोच्य ततः स्थानात् गत्वा स्खलितनीव्यावन्धे वन्धने दक्षहस्तापि सा विहस्ता व्याकुला अभवत् ॥६३॥

कृष्णोऽपि तावद्वरभाजि वरा श्रेष्ठा भाग् दीप्तिर्यस्य तत्र। भ्राजृदीप्तौ क्विप्। स्वेदाम्बुभिः पूर्णे तस्याः स्तनहेमकुम्भे स्मरोत्सवस्य य आरम्भो घटस्थापनादिस्तस्य मिषेण व्याजेन। किम्बा तस्य मिषमुन्मीलनं प्रकाशस्तेन हेतुना। पाणिमाधातुं उत्सवारम्भे पूर्णघटस्थापनीय इति। तत्र पाण्याधानं घटस्थापनं कर्त्तुमुत्कः सन् तस्या अन्तिकं निकटमाप। मिष उन्मीलनेनाम्न्युपधात् कः मिषः कर्त्ता तस्य भावो मिषं भावेऽप्यण् णिद्वेत्यत्राणेऽणित्त्वं ॥६४॥

हुआ उसका स्थान नहीं हुआ, उस शरीरसे कम्प, स्वेद वाष्प, पुलकके छलसे बाहर निकल पड़ा ।।६१ ।। अनन्तर श्रीकृष्णके स्पर्शसे नमितभ्रू श्रीराधाका तनु भी प्रफुल्ल हो उठा, उनके कञ्चुक बन्धन एवं नीवी बन्धन भी छिन्न होगया। तब केवल मात्र स्वेदजल ही वसन को चिपकाकर रख लिया ।।६२ ।। उनकी अवस्था को देखकर सखीगण हँसने लगी, उसे देखकर श्रीराधा चञ्चल नयनसे श्रीकृष्णके हाथसे वसनाञ्चल को छुड़ाकर वहाँसे चलने लगी, स्खलित नीवीबन्धन की रक्षाके लिए दक्षहस्ता होने पर भी अतिशय व्याकुल हो पड़ी ।।६३ ।। श्रीकृष्ण भी उत्सुक होकर कन्दर्प उत्सव के आरंम्भमें घटस्थापन करने के छलसे श्रीराधा के दीप्तिशाली चर्माम्बुपूर्ण स्तनयुगलमें हस्त स्थापन करने के लिए उसके समीप में उपस्थित हो गये ।।६४ ।।

कान्ता कथंचिद्विनिवद्ध्य नीवीं नेत्रेण पश्यन्त्यरुणाश्चलेन।
वामेन तं स्मेरसखीः परेण तत्पाणिरोधं प्रति सत्वरासीत्॥ ॥६५॥

स्मित–रुदित–विमिश्रं गद्‌गदास्पष्टवर्णं
रमणमनृजुनेत्रा भर्त्सयन्त्युत्सुकापि।
प्रणयसुखजवाम्योद्भ्रामिता सास्य वाञ्छा
प्रतिहतिरहितं तत्पाणिरोधं व्यतानीत्॥ ॥६६॥

संघट्ट आसीत् करयोर्निरुद्धयोर्मिथश्चलत्कङ्कणनादमञ्जुलः।
समीरगत्याचलयोः समन्ततः कूजन्मदालिव्रजयोरिवाब्जयोः॥ ॥६७॥

तथैत्य ललिता मध्यं तयोः कृष्णं न्यवारयत्।
कुन्दवल्लयाह तं कृष्ण पञ्चदेवार्च्चनं कुरु॥ ॥६८॥

कान्तापि नीवीं कथञ्चित् कष्टेन विनिवद्ध्यारुणाश्चलेन वामेन नेत्रेण तं कृष्णं पश्यन्ती तथाभूतेन दक्षिणेन नेत्रेण स्मेरा हसन्तीः सखीः पश्यन्ती सती तत्तस्य पाणेः रोधं निवारणं प्रति सत्वरासीत्॥६५॥

प्रणयसुखजन्य-वाम्येनोद्भ्रामिता सा उत्सुकापि स्मित-रुदितविमिश्रं। ईषद्धास्य-रोदनसहितं गद्‌गदास्पष्टवर्णं यथा स्यात्तथा वक्रनेत्रा सती रमणं कृष्णं भर्त्सयन्ती अस्य कृष्णस्य वाञ्छाया अप्रतिहतिर्वाञ्छासिद्धिस्तद्रहितं तत् तस्य पाणिरोधं व्यतानीत्॥६६॥

मिथो निरुद्धयोश्चलत्कङ्कणनादेन मनोज्ञः संघट्टः संयोग आसीत् कयोरिव। वायुवेगचलितयोः समन्ततः कूजन्मत्त–भ्रमरसमूहो यत्र तयोः पद्मयोरिव॥६७॥

तब श्रीराधा अति कष्टसे नीवी बन्धन करके अरुणवर्ण वामनेत्र प्रान्तके द्वारा श्रीकृष्णके प्रति, एवं दक्षिणनेत्र प्रान्तके द्वारा हँसमुखी सखीगणके प्रति अवलोकन कर श्रीकृष्णके हस्तको बाधादेने के लिए त्वरान्वित हो गई।।६५।। श्रीराधा प्रणय सुखसे बाम्य के द्वारा उद्भ्रमिता एवं उत्सुका होने पर भी ईषत् हास्य रोदन के साथ वक्रनेत्रसे गद्‌गद् अस्पष्ट वचनसे श्रीकृष्ण को भर्त्सन करती हुई श्रीकृष्ण की अभीष्ट सिद्धि का बाधक बनकर भी उनका हस्तावरोध किया।।६६।। पवनके वेगसे इधर-उधर सञ्चालित शब्दायमान भ्रमरश्रेणी परिशोभित कमल युगलका जिस प्रकार परस्पर मिलन होता रहता है, उसकी भाँति मनोहर कङ्कण ध्वनि समन्वित श्रीराधाकृष्णके करयुगलका परस्पर संयोग हुआ, अर्थात् श्रीकृष्णके करपद्मके साथ श्रीराधाके करकमल

कृष्णः कुन्दलतामाह त्वं ममास्मिन् स्मरक्रतौ ।
आचार्य्या भव सामग्रीमधिष्ठानञ्च मे दिश ॥ ॥६९॥

सा चाह नाहमाचार्य्या श्रुतं नान्दीमुखीमुखात् ।
सुगोप्यमपि तद्ब्रूयां यत्त्वं मत् प्रियदेवरः ॥ ॥७०॥

अस्याः पुरः सव्यकुचे गणेश्वरस्फुरच्छिरः कुम्भतया प्रकल्पिते ।
नमो गणेशाय त इत्युदीरयन् समर्पयादौ करहल्लकं स्वकम् ॥ ॥७१॥

नमः शिवायेति पठन् परे परं वक्षोजलिङ्गेर्पय-पाणिपङ्कजं ।
ह्रीं चण्डिकायै नम इत्यदःपुनः शिरस्यमुष्याः कुटिलभ्रुवोऽपि तत् ॥७२॥

ललिता तयोर्मध्यमेत्य कृष्णं न्यवारयत्। कुन्दवल्ली कृष्णमाह। हे कृष्ण ! पञ्चदेवार्च्चनं कुरु ॥६८॥

श्रीकृष्णः कुन्दलतामाह। हे कुन्दलते अस्मिन् स्मरयज्ञे त्वमाचार्य्या भव आचार्य्या भूत्वा सामग्रीं पूजासामग्रीं अधिष्ठानं पूजास्थानञ्च मे दिश आदेशं कुरु कथय ॥६९॥

कुन्दवल्ली चाह नाहमाचार्य्या। नान्दीमुखीमुखाच्छ्रुतं सुगोप्यमपि ब्रूयां ॥७०॥

आदौ गणेशपूजाविघ्ननाशार्थं कर्त्तव्या। पुरोऽग्रे अस्याः सव्यकुचे गणेशस्य शिरः कुम्भत्वेन प्रकल्पिते गणेशाय ते तुभ्यं नमः इत्युक्त्वा स्वकं त्वदीयं दक्षिणं करहल्लकं समर्पय। हल्लकं रक्तसन्ध्यकं इत्यमरः ॥७१॥

मिलित हुआ ॥६७॥ अनन्तर उनके मध्यस्थल में घुसकर कृष्णको मना किया। तब कृष्णको कुन्दवल्ली बोली, हे कृष्ण तुम पञ्चदेव की अर्च्चना करो ॥६८॥ तब श्रीकृष्णने कहा, कुन्दलते ! इस कन्दर्प यज्ञ में तुम आचार्य बनो, एवं इसमें क्या-क्या सामग्री लगेगी एवं कहाँ पर पूजाका अनुष्ठान कैसा करना होगा, उसका विवरण मुझे कहो ॥६९॥ कृष्णकी प्रार्थना को सुनकर कुन्दलता बोली, कृष्ण! मैं पूजाका आचार्य्य नहीं हूँ, तथापि तुम मेरे प्रिय देवर हो, अतएव कन्दर्प पूजाके विषयमें नान्दीमुखी से जो कुछ सुनी है, वह गोपनीय होने पर भी मैं कहती हूँ, सुनो ॥७०॥ विघ्न निवारण हेतु पहले गणेशकी पूजा होती है। अतएव तुम पहले श्रीराधाके वामकुच में गणेशके मस्तक (कुम्भत्व) की कल्पना कर ''गणेशाय नमः'' इस मन्त्रका उच्चारण पूर्वक निज दक्षिण हस्तरूप रक्तकमल को अर्पण करो ॥७१॥ अनन्तर दक्षिण वक्षोज रूप शिवलिङ्ग में ''नमः शिवाय'' इस मन्त्रका उच्चारण कर

त्वमथ निजकराभ्यामेतया वारिताभ्या-
मपि सुचिबुकमस्या वेणिमूलं च धृत्वा।
सुखविधुमनुयत्नादोन्नमो विष्णवेऽस्मा
इति मनुवरमाख्यन् स्वं मुखाब्जं निधेहि ।। ।।७३।।

पुनः सवित्रे नमः इत्युदीरयन्नस्यास्तु भास्वत्यधरेऽरुणे वलात्।
स्वदन्त-कुन्दाधरवन्धुजीवकौ कृतावरोधोऽप्यनया समर्पय ।। ।।७४।।

अथार्च्चनायां विहितोद्यमोऽसौ तां भर्त्सयन्तीं किल कुन्दवल्लीम्।
स्वं ताडयन्तीं श्रवणोत्पलेन प्रियां स पश्यन्नवदत् प्रियालीः ।। ।।७५।।

परे दक्षिणवक्षोजरूप-शिवलिङ्गे नमः शिवायेति पठन् परं वामं पाणिपङ्कजमर्पय। पुनः कुटिलभ्रुवो अमुष्याः शिरसि ह्रीं चण्डिकायै नम इति पठन् अदो वामं पाणिपङ्कजं तदा दावुक्तं दक्षिणं करहल्लकमपि ।।७२।।

अथ त्वं अनया वारिताभ्यामपि निजकराभ्यां अस्या दक्षिणेन सुचिवुकं वामेन वेणिमूलं च धृत्वा मुखविधुमनु मुखचन्द्रे अस्मै विष्णवे ॐ नमः इति मन्त्रवरं आख्यन् यत्नात् स्वं मुखाब्जं निधेहि ।।७३।।

पुनः सवित्रे सूर्य्याय नमः इत्युदीरयन् अस्या भास्वति भास्वान् कान्तिमान् स एव सूर्य्यस्तस्मिन्नरुणेऽधरे। किम्वा। अरुणे अरुणरूपे सूर्य्यरूपे दीप्तिमत्यऽधरे अनया कृतावरोधोऽपि त्वं वलात् स्वस्य दन्त एव कुन्दः कुन्दपुष्पं तौ समर्पय ।।७४।।

अर्च्चनायां कृतोद्यमः कृष्णः कुन्दवल्लीं भर्त्सयन्तीं श्रवणोत्पलेन स्वमात्मानं कृष्णं ताडयन्तीं तां प्रियां राधां पश्यन् ललितादि प्रियालीरवदत् ।।७५।।

निज वामहस्त रूप कमलको प्रदान करो, पुनर्वार "ह्रीं चण्डिकायै नमः" कहकर यह नतभ्रू श्रीराधाके मस्तक में निज दक्षिण हस्तरूप रक्तकमल को अर्पण करो।।७२।। तदनन्तर श्रीराधा यदि तुम्हारे हस्तद्वय को निवारण करे, तथापि तुम निज दक्षिण हस्त इनके चिबुकमें एवं वाम हस्तके द्वारा वेणिमूलको पकड़ कर "अस्मै विष्णवे नमः" कहकर श्रीराधाके मुखचन्द्रमें निज मुखचन्द्र का स्थापन करो।।७३।। पुनर्वार बलपूर्वक यह यदि तुम्हें अवरोध करे तथापि तुम इनके सूर्य्यतुल्य अरुण अधर में "सूर्य्याय नमः" मन्त्र कह कर निज हस्तरूप कुन्द एवं अधररूप बंधुजीव यह पुष्पद्वय को समर्पण करो।।७४।। अनन्तर कुन्दवल्ली के वाक्यानुसार श्रीकृष्ण पूजाके लिए उद्यम प्रकाश करनेपर श्रीराधा कुन्दवल्ली को भर्त्सना करते-करते

सख्यः स्मरमखारम्भे पञ्चदेवार्च्चना मया।
कर्त्तव्या विघ्नशान्त्यै किं शुभे खिद्यपि वः सखी ॥ ॥७६॥

सखीर्मृषाटोपगिरः स्मिताननाः समाक्षिपन्तीः कुटिलभ्रुवो हरिम्।
निवार्य्य ताः कुन्दलतां दृगिङ्गितैर्नुदन्त्यवादीदथ तं विशाखिका ॥ ॥७७॥

पत्न्यासमं धर्म्मकृतिर्विधेया समत्वमत्राञ्चलबन्धनेन।
त्वं तद्विनेज्याकरणे प्रवृत्तः कथं सखी नेर्षतु धर्म्मनिष्ठा ॥ ॥७८॥

तस्यां विशाखां स्फुरिताधराननं विलोकयन्त्यां कुटिलोभवद्भ्रुवि।
पश्चात् स्थिता कुन्दलता मुदा तयोः संव्यानयोरश्चलबन्धनं व्यधात् ॥७९॥

हे सख्यःस्मर-यज्ञारम्भे शुभे कर्म्मणि विघ्नशान्त्यै मया पञ्चदेवार्च्चना-कर्त्तव्या वो युष्माकं सखी राधा किं किमर्थं खिद्यति ॥७६॥

विशाखा मृषाटोपगिरः स्मिताननाः हरिं समाक्षिपन्तीः कुटिलभ्रुवः सखीस्ता निवार्य्य दृगिङ्गितैः कुन्दलतां तयोर्वस्त्राश्चलेन ग्रन्थिबन्धनार्थं नुदन्ती प्रेरयन्ती सती तं कृष्णं अवादीत् ॥७७॥

सस्त्रीको धर्ममाचरेदिति धर्म्मशास्त्रात्। धर्म्मकृतिः धर्म्मकार्य्यं पत्न्या समं विधेया। अर्थात् पुरुषेण। अत्र स्मरयज्ञे। यद्वा अत्र विधिवाक्ये अश्चलबन्धनेन समत्वं स्यात्। त्वन्तु तद्विना। अश्चले बन्धनं विना इज्याकरणे पञ्चदेव-पूजाकरणे प्रवृत्तः। धर्म्मे निष्ठा यस्याः सा मे सखी राधा कथं नेर्षतु ॥७८॥

एवं कृष्णं प्रति विशाखावचनं श्रुत्वा तस्यां राधायां स्फुरिताधराननं। स्फुरितः कम्पितोऽधरो यत्र तादृशाननं यथा स्यात्तथा कुटिली भवद्भ्रवि कुटिली भवन्त्यौ भ्रुवौ

कर्णोत्पल के द्वारा श्रीकृष्णको प्रहार करने लगी। तब श्रीकृष्ण, श्रीराधाकी उस अवस्थाको देखकर ललितादि सखियों को कहने लगे ।।७५।। सखियों! मैं शुभ कन्दर्प यज्ञके प्रारम्भमें विघ्न शान्तिके निमित्त पञ्चदेवता को, गणेश, शिव, दुर्गा, सूर्य्य, विष्णुकी पूजा करूँगा, इसमें तुम्हारी प्रिय सखी दुःखी क्यों हो रही हैं? ।।७६।। तब विशाखा, कृष्णके प्रति आक्षेप करने वाली सखियोंको मना करके नयन के इशारे कुन्दलता को राधाकृष्णके अञ्चलोंमें गँठबन्धन कर देने के लिए कहकर कृष्णको कही ।।७७।। कृष्ण! सस्त्रीको धर्ममाचरेत्' विधान से पत्नीके साथ ही धर्माचरण होता है, कन्दर्प यज्ञमें स्त्री पुरुषके परस्पर वस्त्राञ्चल में गाँठ बन्धन होनेसे ही समता होती है, जब तुम अञ्चल बन्धन को छोड़कर ही पञ्चदेवता की पूजा करने जा रहे हो, तब

अलक्षिता सा द्रुतमेत्य सम्मुखं स्वसेवया तुष्टमुवाच माधवम्।
किं मङ्गलारम्भ इहान्यचर्च्चया नवग्रहानर्च्चय-सर्व्वसिद्धये ॥ ॥८०॥

तामवादीदयं मह्यं ग्रहपूजाविधिं दिश।
सापि तं राधिकाङ्गानि दर्शयन्ती दृशावदत् ॥ ॥८१॥

अधर–नयन–गण्डोरोजभालाननानां
ग्रहणमिह नवानामङ्कानां ग्रहार्च्चा।
यदपि तदपि तेषां सुष्ठु सन्तोषहेतो–
रधर–विकचवन्धूकार्पणं तेषु कुर्य्याः ॥ ॥८२॥

यस्याः तथाभूतायां विशाखां विलोकयन्त्यां सत्यां पश्चात् स्थिता कुन्दलता तयो राधाकृष्णयोः संव्यानयोरुत्तरीयवस्त्रयोरश्चलवन्धनं व्यधात् ॥७९॥

अञ्चलवन्धनं कृत्वा अलक्षिता सा कुन्दलता सम्मुखमेत्य स्वसेवया अञ्चलवन्धनादिरूपया तुष्टं कृष्णमुवाच। इह मङ्गलारम्भे अन्यचर्च्चया किं सर्व्वसिद्धये नवग्रहानर्च्चय ॥८०॥

अयं कृष्णस्तां कुन्दलतामवादीत्। मह्यं ग्रहपूजाविधिं दिश कथय। सा कुन्दलतापि तां दृशा राधिकाङ्गानि दर्शयन्ती अवदत् ॥८१॥

अधरादि नवानां अङ्गानां ग्रहणमिह यद्यपि ग्रहार्च्चा तदपि तेषां अधरादि ग्रहाणांसुष्ठु सन्तोषहेतोस्तेषु स्वस्याधर एव विकचवन्धूकस्तदर्पणं त्वं कुर्य्याः। अधरादि नवस्थलेषु चुम्बनं उज्ज्वलनीलमण्यादिरसशास्त्रे प्रोक्तं। अधर एको नयनगण्डोरोजानां द्वित्वीन षट् ललाटं मुखं चैवं नव ॥८२॥

धर्मनिष्ठ मेरी सखी श्रीराधा उसमें क्यों ईर्ष्या करेगी? ।।७८।। तब कृष्णके प्रति विशाखाके वाक्यको सुनकर श्रीराधा स्फुरिताधर, कुटिल भ्रू होकर विशाखा को देखने लगी, उस समय पीछेसे कुन्दलताने राधाकृष्णके परस्पर वस्त्राञ्चलमें गठ- बन्धन कर दिया।।७९।। अनन्तर कुन्दलता अलक्षित रूपसे परस्परके वसनाञ्चल में ग्रन्थिबन्धन करके श्रीकृष्णको सन्तुष्ट करके सामने आकर कही, हे माधव! इस शुभकर्म में दूसरी चर्चाकी आवश्यकता नहीं है, सर्वविध सिद्धिलाभके लिए नवग्रह की अर्चना करो।।८०।। यह सुनकर श्रीकृष्णने बोला, कुन्दलते! नवग्रह की पूजा कैसी करनी पड़ती है, उसके बारेमें मुझे उपदेश दो। कुन्दलता नयन भङ्गीसे श्रीराधिकाके अङ्गों को दिखाकर बोली।।८१।। कृष्ण! तुम श्रीराधा के अधर, गण्डद्वय, नयन द्वन्द्व

आचार्य्ये त्वं शिक्षयामुं स्वशिष्यं स्वाङ्गान्यादौ ग्राहयित्वा ग्रहार्च्चां
इत्युक्त्वा त्वां कृष्णभीत्यापयान्ती राधा रुद्धा स्वाञ्चलग्रन्थिनारात् ॥८३॥
तिर्य्यग् ग्रीवं वीक्ष्य वद्धाञ्चलान्तं स्वान्तर्वाञ्छापूर्त्ति फुल्लाननापि।
कृष्णे सख्योः कुन्दवल्लयां च सेर्ष्या शीघ्रं ग्रन्थिं मोचयन्त्यब्रवीत्सा ॥८४॥
धार्ष्ट्यनाट्ये नटस्यास्य विशाखेयं वरा नटी।
सभ्येशा ललिता कुन्दवल्ली सेयं विदूषिका॥ ॥८५॥

हे आचार्य्ये कुन्दलते तमादौ अमुं स्वशिष्यं कृष्णं स्वाङ्गानि ग्राहयित्वा ग्रहार्च्चां शिक्षय। इति तां कुन्दलतामुक्त्वा कृष्णभिया पलायन्ती राधा आरात् समीपे स्वाञ्चलग्रन्थिना रुद्धाभूदिति शेषः ॥८३॥

तिर्य्यग् ग्रीवं यथा स्यात्तथा वद्धाञ्चलान्तं वीक्ष्यान्तर्वाञ्छापूर्त्त्या फुल्लाननापि वाह्ये कृष्णे ललिता विशाखयोः कुन्दवल्लयां च सेर्ष्या सा राधा ग्रन्थिं मोचयन्ती सती अब्रवीत् ॥८४॥

अस्य धार्ष्ट्यनाट्ये इयं विशाखा वरा नटी स्वयं प्रधानीभूयनृत्यति। ललिता सभ्येशा सभायां स्थिता प्रेरिका कुन्दलता–हास्यकारिणी। ललिता सभ्येशा कुन्दलता–विदूषिका ॥८५॥

पयोधर युगल, ललाट, एवं मुख, यह नव अङ्गके ग्रहणसे ही यद्यपि नवग्रह की पूजा होती है, तथापि उक्त समस्त अङ्गोंके सन्तोषार्थ उन सब में निज अधर रूप विकसित बन्धुजीव पुष्पको अर्पण करो, अर्थात् उक्त स्थान समूह का चुम्बन करो।।८२।। तब श्रीराधा, कुन्दलताके मुखसे रहस्य की बातको सुनकर बोली, हे आचार्य! हे कुन्दलते! तुम पहले अपने शिष्य कृष्णको निज अङ्गसमूह का ग्रहण करवाकर नवग्रह की पूजा करना सिखाओ, कृष्णको यह कहकर श्रीकृष्णके भयसे पलायन परायणा होगयी, किन्तु गठबन्धनसे श्रीकृष्णके सामने ही अवरुद्धा हो गई।।८३।। तब श्रीराधाने वक्रग्रीवा से पीछे की ओर वसनाञ्चल के गठवन्धन को देखा अभीष्ट पूर्त्ति तो हुई यह जानकर प्रफुल्लमुखी होने पर भी बाहर श्रीकृष्ण, ललिता, विशाखा, कुन्दवल्ली के प्रति ईर्षाभाव को प्रकट कर वस्त्राञ्चल के गठवन्धन खोलने के लिए सचेष्ट हो गई।।८४।। श्रीकृष्णके निर्लज्ज नाट्यमें विशाखा स्वयं ही उत्तम नटी है, ललिता सभ्येशा है, अर्थात् सभामें रहकर नाट्य विषय में सबको नियोग करती हैं, एवं कुन्दलता, नाट्य सभामें विदूषिका है, अर्थात्

पत्नीरङ्कोऽप्यन्यपत्न्यां स्वपत्नीभावं विभ्रत् पूरयन् स्वीयवाञ्छाम्।
मुक्तः सोऽयं लज्जयापि स्वसख्या त्यक्ते धर्म्मे लोभतो मूलहानिः ॥८६॥

कृष्णोऽथ तां तत्र निवारयन्नपि प्रवृत्त आसीन्मुखचुम्वनादिषु।
कान्तापि तं तेषु निवारयन्त्यपि प्राज्याग्रहाभूत् पटवन्धमोचने॥ ॥८७॥

एवं तयोः स्वस्वकृतौ समुत्कयो-रन्योऽन्यसंरोधवशात् विहस्तयोः।
उपेत्य दृप्ता ललिता मृषेर्ष्यया सा भर्त्सयत्तं पटमप्यमोचयत्॥ ॥८८॥

कर्त्तुं भवल्लालसा चेत् स्वपत्न्यश्चलवन्धनम्।
व्रजे ते दुर्ल्लभा कन्या प्रजावत्यानयास्तु तत्॥ ॥८९॥

सोऽयं पत्नीरङ्क पत्नयभावात् पत्नीदरिद्रोऽपि कृष्णः अन्यस्य पत्न्यां स्वस्य पत्नीभावं विभ्रत् स्वीयवाञ्छां पूरयन् स्वसख्या लज्जयापि मुक्तोऽभूत्। लोभात् धर्म्मे त्यक्ते सति मूलहानिर्भवेदिति शेषः। मूलमत्रास्माकमिहपुष्पावचयया गमनं तन्न भविष्यति। अस्मिन्नेवमधर्म्मप्रवृत्ते सति वयमिह नागमिष्याम इति भावः ॥८६॥

अथ कृष्णस्तत्राञ्चलवन्धमोचने तां राधां निवारयन्नपि तस्या मुखचुम्वनादिषु प्रवृत्त आसीत्। कान्तापि तेषु मुखचुम्बनादिषु तं कृष्णं निवारयन्त्यपि पटवन्धमोचने प्राज्याग्रहा प्रचुराग्रहाभूत् ॥८७॥

एवं तयोः स्वस्वकार्य्ये समुत्कण्ठयोरन्योऽन्यं संरोधवशात् विहस्तयोर्व्याकुलयोः। दृप्ता चर्व्विता ललिता उपेत्य समीपे गत्वा मृषेर्ष्यया तं कृष्णं सा भर्त्सयत्। पटमप्यमोचयत् ॥८८॥

यह सबको हँसाने वाली है।।८५।।

कैसा आश्चर्य्य! यह श्रीकृष्ण, पत्नी दरिद्र होने पर भी अर्थात् निज पत्नीके अभावसे परपत्नी को निज पत्नी जानकर इच्छापूर्त्ति करके निज प्रिय सखी लज्जासे मुक्त हो गए हैं, अर्थात् लज्जाशून्य होगए हैं। हा कष्ट! लोभसे धर्मत्याग करने पर मूलतः धर्महानि होती है, विशेष कर हमारे यहाँ पर आनेका मूल कारण ही पुष्पचयन है, वह नहीं होगा, एवं इस प्रकार अधर्म करने में प्रवृत्त होने पर हमसब यहाँ पर नहीं आएंगी।।८६।। अनन्तर श्रीकृष्ण राधाको गठवन्धन खोलने में बाधा डालकर उनके मुखचुम्बन में प्रवृत्त हो गए, राधाभी मुखचुम्बनादि में श्रीकृष्णको रोककर गठबन्धन को खोलने में आग्रहवती हो गई।।८७।। इस प्रकार निज निज कार्य में उत्कण्ठित श्रीराधाकृष्ण बाधासे व्याकुल होनेपर ललिता बीचमें आकर उभय के समक्ष

सा मुक्तमाकृष्य पटान्तमारात् स्थिता चलद्भ्रूः स्मितशोभितास्या।
तं प्रेरयन्ती स्वदृगिङ्गितेन न्यस्तेक्षणं स्वानन इत्यवादीत्॥ ॥९०॥

भ्रान्ताचार्य्या ते यदादौ विधेयां दिक्पालार्च्चां या विहाय ग्रहाणाम्।
अर्च्चामज्ञं कारयन्ती भवन्तं कर्म्मण्यस्मिंश्छिद्रतामादधाति॥ ॥९१॥

कुन्दवल्ल्यब्रवीत् नाहं भ्रान्ताज्ञेऽस्मिन् स्मरक्रतौ।
दिग्देवतार्च्चनात् पूर्व्वं ग्रहपूजेत्ययं विधिः॥ ॥९२॥

स्थानाधिष्ठान-नामानि तेषां पृष्टाच्युतेन सा।
दृशा तं दर्शयन्त्यालीर्वभाषे कुन्दवल्लिका॥ ॥९३॥

स्वपत्न्यञ्चलवन्धनं कर्त्तुं तव लालसा चेत्। ते व्रजे कन्या दुर्ल्लभा। कन्याया लाभो न चेत् तदा अनया कुन्दवल्लया प्रजावत्या भ्रातृजायया सह तदञ्चलवन्धनमस्तु। प्रजावती भ्रातृजाया इत्यमरः॥८९॥

मुक्तं पटान्तमाकृष्यारादूरे स्थिता सा राधा कीदृशी चलद्भ्रुः स्मितशोभितास्या च स्वानने न्यस्तेक्षणं कृष्णं स्वदृगिङ्गितेन कुन्दलतां प्रति गन्तुं प्रेरयन्ती त्यवादीत्॥९०॥

ते आचार्य्या कुन्दवल्लीभ्रान्ता। यद्यस्माद्या कुन्दवल्ली आदौ विधेयां दिक्पालार्च्चां विहाय त्यक्त्वा अज्ञं भवन्तं ग्रहाणामर्च्चां कारयन्ती अस्मिन् कर्म्मणि छिद्रतामादधाति॥९१॥

कुन्दलताब्रवीत्। हे अज्ञे नाहं भ्रान्ता अस्मिन्नित्यादि॥९२॥

तेषां दिक्पालानां स्थानानि अधिष्ठान-नामानि च अच्युतेन पृष्टा सती सा कुन्दवल्ली दृशा ललितादीरालीर्दर्शयन्ती तं कृष्णं वभाषे॥९३॥

में मिथ्या ईर्षाके साथ कृष्णको फटकारा एवं गठबन्धनको भी खोल दिया॥८८॥

अनन्तर ललिता कृष्णको बोली, कृष्ण! तुम्हारी यदि निज पत्नी के साथ गठबन्धनकी इच्छा हो, तो तुम्हे तो व्रजमें कन्या नहीं मिलेगी, तुम्हारी भ्रातृजाया कुन्दलता के साथ ही गठबन्धन हो जाय॥८९॥ तब चञ्चल भ्रू हँसमुखी श्रीराधा वसनाञ्चल को समेट कर थोड़ी दूर हो गई, एवं उनके वदन की ओर दृष्टि देनेवाले श्रीकृष्ण को निज दृक्भङ्गि से कुन्दलताके ओर ताकने के लिए आदेश कर कहने लगी॥९०॥ कृष्ण! तुम्हारी आचार्या कुन्दवल्ली भ्रान्ता हो गई है, कारण पहले दिग्पालकी पूजा करना कर्त्तव्य है, उसको छोड़कर तुम्हें अज्ञ जानकर पहले नवग्रह की पूजा करवाने लग गई है, इससे

पश्यैतास्ते कृतार्च्चायां वाञ्छादाने समुत्सुकाः।
स्वयमागत्य दिक्पालमूर्त्तीः स्वस्व दिशि स्थिताः॥ ॥९४॥

विशाखा शाङ्करीमूर्त्तिर्ललिता शातमन्यवी।
शौची सुदेविका तुङ्गविद्या दाण्डधरी तथा॥ ॥९५॥

चित्रा नैशाचरी रङ्गदेवी प्राचेतसी स्मृता।
सादागती त्विन्दुलेखा धानदी चम्पकालिका॥ ॥९६॥

श्रीरूपमञ्जरी सेयं वैधात्री निपुणाग्रतः।
रसोल्लासकरी दक्षा शैषी सानङ्गमञ्जरी॥ ॥९७॥

एता ललितादीर्दिक्पालमूर्त्तीः स्वयमागत्य स्वस्वस्थाने स्थिताः पश्य कीदृशीः। ते त्वया कृतार्च्चायां (वर्त्तमानसामीप्ये वर्त्तमानवद्भूतवच्च वा। इति हरिनामामृतसूत्रं)। वाञ्छादाने समुत्सुकाः ॥९४॥

आसां का केत्येकैकं कथयति। विशाखा शाङ्करी शङ्करस्य मूर्त्तिः। ललिता शतमन्युरिन्द्रस्तस्य मूर्त्तिः। सुदेवी शौची शुचिरग्निस्तस्य मूर्त्तिः। तुङ्गविद्या दण्डधरो यमस्तस्य मूर्त्तिः ॥९५॥

चित्रा नैशाचरी नैर्ऋतिमूर्त्तिः। रङ्गदेवी वारुणी इन्दुलेखा वायवी। चम्पकलता कौवेरी ॥९६॥

सेयं श्रीरूपमञ्जरी वैधात्री ब्रह्माणी अत्र श्रीशब्दो गोस्वामीनैवोक्तः। कीदृशी अग्रतः प्रथमं रसोल्लासकरी निपुणा च। अनङ्गमञ्जरी शैषी शेषस्य मूर्त्तिः रसोल्लासकरी दक्षा च। अत्र रसोल्लासकरीति पदं काकाक्षि गोलकन्यायेन उभयवर्त्ति ॥९७॥

तुम्हारा कर्म निश्छिद्र नहीं हुआ।।९१।। कुन्दलता बोली, हे अज्ञे! मैं कन्दर्प यज्ञमें भ्रान्ता नहीं हूँ। शास्त्रका विधान है कि-पहले नवग्रह की पूजा करना कर्त्तव्य है, पीछे दिग्पालों की पूजा करें।।९२।। कृष्णने कुन्दलतासे कहा, हे कुन्दलते! तुम मेरे पास दिग्पालों का स्थान, अधिष्ठानके नामोंका कीर्त्तन करो, यह सुनकर नयन भङ्गीसे कुन्दलताने ललितादि सखियों को दिखाकर बोली।।९३।। कृष्ण! वह देखो! दिक्पाल समूह तुम्हें यज्ञका फल देनेके लिए ललितादि मूर्त्ति धारणकर अपने दिक्में खड़े हैं।।९४।। हे कृष्ण! कौन किस दिक्पाल की मूर्त्ति हैं, सुनो, विशाखा शङ्कर की मूर्त्ति है, ललिता इन्द्रकी मूर्त्ति है, सुदेवी अग्नि की मूर्त्ति है, तुङ्गविद्या यमकी मूर्त्ति है।।९५।। चित्रा नैऋत की मूर्त्ति, रङ्गदेवी वरुण देवताकी मूर्त्ति, इन्दुलेखा वायु की मूर्त्ति,

सदा स्वार्थे त्वद्धिताढ्या एता दिक्पालमूर्त्तयः ।
सन्त्युन्मुखास्त्वदर्च्चायै त्वयार्च्याः फलसिद्धये ॥ ॥९८॥

तास्तां रुषा पामरि कारय त्वं धृष्टेऽमुना स्वप्रियदेवरेण ।
स्वमूर्त्तिपूजामिति भर्त्सयन्तीः पश्यन्नसावर्च्चितुमुत्ससर्प ॥ ॥९९॥

तदागति स शङ्कस्ताः सावधानाः स्वरक्षणे ।
पश्यन्त्यो यान्तमन्यां तं ददृशुः स्वस्वसन्निधौ ॥ ॥१००॥

यां यां प्रतीयाय स चञ्चलाक्षीं सा सापगच्छन्त्यमुनावरुद्धा ।
कृतार्द्धपूजापि पलायिताली साहाय्यतोऽभून्मिषतो हठाद्वा ॥ ॥१०१॥

एता दिक्पालमूर्त्तयः सदा स्वार्थे स्वकार्य्यार्थं त्वद्धिताढ्यास्तव हितयुक्ताः । त्वदर्च्चायै त्वदर्च्चाग्रहणार्थं उत्मुखाः सन्ति । फलसिद्धये त्वया अच्चर्चाः ॥९८॥

ताः ललितादीस्तां कुन्दलतां हे पामरि हे दृष्टेत्वममुना स्वप्रियदेवरेण स्वमूर्त्तिपूजां कारय इत्यनेन प्रकारेण रुषा भर्त्सयन्तीः पश्यन्नसौ कृष्णस्ताः अर्च्चयितुं उत्कण्ठं उत्साहयुक्तं स्यात्तथा वा ससर्प जगाम ॥९९॥

कुन्दलतोक्तविधिनास्तासां पूजार्थं तत्तस्य श्रीकृष्णस्य स्वनिकटे या गतिस्तत्र स शङ्कास्ताः स्वरक्षणे च सावधानाः । अन्यां प्रति यान्तं गच्छन्तं तं कृष्णं पश्यन्त्योऽपि स्वस्वसन्निधौ सम्भ्रमाद्ददृशुः ॥१००॥

स कृष्णः यां यां चञ्चलाक्षीं प्रतीयाय प्रति जगाम। सा सा अपगच्छन्ती पलायन्ती अमुना कृष्णेनावरुद्धा कृतार्द्धपूजापि आलीनां साहाय्यतः सहायत्वात् मिषतः छलात् हठाद्वा पलायिताभूत् ॥१०१॥

चम्पकलता कुबेर की मूर्त्ति है ।।९६।। और जो सम्मुख में निपुणा रसोल्लासकरी है, वह यह श्रीरूपमञ्जरी ब्रह्मा की मूर्त्ति है एवं अनङ्गमञ्जरी अनन्तदेव की मूर्त्ति है।।९७।। यह सव दिग्पाल मूर्त्ति सखीगण सर्वदा निज कार्यके निमित्त एवं तुम्हारे हितके लिए अवहित होकर तुमसे पूजा ग्रहणार्थ उन्मुख हैं, अतएव फल सिद्धिके लिए तुम इनसब की पूजा करो।।९८।। पश्चात् ललितादि सखीगण रोषान्विता होकर कुन्दलता को कहने लगी, हे पामरि! हे निर्ल्लज्जे! "तुम अपने देवर से निजमूर्त्ति की पूजा करवाओ" इस प्रकार फटकारते हुए देखकर श्रीकृष्ण, ललितादि की पूजा करने के लिए उत्कण्ठित होकर गए।।९९।। कुन्दलता के कथनानुसार सवकी पूजा करने के लिए श्रीकृष्ण सवके निकट आ रहें हैं, जानकर आत्मरक्षा के लिए सावधान

स काकुविनयात् कापि साटोपतर्ज्जनात् परा।
अपेतान्यां विधायान्या संव्यानत्यागतोऽपरा॥ ॥१०२॥

तासां मुखं स स्मित-रोदन-हेलं संफुल्लभुग्नारुणचञ्चलाक्षम्।
वीक्ष्येप्सितां प्राप मुदां स चित्रं विघ्नाहते कर्म्मणि यत्फलाप्तिः ॥१०३॥

इतस्ततस्तां प्रपलाय्य राधामासाद्य दुर्गं परितः स्थितानां।
तासां स्फुरच्चञ्चल-दृक्चकोर्य्यः कृष्णाननेन्दौ तृषिता निपेतुः ॥१०४॥

आसाद्य दृप्यद्वृषभानुजां श्रियं तासां प्रफुल्लानि मुखाम्बुजानि सः।
समीक्ष्य धृष्णक् मधुसूदनस्तदा पिपासयासीदुपसर्त्तुमुद्यतः॥ ॥१०५॥

कापि सखी स काकुविनयवाक्यात् दैन्यसहितविनयवाक्यं प्रोच्य अपेता पलायिता परा प्रखरा साटोपतर्ज्जनात् तत्कृत्वा अपेता अपगता। अन्या अन्यां सखीं तस्याग्रे विधाय वलात्कारेण कृत्वा अपेता। अपरा तेन धृतसंव्यानस्य उत्तरीयस्य त्यागतस्त्यागं कृत्वा प्रकृते इति सर्व्वत्र जोज्यं गता। यल्लोपे पञ्चमी ॥१०२॥

तासां स्मित-रोदन-हेलायुक्तं मुखं। पुनः कीदृशं मुखं सम्यक् प्रफुल्लं भुग्नमरुणं चञ्चलं चाक्षि नेत्रं यत्र तत्। स कृष्णः बीक्ष्य ईप्सितां मुदं प्राप इति चित्रमद्भुतं चित्रमेवाह। विघ्नेनाहते कर्म्मणि यत्फलप्राप्तिस्तदेव चित्रं विघ्नमत्र सखीनां पलायनादि फलं त्वीप्सितमुत्प्राप्तिः ॥१०३॥

इतस्ततः प्रपलाय्य तां राधां तद्रूपदुर्गमासाद्य प्राप्य परितः सर्व्वतः स्थितानां दृक्चकोर्य्यः कृष्णा नेन्दौ तृषिताः सत्यः निपेतुः अनन्यगतिकानां तासां प्रेमवतीनां एतादृश्येव प्रकृतिः ॥१०४॥

होकर भी दूसरे की ओर जाते देखकर भी सम्भ्रमसे अपने-अपने समीप में कृष्णकी देखने लगीं।।१००।। अनन्तर कृष्ण, पूजा करनेके लिए जिसकी ओर जाने लगे, वह सखी वहाँसे भागने की चेष्टा करने पर भी श्रीकृष्णसे अवरुद्धा एवं अर्द्धपूजिता होकर भी निज-निज सखियों की सहायता से छल एवं हठसे पलायन परायण होगई, कोई सखी सदैन्य विनय वाक्यसे, कोई तो प्रखरा होनेसे श्रीकृष्णको तर्जन करके, कोई तो श्रीकृष्णके द्वारा धृत उत्तरीय को छोड़कर भागने लगी।।१०१।।१०२।। आश्चर्य है! सखीगण इस प्रकार श्रीकृष्णके हाथसे मुक्त होकर पलायन करने पर भी यद्यपि विघ्नसे कर्मफल प्राप्ति की सम्भावना नहीं रही, तथापि सखीगण के रोदन मिश्रित ईषत् हास्य, हेलायुक्त प्रफुल्लित वदन एवं कटाक्ष समन्वित लोहितवर्ण नेत्रको

उल्लङ्घ्य राधां सहसोत्पतिष्णुस्तया रुषा हुङ्कृतितो निरुद्धः।
स्तब्धः पुरोऽस्याः सभियेव तिष्ठन्न्यधाद्दृशं कुन्दलताननने स्वाम् ॥ ॥१०६॥

श्रीचैतन्यपदारविन्दमधुप श्रीरूपसेवाफले
दिष्टे श्रीरघुनाथदासकृतिना श्रीजीवसङ्गोद्गते।
काव्ये श्रीरघुनाथभट्टवरजे गोविन्दलीलामृते
सर्गोऽयं नवमः समाप्तिमगमन्मध्याह्नलीलामनु ॥*॥ ९ ॥*॥

दृप्यन्ती गर्विता वृषभानुजा श्रीराधिकैव श्रीर्दुर्गरूपा सम्पत्तिः सैव प्रचण्डा ज्यैष्ठ सूर्य्यजन्या शोभा दीप्तिस्तां वृषभानुजां श्रियं आसाद्य प्राप्य तासां प्रफुल्लानि मुखान्येवाम्बुजानि तानि समीक्ष्य स मधुसूदनः कृष्ण एव मधूसूदनो भ्रमरः धृष्णक् चञ्चलः सन् पिपासया पातुमिच्छया उपसर्त्तुं तासां निकटे गन्तुमुद्यत आसीत् ॥१०५॥

स श्रीकृष्णः राधामुल्लङ्घ्य सहसोत्पतिष्णुः सन् तया राधया रुषा क्रोधेन हुङ्कृतितः हुङ्कारेण निरुद्धः स्तब्धश्च भूत्वा अस्याः पुरोऽग्रे भिया इव तिष्ठन् कुन्दवल्ल्या मुखे स्वां दृशं न्यधात् ॥१०६॥

इति श्रीगोविन्दलीलामृते मध्याह्नलीलायां नवमः सर्गोऽयं समाप्तिमगमत्। इति श्रीसदानन्दविधायिन्यां नवमः सर्गार्थः ॥९॥ ॥*॥

देखकर अतिशय आनन्दसे श्रीकृष्ण को वाञ्छित फल मिल गया ॥१०३॥ यद्यपि ललितादि सखीगण इधर-उधर से भागकर श्रीराधारूप दुर्गको प्राप्तकर उनके चारों ओर अवस्थित हो गई, तथापि उनकी नेत्रचकोरी श्रीकृष्णचन्द्रकी मुखसुधा का पान करने लगी, कारण अनन्य प्रेमवतीयों का स्वभाव वैसा ही है॥१०४॥ तब श्रीकृष्ण,-वृषभानुजारूप दुर्गसम्पत्ति प्राप्त होकर एवं सखियों के प्रफुल्ल मुखाम्बुज का अवलोकन कर चञ्चल मधुसूदन, अर्थात् कृष्णरूप मधुकर उसका पान करने की इच्छासे उन सबके निकट जानेके लिए तैयार हो गये॥१०५॥ अनन्तर श्रीकृष्ण, श्रीराधारूप दुर्गको उल्लङ्घन कर सहसा उत्पतिष्णु होनेसे श्रीराधाने क्रोधसे हुङ्कार किया, उससे श्रीकृष्ण स्तब्ध होकर श्रीराधाके सामने भयसे खड़े होकर कुन्दवल्ली के मुखकी ओर ताक कर रह गये॥१०६॥ श्रीकृष्णचैतन्य महाप्रभु के पदारविन्द के मधुप स्वरूप श्रीरूप गोस्वामीजी की सेवा का फलरूप, श्रीरघुनाथ दास गोस्वामी जी की प्रेरण प्राप्त, श्रीजीवगोस्वामीजी के सङ्गसे उत्पन्न एवं श्रीरघुनाथभट्ट गोस्वामीजी के वरदानसे प्रादुर्भूत श्रीगोविन्दलीलामृत काव्य की मध्याह्न लीलामें नवमसर्ग समाप्त हुआ॥९॥

श्रीगोविन्दलीलामृतम्

दशम सर्गः

—०⁂⁂०—

अथेङ्गितज्ञा किल कुन्दवल्ली सर्व्वेष्टदानङ्गमख क्रियायां।
विघ्नाद्विषीदन्तमिवाभ्युपेत्य स्वयं विषण्णेव तदाह कृष्णं ॥ ॥१॥

पशुपतिरसि यत्ते लीलया कामनाशः
क्रतुहतिरपि तस्माद्देवता कर्म्मनाशे।
कथमिह फललब्धिस्तत्त्यजाश्वन्यधर्म्मं
प्रणयपरवशत्वं स्वीयधर्म्मं विधेहि ॥ ॥२॥

इङ्गितज्ञा कुन्दवल्ली सर्व्वेष्टदानङ्गयज्ञस्य क्रियायां विघ्नाद्विषीदन्तमिव कृष्णमभ्युपेत्य स्वयमपि विषण्णेवाह ॥१॥

हे कृष्ण यद्यस्मात्त्वं पशुपतिः पशूनां गवां पालक एव पशुपतिर्महादेवः सोऽपि तस्मात् ते लीलया कामनाशः कामोऽभिलाष एष कामोऽनङ्गस्तस्य नाशः। क्रतुर्यज्ञः कन्दर्पयज्ञ एव दक्षप्रजापतियज्ञस्तस्य हतिरपि चाभूत्। तस्मात् कामनाशात् क्रतुहतेश्च हेतोदेवता इमा दिक्पालदेवताः सख्य एव तद्यज्ञदेवता एतत्तासां कर्म्मणां यज्ञकर्त्ता त्वया विहितकार्य्याणां नाशोऽप्यऽभूत्। तन्नाशे सति इह यज्ञे फल्लब्धिः कथं स्यात् न स्यादेव। तत्तस्मात् आशु शीघ्रमेवान्यधर्म्मं त्यज। हे प्रणयपरवश। आशु त्वत्कृतस्य आभिस्त्वयि कृतस्य वा प्रणयस्याधानत्वं स्वीयधर्म्मं पशुपतिधर्म्मं विधेहि। पशुपतेः पार्व्वत्यामर्द्धाङ्गसमपंणमिव त्वमास्वङ्गार्पणं कुर्व्वित्यर्थः। प्रणयपरवशत्वादङ्गार्पणमवश्यं कार्य्यमिति भावः ॥२॥

अनन्तर इङ्गितज्ञा कुन्दलता,–सर्वाभीष्टप्रद कन्दर्प यज्ञ की क्रियामें विघ्न उपस्थित होनेपर कृष्ण को विषण्ण होते देखकर उनके निकट आकर स्वयं विषण्णा की भाँति होकर कहने लगी ।।१ ।। कृष्ण! तुम तो पशुपति हो, अर्थात् पशुयों के पति हो, तब तुम्हारी लीलासे ही कन्दर्प विनष्ट होगया है, कन्दर्प विनष्ट होने से कन्दर्प यहां भी नष्ट हुआ है, काम एवं यज्ञ, दोनों के विनाश के कारण दिक्पालरूपा यह सब सखी ही कन्दर्प देवता है, यज्ञकर्त्ता तुम्हारे द्वारा इन सबके कर्म विनष्ट होचुके हैं, सुतरां कर्मनाश हेतु इस यज्ञसे फललाभ कैसे सम्भव होगा? अत, हे प्रणयपरवश! शीघ्र अन्य धर्मको

आं सर्व्वशङ्करतया शिवमूर्त्तितश्च
प्राञ्चोऽपि मां किल महेश्वरमामनन्ति।
स्वप्रेयसीं प्रति निजाङ्गसमर्पणाख्यं
तत्तस्य धर्म्ममपि नित्यमहं करोमि॥ ॥३॥

किन्तु स्ववामवपुरङ्गमनेन दत्तं
पूर्व्वाङ्ग–पूर्व्वमखिलाङ्गमहं ददामि।
यत् प्रेमवश्य सुविदग्धवदान्यताभ्यः
कीर्त्तिस्ततोऽपि विपुला मम लालसीति॥ ॥४॥

ततः स्वस्माच्छङ्कमानां सावधानामपि प्रियां।
अलक्षितमुपेत्याह क्रौडीकर्त्तुं कृतोद्यमः॥ ॥५॥

आमिति मया स्मृतं। यस्मात् सर्व्वशङ्करतया सर्व्वेषां सुखकरतया हेतुना शिवमूर्त्तिश्च यतः शिवा मङ्गलरूपा मूर्त्तिर्मम मूर्त्तिस्तस्याश्च हेतोः प्राञ्चः प्राचीना अपि मां महेश्वरं आमनन्ति वदन्ति। तत् तस्मात् स्वप्रेयसीं प्रतिस्वप्रेयस्यां निजाङ्गसमर्पण-मित्याख्यानाम यस्य तं तस्य शिवस्य धर्म्ममर्थान्निजाङ्गसमर्पणमहं करोमि ॥३॥

किन्तु अनेन शिवेन स्वस्य वामवपुरूपमङ्गं स्वप्रेयस्यै दत्तं अहन्तु पूर्व्वाङ्गमधोऽङ्गं। यद्वा दक्षिणाङ्गं पूर्व्वमादौ यत्र तथाभूतमखिलाङ्गं ददामि। आदावधोऽङ्गं क्रोड उपविश्य। यद्वा दक्षिणाङ्गेन तां गृहीत्वा दत्त्वा पश्चात् सर्व्वाङ्गं ददामीति यद्यस्मात् सर्व्वाङ्गदानात् प्रेमवश्यत्व–सुविदग्धत्ववदान्यतातिदातृत्वादिगुणेभ्यो हेतुभ्यस्ततः महादेवात् अपि मम विपुलाकीर्त्तिर्लालसीति अतिशयेन दीप्यति ॥४॥

छोड़कर स्वीय धर्म अर्थात् पशुपति धर्मको अवलम्बन करो। अर्थात् पशुपति महादेव जिसप्रकार पार्वती को निज अर्द्धाङ्ग समर्पण किए हैं, तुम भी उनकी ललिता प्रभृति को निजाङ्ग अर्पण करो।।२।। कुन्दलता के वाक्यको सुनकर श्रीकृष्ण उनको बोली, हे कुन्दलते! हाँ मुझे स्मरण हुआ, मैं सबलोक के सुखविधान करता रहता हूँ, इस लिए प्राचीन जनगण मुझको शिव कहते हैं, अतएव महेश जिस धर्मसे स्वीय पत्नी भवानी को निज अर्धाङ्ग प्रदान किये है, मैं भी उस धर्मको अवलम्बन करता हूँ।।३।। हे सखि! शिव, निज प्रियसी को स्वीय वामाङ्ग प्रदान किये हैं, मैं किन्तु मदीय प्रेयसी को मदीय सर्वाङ्ग प्रदान करूँगा, ऐसा होनेपर प्रेमवश्यत्व सुविदग्धत्व, अतिदातृत्वादि गुणके

एह्येहि गौरि त्वमिदं शरीरं गृहाण मे चन्द्रकशेखरस्य।
इत्यालपंस्तां परिरब्धुमुत्कः कृतापयानां स हठाद्दधार॥ ॥६॥

सगद्गदं भर्त्सयन्ती सेयं सस्मित-रोदनं।
तस्मात् कथञ्चित् विश्लिष्य सेर्षं तस्थौ तदग्रतः॥ ॥७॥

मुखपरिमललुब्धस्यालिवृन्दस्य कर्णा-
न्तिकमनु पततः सा झङ्कृति त्रस्तचेताः।
तदनु चकित-चञ्चत्दृष्टिभङ्गीर्दधाना
स्वयमपगत-धैर्य्या सस्वजे प्राणनाथं॥ ॥८॥

तदनन्तरं स्वस्मात् शङ्कमानामपि प्रियां अलक्षितमुपसमीपे गत्वा क्रोडी कर्त्तुंकृतोद्यमः सन्नाह॥५॥ हे गौरि गौरवर्णे श्लेषार्थे पार्व्वती एह्ये हीत्यादरे वीप्सा। त्वं चन्द्रकशेखरस्य चन्द्रको वर्हं शेखरे यस्य सोऽयं चन्द्रकशेखरः। पक्षे चन्द्रशेखरः शिवः। स्वार्थे कः। तस्य मे ममेदं शरीरं गृहाण। इति वदन् तामालिङ्गितुमुत्कः। स कृष्णः कृतापयानां कृतापगमनां हठाद्दधार॥६॥ स स्मित-रोदनं यथा स्यात्तथा स गद्गदं भर्त्सयन्ती सेयं राधा कथञ्चित् कष्टेन तस्मात् कृष्णात् विश्लिष्य तदग्रतः सेर्षं तस्थौ॥७॥ सा राधा मुखस्य दूरगामिसौगन्ध्ये लुब्धस्यातः कर्णसमीपे पततो भ्रमरसमूहस्य झङ्कृत्या त्रस्तं चित्तं यस्याः सा। तदनुभ्रमरसमूहे चकिताश्च ता चञ्चत्दृष्टिभङ्गीर्दधाना स्वयं धैर्य्यरहिता प्राणनाथं कृष्णं सस्वजे परिरेभे॥८॥

कारण महादेवसे भी मेरी विपुल कीर्त्ति देदीप्यमान होगी।।४।। अनन्तर श्रीकृष्ण, प्रियतमा को शङ्कित एवं सावधान होते देखकर सहसा उनके निकट जाकर उनको गोदी में उठालेने का प्रयत्न करके बोले।।५।। हे गौरि! आओ! आओ! मैं चन्द्रशेखर (मयूर पुच्छधारी हूँ) हूँ। तुम मेरा शरीरको ग्रहण करो, यह कहते-कहते आलिङ्गन के लिए उत्सुक होकर भयसे भगनेवाली राधाको सहसा पकड़ लिए।।६।। तब श्रीराधा ईषद्धास्य, रोदन समन्वित सगद्गद वचनसे कृष्णको फट्कारते हुये उनके हाथ से किसी प्रकार अलग होकर ईर्षासे उनके सामने खड़ी होगई।।७।। तत्कालीन भ्रमर समूह श्रीराधाके वदन की दूरगामी सौरभ से लुब्ध होकर उनके कर्णमूलमें झंकृति शब्द करने लगे, उससे राधा भीत होकर अलिश्रेणीके प्रति चकित एवं चञ्चलदृष्टि प्रदान पूर्वक स्वयं अधैर्य्य होकर प्राणनाथ श्रीकृष्णको आलिङ्गनकर बैठी।।८।।

ततः सखीनां स्मितजातलज्जा कृतप्रयत्नापि ततोपसर्त्तुं।
तेनातिगाढं हसता गृहीता वभौ पयोदे स्थिरचञ्चलेव॥ ॥९॥

ईर्षा त्रपा निर्वृति वामताभिर्द्राक् देवताभिर्ललनाग्रहैः सा।
आविष्टवाङ्मानसविग्रहासीत् स्वचेष्टया लोकयतां सुखाय॥ ॥१०॥

स शपथ नुति निन्दा तर्ज्जनाक्षेपदैन्य
स्मित–रुदितविमिश्रं श्लिष्टमेषा लपन्ती।
प्रिय दृढभुजवन्धं मोचयन्ती कराभ्याम्
भृशमतनुत सालीवृन्द कृष्णस्य तुष्टिम्॥ ॥११॥

तयोर्द्दढालिङ्गनतः सुतृप्ताः कम्पादिसम्पन्निचिताः समीक्ष्य।
सखीर्मुदोत्फुल्लमुखीर्निकुञ्जे नान्दीमुखीं सा वदति स्म वृन्दा ॥१२॥

सखीनां स्मितेन जाता लज्जा यस्याः सा। ततः कृष्णादपसर्त्तुं कृतप्रयत्नापि हसता तेन कृष्णेनातिगाढं गृहीता मेघे स्थिरविद्युदिव वभौ ॥९॥ ईर्षा त्रपा निर्वृति वामताभिर्देवताभिर्ललनाग्रहैः वालग्रहैरिव स्त्रीणां ग्रहरूपैर्द्राक् शीघ्रमाविष्टं वाङ्मानसविग्रहं यस्याः सा राधा स्वचेष्टया लोकयतां पश्यतां जनानां सुखायासीत्। एकेन बालग्रहेण बालकस्य नानाचेष्टा भवन्ति। तत्र तु ईर्षादयो बहुग्रहाः। ईर्षा त्रपा प्रसिद्धा निर्वृतिः सुखं नायकेन यथा कर्त्तुमिष्यते। तत्रासम्मतिर्वामता ॥१०॥ चेष्टमाह सेति। शपथादिदैन्यान्तैः सहितं स्मित-रुदिताभ्यां विमिश्रं संयुक्तं श्लिष्टं वाक्श्लेषयुकं। श्लिष्टमिति पाठे अविस्पष्टं च यथा स्यात्तथा आलपन्ती कराभ्यां प्रिय दृढभुजवन्धं मोचयन्ती सती। एषा राधा सखीवृन्दसहित–कृष्णस्य भृशं तुष्टिमतनुत ॥११॥

अनन्तर श्रीराधा सखीगण को हँसती हुई देखकर लज्जा विनम्रवदनसे श्रीकृष्णके हाथसे मुक्त होने की चेष्टा करके भी हँसमान श्रीकृष्णके द्वारा निबिड़ रूपसे गृहीत होनेसे मुक्त हो न सकी, तव प्रतीति हुई कि, नवजलधर में जड़ित सौदामिनी शोभा पा रही है।।९।। श्रीराधा ग्रहावेश की भाँति ईर्षा, लज्जा, सुखमें असम्मतिरूप ग्रहगणके द्वारा आविष्ट होनेसे निजचेष्टा के द्वारा दर्शक जनगणके सुखके निमित्त बनगई।।१०।। श्रीराधा की चेष्टा इस प्रकार रही, शपथ, स्तव, निन्दा, तर्जन, आक्षेप एवं दैन्यके साथ हास्य एवं रोदनमिश्रित श्लेष वाक्यसे आलाप करते-करते दोनों हाथों ने प्रियतमके दृढ़ वाहुबन्धन को मुक्त करके सखीगणके साथ श्रीकृष्ण का अत्यन्त आनन्द विस्तार करने लगी।।११।। तत्पश्चात् श्रीराधाकृष्णके दृढ़

आश्चर्य्यं हरिणा राधा गाढमालिङ्गिता चिरम्।
तदसङ्गति युक्तापि निर्वृतासीत् सखीततिः॥ ॥१३॥

अदृष्टे दर्शनोत्कण्ठा दृष्टेऽस्मिन् स्पर्शलालसा।
स्पर्शेऽस्य सेर्ष वाम्यं तच्चित्रमासां विचेष्टितम्॥ ॥१४॥

नान्दीमुखीतामवदत् वनेश्वरीं लोकोत्तराणां व्रजसुभ्रुवां सदा।
कृष्णैकसौख्यार्थशरीरचेतसां तत्तन्न चित्रं किल चेष्टितं यतः ॥१५॥

सख्यः श्रीराधिकाया व्रजकुमुदविधोर्ह्लादिनी नामशक्तेः
सारांशप्रेमवल्ल्याः किशलयदलपुष्पादितुल्याः स्वतुल्याः।

तयो राधाकृष्णयोर्दृढालिङ्गनात् सुतृप्ताः कम्पादिसम्पद्भिर्निचिता व्याप्ता-मुदोत्पुल्लमुखीः सखीः समीक्ष्य सा निकुञ्जे वृन्दा नान्दीमुखीं वदति स्म॥१२॥ हरिणा राधा चिरं बहुकाल दृढमालिङ्गिता सखीततिः। तत्तेन कृष्णेन सहासङ्गतिः सङ्गभावस्तया युक्तापि निर्वृता कृष्णसङ्गजन्यसुखयुक्ता आसीदित्याश्चर्य्यं। श्रीराधासुखेनैव सखीनां सुखमिति भावः॥१३॥ अस्मित् श्रीकृष्णे अदृष्टे सति दर्शनोत्कण्ठा भवति। अस्मिन् दृष्टे स्पर्शलालसा भवति। अस्य स्पर्शे सति ईर्षासहितवाम्यं तत्तस्मादासां चेष्टितं चित्रमद्भुतं॥१४॥ नान्दीमुखी तां वनेश्वरीं वृन्दमवदत्। यतो व्रजसुभ्रुवः सदा कृष्णैकसौख्यार्थ-शरीरचेतसो लोकोत्तराश्च। ततो हेतोस्तासां तत्तच्चेष्टितं चित्रं न॥१५॥ श्रीराधिकाया निर्वृतौ सत्यां सखीनां निर्वृतिः

आलिङ्गन हेतु सखीगण को सुतृप्त, कम्पादि सम्पत्तियुक्त, एवं हर्षके आतिशय्य से प्रफुल्लमुखी देखकर वृन्दादेवी निकुञ्ज मध्यमें नान्दीमुखी को कहने लगीं।।१२।। नान्दीमुखि! श्रीराधाके सुखसे ही सखीगण का सुखानुभव होता है, यह बड़ा ही आश्चर्य है, कारण वह देखो, श्रीराधा, श्रीकृष्ण के द्वारा वहुक्षण दृढ़तर आलिङ्गिता होने से सखीगण उनके सङ्ग रहिता होकर भी श्रीकृष्ण सङ्गहेतु सुखयुक्ता होगई।।१३।। और भी देखो! श्रीकृष्णको न देखकर देखने के लिए उत्कण्ठा होती है, दर्शन पाने पर स्पर्श करने की लालसा होती है, एवं श्रीकृष्णके द्वारा स्पृष्टा होने से ईर्षाके साथ वाम्य प्रकटित हो जाता है, अतएव यह सव व्रजसुन्दरीगण की चेष्टा अतिशय अद्भुत है।।१४।। तव नान्दीमुखी-वनदेवी वृन्दासे यह बात सुनकर उनको बोली, व्रजाङ्गनागण की इस प्रकार चेष्टा आश्चर्य की नहीं है, कारण वे सव लोकातीत है, अतएव उनके शरीर चित्त सब समयके लिए श्रीकृष्ण सुखके

सिक्तायां कृष्णलीलामृतरसनिचयैरुल्लसन्त्याममुष्यां
जातोल्लासाः स्वसेकाच्छतगुणमधिकं सन्ति यत्तन्न चित्रम् ।। ।।१६।।

विभुरतिसुखरूपः स्वप्रकाशोऽपि भावः
क्षणमपि न हि राधाकृष्णयोर्या ऋते स्वाः ।
प्रवहति रसपुष्टिं चिद्विभूतीरिवेशः
श्रयति न पदमासां कः सखीनां रसज्ञः ।। ।।१७।।

राधा काञ्चनवल्लीफुल्ला कृष्णस्तु फुल्लतापिञ्छः ।
अनयोः सङ्गमलक्ष्मीः सुखयति न हि कं सचेतनं लोकम् ।। ।।१८।।

तत्र तया सहासामभेदं एव कारणमित्याह सख्य इति । व्रजरूप-कुमुदानां विधोश्चन्द्रस्य ह्लादिनी नाम या शक्तिस्तस्याः सारांशो यः प्रेमा स एव वल्ली लतातस्याः श्रीराधिकायाः सख्यः किशलयदलपुष्पादितुल्याः स्वतुल्याः श्रीराधिका-तुल्याश्च । अतः श्रीकृष्णलीलामृतरसस्य निचयैः समूहैरमुष्यां राधायां सिक्तायां उल्लसन्त्याश्च सत्यां ताः सख्यः स्वसेकात् शतगुणमधिकं जातोल्लासा भवन्ति इति यत् तत् चित्रं न ।।१६।। राधाकृष्णयोर्भावः स विभुर्व्यापकोऽतिमहान् । अतिसुखरूपः स्वप्रकाशः स्वयं प्रकाशमानश्च । एवं विशेषणैर्विशिष्टोऽपि । याः सखीः ऋते विना रसपुष्टिं न हि प्रवहति । ताः कीदृशीः स्वाः स्वीयाः तयो राधाकृष्णयोरात्मीयाः । काः विना क इव । ईश ईश्वरः चिद्विभूतीर्विना यथा पुष्टिं न प्राप्नोति तथा । अत आसां सखीनां पदं को रसज्ञो भक्तो न श्रयति सर्व्वे रसज्ञा आश्रयन्त्येवेति भावः ।।१७।। राधाकृष्णयोः सङ्गमेन

निमित्त ही होती है ।।१५।। और भी देखो, श्रीराधाके सुखसे सखीगण की जो सुखोत्पत्ति होती है, उसमें श्रीराधाके साथ उन सबकी अभिन्नता ही कारण है, कारण व्रजरूप कुमुद समूहके चन्द्र स्वरूप श्रीकृष्णकी ह्लादिनी नामिका जो शक्ति है, उसका सारांशरूप ही प्रेम है, वह प्रेम ही श्रीराधा स्वरूप लता है। सखीगण उनके पत्र, पुष्प, नवपल्लव होने के कारण वे सब श्रीराधाके तुल्य हैं, अतएव श्रीराधारूप लता लीलामृतरस समूहके द्वारा अभिषिक्त होकर उल्लसिता होनेपर वे सब पत्रपुष्पादि स्वरूप सखीगण निजमें सेचनकी अपेक्षा शतगुण उल्लासवती होती हैं, वह अत्याश्चर्य नहीं है ।।१६।। हे वृन्दे! सर्वव्यापक ईश्वर जिस प्रकार चिच्छक्ति व्यतीत पुष्ट नहीं होते हैं, उस प्रकार अति महान् स्वप्रकाश एवं सुख स्वरूप श्रीराधाकृष्णके भाव, वह सखी सङ्गति को छोड़कर क्षणकाल के लिए भी रस परिपुष्ट नहीं

आसां विशुद्धप्रणयार्द्रचेतसां तात्पर्य्यमस्यैव सुखे न चात्मनः।
वाम्यं हि कान्तस्य सुखाय सुभ्रुवा मतस्तदुन्मीलति तस्य सङ्गमे ॥१९॥

अथेप्सितैतद्दृढबाहु-वक्षः-स्पर्शोत्थितानन्दभरापि राधा।
वाम्योत्थ वैमत्यमिवाचरन्ती सा भर्त्सयन्ती ललितामवादीत्॥ ॥२०॥

स कुसृति हरिदूत्या कुन्दवल्या मिलन्ती
कपटिनि ललिते त्वं मामिहानीय धृष्टे।
शठकुल गुरुहस्ते नेत्रभङ्ग्या निधाय
कलयसि खलभर्त्तुर्धार्ष्ट्यं नृत्यं तटस्था॥ ॥२१॥

या लक्ष्मीः शोभा सङ्गमरूपा सम्पत्तिः सा कं वा सचेतनं लोकं न हि सुखयति। सर्व्वं सुखयतीत्यर्थः तापिञ्छस्तमाल इत्यर्थः ॥१८॥ आसां व्रजसुभ्रूवां अस्य श्रीकृष्णस्य सुखे तात्पर्य्यं आत्मनः सुखे तात्पर्य्यं न वाम्यं हि श्रीकृष्णसुखाया भवति। अत आसां तस्य सङ्गमे तद्वाम्यमुन्मीलति ॥१९॥ अथानन्तरं ईप्सितात् वाञ्छितात् एतस्य कृष्णस्य दृढबाहु–वक्षःस्पर्शादुत्थिता आनन्दभरो यस्याः सापि राधा वान्योत्थ वैमत्यमाचरन्तीव ललितां भर्त्सयन्ती अवादीत् ॥२०॥ हे कपटिनि ललिते। कुसृतिः शाठ्यं तत्सहिततया हरिदूत्या कुन्दवल्ल्या मिलन्ती त्वं मामिहानीयनेत्रभङ्ग्या शठकुल गुरुहस्ते हे धृष्टे निधाय समर्प्य तटस्था उदासीना सती खलभर्त्तुर्धार्ष्ट्यनृत्यं पश्यसि। कुसृतिर्निकृतिः शाठ्यमित्यमरः ॥२१॥ हे ललिते प्रखरापित्वं मृदुनाऽमुना कृष्णेन

होता है, अतएव यह सब सखीगण के चरणाश्रय करना रसज्ञ भक्तजनके लिए एकान्त आवश्यक है।।१७।। श्रीराधा,-प्रफुल्ल काञ्चनलता हैं, और कृष्ण, कुसुमित तमालतरु स्वरूप हैं, दोनों के मिलन की शोभा सब सचेतन को सुखी करती है।।१८।। विशुद्ध प्रेमसे आर्द्रचित्ता व्रजसुन्दरीगण के तात्पर्य कृष्ण सुखके लिए ही है, निज सुखके लिए नहीं, इसमें जो वामता प्रकटित होती है, वह केवल मात्र श्रीकृष्ण सुखके निमित्त ही है, अतएव श्रीकृष्ण के साथ मिलनसे व्रजाङ्गनागण में वामता उदित होती है।।१९।। अनन्तर श्रीराधा वाञ्छित श्रीकृष्ण के दृढ़ बाहुबन्ध एवं वक्षःस्थल के स्पर्श से उत्थित आनन्दातिशय से विह्वल होकर वाम्यहेतु असम्मति आचरणके समान ललिताको तिरस्कार करके कहने लगी।।२०।। हे कपटिनि! हे धृष्ट ललिते! तुम शठ हरिदूती कुन्दवल्लीके साथ मिलकर मुझे यहाँ ले आई हो, और नेत्रभङ्गी के द्वारा शठकुलगुरु के हाथ में समर्पण करके उदासीन होकर

प्रखरा यदभूर्मृद्वी मृदुनालिङ्गितामुना।
न तच्चित्रं यदासीद्वां गुणयोः परिवर्त्तनम्।। ।।२२।।

रुष्टेव तुष्टा ललितामुना व्यधात् सम्वादमुद्यत्स्मित-गर्भतर्ज्जनम्।
सतीव्रतध्वंसन-धृष्टभूपते विधातुमारब्धमिदं नु किं त्वया।। ।।२३।।

स्वसखीं पृच्छ ललिते किमियं कर्त्तुमुद्यता।
वलात् स्वाङ्गेन संवेष्ट्यमदङ्गं यात्मसाद्व्यधात्।। ।।२४।।

पुन्नाग त्वां माधवीयं स्वयं यत् फुल्ला स्वाङ्गैर्वेष्टते युक्तमेतत्।
त्वं यत्तां तैर्वेष्टसे तन्न वल्ल्या वृक्षो वेष्ट्यतेनामुनासौ।। ।।२५।।

मिलिता सती मृद्वी अभुस्तच्चित्रं न। यद्यस्मान् वां युवयोर्गुणयोः प्राखर्य्यमार्द्दवयोः परिवर्त्तनमभूत् प्रखरायां त्वयि मृदुत्वं मृदुकृष्णे प्राखर्य्यमासीत् ।।२२।। ललिता कृष्णस्पर्शादन्तस्तुष्टापि वाह्ये रुष्टे वा अमुना कृष्णेन सह सम्वादं व्यधात्। नु भोः सतीव्रतध्वंसनाय धृष्टभूपते। त्वया किमिदं विधातुमारब्धं ।।२३।। हे ललिते कृष्ण आह स्वसखीं राधां पृच्छ। या तव सखी वलात् स्वाङ्गेन मदङ्गं सवेष्ट्यात्मसात् व्यधात् ।।२४।। इयं माधवीलता राधिका च फुल्ला सती स्वयं स्वाङ्गैस्त्वां पुन्नागं पुरुषश्रेष्ठं वृक्षश्च यद्वेष्टते एतद्युक्तां। त्वं तां माधवीं तैः स्वाङ्गैर्यद्वेष्टसे तद्युक्तं न। यतः वल्ल्या

खलभर्त्ताका निर्लज्जनृत्य देख रही हो।।२१।। हे ललिते! तुम तो प्रखरा होकर भी मृदुस्वभाव सम्पन्न कृष्णके साथ मिलकर मृद्वी होगई हो, यह कुछ, अचरच की बात नहीं है, कारण तुम दोनों में गुणोंका परिवर्त्तन होगया है, प्रखरा तुम हो तुम्हारे में मृदुता आगई है कृष्ण कोमल है, किन्तु प्रखरता आगई है।।२२।। तब ललिता श्रीराधा के वचनको सुनकर श्रीकृष्ण स्पर्शसे अन्तरमें सन्तुष्ट होनेपर भी बाहर रुष्ठा होकर उद्गत हास्ययुक्त तर्जन वाक्यसे श्रीकृष्णके साथ वार्त्तालाप करते करते कहने लगी, हे सतीव्रतनाशक धृष्टभूपते ! अर्थात् तुम सतीओं का पातिव्रत ध्वंसके लिए भूपति हो यह क्या कररहे हो?।।२३।। कृष्ण बोले,-ललिते! तुम्हारी सखीको पूछो, वह क्या कर बैठी है, उसने तो बलपूर्वक निजाङ्गके द्वारा मदीय सर्वाङ्गको आत्मसात् करलिया है।।२४।। ललिता बोली, कृष्ण! माधवी लतारूपाराधा प्रफुल्लित होकर स्वयं निजाङ्ग के द्वारा पुन्नाग तरु स्वरूप पुरुषश्रेष्ट तुम्हें वेष्टन किया है, यह उपयुक्त ही है, किन्तु तुमतो पुन्नाग तरुके तुल्य होकर निजाङ्गके

मयाप्यस्यै दत्तमङ्गमनयाप्यात्मसात् कृतम्।
का ते हानिः पुनर्नैतदादातुं शक्यते मया॥ ॥२६॥

इयं क्रूरा शूरा जयति ललिता क्रोधवलिता
यशः श्वेतामेतां विसृज शठ तां स्वां च शठताम्।
निजाभिध्यामिद्धामलिपक! सुसिद्धा स्वपुरतः
प्रजावत्यां सत्यां त्वयि च रतिमत्यां विरचय॥ ॥२७॥

वृक्षो वेष्ट्यते। अमुना वृक्षेणासौ लता न वेष्ट्यते। पुन्नागे पुरुषस्तुङ्गकेशरो देववल्लभ इत्यमरः ॥२५॥ अस्यै मयाङ्गं दत्तं। अनयापि मदङ्गमात्मसात् कृतं ते का हानिरभूत्। पुनरेतत्स्वाङ्गमादातुं ग्रहीतुं मया न शक्यते। शास्त्रेषु दत्तापहारिण दोषश्रवणत् ॥२६॥ ललिता स्ववक्षसि अङ्गुलीं धृत्वा कृष्णं तर्ज्जयन्त्याह। इयं क्रूराशूरा ललिता क्रोधयुक्ता जयति वर्त्तते। अतो हे शठ। यशसा श्वेतां शुद्धामेतां प्रसिद्धाञ्च राधां विसृज। तां प्रसिद्धां स्वां शठताञ्च विसृज त्यज। इतःपर ते शठता न स्थास्यति। हे अलिपक भृङ्ग स इव कामुक। अलिपको भृङ्ग कोकिल कुक्कुरे इति मेदिनी। यद्वा अलि पाति इति अलिपो भ्रमरश्रेष्ठः स्वार्थे कः। अलिपकः स्वस्य पुरतोऽग्रे सत्यां विद्यमानायां त्वयि च रतिमत्यां प्रजावत्यां भ्रातृजायायां कुन्दवल्ल्यां इद्धां दीप्तां निजस्याभिध्यां परधनविषयकस्पृहां सुसिद्धां विरचय। ञिइन्धी दीप्तौ। अभिध्या परस्व विषये स्पृहेत्यमर ॥२७॥

द्वारा माधवीलताको वेष्टन किये हो यह कभी भी उपयुक्त नहीं हो सकता है, क्यों कि लता वृक्षको वेष्टन करती रहती है, वृक्ष कभी लताको वेष्टन नहीं करता है, अतः मेरी सखीने जो कुछ भी किया है कभी भी अन्याय्य नहीं है, वरं अपना कर्त्तव्य ही किया है।।२५।। कृष्णने बोला, ललिते! मैंने राधाको अङ्गदान किया है, इन्हीं ने भी मुझको आत्मसात् किया है, यदि कहो कि इससे तुम्हारी हानि क्या हुई है? इसका उत्तर यह है कि-शास्त्रमें उक्त है, दत्त बस्तुका अपहरण न करे, उससे विशेष दोष होता है, इसलिए मैं पुनर्वार निजाङ्ग का ग्रहण करने में असमर्थ हूँ।।२६।। यह सुनकर ललिता अपने वक्षःस्थलमें अङ्गुलि रखकर तर्जनके साथ श्रीकृष्ण को बोली, कृष्ण! मेरा नाम ललिता है, मैं क्रोधान्विता, क्रूरा, शौर्य्यशालिनी होकर वर्त्तमान हूँ। हे शठ! निज प्रसिद्ध शठताके साथ यह पवित्र यशस्विनी प्रसिद्ध श्रीराधाको परित्याग करो, इसके बाद और तुम्हारी शठता नहीं रहेगी। हे भ्रमरतुल्य कामुक! तुम्हारे सम्मुख में विद्यमाना एवं तुम्हारे प्रति प्रीतिमती

ललितायाः पुरो राधां वातोऽपि स्प्रष्टुमक्षमः।
तत्त्यजामूं नचेदस्मद्धाटीशार्टी निचोलय॥ ॥२८॥

इत्यालपन्त्यां त्वरितं रुषास्यामग्रे सरत्यां ससखीकुलायाम्।
कम्पाश्रु रोमाञ्च मुखैश्च भावैरानन्दजैः सोऽप्यभवद्विहस्तः॥ ॥२९॥

कान्ताङ्गसङ्गजसुखेन विमोहितेऽस्मिन्
भीतोऽयमित्यवगते ललिता भियान्यैः।
आदाय कम्पितकरान्मुरलीं स्खलन्तीं
सा निर्गता झटिति विश्लथवाहुवन्धात्॥ ॥३०॥

निर्गत्य तस्यां स्वपटाञ्चलेन सङ्गोपयन्त्यां मुरलीं प्रयत्नात्।
आगत्य तस्याः पुरतो विशाखा कृष्णेन संलापमसौ व्यधत्त ॥३१॥

ममाग्रे राधां वातोऽपि स्प्रष्टुमक्षमः। तदमूं राधां त्यज। नचेत् मम धाटी वलादाक्रमणं सैव शाटी तां निचोलयपरिधेहि मम शौर्य्यं सह। वलादाक्रमणं धाटीत्यमरः ॥२८॥ सस्यां ललितायां रुषा इत्यालपन्त्यां त्वरितमग्रे स सखीकुलायां रत्यां आगच्छन्त्यां सत्यां सोऽपि कृष्णोऽपि आनन्दजैः कम्पादि मुखैर्भावैर्विहस्तो व्याकुलोऽभवत् ॥२९॥ कान्ताङ्गसङ्गसुखेन विमोहितेऽस्मिन् कृष्णे ललिता भिया भीत इत्यन्यैः सखीजनैरवगते सति तस्मात् कम्पितकरात् स्खलन्तीं मुरलीं सा राधा आदाय विश्लथवाहुवन्धनात् निर्गता ॥३०॥ निर्गत्य पटाञ्चलेन मुरलीं गोपयन्त्यां तस्यां राधायां सत्यां। तस्या राधाया अग्रे विशाखा आगत्यासौ विशाखा कृष्णेन सह संलापं परस्परभाषणं व्यधत्त ॥३१॥

भ्रातृ जाया कुन्दवल्ली में निज दीप्तिशालिनी परधन स्पृहाको सफल करो ।।२७।।

ललिता और भी बोली, कृष्ण! मेरे सामने पवन भी राधाको छू नहीं सकता है, अतएव इनको छोड़ दो, अन्यथा मैं ठीक कर दूँगी ।।२८।। इस प्रकार कहते कहते तत्क्षणात् सरोष वदनसे ललिता सखीगणोंके साथ सामने आ जानेपर श्रीकृष्ण भी उनको देखकर आनन्द जनित कम्प, अश्रु, रोमाञ्चभाव समूहके द्वारा शोभित हो गये ।।२९।। कान्ताके अङ्ग सङ्ग सुखसे श्रीकृष्ण का अङ्ग अवश होनेपर कम्पित करयुगलसे जैसे मुरली गिरी वैसे ही श्रीराधा मुरली को लेकर उनके विश्लथ बाहुवन्ध से तत्क्षणात् निकल पड़ी, तब सखीगण मानने लगी कि-कृष्ण, ललिता के भयसे भीत होकर राधाको छोड़ दिये ।।३०।। अनन्तर श्रीराधा श्रीकृष्ण के बाहुबन्ध से निर्गत होकर निज

हे कृष्ण दोर्बिम्बविधुन्तुद त्वं भ्रान्तोऽसि या ते प्रसभं गृहीता।
चन्द्रावलीयं नहि पश्य तारा राधाभिधान्योऽपि च तादृशोऽस्याः ॥३२॥

अस्याद्वैता विशाखाहमनुराधा त्वियं परा।
इयं ज्येष्ठा धनिष्ठेयं चित्रेयं भरणी त्वियम् ॥ ॥३३॥

अन्या वा कति मे गण्या या चैकास्तीन्दुलेखिका।
सापि त्वद्ग्रहणायोग्या तत्त्वं चन्द्रावलीं व्रज ॥ ॥३४॥

विशाखे सर्व्वसुखदा सत्यं त्वं शाङ्करीतनुः।
वाग्वज्रभीषणा मूर्त्तिर्ललिता शातमन्यवी ॥ ॥३५॥

हे कृष्ण दोर्बिम्बेन हस्तमण्डलेन विधुन्तुद राहुरूप। बिम्बोऽस्त्रीमण्डलं त्रिष्वित्यमरः। त्वं भ्रान्तोऽसि ते त्वया या प्रसभं हटात् गृहीता सा चन्द्रावली न, पश्य राधाभिधा तारा इयं वर्त्तते अर्थात् इमां पश्य अतस्तवालिङ्गनायोग्या अस्या राधाया अन्योऽपि च तादृशः तारारूपस्तवालिङ्गनायोग्य इति भावः। तारा तारकाऽप्युडू वा स्त्रियामित्यमरः ॥३२॥ अन्य तारा आह। अस्या राधाया अद्वैता विशाखाहमपि ताराभिधा। इयं ललिता अनुराधा इयं धनिष्ठा इयं ज्येष्ठा। इयं चित्रा भरणी ॥३३॥ मे मया अन्या वा कति गण्याः। याचैकेन्दुलेखास्ति सापि त्वद्ग्रहणायोग्या। पूर्ण चन्द्रस्यैव राहुग्राह्यत्वात्। तत् त्वं चन्द्रावलीं व्रज ॥३४॥ हे विशाखे त्वं सर्व्वसुखदासि। अतस्त्वं शाङ्करी शं सुखं करोतीति स शिवस्तदीया मूर्त्तिरिति सत्यं।

वस्त्राञ्चल से मुरली को छिपाने पर विशाखा श्रीराधाके सामने आकर कृष्णके साथ बात करने लगी।।३१।। विशाखा बोली, हे कृष्ण! हे दोर्बिम्ब विधुन्तुद! अर्थात् हस्तमण्डल द्वारा तुम राहुस्वरूप हो, तुम भ्रान्त हो गए हो, जिसको तुमने सहसा पकड़ लिया है, वह चन्द्रावली नहीं है, वह तो राधा है, इन को देखो, यह तुम्हारे आलिङ्गन के योग्य नहीं हैं, एवं इनके तुल्य अन्य जो तारारूप सखीगण हैं वे सब भी तुम्हारे आलिङ्गन के योग्य नहीं है। भावार्थ यह है कि-राहु चन्द्रको ग्रहण करता है, किन्तु ताराको ग्रहण नहीं करता है, अतएव हे राहो! तुम चन्द्रावली अर्थात् गोवर्द्धनमल्लकी पत्नी एवं उनके सखीजन को ग्रहण करो, कारण उन सबमें योग्यता है, राधा तारास्वरूप है, एवं इनकी सखीगण भी तारा सदृश है, अतएव इन सब को पकड़ना उचित नहीं है।।३२।। मैं तो विशाखा हूँ, अपर ललिता अनुराधा है, यह धनिष्ठा, एवं यह चित्रा भरणी है।।३३।। मैं और कितनी

असौ विशाखे सुलभां विहाय चन्द्रावलीं तां वहुधोपभुक्ताम्।
सुदुर्लभां वाञ्छति भानवीयां श्रियं रसास्वादविशेषलिप्सूः॥ ॥३६॥

भोगः क्रमेण तारासु सदा राहोर्विराजते।
कौतुकादिन्दुलेखामप्य पूर्व्वां स जिघृक्षति॥ ॥३७॥

इत्यालपन् श्रीहरिरिन्दुलेखामालिङ्गितुं तत् सविधं जगाम।
दृष्ट्वान्तिके तं चकितापयन्ती साप्युच्चलद्भ्रूः स्मितपूर्व्वमाह। ॥३८॥

धृष्टापगच्छ हे राहो न ते योग्येन्दुलेखिका।
पूर्णां चन्द्रावलीं याहि भुङ्क्ष्व तारां क्रमेण वा॥ ॥३९॥

तेनालक्षितमागत्य गृहीता ललिताब्रवीत्।
अनुराधा न ते लभ्या विशाखा भोगमन्तरा॥ ॥४०॥

ललिता शातमन्यवी शतमन्युरिन्द्रस्तदीया मूर्त्तिरिति सत्यं। यतो वाच एव वज्रास्तैर्भीषणा भयङ्करी॥३५॥ हे विशाखे असौ रसास्वादविशेषलिप्सुर्मल्लक्षणो जनः राहुरूपः। वहुधोपभुक्तां तां चन्द्रावलीं चन्द्रश्रेणीं। श्लेषेण चन्द्रावली नाम्नीं विहाय त्यक्त्वा भानवीयां भानुः सूर्य्यस्तदीयां श्रियं सम्पत्तिं मूर्त्तिं। श्लेषेण भानुर्वृषभानुस्तदीयां श्रिय सम्पत्तिं राधां वाञ्छदि॥३६॥ राहोः क्रमेण तारासु भोगः सदा विराजते। स राहुः कौतुकादिन्दुलेखामपि जिघृक्षति॥३७॥ अपयन्ती पलायनपरा सा इन्दुलेखा-माह॥३८॥३९॥ कृष्णेन गृहीता ललिताह। विशाखा भोगं क्रमप्राप्तं विना अनुराधा

गिनूँ। यह इन्दुलेखा है, यह भी ग्रहण योग्या नहीं है, पूर्णचन्द्र ही राहुके लिए ग्रहणीय है, अतएव तुम चन्द्रावली के पास जाओ।।३४।। यह सुनकर कृष्ण बोले-हे विशाखे! तुम सबप्रकार से सुखदायिनी हो, अर्थात् शङ्करी तनु कल्याणकर शिवमूर्त्ति स्वरूपा हो, एवं ललिता शातमन्यवी इन्द्र की मूर्ति है, कारण वाक्यरूपा बज्रके द्वारा यह भयङ्कर हो गई है।।३५।। विशाखे! रसास्वाद लिप्सु राहु, अनायास प्राप्त अनेक प्रकार से उपयुक्ता चन्द्रश्रेणी को छोड़कर राधाश्री अर्थात् सूर्य्य सम्पत्ति को चाहता है।।३६।। हे विशाखे! यद्यपि राहुका भोग क्रमशः सर्वदा सब तारामें ही शोभित होता है, तथापि कौतुकवशतः वह इन्दुलेखा को भी चाहता है।।३७।। यह कहकर कृष्ण इन्दुलेखा को आलिङ्गन करने के लिए जा पहुँचे, इन्दुलेखा भी निकट में आते देखकर भाग गई, और भ्रूभङ्गी से हँस-हँस कर कहने लगी।।३८।। अहे धृष्ट! हे राहो! तुम यहाँसे प्रस्थान करो, इन्दुलेखा तुम्हारे ग्रहण योग्या नहीं है,

स्पृष्टा विशाखाप्यथ साब्रवीत्तं राधोपभोगाद्भवता विशाखा।
भुक्तैव तत् किं पुनरेषि धृष्ट ज्येष्ठां विहाय क्रमलभ्य भोगाम् ॥४१॥

ज्येष्ठाप्यलक्षितं स्पृष्टा स्लिष्टं रुष्टा तमब्रवीत्।
चित्रा भोगं विना धृष्ट क्लिष्टोऽन्यासां तवाक्रमः। ॥४२॥

सहसा विधृता चित्रा तमाहापैहि लम्पट।
ग्रहाणां क्रमतो भोगस्तारासूत्क्रमतो न हि॥ ॥४३॥

तुङ्गविद्याब्रवीच्चित्रे राहोर्नात्र ब्यतिक्रमः।
वक्रातिचारगत्यापि ग्रहाणां क्वचिदाक्रमः॥ ॥४४॥

साप्याह तुङ्गविद्ये त्वं तुलाराशिस्ततोऽमुना।
आक्रान्तायां तु चित्रायां पीडिताशु भविष्यसि॥ ॥४५॥

न लभ्या ॥४०॥ तेन स्पृष्टा सा विशाखाह। राधाया भोगात् विशाखा भुक्तैव आवयोरभेदात्। हे धृष्ट क्रमलभ्य भोगां ज्येष्ठां धनिष्ठां विहाय पुनः किमेषि ॥४१॥ ज्येष्ठापि स्पृष्टा रुष्टा सति स्लिष्टं अविस्पष्टं यथा स्यात्तथा तमाह। हे धृष्ट चित्रा भोगं विना अन्यासां आक्रमः क्लिष्टः क्लेशयुक्तः ॥४२॥ विधृता चित्राह। हे लम्पट अपैहि ग्रहाणां क्रमतो भोगः तारासूत्क्रमतो नहि अर्थात् क्रमत एव भवेत् ॥४३॥ हे चित्रे राहो रहो व्यतिक्रमो न। वक्रगत्या अतिचारगत्या च क्वचित् ग्रहाणामाक्रमो न

पूर्ण चन्द्रावली के निकट जाओ, अथवा क्रमसे ताराओं को ग्रहण करो।।३९।। श्रीकृष्ण, इन्दुलेखा के वाक्य को सुनकर अचानक ललिताको पकड़ने पर, ललिता बोली,-क्रमप्राप्त विशाखा को छोड़कर अनुराधा का भोग सम्भव नहीं होगा।।४०।। यह सुनकर कृष्ण, विशाखा को स्पर्श करने पर विशाखा बोली,-राधाके भोगसे विशाखा का भोग हो चुका है, कारण राधा और मैं परस्पर अभिन्न हूँ। हे धृष्ट! क्रम प्राप्त भोग ज्येष्ठा अर्थात् धनिष्ठा को छोड़कर पुनर्वार क्यों आ रहे हो?।।४१।। अनन्तर कृष्ण, सहसा ज्येष्ठा को स्पर्श करने से धनिष्ठा रुष्ट होकर चुपके से बोली, धृष्ट! चित्राको छोड़कर अन्यान्य सबके प्रति आक्रमण करना केवल क्लेशकर ही होगा।।४२।। अनन्तर कृष्ण अचानक चित्राको पकड़ने से चित्रा कृष्णको बोली-हे लम्पट! तुम चले जाओ। ताराओंका भोग ग्रहोंके लिए क्रमशः ही होता है।।४३।। तब तुङ्गविद्या बोली, हे चित्रे! यहाँपर राहुका व्यतिक्रम नहीं हो रहा है, वक्रगति और अतिचार गतिसे क्या ग्रहोंका आक्रमण नहीं

तुङ्गविद्याह तं स्पृष्टा धृष्ट किं रङ्गदेविकाम्।
आदौ पीड्यां तुलाराशिं हित्वा मां त्वं जिघृक्षसि ॥ ॥४६॥

सापि स्पृष्टाह तं राहो त्वं कन्याराशिभोगकृत्।
पूर्णदृष्टां मीनराशिं चम्पवल्लीं प्रपीडय ॥ ॥४७॥

साप्याशु विधृताप्याह धूर्त्ते मां कुम्भराशिकाम्।
सुदेवीं त्वरितं याहि यतस्ते व्युत्क्रमा गतिः ॥ ॥४८॥

स्पृष्टा सुदेवी तं प्राह मधुसूदन ते स्पृहाम्।
सर्व्वां काञ्चनवल्लीयं प्रफुल्ला पूरयिष्यति ॥ ॥४९॥

भवेत्॥४४॥ सा चित्राह। हे तुङ्गविद्ये त्वं तुलाराशिस्ततोमुना राहुणा चित्रायां आक्रान्तायां सत्यां आशु शीघ्रं त्वं पीडिता भविष्यति ॥४५॥ स्पृष्टा तुङ्गविद्या तमाह। हे धृष्ट आदौ पीड्यां तुलाराशिं रङ्गदेविकां हित्वा त्वं मां किं जिघृक्षसि ग्रहीतुमिच्छसि ॥४६॥ स्पष्टा सा रङ्गदेवी तमाह। हे राहो त्वं कन्याराशिभोगकृत्। पूर्णदृष्टां मीनराशिं चम्पवल्लीं प्रपीड्य ॥४७॥ सा चम्पकवल्ली सुदेवीं याहीत्याह ॥४८॥ हे मधुसूदन कृष्ण। श्लेषेण भ्रमर प्रफुल्लेयं काञ्चनवल्ली ते सर्व्वां स्पृहां पूरयिष्यति ॥४९॥ हे कृष्णरूपचकोर त्वं स्वतृष्णा शान्तये आसां मध्ये चन्द्रमुखीं व्रज। ननु ब्रह्मसंहितायां। ईश्वरः परमः कृष्णः सच्चिदानन्दविग्रहः।

होता है? ।।४४।। यह सुनकर चित्रा बोली, अरी तुङ्गविद्ये! तुम तो तुलाराशिकी हो, अतएव राहुके द्वारा चित्रा आक्रान्ता होने पर तुम भी सत्वर आक्रान्ता हो जाओगी ।।४५।। अनन्तर श्रीकृष्ण ने तुङ्गविद्या को स्पर्श किया, तुङ्गविद्या कृष्णको बोली,-हे धृष्ट! पहले पीड़न योग्य तुलाराशि रङ्गदेवी को छोड़कर तुम मुझको ग्रहण करने के अभिलाषी हो रहे हो? ।।४६।। उसके बाद श्रीकृष्ण रङ्गदेवी को स्पर्श करने पर रङ्गदेवी श्रीकृष्ण को बोली,-हे राहो, तुम तो कन्याराशि को भोग करते हो, अतएव पूर्ण दृष्टा मीनराशि चम्पकलता का भोग सत्वर करो ।।४७।। श्रीकृष्ण सहसा चम्पकलता को ग्रहण करने से चम्पकलता कहने लगी,-हे धूर्त्त! कुम्भराशि स्वरूपा सुदेवी के पास जल्दीसे जल्दी जाओ, क्यों कि तुम्हारी गतिमें उल्ट फेर हो गया है ।।४८।। अनन्तर श्रीकृष्ण सुदेवी को स्पर्श करने से सुदेवी बोली,-हे मधुसूदन! यह प्रफुल्ला काञ्चनलता तुम्हारी सकल कामना को पूर्ण करेगी ।।४९।। श्रीकृष्ण सुदेवी को छोड़कर काञ्चनलताका स्पर्श किया,

सा गृहीतावदत् कृष्णचकोरात्र किमागतः।
स्फुरचन्द्रमुखीमासां स्वतृष्णाशान्तये व्रज॥ ॥५०॥

अनादिरादिर्गोविन्दः सर्व्वकारणकारणं। सहस्रपत्रं कमलं गोकुलाख्यं महत् पदं। तत्कर्णिकारं तद्धाम तदनन्तांशसम्भवमिति। गोपालतापन्यां। एको वशी सर्व्वगः कृष्ण ईड्यः। तापन्यां। कृष्णो वै परमो देवः। तापनी हयशीर्षयोः। सच्चिदानन्दरूपाय कृष्णायाक्लिष्टकारिणे। ब्रह्माण्डपुराणे। नन्दव्रजजनानन्दी सच्चिदानन्दविग्रहः। गोपालतापनीषु। योऽसौ गोपाल इति कृषिर्भूवाचकः शब्दो णश्च निर्वृतिवाचकः। तयोरैक्यं परं ब्रह्म कृष्ण इत्यभिधीयते। गौतमीये अष्टादशाक्षरव्याख्यायां। कृषिशब्दश्च सत्तार्थो णश्चानन्दप्रदायकः। सुखरूपो भवेदात्मा भावानन्दमयः स्मृतः। श्रीभागवते। गूढं परं ब्रह्म मनुष्यलिङ्गमिति। यन्मित्रं परमानन्दं पूर्णं ब्रह्म सनातनमिति च। विष्णुपुराणे। यत्रावतीर्णं कृष्णाख्यं पर ब्रह्म नराकृतिरिति गीतायां। ब्रह्मणो हि प्रतिष्ठाहमित्यादि बहुश्रुति स्मृति पुराणादि प्रमाणतः सर्व्वपरात्परनराकृति परं ब्रह्मस्वरूपः कृष्णः कुहकेच्छया दारु यन्त्रवत् या या गोपी यथा यथा वदति तथा तथा करोति। ब्रह्मसंहितायां। श्रियः कान्ताः कान्तः परमपुरुषः कल्पतरवो द्रुमा भूमिश्चिन्तामणि-गणमयी तोयममृतं। कथा गानं नाट्यं गमनमपि वंशी प्रियसखी चिदानन्दं ज्योतिः परमपि तथा स्वाद्यमपि च। ज्योतिश्चन्द्र सूर्य्यादि चिदानन्दं। स्वाद्यं भक्ष्यमपि चिदानन्दं कान्तादयः सुतरां चिदानन्दा इत्यादि प्रमाणतः लक्ष्मीरूपा एताः व्रजाङ्गनास्तादृशं श्रीकृष्णं हे धृष्ट हे कामुक इत्यादि सम्बोधनपूर्व्वकं यत् प्रेरयन्ति तत्

काञ्चनलता बोली,-कृष्णचकोर! तुम यहाँ पर क्यों आए? अपनी तृष्णाकी पूर्त्तिके लिए सबके मध्यमें प्रफुल्लचन्द्रमुखी श्रीराधा के निकट जाओ। यहाँपर प्रश्न हो सकता है कि-सच्चिदानन्दविग्रह, परमेश्वर, अनादि एवं आदि, सर्वकारण कारणस्वरूपमें जिनको गोपालतापनी, गौतमीय तन्त्र, ब्रह्माण्ड-पुराण, विष्णुपुराण, श्रीमद्भगवद्गीता, श्रीमद्भागवतादि बहुविधश्रुति, स्मृति, दर्शन, पुराणादि शास्त्र परात्पर रूपसे प्रतिपादन किये हैं, वे भी गोपाङ्गनागण के कुहक से कठपुतली की भाँति परिभ्रमण करते रहते हैं? इसका उत्तर यह है कि-जिनके गमन, वंशी, प्रियसखी कान्तादि वस्तु ही चिदानन्द स्वरूप हैं, तादृश श्रीकृष्णको गोपीगण धृष्ट! कामुक इत्यादि शब्दसे सम्बोधन करती हैं, वह रसभिज्ञ के लिए जितना सुखद है, उतना ही रसानभिज्ञ के लिए दुःखद है, किन्तु एतादृश लीला प्राकृत नायकादि में एवं अप्राकृत रामादि अवतार

अलक्षितं साप्यमुना गृहीता चुचुम्बिषुं तं विमुखी जगाद।
त्यजान्यजायां शठ वंशिकां तां निजप्रियां चुम्ब चुचुम्बिषा चेत्॥ ॥५१॥

स चिरात् स्वकरादपच्युतां मुरलीं तामवधार्य्य तद्गिरा।
क्व गतेति विलक्षितः क्षणं स्वदृशं कुन्दलताननेन्यधात्॥ ॥५२॥

रसाभिज्ञानामेव मनसि यथा सुखकरं तथा न रसानभिज्ञानां प्रत्युत सन्देहकरं। सन्देहो यथा एतादृशचेष्टादिकं क्वापि प्राकृते नायकादौ अप्राकृते नारायणादौ रामाद्यवतारे च न श्रुतं। उच्यते। प्रापञ्चिकसृष्टौ पशुपक्षिमनुष्य-देवतादीनां सर्व्वेषां शरीराणां पञ्चभूतारब्धानामैक्येपि तथा सर्व्वत्र जीवानां चित्घनरूपत्वेनैक्येपि पशुपक्ष्याद्यपेक्षया पानभोजन-स्त्रीसङ्गादिषु मनुष्याणां वैदग्ध्य रसास्वादिनां परमवैशिष्ट्यमिव। एवं मनुष्यापेक्षया देवानां परमवैशिष्ट्यमिव। अप्राकृतानां मध्ये श्रीकृष्णस्य परमवैशिष्ट्यं श्रीकृष्ण तत्परिकराणां तेषां कृपया रसिकभक्तानामेव वेद्यं नान्येषां। अतः प्रमाणं श्रीकृष्ण तत्परिकराणां प्रवृत्तिरेव। भक्तानां तादृशवाक्यं ग्रन्थकर्त्तुर्वाक्यमेतत् ग्रन्थ एव श्रीरूपगोस्वामिनः सिद्धान्ततस्त्वभेदेपि श्रीश श्रीकृष्णस्वरूपयोः। रसेनोत्कर्ष्यते कृष्णरूपमेषा रसस्थितिरिति ॥५०॥

अमुना गृहीता सा चन्द्रमुखी श्रीराधा विमुखी सती तं जगाद। चुम्बितुमिच्छा चेत् तां प्रियां वंशिकां चुम्ब ॥५१॥ तद्गिरा अपच्युतां मुरलीमवधार्य्य संस्मृत्य क्व गता मुरलीति क्षणं विलक्षितः विस्मयान्वितः स्वनेत्रं कुन्दलताया आस्ये आनने न्यधात् ॥५२॥

में भी वर्णित नहीं है। इसहेतु संशय होना स्वाभाविक ही है, किन्तु यथाक्रमसे पशुपक्षी प्रभृति से मनुष्य शरीर के पान भोजन स्त्रीसम्भोगादि की विशेषता है, उसमें भी श्रृङ्गार रसास्वादि जनसमूह की उत्कृष्टता है, तन्मध्यमें देवगण की उत्कृष्टता है, इस प्रकार अप्राकृत तत्त्व समूह के मध्यमें श्रीकृष्ण का उत्कर्ष है, अतएव श्रीकृष्ण के परिकरगण एवं उसकी कृपाप्राप्त रसज्ञ भक्तगण इस लीलाको जान सकते हैं।।५०।। श्रीकृष्णने हठात् चन्द्रमुखी श्रीराधा को पकड़ लिया और उनका मुखचुम्बन करनेके लिए प्रवृत्त हो गये, तब श्रीराधा निज मुखको फिराकर कृष्णको बोली,-हे शठ! यदि तुम्हें चुम्बन करने की इच्छा हो तो, परस्त्री को छोड़कर निज प्रिया वंशीका चुम्बन करो।।५१।। अनन्तर श्रीकृष्ण, चन्द्रमुखी श्रीराधाके वाक्य से वंशीका नाम सुनकर वंशी स्मृति होने से कहने लगे, हाय! मेरी मुरली मेरे हाथसे

सापि तं चलदृग्भङ्ग्या राधिकां तामदर्शयत्।
तद्विज्ञाय तया वंशी तुलस्यां गुप्तमर्पिता ॥ ॥५३॥

सा तां प्रयत्नात् पिहितां विधाय स्थिता विशाखा ललितादि पश्चात्।
कृष्णोऽपि राधां समुपेत्य तावद्दिधीर्षुरेनामिदमाललाप ॥ ॥५४॥

मनो विशुद्धं चलमप्यदृश्यं कटाक्षकामाङ्कुश-शृङ्गविद्धम्।
विधाय पाटच्चरि मे हरन्त्या न दृश्य वंशी हृतिरद्भुता ते ॥ ॥५५॥

वध्नामि वाहुपाशैस्त्वां लुण्ठाम्यंशुकभूषणं।
नयामि कुञ्जकारायां स्मरभूपेऽर्पयामि च ॥ ॥५६॥

राधाप्यसाधारणभावविद्धा सावज्ञमालोक्य हरिं चलन्ती।
वंशीविचारच्छलतो निरुद्धा निवारितेनामुना गृहीता ॥ ॥५७॥

सा कुन्दलता तां श्रीकृष्णं चलदृग्भङ्ग्या तां श्रीराधामदर्शयत् तद्विज्ञाय तया राधया तुलस्यां गुप्तं यथा तथा वंशी अर्पिता ॥५३॥ सा तुलसी तां वंशी पिहितामाच्छादितां विधाय कृत्वा विशाखा ललितयोः पश्चात् स्थिता कृष्णोपि तावद्राधां समुपेत्य दिधीर्षुः स एनां राधामिदमाह ॥५४॥ हे पाटच्चरि हे चौरि मे मनः विशुद्धं निर्म्मलं कामादि क्षोभरहितं चलं चञ्चलं सखिषु गोषु सदा विलसत्। अदृश्यं स्वत एवामूर्त्तत्वात् दृगगोचरं एवम्भूतमपि मनः कटाक्षरूपकामस्याङ्कुशाग्रेण विद्धं विधाय कृत्वा हरन्त्याश्चोरयन्त्यास्ते तव दृश्य वंश्या हृतिरद्भुता न त्वयैव मम वंशी हृतेति भावः ॥५५॥ अह त्वां वाहुपाशैर्वध्नामीत्यादि ॥५६॥ असाधारणभावेन कृष्ण

कहाँ चली गई, यह कह कर कुछ देर के लिए विस्मित होकर रह गए, और कुन्दलताको इशारेसे सूचित करने लगे ।।५२।। तव कुन्दलताने भी चञ्चल नेत्रभङ्गी के द्वारा श्रीराधाको दिखा दिया, राधा यह जानकर चुपके से सखी तुलसी को वंशी दे दी ।।५३।।

तुलसीने वंशीको यत्नसे ढाँककर ललिताके पीछे जाकर खड़ी होगई। तब श्रीकृष्ण, श्रीराधाके निकट आकर राधाको पकड़ने की इच्छासे कहने लगे ।।५४।। हे चोरनी! मेरा मन, कामादि क्षोभ रहित है, सुतरां निर्मल भी है, और सखा एवं गोगणके साथ अनुक्षण विलास कर रहा है, इसलिए हमारे चञ्चल एवं निराकार मनको तुमने कामकटाक्षरूप अङ्कुशास्त्र द्वारा विद्धकरके हमारी मूर्त्तिमती वंशी तुम जो चोरी करोगी, यह कोई आश्चर्य की बात नहीं

हरिस्त्वामाह चौरि त्वं वृथा किं चेष्टसे तव।
त्यागो वंश्या न मे यावत्तावद्दोर्वन्धनान्न सः॥ ॥५८॥

मृषा रुषारालचलाक्षि चिल्लीलतं समुद्यत् स्मित-गर्व्वितास्यम्।
हरेः पुरस्तावदुपेत्य तूर्णं साटोपतर्ज्जं ललितावदत्तम्॥ ॥५९॥

पराङ्गनासङ्गमपूतमूर्त्ते सतीव्रतध्वंसन याहि याहि।
स्नातां पवित्रां रविपूजनार्थं स्पृष्ट्वाच्छलोक्त्यां कुरु मा पवित्राम् ॥६०॥

परिहासजन्योत्कृष्टभावेन विद्धापि सा राधा सावज्ञं हेलनसहितं हरिमवलोक्य चलन्ती सती। निवारितेन मां माम्पृश मास्पृशेति तया राधया निषेधितेनामुना कृष्णेन वंशीविचारच्छलात् निरुद्धा सती गृहीताभूदिति शेषः ॥५७॥ हरिस्तां राधामाह। हे चौरि मे भुजवन्धनान्मोक्तुं त्वं वृथा किं चेष्टसे। यावन्मे वंश्या न त्यागस्तावत् तव मे दोर्वन्धनात् स त्यागो न भविष्यतीति शेषः ॥५८॥ मृषा रुषा मिथ्याक्रोधेन अराले वक्रं चले च अक्षिणी तथाभूता चिल्लीलता भ्रूलता च यस्यां क्रियायां। समुद्यत् स्मितेन गर्व्वितमास्यं यस्यां साटोपस्तर्ज्जस्तर्ज्जनं यस्यां तद्यथा स्यात्तथा हरेः पुरस्तावत् तूर्णमुपेत्य ललिता तं कृष्णमवदत् ॥५९॥ पराङ्गनायाः सङ्गमेन पूता मूर्त्तिर्यस्य हे तादृश हे सतीव्रतध्वंसन याहि याहि। रविपूजार्थं स्नातां अतएव पवित्रां छलोक्त्या स्पृष्ट्वा अपवित्रां मा कुरु। इमामितूह्यं। श्लेषपक्षे। हे सतीव्रतध्वंस त्वं न याहि मा याहि न याहि ना याहीत्यर्थः। रवे रविवन्नेत्रयोः प्रकाशकत्वादानन्दकत्वाद्रविरूपस्य तव पूजनार्थं सत्कारार्थं स्नातां पवित्रां स्पृष्ट्वा पवित्रां कुरु। स्नानेन इयं पवित्रास्ति तव स्पर्शेनातिपवित्रा भविष्यतीति भावः॥६०॥

है, अतएव तुमने ही मेरी वंशी को चुराई है।।५५।। अतएव मैं तुम्हें बाहुपाश से बाँधूँगा, तुम्हारे वसन भूषणको भी छीन लूँगा, एवं तुम्हें कुञ्जरूप कारागार में ले जाऊँगा, तथा महाराज कन्दर्प के समीपमें समर्पण कर दूँगा।।५६।। तब श्रीराधा असाधारण भावसे अर्थात् श्रीकृष्ण के परिहास हेतु उत्कृष्ट भावसे विद्ध होकर अवज्ञाके साथ श्रीकृष्णके प्रति अवलोकन करके मुझे स्पर्श न करो, मुझे स्पर्श न करो कहकर चलने लगी, श्रीराधाके द्वारा निवारित होकर भी श्रीकृष्णने वंशी ढूँढने के बहाने से श्रीराधा को अवरुद्ध कर लिया।।५७।। और कहा, हे चोरनी! तुम मेरे बाहु पाशसे अपने को करने के लिए वृथा प्रयास क्यों कर रही हो? जब तक तुम मेरी वंशी को नहीं दे दोगी, तब तक मैं तुम्हें नहीं छोड़ूँगा।।५८।। अनन्तर ललिता कृत्रिम क्रोधसे भ्रूलता को टेढ़ीकर ईषत् हास्यान्वित गर्वित मुखसे दर्पके साथ तर्जन गर्जन करते करते तत्क्षणात् श्रीकृष्णके सम्मुख वर्त्तिनी होकर कहने

उन्मादितः स्वाधरपायनैर्यया त्वं धृष्टयासीः सुमनः सरोवरे।
वंशीतया ते शठ शैव्यया हृता न मन्यसे चेत्तुलसीह साक्षिणी॥ ॥६१॥

खलः करोति दुर्वृत्तं नूनं फलति साधुषु।
शैव्यया ह्रियते वंशी साध्वी राधा तु दुष्यते॥ ॥६२॥

तया दृशः प्रेरणया निदिष्टां कृष्णे यियासौ तुलसीमभीष्टाम्।
राधापयाता दयितोपरोधात् सौधाकरी मूर्त्तिरिवाम्वुवाहात्॥ ॥६३॥

सापीङ्गितज्ञा लघु रूपमञ्जरीकरेऽर्पयित्वा मुरलीमतर्कितम्।
ततोऽपसर्त्तुं विहितोद्यमामुना वलाद्गृहीतोत्पुलकास कम्पिता॥ ॥६४॥

यया धृष्टया शैब्यया स्वाधरपायनैरुम्मादितस्त्वं आसीरभूः। कुसुमसरोवरे तया शैब्यया ते वंशी हृता चेत् न मन्यसे इह विषये तुलसी साक्षिणी पृच्छतामिति शेषः ॥६१॥६२॥ तया ललितया दृशः प्रेरणया निदिष्टां वंश्यस्यामस्तीति इङ्गितेरितां ततो वंशीलाभार्थं स्वतश्चाभीष्टां तुलसीं कृष्णे यियासौ यातुमिच्छति सति दयितस्य तस्य कृष्णस्य उंपरोधात् क्रोडात् राधा अपयाता अपगताभूत्। तत्रोपमा। अम्बुवाहात् मेघात् सौधाकरी मूर्त्तिश्चन्द्र इव ॥६३॥ सापि तुलसी इङ्गितज्ञा सती लघु शीघ्रं रूपमञ्जर्य्या करे अतर्कितं यथा स्यात्तथा मुरलीमर्पयित्वा ततो गन्तुं विहितोद्यमापि अमुना कृष्णेन गृहीता सती उत्पुलका कम्पिता च आस वभूव ॥६४॥ सा तुलसी

लगी।।५९।। हे पराङ्गनासङ्गमपूतमूर्त्ते! अर्थात् परायी रमणी के सङ्गमसे तुम्हारी मूर्त्ति पवित्र हो गई है। हे सतीव्रत ध्वंसन! जाओ, जाओ, सूर्य पूजाके निमित्त स्नाता सुतरां पवित्रा इस श्रीराधाको छलसे स्पर्श करके अपवित्र न करो। श्लेषार्थ इस प्रकार है-हे सतीव्रत ध्वंसी! तुम मत जाओ, मत जाओ, तुम तो रविके समान नयनयुगल का प्रकाशक तथा आनन्दप्रद हो, सुतरां रविरूप तुम्हारी पूजाके लिए स्नाता, परम पवित्र श्रीराधाको स्पर्शकर पवित्र करो, यद्यपि यह स्नातकर पवित्र हो गई है, तथापि तुम्हारे स्पर्शसे अतीव पवित्रा हो जायेंगी, सन्देह नहीं है।।६०।। हे शठ! तुम तो धृष्टा शैब्याके अधर पान कर उन्मादित हो गए हो, उस शैब्याने ही कुसुम सरोवर में तुम्हारी वंशी चुराई है, यदि तुम विश्वास न करो तब इसमें तुलसी साक्षी है, सत्य है, या मिथ्या है, इसे पूछो।।६१।। खलव्यक्ति गण की दुष्टता का फलभोग साधुजन को होता है, कैसा आश्चर्य है। शैब्याने तो चुराई वंशी, और साधुस्वभावा श्रीराधा दूषिता हो रही है।।६२।। अनन्तर

निधाय कुब्जीकृतपाणिशाखा निजानने साब्रुवतातिदीना ।
हा हा कृपालो त्यजमामयोग्यां निर्म्मञ्छनं यामि तवास्मि दासी ॥६५॥
वंशी न मय्यस्ति यदर्थमाग्रहः शैव्याकरे साद्य मयैव लोकिता ।
इत्यालपन्ती चलदृष्टिसंज्ञया सासूचयत्तं प्रति रूपमञ्जरीं ॥ ॥६६॥

यावद्विहाय तुलसीं मधुसूदनोऽसौ
तां मञ्जरीं विदित-वेणु-मरन्दगन्धां ।
आयाति तावदियमिङ्गितपण्डिताशु
वंशीं निधाय ललितामनु साधु तस्थौ ॥ ॥६७॥

कुब्जीकृता मुष्टीकृता पाणिशाखा अङ्गुलीर्निजानने निजमुखे निधाय कृत्वा अतिदीना सती अब्रुवत। ब्रूञ् व्यक्तायां वाचि धातुः। तौदादिकेपि ल ङात्मने पदैकवचनं। किम्वा कृत् क्विपि कृते ब्रूरिति नाम तत आख्यात क्विपि नाम धातुः। क्विपोः कृत् क्विप एवान्तवर्त्तित्वाद्धातोर्न गुणः। भूरिवाचरति भुवतीत्यादि। अन्यस्तु हरयतीत्यादि। ब्रूञ् उभयपदित्वादातः आत्मने पदे त प्रत्ययः। ब्रूरिवाचरदब्रवीदित्यर्थः। किमब्रवीत्तदाह। हे कृपालो हा हा अयोग्यां मां त्यज तव निर्म्मञ्जनं यामि अहं दासी अस्मि ॥६५॥ यदर्थं तवाग्रहः सा वंशी मयि नास्ति। सा तुलसी तं कृष्णं प्रति दृष्ट्या रूपमञ्जरीमसूचयत् ॥६६॥ मधुसूदनः कृष्णः भ्रमरश्च यावत् तुलसीं विहाय तां मञ्जरीं विदितो वेणुरूप-मरन्दस्य मकरन्दस्य गन्धो यस्यां तां आयाति तावदियं रूपमञ्जरी

ललिता नेत्रसञ्चालन से इनके निकट वंशी है, इस प्रकार इङ्गित से तुलसी को दिखा देनेसे श्रीकृष्ण वंशीप्राप्त करने के लिए जैसे ही निजाभीष्ट तुलसीके निकट जानेकी इच्छाकी उस समय मेघसे सौधाकरी मूर्त्तिके समान श्रीकृष्णके क्रोड़देश से श्रीराधा निकल पड़ी ।।६३।। तब तुलसीने भी इशारे को जान कर श्रीरूपमञ्जरी के हाथमें अलक्षित रूपमें वंशीको थमा दिया, और यहाँसे चले जानेके लिए उद्यता होनेसे श्रीकृष्णसे बलपूर्वक गृहीता होकर उत्पुलका तथा कम्पिताङ्गी हो गई ।।६४।। तुलसी ने भी अपने हाथों की अङ्गुलियों को कुबड़ी करके अपने मुखपर रख लिया और दीनभावसे बोली,-हे कृपालो! हा हा अयोग्या मुझको छोड़ दो तुम्हारी बलाई लेती हूँ, मैं तुम्हारी दासी हूँ ।।६५।। जिस वंशीके लिए आग्रह कर रहे हो, वह वंशी मेरे पास नहीं है, मैंने आज ही उसको शैव्याके हाथमें देखी है, यह कहकर उसने श्रीकृष्ण को इङ्गितसे बता दिया कि वंशी श्रीरूपमञ्जरी के पास है ।।६६।। श्रीकृष्ण, तब तुलसी को छोड़कर वेणुरूप मकरन्दके सौरभसे परिचिता श्रीरूपमञ्जरी के

कृष्णोऽपि तां तूर्णमलक्षितागतिः स्ववाहुपाशेन निवद्धच सत्वरः।
वंशीं विचिन्वन् कुचपट्टिकान्तरे तामाह सा तस्करि ते क्व गोपिता ॥६८॥

साप्यव्रवीत्तं विनिवारयन्ती लव्धैव चौर्य्यां मयि साद्य वंशी।
दिष्ट्या भवान् पूर्णमनोरथोऽभूद्गत्वानयैवाह्वय गोपनारीः॥ ॥६९॥

निजाभिर्मर्शेन पराङ्गना ततेः सतीव्रतं दूषयितुं त्वमुत्सुकः।
स्वयं विनिह्नुत्य कुतोऽपि वंशिकां तन्मार्गणव्याजमुपाश्रितोऽधुना ॥७०॥

ततो दृशास्मै ललितां प्रदर्श्य सा तद्वाहुवन्धाच्छिथिला विनिर्गता।
कृष्णोऽपि स स्वागति शङ्कया रहस्तां कुन्दवल्ल्यर्पित-वंशिकां ययौ ॥७१॥

ललितामनु ललितायां वंशीमाशु निधाय साधु यथा स्यात्तथा तस्थौ ॥६७॥ कृष्णस्तां रूपमञ्जरीं स्ववाहुपाशेन बद्धच सत्वरः सन् कुचपट्टिकान्तरे वंशीं विचिन्वन् तामाह। हे तस्करि सा वंशी ते त्वया क्व गोपिता ॥६८॥ सा रूपमञ्जरी तं कृष्णं विनिवारयन्ती सती अव्रवीत्। चोर्य्यां मयि सा वंशीलव्धैव अर्थात् न लप्स्यत एव दिष्ट्या भाग्येनाद्य भवान् कुचपट्टिकान्तरे हस्तदानालिङ्गनेन पूर्णमनोरथोभूत्। अथ त्वं गत्वा अनया वंश्या एव गोपनारीराह्वय ॥६९॥ निजाभिमर्शेन स्वस्यालिङ्गनेन परस्त्री ततेः सतीव्रतं दूषयितं स्वयं कुत्रापि वंशीं विनिह्नुत्य संगोप्य तस्या वंश्या अन्वेषणच्छलमुपाश्रितः ॥७०॥

समीप में जैसे आ गए, तत्क्षणात् इङ्गित पण्डिता रूपमञ्जरी ललिता के निकट में वंशी को रखकर साधुव्यक्ति की भाँति श्रीकृष्ण के सामने खड़ी होगई ।।६७।। तब श्रीकृष्णने भी अचानक आकर रूपमञ्जरी को भुजपाश से वांध लिया, और सत्वर उसकी कुचपट्टिका के बीच में वंशी को ढूंढ़ते हुए कहा, हे तस्करि! बता दो, तुमने वंशी कहाँ रख दी है? ।।६८।। अनन्तर श्रीरूपमञ्जरी श्रीकृष्ण को मना करते-करते कहने लगी, मैं तो चोरनी हूँ। मेरे पाससे वंशी तो मिल गयी न, परम सौभाग्य से तुम अङ्गिया के बीचमें वंशी ढूँढ़ने के बहाने हाथ देकर, आलिङ्गन कर पूर्ण मनोरथ हो गए, अब प्रस्थान करो, इस वंशीसे ही पराङ्गना को बुलाते जाओ ।।६९।। और भी तुम तो आलिङ्गन के द्वारा पर रमणीगण के सतीव्रत को दूषित करने के लिए उत्सुक हो गए हो, कारण, स्वयं किसी स्थानमें वंशीको रखकर बहाना बनाकर खोजने के लिए यहाँ आ गए हो ।।७०।। तत्पश्चात् नयन भङ्गीके

उपागतं तं ललिताह कोपना हुं दूरतस्तिष्ठ किमर्थमागतः।
वंशी यदीयं मयि नैव विद्यते धाष्टर्येन चेत्तत्फलमाश्ववाप्स्यसि ॥७२॥
चिन्तामणीनां चयमन्तिके स्थितं पदापि या नाभिमृशन्त्यवज्ञया।
राधा सखीभिस्तव वंशनालिका किमर्थमाभिर्वत सा हृता शठ॥ ॥७३॥
सच्छिद्रया नीरसया कठोरया ययानिशं व्याकुलितं जगत्त्रयं।
सा स्वामिनो यत् मुरली कराद्गता वृत्तं वहूनां तदिदं सुमङ्गलम्॥ ॥७४॥
स्वस्थानसन्दानित-नीविकुन्तलाः कुर्व्वन्तु कर्म्माणि सुखं गृहेऽवलाः।
स्वैरं हरिण्योऽपि चरन्तु सप्रियाः सरन्तु तूर्णं सरितः सरित्पतिं॥ ॥७५॥

सा रूपमञ्जरी दृशास्मै कृष्णाय ललितां प्रदर्श्य तस्य कृष्णस्य वाहुवन्धात् निर्गताभूदिति शेषः। कीदृशी स्वस्यां कृष्णस्यागति शङ्कया रह एकान्ते कुन्दवल्ल्यामर्पिता वंशिका यया तां। स कृष्णोपि तां ललितां ययौ॥७१॥ हुँमिति शब्दं कृत्वा दूरे तिष्ठेति ललिताह। यदीयं वंशीमयि न विद्यते। चेत् यदि धाष्टर्येनागमिष्यसि तत्तदा तस्य फलं तूर्णं प्राप्स्यसि॥७२॥ सा राधासख्यश्चिन्ता-मणिसमूहं पदापि नाभिमृशन्ति न स्पृशन्ति आभिः राधासखीभिः सा वंशनालिका किमर्थं हृता॥७३॥ सच्छिद्रादिदोषयुतया यया जगत्त्रयं व्याकुलितं सा मुरली यद्यदि स्वामिनस्तस्या मुरल्याः स्वामिनः तव कराद्गता तदिदं वहूनां सुमङ्गलं वृत्तं॥७४॥ स्वस्य स्थानेषु सन्दानिता वद्धनीव्यः कुन्तलाश्च याभिस्तास्तथा भूत्वा अवला नार्य्यः सुखं यथा स्यात्तथा गृहे कर्म्माणि कुर्व्वन्तु। सप्रियाः सत्यो हरिण्यः स्वैरं यथेष्टं चरन्तु

द्वारा ललिता को दिखाकर श्रीकृष्णके शिथिल भुजबन्धसे रूपमञ्जरी निकल गई। कुन्दवल्ली शङ्किता रही कि कृष्ण उनके पास पहुँच जायेगे, और भयभीता रही इस समय ही श्रीकृष्ण ललिताके पास पहुँच गए।।७१।। तब कुपिता ललिता श्रीकृष्णको अपने ओर आते देखकर हुँकार कर कहने लगी, दूर रहो, क्यों मेरे पास आ रहे हो, जिस लिए मेरे पास आ रहे हो, वह वंशी मेरे पास नहीं है, यदि धृष्टता से आने लगो तो उसका फल मिल जायेगा।।७२।। और भी बोली, शठ! श्रीराधाकी सखिगण, निकट स्थित चिन्तामणि समूह को भी अवज्ञा कर पैरसे नहीं छूतीं हैं, वे सब श्रीराधा की सखीगण तुम्हारी बाँस की वंशी की चोरी करेंगी।।७३।। जो सच्छिद्र अर्थात् अनेक दोषयुक्त है, नीरस भी है, जिसकी ध्वनिसे त्रिभुवन निरन्तर व्याकुल

शीतार्त्त नग्नाम्बुनिमग्न-कन्यका गणस्य वासांसि हृतानि यत्त्वया।
तेनाचिरात्ते मुरली कराद्गता प्राप्नोति दुःखं परदुःखदो हि यः ॥७६॥

हस्तमात्रायता शुष्का सरन्ध्रा वंशकाष्ठिका।
हा हन्त गोकुलेशस्य सर्व्वस्वं केन वा हृतं॥ ॥७७॥

व्याजाद् विषण्णमिव तं प्रसमीक्ष्य कृष्णं
सावज्ञहासललिता-वचनावरुद्धं।
श्रीराधिकामनु निधाय रहस्य वंशीं
साकूतमब्रुवत कुन्दलताभ्युपेत्य॥ ॥७८॥

तृणानिखादन्तु विचरन्तु वा। सरितो नद्यः समुद्रं तूर्णं गच्छन्तु। आसां मुरलीध्वनिकृतस्तम्भादि विघ्नभावादिति भावः॥७५॥ तव पापेन वंशी गतेत्याह। यद्यस्मात् त्वया शीतेनार्त्ताः पीडिताश्च ता नग्ना विवस्त्राश्चाम्बुनि जले निमग्नाश्चेति तासां कन्यानां गणस्य वासांसि हृतानि तेन हेतुना ते मुरली गता यत् तदुचितमेव हि यतः परदुःखदः स्वयं दुःखं प्राप्नोति॥७६॥ हस्तपरिमितदीर्घा तत्रापि शुष्का पुनः सरन्ध्रा वंशस्य काष्ठिका एवम्भूत-दुर्ल्लभं गोकुलेशस्य तव सर्व्वस्वं सर्व्वसम्पत्तिः केन वा हृतं। हा हस्तेति खेदे अतःपरं दुःखं नास्तीत्यर्थः॥७७॥ अवज्ञासहितो हासो यत्र तादृश ललितावचनेनावरुद्धं नियुक्तीकृतं कृष्णं समीक्ष्य कुन्दलता रहो निभृतं राधिकायां वंशीं निधाय तं कृष्णमभ्युपेत्य ततसमीपे आगत्य व्याजादेव विषण्णं हा हा

होते रहते हैं, तुम तो उस मुरली के स्वामी हो, अब तुम्हारे हाथसे मुरली खो जाने से सब लोक सुखी होंगे।।७४।। जो भी हो, अब रमणीगण नीवी तथा कुन्तलनिचय का बन्धन कर सुखपूर्वक निज निज गृहकार्य में रत हो जायें, हरिणीगण निज प्रियतमके साथ यथेष्ट तृण भक्षण करें, नदी सकल भी सत्वर सरित्पति समुद्रमें जाकर मिलें, कारण मुरलीध्वनि से सम्प्रति स्तम्भ नहीं होगा।।७५।। कृष्ण! देखो, पापसे ही वंशी चोरी हो गई। शीतपीड़िता, विवस्त्रा, जल निमग्ना कन्यागणका वस्त्रहरण तुमने ही किया था, उससे ही वंशी खो गई है, यह तो होना उचित ही था, जो व्यक्ति दूसरेको क्लेश देता है, वह निश्चय ही दुःख प्राप्त करता है।।७६।। हाय कितनी दुःख की वात है, एक हाथ की वंशी, वह भी सूखी बाँस की नली है, जिसमें अनेक छिद्र हैं। अर्थात् दोष ही दोष है, जो गोकुलनाथ श्रीकृष्ण

सच्छिद्रैक-वराटिकार्द्धमपि यन्मूल्यं न सा जर्ज्जरा
याता मस्करपर्व्विका तव कराद्यात्वस्तु ते मङ्गलम्।
का वा हानिरियं विषीदसि कथं पुत्रोऽसि गोपेशितु-
स्त्वामेता विहसन्ति हन्त मुदिताः श्रुत्वा म्रियेऽहं ह्रिया॥ ॥७९॥

सोऽप्याह तां कुन्दलतेऽनभिज्ञा वंशी गुणानां यदिदं ब्रवीषि।
चित्रं न तद्यत् स्वगुणः प्रकाश्यते यथानयासु त्वयि न क्वचित्तथा ॥८०॥

कृष्णस्य वंशी केन नीतेति सौहार्द्दं विषादयुक्तं यथा स्यात्तथासाकूतं साभिप्राय-मब्रुवताब्रवीदित्यर्थः ॥७८॥ साकूतमिति मदुक्तं तदेवाह। सा वंशिका तव करात् यातायातु तव मङ्गलमस्तु। सा कथम्भूता मस्करपर्व्विका मस्करस्य वंशस्य पर्व्विका। स्वार्थे कः। अल्पार्थे स्त्रीत्वं। अल्पपर्व्वा इत्यर्थः। तत्रापि सच्छिद्रा तत्रापि तु जर्ज्जरा जीर्णा अधिकं किं ब्रूमः। एकस्या वराटिकायाः कपर्द्दिकाया अर्द्धमपि यस्या मूल्यं न। एवस्तूता इयं का वा हानिः कथं विषीदसि। गोपेशितुर्नन्दराजस्य पुत्रोसि। हन्त खेदे। एता गोप्यो मुदिताः सत्यः। त्वां विहसन्ति। श्रुत्वा ह्रिया अहं म्रिये। वंशे त्वक्सार कर्म्मार त्वचिसार तृणध्वजाः शतपर्व्वा यवफलो वेणु मस्कर तेजनाः इत्यमरः। पक्षे। सच्छिद्रेति वराटिकया विशेषणं अथात्वे सच्छिद्रायाः काणायाः एकस्या वराटिकया अर्द्धमित्यर्थः ॥७९॥ सः कृष्णस्तामाह। यद्यस्मात् त्वं वंश्या गुणानामनभिज्ञा अत इदं ब्रवीषि। तच्चित्रं न यद्यस्मादनया वंश्या यथा आसु गोपीषु स्वगुणः प्रकाश्यते। तथा तेन प्रकारेण त्वयि क्वचित् क्वापि स्वगुणो न प्रकाश्यते तस्मात् ॥८०॥ यदा या या

की सर्वस्व सम्पत्ति है, वही चोरी हो गई, हाय-हाय किसने चुरा ली।।७७।। अनन्तर कुन्दलता वंशीको राधाके पास रखकर ललिता की अवज्ञा तथा परिहास वाक्यसे दुःखी कृष्णको देखकर कृष्णके पास आ गई और कहने लगी, हाय हाय! किसने वंशी चुरा ली? इस प्रकार सौहार्द दिखाकर निज अभिप्राय के साथ श्रीकृष्ण को कहने लगी।।७८।। कृष्ण! अधिक क्या कहूँ। जिसकी कीमत आधी कौड़ी भी नहीं है, ऐसी सच्छिद्रा, जीर्णा, वंशपर्विका, बाँस की नली, यदि तुम्हारे हाथ से चली गई, तो जाने दो, इस से मङ्गल होगा, हानि क्या है, विषण्ण क्यों हो रहे हो? तुम तो गोपेन्द्रनन्दन हो, हाय कष्ट! यह सब व्रजाङ्गनागण तुम्हें हँस रही हैं, सुनकर मैं तो शरमसे मरी जा रही हूँ।।७९।। कुन्दलता की बात को सुनकर श्रीकृष्ण बोले,-कुन्दलते! वंशी के गुणों को तुम नहीं जानती हो, यह आश्चर्य की बात नहीं है, कारण व्रजसुन्दरीगण में वंशी जिस प्रकार प्रभाव प्रकाश करचुकी है, उस प्रकार तुम्हारे में नहीं हुआ है।।८०।।

या या यदेच्छा मम जायतेऽन्तर्मयाप्यसाध्या किल हेलयासौ।
तदैव तां तां कुरुते सुसिद्धां नारायणस्येव चिदाख्यशक्तिः॥ ॥८१॥

सर्व्वशक्तियुता सेयं मम सर्व्वार्थसाधिका।
अलौकिकीं शक्तिमस्या विदन्ति राधिकादयः॥ ॥८२॥

ललिताह कथं वंशीं न विद्मं कुट्टनीनृपाम्।
इमां तन्नीतिकुशलां षिङ्गस्य तव वल्लभाम्॥ ॥८३॥

सुधापारी नारीहृदय–करि–वारीयमनिशं।
जगद्योषा दोषा मल-सुकृत–मोषातिनिपुणा।

मयाप्यसाध्या इच्छा ममान्तर्मनसि जायते। असौ मुरली तां तामिच्छां तदैव हेलया सुसिद्धां कुरुते। नारायणस्य चिच्छक्तिरिवेत्यनेन कृष्णस्येयमपि चिच्छक्तिरूपा॥८१॥ राधिकादय अस्या अलौकिकीं शक्तिं विदन्ति जानन्ति॥८२॥ कुट्टनीनां नृपां राज्ञीं तन्नीतौ कुट्टनीनीतौ कुशलां। अतः षिङ्गस्य कामुकस्य तव वल्लभां वंशीं कथं न विद्मः साधु विद्म इत्यर्थः॥८३॥ सिद्धा ते तव मुरलिका अद्भुतगुणेन समृद्धा पूर्णा। अद्भुतगुण इत्यत्र विपरीतलक्षणयाद्भुतदोषपूर्णेत्यर्थः। अद्भुतगुणमाह। सुधानां पारी पूरःप्रवाहः। पारी पूरे च कर्कर्य्यां पादरज्जौ तु दन्तिनः। पूरा जलप्रवाहे स्यात् व्रणसंशुद्धि-खाद्ययोरिति च मेदिनी। तस्य पात्रं अमृततुल्य सद्गुणवती या नारी स्त्री तस्या हृदयरूप करिः हस्ती तस्य वारी वन्धकरी। वारी तु गजवन्धनीत्यमरः। पुनः कीदृशी अनिशं सदा जगति या योषा नार्य्यस्तासामदोषणाममलानां शुद्धानां सुकृतानां

कुन्दलते! वंशीके गुण की बात मैं क्या कहूँ। यह वंशी श्रीनारायण की चिच्छक्ति की भाँति है, जब जैसी असाध्य वासना मेरी उठती है, यह वंशी उसी समय सव अनायास सुसिद्ध कर देती है, श्रीराधिका प्रभृति गोपीगण इसकी अलौकिक शक्ति को जानती है।।८१।।८२।। यह सुनकर ललिता बोली,-कृष्ण! तुम्हारी वंशी कुट्टनीगण की नीति में निपुणा है, अतः तुम कामुक हो, तुम्हारी वल्लभा वंशी है, उसको क्यों नहीं जानूँगी? ।।८३।। यह मुरली अमृतपायी नारियों के अर्थात् निखिल सद्गुणवती गोप रमणी समूह के हृदयरूप हस्तिको बांधने वाली है, एवं जगत् की नारियों के दोष रहित पुण्यराशि की चोरी करने में अतिशय निपुण है, अन्य स्त्रियों की बात क्या कहूँ, रमा, गौरी, सूर्यपत्नी, संज्ञा प्रभृति के मनहरण करने में निपुण है,

रमा गौरी सौरी मुख युवति चौरी त्रिजगति।
प्रसिद्धा सिद्धा तेऽद्भुतगुणसमृद्धा मुरलिका॥ ॥८४॥

अवददथ स ललिता खलु चण्डी कुटिलवचन–दृढकण्टकदुर्गा।
अपहरति च मुरलीं मम शाठ्याद्धत परिवदति च तामुत माञ्च ॥८५॥

इत्याभाष्य हरौ तस्याः संव्यानान्तं जिघृक्षति।
सापसृत्या ब्रवीद्भुग्नभ्रूलतं सस्मिताननम्॥ ॥८६॥

सैवास्मि ललिता कृष्ण वहुधा कलिता त्वया।
चलिता वलितालीभिः शठता फलिता न ते॥ ॥८७॥

इत्युदीर्य्य ललितामपयान्तीं तां विगृह्य वसने स जगाद।
वंशिका वितरणं न विना ते यानमद्य सुलभं स्वगृहाय॥ ॥८८॥

पुण्यानां मोषे चौर्य्येतिनिपुणा। मुषस्तेये धातुः। अन्य स्त्रीणां का वार्त्ता। रमादि युवतीनां चौरी आकर्षिणी। रमादीनां हृदयस्य मनसश्चौरी वेति पाठः॥८४॥ स कृष्णः अवदत्। ललिता चण्डी भुग्ना कुटिलवचनरूपदृढकण्टकेन दुर्गमा मम मुरलीमपहरति शाठ्यात् तां मां च परिवदति॥८५॥ इत्युक्त्वा तस्या उत्तरीयवस्त्रान्तं हरौ ग्रहीतुमिच्छति सति सा ललिता भुग्नभ्रूलतं सस्मिताननञ्च यथा स्यात्तथा ब्रवीत्॥८६॥ हे कृष्ण सा प्रसिद्धा ललिता ज्ञाता। आलीभिर्वलिता युक्ताहं चलिता। ते शठता न फलिता न फलिस्यति॥८७॥ स कृष्णः अपयान्ती तां ललितामाह। वंशीं न दत्वा तव स्वगृहाय यानं गमनमद्य सुलभं न। वसन इत्यवच्छेदे सप्रमी वसनावच्छेदे तां गृहीत्वेत्यर्थः॥८८॥ मयाङ्गानि यथेष्टं शोधयित्वा दर्शयित्वा॥८९॥ अंशुकं वस्त्रं

अतएव हे कृष्ण! तुम्हारी सिद्धा मुरली अद्भुत गुणोंसे समृद्धा है, अर्थात् निखिल दोषका आकर है।।८४।। श्रीकृष्ण बोले,-अति प्रखर स्वभावापन्ना कुटिल वाक्यरूप सुदृढ़ कण्टक से दुर्गम्य स्वरूपा यह ललिता है। इसने शठतासे ही मेरी मुरली की चोरी की है, अथच मेरी और मुरली की निन्दा कर रही है।।८५।। इस प्रकार कहकर श्रीकृष्ण जब ललिताके उत्तरीय वसन के प्रान्तभाग को धारण करने को चले तो, ललिता दूर हटकर भ्रूलता को वक्र करके हँसमुख से कहने लगी।।८६।। कृष्ण! मैं वही ललिता हूँ, तुम तो मुझे अच्छी तरह जानते हो, यह लो मैं अपनी सखियों को लेकर चली जा रही हूँ। तुम्हारी शठता फलीभूत नहीं होगी।।८७।। यह कहकर ललिता गमनोद्यता होने से श्रीकृष्णने ललिताके उत्तरीय वसनके प्रान्तभाग को पकड़

त्वया चेन्न हृता वंशी कथं भीत्या पलाय्यते ।
शोधयित्वा निजाङ्गानि यथेष्टं गच्छ तिष्ठ वा ॥ ॥८९॥

ततः सांशुकमाकृष्य वक्रदृष्ट्याह वीक्ष्य तं ।
अङ्गानि स्वप्रजावत्याः काममत्त विचारय ॥ ॥९०॥

वंश्यस्माभिर्नैव नीता न दृष्टा नोज्झस्यौग्रयाच्चेत्तथापि त्वमस्मान्
दास्ये मूल्यं कुन्दवल्ली प्रदिष्टं तच्चेन्नेष्टं तत् सदृक्षां ततोऽन्याम् ॥९१॥

मल्ली भृङ्ग्यौ श्रीपुलिन्दात्मजे नः सख्यौ शैलेन्द्रालये मद्गिरा ते ।
दास्येते ते जर्ज्जरां छिद्रमुक्तामानीयैकां पर्व्विकां कीचकस्य ॥ ॥९२॥

तस्य करादाकृष्य । हे काममत्त । स्वस्य प्रजावत्याः भ्रातृजायायाः कुन्दवल्ल्याः अङ्गानि विचारय पश्येत्यर्थः ॥९०॥ अस्माभिर्वंशी न नीता। न दृष्टा तथापि औग्रयात् त्वमस्मान् नोज्झसि न त्यजसि। कुन्दवल्ली प्रदिष्टं मूल्यं दास्ये। तन्मूल्यं चेत् नेष्टं। तव वाञ्छितं न। तदा तत्तस्या वंश्याः सदृशीमन्यां वंशपर्व्विकां दास्ये ॥९१॥ पुलिन्दकन्ये मल्ली भृङ्गी नाम्न्यौ शैलेन्द्रे गिरिवरे गोवर्द्धने आलयः गृहं ययोस्ते मद्गिरा ते द्वे जर्ज्जरां छिद्रैर्मुक्तां रहिताञ्च । तव जर्ज्जरायाः सच्छिद्राया वंश्या अपि उत्तमामित्यर्थः। किम्बा तव वंशीव जर्ज्जरां छिद्राणि सन्त्यस्यामिति अस्त्यर्थे अच्। छिद्रा चासौ मुक्तकार्य्यमात्रायोग्यत्वात् त्यक्ता चेति तां । कीचकस्य वंशस्य एकां पर्व्विकां आनीय ते तुभ्यं दास्येते ॥९२॥ मल्ली भृङ्ग्यौ नः सख्याविति श्रुत्वा एता मम वंशीमपहृत्य वनदासीरपि स्ववशे नयन्तीति कातरः सन् श्रीकृष्णः आह। परमधन्याः पुलिन्दकन्याः मयि रतियुषः यतस्तृणप्राप्तस्यास्मत् पादाम्बुज-घुसृणस्याननकुचेषु लेपेन क्षता नष्टा रुक्

कर कहा-वंशी न देनेसे आज घरको जाने नहीं देंगे ।।८८।। हाँ ललिते! यदि तुमने वंशी नहीं चुराई तो भयसे क्यों भाग रही हो? हमसे अपने अङ्गों की तलाशी करवाकर ही जहाँ इच्छा जा सकती हो, अथवा यहाँ पर रह सकती हो ।।८९।। तब ललिताने कृष्णके हाथसे वस्त्र खींच लिया और वक्र दृष्टिसे कृष्णको बोली,-हे काममत्त! अपनी भ्रातृजाया कुन्दलता के अङ्गोंका दर्शन करो, जाओ ।।९०।। हम सबने न तो बंशी ली है, न तो देखी ही है। तथापि यदि उग्रताकर हम सबको न छोड़ा तो, कुन्दलता उसका मूल्य जैसा देनेके लिए कहेगी, हमसब वैसा ही देंगे, और यदि मूल्य लेना अच्छा न समझो, तो वंशीके समान एक टुकड़ा बाँस तुम्हें दे देगे ।।९१।। कृष्ण! गिरिवर गोवर्द्धन में मल्ली भृङ्गी नामकी हमारी दो सखी रहतीं है, कहने पर नूतन

पुलिन्दानां कन्या मयि परमधन्या रतियुष-
स्तृणाप्तास्मत् पादाम्बुजघुसृणलेपक्षतरुजः।
गिरेर्गुञ्जाधातूत् भृशमुपहरन्ति स्वसहितान्
मदीयास्ता दास्यः कथमु तव सख्यः समभवन्॥ ॥९३॥

वंशीं हरसि मे मामप्यवजानासि यत्ततः।
निवध्य दण्डयामि त्वां कोऽसौ रक्षति रक्षतु॥ ॥९४॥

ललितां पृष्ठतः कृत्वा विशाखा ततपुरः स्थिता।
नीचैरुपदिशन्तीव सस्मितं सा तमब्रवीत्॥ ॥९५॥

प्रगतार्थानामर्थो नष्टोद्देशकसहायतो लभ्यः।
युक्त्या मार्गय तत्त्वं न ह्यौग्रेण क्रियासिद्धिः॥ ॥९६॥

कामजन्यरोगो यासां ताः मदीया दास्यः। उ भो ललिते तव सख्यस्ताः कथं समभवन्। दास्याः कार्य्यमाह। स्वसहितान् गोवर्द्धनस्य गुञ्जाधातून् भृशमतिशयेन उपहरन्ति मह्यं आनीयददति।।९३।। अवजानासि अवज्ञाविषयं करोषि।।९४।। सा विशाखा तं कृष्णं।।९५।। प्रगतोर्थो येषां तेषामर्थः नष्टस्य वस्तुनः उद्देशकस्य ज्ञापकस्य सहायेन लभ्यो भवति। तद्वस्तु युक्त्या त्वं मार्गय उद्देशकारिणे किमपि धनं दातुं निश्चयेति भावः। तदा वशीं लप्स्यसे। तद्विना औग्र्येण क्रियासिद्धिर्वंशीप्राप्तिर्न भवितैव।।९६।। चम्पकलताह। नष्टोद्देशकर्त्ता सुतरामतिशयेनार्थलोभी भवति। वंश्यैकपर्व्विकायै

छिद्र रहित बाँस की नली वे ला देंगी।।९२।। तब श्रीकृष्ण ''मल्ली भृङ्गी मेरी सखी है'' इससे पुलिन्द कन्याके नामको सुनकर मन ही मन सोचने लगे, इन्होंने मुरली चुराकर वनवासियों को भी अपने अधीन बना लिया है, अनन्तर कातर भावसे बोले-पुलिन्द कन्यागण परमधन्या हैं, वे सब मेरे प्रति अनुरक्त भी हैं, मेरे चरणकमल के कुङ्कुम तृणमें लिप्त होने से, उससे आनन तथा कुचमण्डल में लेपन करके कन्दर्प पीड़ाका उपशम करती हैं, एवं गोवर्द्धन गुञ्जा, नानाविध धातु को सयत्न से लाकर देतीं हैं, वे तो मेरी दासी हैं। कहो ललिते? वे सब तुम्हारी सखी कब बनी।।९३।। कुछ भी हो, ललिते! जव तुम ही मुरली को चुराकर मेरी अवज्ञा कर रही हो, तब तुम्हें बन्धन दण्ड दूँगा। अब मैं देखूँ, कौन तुम्हारी रक्षा करेगा?।।९४।। श्रीकृष्ण वैसा कहनेपर, विशाखा बीचमें आकर ललिता को पीछे करके खड़ी होगई,

अवदच्चम्पकवल्ली नष्टोद्देश्यर्थलोलुपः सुतराम्।
वंशैकपर्व्विकायै वहुधनहानिः कथममुना क्रियताम्॥ ॥९७॥

तुङ्गविद्याह मुग्धे त्वं मर्म्मज्ञा नासि तच्छृणु।
वंश्येव यस्य सर्व्वस्वं किं न दद्यात् स तत्कृते॥ ॥९८॥

चौरे नष्टोद्देशकस्य प्रसादात् लब्धे ग्राह्यं वित्तमात्मीयमादौ।
पश्चान्नष्टोद्देशिनेऽपि प्रदातुं दण्ड्यादस्माद्भूरिकृत्वेति नीतिः॥ ॥९९॥

विशाखाह वद स्वामिन् यन्नष्टोद्देशिनै त्वया।
देयश्चौरे तु यो दण्डस्तज्ज्ञात्वाख्यामि ते हितम्॥ ॥१००॥

वंशस्यैकक्षुद्रपर्व्वार्थममुना वहुधनहानिः कथं क्रियतां॥९७॥ तुङ्गविद्याह। हे मुग्धे मूढे चम्पकलते। तं मर्म्मज्ञा नासीत्यन्यजने संपृच्छ अर्थात् जानीहि तत् शृणु। तदेव किं। अस्य सर्व्वस्वं वंश्येव। स श्रीकृष्णः तत्कृते तदर्थं वंशीप्राप्त्यै किं न दद्यात्। यथेष्टं दद्यादित्यर्थः॥९८॥ नष्टोद्देशकस्य प्रसादात् चौरे लब्धे सति दण्ड्यादस्माच्चौरादात्मीयं वित्तमादौ प्राह्यं पश्चान्नष्टोद्देशिने प्रदातुं वित्तं चौरात् भूरिकृत्वा ग्राह्यमिति नीतिः॥९९॥ विशाखाह। हे द्रव्यस्वामिन्। त्वया नष्टोद्देशिने यद्देयं चौरे यो दण्डो देयस्तद्वद। ज्ञात्वा ते हितं आख्यामि॥१००॥

और धीररूपसे उपदेशक की भाँति कहने लगी।।९५।। हे कृष्ण! खोई हुई चीजको पानेके लिए जो उसको जानता है, ऐसे व्यक्ति को सहायक करो, इससे तुम कृतकार्य हो जाओगे, अन्यथा उग्रतासे कार्यसिद्धि नहीं होगी, अर्थात् वंशी की प्राप्ति नहीं होगी।।९६।। सुनकर चम्पकलता बोली,-सहायक व्यक्ति घूसखोर होता है, विशेष कर श्रीकृष्ण एकनली बाँस के लिए बहु धनहानि क्यों करेंगे?।।९७।। अनन्तर तुङ्गविद्या बोली,-हे मूढ़े चम्पकलते! तुम मर्मज्ञ नहीं हो, कुछ नहीं जानती। सुनो! इनकी वंशी ही सर्वस्व धन है, अतएव कृष्ण वंशीके लिए क्या नहीं दे सकते हैं?।।९८।। सहायक की सहायतासे चोर पकड़ा जानेसे पहले दण्डनीय चोरसे स्वीयधन ग्रहण करे, पश्चात् सहायक को धनराशी देनेके लिए चोरसे ही प्रस्तुतधन ग्रहण करे, यह तो नीति है।।९९।। बिशाखा बोली,-हे द्रव्य स्वामिन् कृष्ण! तुम सहायक को जो पारितोषिक देओगे, और चोर को जो दण्ड देओगे, पहले उसे मेरेपास कहो, मैं सुनकर जिससे हित होगा बोलूँगी।।१००।। श्रीकृष्ण बोले,-जो जन

अङ्गस्रङ्मणिमाले करमर्द्दफलञ्च चुम्बकं रत्नं।
परमपि दास्याम्यस्मै यो मे वंशीं समुद्दिशति ॥ ॥१०१॥

हर्त्तुर्हराम्यम्बर-रत्नभूषणे तारुण्यरत्नं च घटद्वये स्थितम्।
दोः पाशबन्धं स्मरदण्डनाय तं निकुञ्जकारामनु वेशयामि च ॥ ॥१०२॥

साप्याह योग्यमेवैतत् गोपेन्द्रतनयस्य ते।
वंशीञ्च हस्तगां विद्धि यत्त्वं न कृपणायसे ॥ ॥१०३॥

वंश्युद्देशं कुन्दवल्ल्येव साक्षात् जानात्येकाहञ्च तस्याः सकाशात्।
मय्युद्देशः क्लेशकारी कृतः स्याद्दत्त्वोत्कोचं तां ततः पृच्छ यत्नात् ॥१०४॥

श्रीकृष्ण आह। मे वंशीं यः समुद्दिशति अस्मै अङ्गस्य स्रक् पुष्पमाला तां मणिमालाञ्च। श्लेषेण। अङ्गमेव स्रक् माला तां आलिङ्गनं। मणिमालां नखमणि-दन्तमणिमालां तत्तत्कृत-क्षतमालां। करमर्द्दफलं कामरङ्गाख्य फल। पक्षे। कराभ्यां यो मर्दः स्तनयोर्मर्द्दनं स एव फलं ततुचुम्बकाख्यं रत्नं। पक्षे। चुम्ब एव चुम्वकस्तं रत्नं तत्। परमन्यदपि दास्यामि।१०१॥ वंशीहर्त्तुवस्त्ररत्नभूषणे। घटद्वये कुचद्वये स्थितं तारुण्यरत्नञ्च हरामि। स्मरदण्डनाय। दोः पाशबन्धं निकुञ्जरूपकारागारे वेशयामि च॥१०२॥ सा विशाखाह। गोपराजपुत्रस्य तव एततूयोग्यमेव। वंशीं हस्तप्राप्तां विद्धि। यद्‌यदा त्वं स्वमुखात् वहुधनवितरणेस्मिन् कृपणवन्नाचरसि।।१०३॥ एका कुन्दवल्ल्येव वंशयुद्देशं साक्षाज्जानाति। अहञ्च तस्याः कुन्दवल्ल्याः सकाशात् जानामि। न तु साक्षात्। अतः कृतो मया कृतः कथितोयमुदेशःमयि क्लेशकारी दुःखदः स्यात्। साक्षाज्ज्ञानाभावान्मम दुःसाध्यः स्यादित्यर्थः। ततस्तस्यै कुन्दलतायै उत्कोचं

मेरी वंशीका पता लगा देगा, मैं उसको अङ्ग की पुष्पमाला, मणिमाला, कामरंगाफल, चुम्बक रत्नादि प्रदान करूँगा। अर्थात् आलिङ्गन, नखदन्ताघात कर द्वारा स्तनमर्दन, मुखचुम्वन एवं अन्यान्य विलास सुखप्रदान करूँगा।।१०१।। और जिसने मेरी वंशी चुराई है, उसका वसन, रत्नभूषण, एवं घटद्वय में अवस्थित यौवन रत्नहरण करूँगा, और कन्दर्प दण्डके लिए भुजपाशसे बन्धनकर निकुञ्जरूप कारागार में ले जाऊँगा।।१०२।। यह सुनकर विशाखा बोली,-गोपेन्द्रनन्दन के लिए यह कार्य उपयुक्त है, जब तुम धन देने के लिए कृपण नहीं बनते हो, तब तो जान लो कि वंशी तुम्हारे हाथमें आ गई है।।१०३।। अकेली कुन्दलता ही इस वृत्तान्त को जानती है, मैंने भी उससे ही सुनी है, किन्तु प्रत्यक्ष जानती नहीं मेरा कहना तो मेरे लिए

अथाह सा कुन्दलतां प्रहृष्टा दिष्ट्या गतस्ते सखि लाभदिष्टः।
उद्दिश्य वंशीं निजदेवराय सुदुर्ल्लभोत्कोचमिमं गृहाण॥ ॥१०५॥

कुन्दवल्ल्या विशाखायां लग्नायां श्रवसीश्वरी।
इङ्गितज्ञा न्यधाद्वंशीं निभृतं तुलसीकरे॥ ॥१०६॥

साकूतं पश्यति ततः कुन्दवल्ल्या मुखं हरौ।
सा ब्रवीत्तां विशाखेऽहं न चौरं वेद्मि ते शपे॥ ॥१०७॥

जानीयं चेद्विनोत्कोचमुद्दिशामि स्वयं हितम्।
देवृस्वं यन्ममैव स्वं नाहं यूयं यथा पराः॥ ॥१०८॥

अङ्गस्रगादिकं दत्त्वा पृच्छ॥१०४॥ अथानन्तरं कृष्णं कथयित्वा तदनन्तरं सा विशाखा प्रहृष्टा सती कुन्दलतामाह। हे सखि। ते दिष्ट्या भाग्येन लाभदिष्टः आगतः प्राप्तः। कालोदिष्टोप्यनेहापि समयोपीत्यमरः॥१०५॥ कुन्दवल्लयाः श्रवसि कर्णे विशाखायां लग्नायां सत्यां इङ्गितज्ञा ईश्वरी राधा निभृतं रहसि वंशीं तुलसीकरे न्यधात्। इङ्गितं हृद्गतं भावं तज्जानातीति सा॥१०६॥ कुन्दवल्या मुखं हरौ साकूतं साभिप्रायं पश्यति सति कुन्दलता तां विशाखामाह। ते तव शपे शपथं करोमि। शपथार्थे शपेरात्मने पदं। चौरमहं न वेद्मि॥१०७॥ यथा यूयं परास्तथाहं न परा। अतोऽहं यदि जानीयां तदोत्कोचं विनापि तं कृष्णं स्वयं पृच्छां विनैव उद्दिशामि हि निश्चितं। यत् देवरस्य धनं ममैव धनं॥१०८॥

कष्टकर ही होगा, कारण मैंने उसका साक्षात्कार नहीं किया है, किन्तु कुन्दलता को कुछ उत्कोच देकर पूछ लो ।।१०४।। उसके वाद विशाखा खुशीसे कुन्दलता से कही, सखि कुन्दलते! सौभाग्यसे कुछ लाभ होने वाला है, देवरको वंशीका पता बताकर दुर्लभ उत्कोच ग्रहण करो ।।१०५।। इस प्रकार परिहास के बाद विशाखा कुन्दलताके कानके पास जाकर कुछ कहने पर इङ्गितज्ञा श्रीराधा गुप्तभावसे तुलसी के हाथमें वंशीको दे दी ।।१०६।। अनन्तर श्रीकृष्ण साभिप्रायसे कुन्दलता के मुखकी ओर ताकने लगे। कुन्दलता विशाखाको बोली, वंशी किसने चुराई है ।।१०७।। तुम सब जैसे इससे परभाव रखती हो, मैं वैसा परभाव नहीं रखती हूँ, सुतरां देवरका धनतो मेरा ही है, अतएव मैं यदि वंशी का अनुसन्धान जानती होती तो उत्कोच को छोड़कर ही श्रीकृष्णको वंशीका पता बता देती ।।१०८।। सखि विशाखे! किसने

वेत्सि हि चौरं त्वमिह मुरल्याः स्वीकुरु रत्नानि च दिश तत्ताम्।
यद्यनुकूला त्वमिह सखि स्यास्तर्हि च सा स्वप्रभुकरगा स्यात्॥ ॥१०९॥

गृहाण पूर्व्वमुत्कोचं वंशिकां वा समुद्दिश।
वंशिकोत्कोचयोर्लाभे युवयोः प्रतिभूरहम्॥ ॥११०॥

कृष्णोऽपि कुन्दलतिका नयनेङ्गितज्ञः
स्वौत्सुक्यमुत्प्रकटयन्निजवंशिकाप्त्यै।
पार्श्वागतः शित-कटाक्षशरैः प्रियाया
स्तब्धो भवन्ननुगया स तया बभाषे॥ ॥१११॥

निजश्यामरसो वंश्यां यस्त्वया न्यस्यतेऽत्र सः।
विश्वं कृष्णरुचिं कुर्व्वन् भाति विन्दुतया स्थितः॥ ॥११२॥

हे सखि विशाखे। त्वं चौरं वेत्सि। तत्तस्मात् तां वंशीं दिश कथय। रत्नानि स्वीकुरु। यदि त्वमनुकूला स्याःभवेस्तर्हि सा वंशी स्वप्रभोः कृष्णस्य प्राप्ता स्यात्॥१०९॥ पूर्व्वमादौ उत्कोचं तुभ्यं देयं गृहाण। वंशिकाम्बा पूर्वं समुद्दिश। युवयोः कृष्णस्य तव च वंशीकोत्कोचयोर्लाभेऽहं प्रतिभूर्मध्यस्थः प्रतिभूर्लग्नकः स्मृतः इति मेदिनी॥११०॥ कुन्दलतिकाया नयनस्येङ्गितज्ञः स कृष्णेपि वंशीप्राप्त्यै स्वस्यौत्सुक्यमुत्कर्षेण प्रकटयन् सन् प्रियायाः पार्श्वं गतः सन् प्रियायाः शितैः शानितैस्तीक्ष्णैः कटाक्षशरैः स्तब्धो भवन् सन् अनुगया अनुगतया तया कुन्दवल्या कर्त्र्या बभाषेतं कुन्दवल्ल्याभाषतेत्यर्थः॥१११॥ यः निजश्यामरसः वंश्यां त्वया न्यस्यते सः। श्यामरसः विश्वं श्यामरुचिं श्यामे श्यामरसे रुचिं याः श्रुत्वा ततपरो भवेदित्युक्त

मुरली की चोरी की है, उसको तो जानगयी हो, अतएव किसके पास वंशी है, कह दो। और रत्नसमूह ग्रहण करो, यदि तुम अनुकूल बनती हो, तो निश्चय ही मुरली निज प्रभु श्रीकृष्णके हाथमें शोभित हो जायगी।।१०९।। पहले उत्कोच ले लो, नहीं तो पहले वंशीका पता बता दो, कृष्णके लिए वंशी, और तुम्हारे लिए घूस प्राप्तिके लिए मैं मध्यस्थ रहती हूँ।।११०।। तब श्रीकृष्ण भी कुन्दलता के नयनके इशारे से जान गये कि वंशी कहाँ है, निज वंशी लाभके लिए अतिशय व्यग्रताको प्रकट कर प्रियतमाके पास पहुँच गये और तदीय तीक्ष्ण कटाक्ष शरसे स्तब्ध हो गये, उस समय ही पश्चात्वर्त्तिनी कुन्दलता श्रीकृष्णको कहने लगी।।१११।।

हृत्वा ते राधया वंशी विन्दुच्यावाद्वशीकृताः।
विन्दुः स्वचिवुके लग्नोऽप्यज्ञातत्वान्न गोपितः॥ ॥११३॥

वंश्या मुद्रां विन्दुमेनं त्वयादौ दिष्ट्या हृष्टं स्वाधरेणाहराशु।
पश्चाज्जित्वा न्यायतस्तां गृहीत्वा दण्डोत्कोचावप्यमूं दण्डयोक्तौ ॥११४॥

त्वद्विषयके शृङ्गार-रसे रुचिरभिलाषो यस्य तथाभूतं। यद्वा श्यामकान्तिं कुर्व्वन्। अत्र वक्ष्यमाणे श्रीराधायाश्चिवुके विन्दुतया स्थितः सन् भाति॥११२॥ ते वंशी राधया हृत्वा विन्दुच्यावात् विन्दोर्भ्रंशात् वशीकृतास्तीति शेषः। यथा मण्यौषधादियुक्तो जनः कस्यापि वशो न भवेत्। तदभावे जेतः प्रभावादिकमपहाय परवशः स्यात्। यथा अश्वत्थाम्नो मणौ हृते प्रभावहानिरासीत्। तथा परमौषधिभूत-विन्दौ गते वंशी वशीभवतीति। विन्दुः स्वस्या राधायाः चिवुके लग्नोपि अज्ञातत्वात् अज्ञानादनया न गोपितः वंशी तु गोपितेत्यर्थः॥११३॥ दिष्ट्या वंश्या मुद्रां वंशीचिह्नमेनं विन्दुं त्वया दृष्टं। स्वाधरेणाशु त्वं आहर। पश्चात् न्यायतो जित्वा तां वंर्शी गृहीत्वा पूर्व्व त्वया उक्तौ दण्डोत्कोचावपि अमूं श्रीराधां दण्डय। हर्त्तुर्हराम्यम्बरभूषणे इति। त्वदुक्तं दण्डमस्यां विरचय अङ्गस्रङ् मणिमाले इत्यादि त्वदुक्तं। वंश्युद्देशकाय देयमुत्कोचं चास्याः सकाशात् गृहाणेत्यर्थः॥११४॥

कृष्ण! तुम वंशीके द्वारा जो श्यामरस परोसते हो, उसने ही इस विश्व को श्यामरुचि तत्पर करदिया है, अर्थात् जिस को सुनकर लोक तत्पर होंगे। रासलीलाकी इस उक्तिसे सबलोक त्वद्विषयक श्रृङ्गार रसकी अभिलाषा करते हैं, अर्थात् विश्वको श्यामकान्तिसे मण्डित कर देनेसे यह विश्व श्रीराधाके चिबुकमें बिन्दुरूप अवस्थित होकर शोभित हो रहा है।।११२।। वंशीमें बिन्दु न होनेसे श्रीराधाने तुम्हारी वंशी को वशमें कर लिया है, जिस प्रकार मणि औषधियुक्त व्यक्ति किसी का वश नहीं होता है, उसके अभावसे वह वशीभूत हो जाता है, उस प्रकार परम औषधि स्वरूप बिन्दुअपगत होनेसे वंशी भी वशीभूत होगई है, परन्तु विन्दु श्रीराधाके चिबुकमें संलग्न होनेसे गलती से श्रीराधा उसका गोपन कर न सकी, केवल'' वंशी का ही गोपन कर लिया है।।११३।। कृष्ण! बड़े ही सौभाग्य की बात है कि पहले ही तुमने वंशी का बिन्दु चिह्न देख लिया, जो भी हो, पहले निज अधरके द्वारा उसको आत्मसात् करो, पश्चात् न्यायतः वंशीग्रहण करो, और पूर्व प्रतिश्रुति के अनुसार पता देनेवाले को घूस, चोरको दण्ड प्रदान करो, अर्थात्

सिद्धैव सा मुरलिका तव राधिकायाम्
तां त्वं गृहाण न हि वा मम नात्र हानिः।
उत्कोचमर्थयति मां त्वरितं विशाखा-
मुष्यै प्रतिश्रुतधनं वितराग्रतो मे ॥ ॥११५॥

मुद्रामादौ वंशिकाया गृहीत्वा दास्याम्यस्मै त्वत्कृतोत्कोचमाशु।
पश्चाद्वंशीं दत्त-मुत्कोचमेतां काराकुञ्जे दण्डयाम्यत्र रुद्धा॥ ॥११६॥

इति ब्रुवाणं दयितान्तिकागतं कृष्णं समीक्ष्याधरदंशनोद्यतम्।
तं वारयन्ती ललिता मृषा रुषा मध्यं तयोरेत्य जगाद सस्मितम् ॥११७॥

तव सा मुरलिका राधायां सिद्धैव त्वं तां वंशीं गृहाण वा ममात्र हानिर्न हि। इयं वंशीकोद्देशिनी विशाखामामुत्कोचं अर्थयति प्रार्थयते। अमुष्यै विशाखायै प्रतिश्रुतधनं उत्कोचं मे अग्रतः वितर॥११५॥ श्रीकृष्ण आह। वंशिकाया मुद्रां चिवुकस्थविन्दुं गृहीत्वा अस्यै विशाखायै त्वत्कृतोत्कोचमादावाशु दास्यामि। पश्चात् एतां राधामत्र काराकुञ्जे रुद्धा वंशीं मया विशाखायै दत्तमुत्कोचं च दण्डयामि। एतां दण्डयित्वा नयिष्यामि दण्डेद्विकर्म्मकत्वं॥११६॥ इति ब्रुवाणं दयिताया निकटमागतं तस्या अधरदंशने उद्यतं श्रीकृष्णं समीक्ष्य ललिता तयोः राधाकृष्णयोर्मध्यमागत्य मृषा रुषा तं सस्मितं राधाधरदंशनोद्यमेन प्रफुल्लवदनं कृष्णं वारयन्ती सती जगाद। सस्मितं जगादेति क्रियाविशेषणं वा॥११७॥

राधाको दण्ड प्रदानकर पता देनेवाले को उत्कोच देने के लिए उनके अंगमाल्य, मणिमाला और भूषण इत्यादि हरण कर लो॥११४॥ तुम्हारी सिद्ध मुरली श्रीराधाके निकट ही है। तुम्हारी इच्छा, उसका ग्रहण करो अथवा न करो, इससे मेरी कुछ भी हानि नहीं है, परन्तु पता देनेवाली विशाखा मुझसे घूस मांग रही है, अतएव उत्कोच की प्रतिश्रुति को पूरा करने के लिए उत्कोच हेतु धन सामग्री मेरे पास रख दो॥११५॥ उसको सुनकर श्रीकृष्ण बोले,-मैं पहले वंशी की मुद्रा, अर्थात् चिबुक पर अङ्कित बिन्दुका ग्रहण करूँगा, पश्चात् श्रीराधा को काराभवन में अवरुद्ध करके वंशी ग्रहण एवं विशाखा को उत्कोच प्रदान हेतु माल्यादि ग्रहण कार्य सम्पन्न करूँगा॥११६॥ यह कहकर श्रीकृष्ण प्रियतमाके निकट आकर अधर दंशन करने के लिए उद्यत होने से ललिता राधा एवं कृष्णके बीचमें आकर मिथ्या क्रोधसे हँसमुख अधर दंशनोद्यत कृष्णको बोली॥११७॥

मित्रार्च्चना नाद्य कृतानयास्याः क्षतेन मालिन्यमहो विधातुम्।
हठात् प्रवृत्तोऽस्यपयाहि किन्ते भीतिर्न देवान्न च लोकधर्म्मात् ॥११८॥

हरिस्तामाह हे राधे मद्दन्तानां ममापि न।
दोषोऽयं किन्तु ते विन्दुर्यद्वहि-प्रकटं धृतः॥ ॥११९॥

चिबुकमनु वसन्नप्येष विन्दुर्भयात्ते
परिचित–निजमित्रं मां समीपे समीक्ष्य।
सपदि दशनदुर्गे संप्रविष्टोऽस्य सङ्गा–
च्छशिमुखि दशना मे दंशनास्ते वभूवुः ॥१२०॥ युग्मकम्॥

अनया अद्य सूर्य्यपूजा न कृता अस्या दन्तदंशनजन्य क्षतेन हठात् मालिन्यं विधातुं। प्रवृत्तोऽसि अपाहि तव लोकधर्म्मदेवधर्म्माच्च भीतिर्त हि किं॥११८॥ इति ललिताया निवारणं श्रुत्वा हरिस्तां राधामाह। हे राधे मम दन्तानां ममापि न दोषः। यद्‌यस्मात् त्वया बहिःप्रकट विन्दुर्धृतः॥११९॥ इति ब्रुवन् वलात्कारेणाधरपानं कुर्व्वन् विन्दुं प्रलोप्य तामाह। हे शशिमुखि ते तत्र चिवुकमनु चिवुके साधु वसन्नप्येष विन्दुः। परिचित-निजमित्रं मां समीपे दृष्ट्वा भयात् त्वद्भयात् सपदि तत्क्षणात् दशनदुर्गे मे मुखे प्रविष्ट आसीदिति शेषः। स्वमाधुर्य्येण मम दशनान् चुचुम्बिषून् कृतवान् इत्यर्थः। अतो अस्य विन्दोः सङ्गात् अर्थात् गुणात् सकाशान्मे दशाना दन्ता निपातितत्वाद्धात्वर्थरहिता दंशना वभूवुः। अनिपातितत्वात् धात्वर्थसहिता वभूवुः। विन्दुयोगात् दशना दंशना भूत्वा ददंशुरित्यर्थः॥१२०॥

कैसा आश्चर्य है! आज श्रीराधाने सूर्यपूजा नहीं की, और तुम तो इसे दन्ताघात के द्वारा क्षतकरके मलिन करने जा रहे हो, यह तो तुमने अचानक ही शुरू करदिया है, जल्दी से जल्दी भाग जाओ। देवधर्म और लोकधर्मसे तुम डरते नहीं हो? ।।११८।। ललिता के निवारण वाक्य को सुनकर राधा को श्रीकृष्ण बोले,-राधे! इसमें मेरा अथवा मेरे दन्तसमूह का कोई अपराध नहीं है। किन्तु तुम ही तो सुस्पष्ट रूपसे बाहर बिन्दु धारण कर चुकी हो।।११९।। यह कहकर बलपूर्वक अधरपान एवं चिबुक के बिन्दुको विलुप्त करके राधाको कृष्ण बोले,-हे शशिमुखी! यह बिन्दु, तुम्हारे चिबुक में शोभित होकर भी वर्णसाम्य हेतु परिचित मित्र मुझको देखकर तुम्हारे भयसे भीत होकर अकस्मात् मेरे दशनदुर्ग रूप वदनमें प्रविष्ट होगया है, अर्थात् निज माधुर्य के द्वारा मेरे दशनको चुम्बन करने का अभिलाषी हो गया

तां कुन्दवल्ल्याह सुचित्रकाव्ये व्यदर्शि विन्दुच्युतके स्वशक्तिः।
त्वयेर्षया साभ्यधिकामुनापि विन्द्वागमे तत्र कवीश्वरेण॥ ॥१२१

विवृत स्वगुणोत्कर्षे गुणिनि गुणज्ञा न दोषमायान्ति।
प्रीणन्त्यस्मिंस्तस्मात् मण्डय मणिमालया त्वममुम्। ॥१२२

देवर-शिशिरगुणैर्यत् सम्प्रति सखि कुन्दवल्लि फुल्लासि।
स्वदशनकुसुमैः पूजय तदधरमरुणं त्वमेवास्य॥ ॥१२३

रुष्टेव कुन्दलतिकावददच्युतं सा सेयं हरेऽतिमुखरा मुखरा सुनप्त्री।
एषा सदैव ललिता प्रखरा त्वया सा लभ्या कथं नु मुरली मृदु भीरुणात्र॥१२४

कुन्दवल्ली तां राधामाह। हे श्रीराधे विन्दुच्युतके विन्दुनाच्युतं समासार्थे कः। अर्थाच्च्युतो विन्दुर्यत्र सुचित्रकाव्ये वंश्या वशीकरणे तया कवीश्वर्य्या स्वशक्तिः स्वस्याः कविशक्तिरभ्यधिका दर्शिता। अमुना कवीश्वरेण कृष्णेनापि ईर्षया विन्द्वागमे विन्दोरागमो यस्मिन् तथाभूते तत्र सुचित्रकाव्ये दशनानां दंशनीकरणे सा स्वशक्तिः स्वकविशक्तिरभ्यधिका दर्शिता॥१२१॥ विवृतो व्यक्तीकृतः स्वगुणस्योत्कर्षो येन तस्मिन् गुणिनि जने गुणज्ञा जना दोषं नायान्ति प्रत्युत अमुस्मिन् गुणिनि प्रीणन्ति। तस्मात् त्वममुं कृष्णं मणिमालया मण्डय। मणिमाला स्मृता हारे स्त्रीणां दन्तक्षतान्तरे इति विश्वः॥१२२॥ इति श्रुत्वा श्रीराधाह। हे सखि कुन्दवल्लि देवरस्य शिशिरगुणैः सम्प्रति फुल्लासि तत्तस्मात्। त्वं अस्य श्रीकृष्णस्यारुणमधरं स्वदशनकुसुमैः

है, अतएव दशन शब्दही बिन्दुके योगसे दंशन बनगया है। अर्थात् दशन् दंशने धातुका निपात में न लोप करते से दशनशब्द बनता है, किन्तु निपात न करने से सबिन्दु दंशन रह जाता है। उस प्रकार मेरे दंशन दुर्गमें चिबुकके कस्तूरी बिन्दु सङ्गत होनेसे दंशन सम्पन्न हुआ है॥१२०॥ अनन्तर कुन्दलता बोली-राधे! तुम तो कवियों में श्रेष्ठा हो, तुमने तो बिन्दुच्युत नामक उत्तम काव्यका प्रदर्शन किया है, इससे श्रीकृष्णने ईर्षान्वित होकर बिन्दुका आगम करके स्वीय कवित्व शक्तिका प्रदर्शन किया है, अर्थात् तुमने चुम्बन कार्य सम्पन्न किया है॥१२१॥ और भी गुणिजन निज गुणोत्कर्ष प्रकट करनेपर गुणज्ञ व्यक्ति उसमें दोष नहीं मानता है। सन्तुष्ट ही होता है, सुतरां तुमभी कृष्णको मणिमालासे (निज दन्ताघातसे) विभूषित करो॥१२२॥ सुनकर राधा बोली-सखि कुन्दलते! सम्प्रति देवर के सुस्निग्ध गुणसे प्रफुल्ल हो गई

एताः प्रगल्भाः कुटिला वह्वयस्त्वं मृदुरेकलः।
संरक्ष्य वस्त्रालङ्कारं तदितः स्वसखीन् व्रज॥ ॥१२५॥

परपुरुष-गृध्नुचित्ता धर्म्माधर्म्मगविचाररहिताश्च।
मामपि तन्निजसङ्गे कृतार्थयितुमुद्यता एताः। ॥१२६॥

यासां स्वधर्म्मनिष्ठानां साध्वीनाममलात्मनाम्।
वालेन देवरेणापि सम्भाषणमसाम्प्रतम्॥ ॥१२७॥

ता नः संदूषयन्त्येता दुरुक्त्या यामि तद्गृहम्।
दत्त्वा मोचय मां वन्धाद्धिशाखायै प्रतिश्रुतम्॥१२८॥ युग्मकम्॥

पूजय॥१२३॥ सा कुन्दलतिका रुष्टेवाच्युतमवदत्। नु भोः हे हरे सेयं मुखरायाः सुष्ठु नप्त्री श्रीराधा यतोऽतः अतिमुखरा। एषा ललिता सदैव प्रखरा मृदु भीरुणा कोमलेन तत्रापि भयालुना त्वया सा मुरली अत्र कथं लभ्या अर्थात् त्वं चेत् प्रगल्भः स्यास्तदा मुरली लप्स्यसे अन्यथा न॥१२४॥ एता गोप्यः प्रगल्भाः तत्रापि कुटिला वह्वचश्च। त्वं मृदुस्तत्राप्येकलः मुरली गतैव। वस्त्रालङ्कारमपि संरक्ष्य इतो गोचारणार्थं सखीन् व्रज॥१२५॥ परपुरुषेषु गृध्नुनि अभिकाङ्क्षकानि चित्तानि यासां ताः। धर्म्माधर्म्मगेषु धर्म्मेऽयमधर्म्मोऽयमिति विचारेषु रहिताश्च ताः मामपि तस्मान्निजसङ्गे कृतार्थयितुं सदृशीकृत्य प्रवेशयितुमुद्यताः॥१२६॥ यासां मल्लक्षणानां स्वधर्म्मनिष्ठात्वादियुक्तानां प्रतिश्रुतमुत्कोचं दत्ता मां वन्धान्मोचय॥१२७-१२८॥

हो, इस लिए तुम ही श्रीकृष्ण के अरुण अधर की पूजा निज दशनकुसुम से करो।।१२३।। तब कुन्दलता क्रोधका भावकर कृष्णको बोली-कृष्ण! श्रीराधा मुखरा की सुन्दरी नातनी है, सुतरां यह भी मुखरा है, ललिता भी सर्वदा प्रखरा है, किन्तु तुम तो मृदुस्वभावा सम्पन्न, एवं भीरु हो, अतएव इस समय मुरली की प्राप्ति कैसे हो सकती है? अर्थात् यदि तुम प्रगल्भ हो सकते हो, तब तो मुरली मिल जावेगी, अन्यथा मुरली मिलना कठिन होगा।।१२४।। और देखो, गोपीसब प्रगल्भ है, उसमें कुटिल हैं, और संख्या में भी अनेक हैं, तुम तो मृदुस्वभाव के हो, एकक हो, सहायक मुरली थी, वह भी चली गई। अब तुम वस्त्र अलङ्कार को रखना चाहो तो जल्दी से जल्दी यहाँसे गोचारण के लिए प्रस्थान करो।।१२५।। देखो! परपुरुष में लुब्धचित्ता, धर्माधर्म विचारहीना सब गोपाङ्गना मुझको भी समान बनाना चाहतीं है।।१२६।। मेरे समान स्वधर्मनिष्ठादि गुणयुक्त अनलस्वभाव पतिव्रताके

ततो हसन्नाह हरिर्विशाखा मेह्येहि रत्नानि गृहाण साध्वि ।
इतीरयंस्तां परिषस्वजेऽसौ सख्यो हसन्त्यः परिवव्रुरेनम् ॥ ॥१२९॥

ताभिस्तदास्मिन् कलहायमाने कोलाहले प्रोच्छलिते च राधा ।
प्रयत्नसम्मूकितभूषणा सा प्रविश्य कुन्जान्तरभून्निलीना ॥ ॥१३०॥

तावत् सशङ्का तुलसी तु वंशीं वृन्दान्वितं कुञ्जमगादृगृहीत्वा ।
वृन्दाप्युपादाय करात्ततोऽस्या निधाय वंशीं हृदि तामवादीत् ॥ ॥१३१॥

वंशोत्तंसा वंशिकेऽसि त्वमेका सद्वंशानां क्षुद्रवंशोद्भवापि ।
या लीलानां हेतुरेतादृशीनामासीद्राधाकृष्णयोरद्भुतानाम् ॥ ॥१३२॥

ततः सखी हासविलोलनेत्रा सगद्गदं कृष्णमधिक्षिपन्ती ।
तद्वाहुबन्धान्निविडात् प्रयत्नात् निर्गत्य रोषादवदद्विशाखा ॥ ॥१३३॥

ततः तच्छ्रवणानन्तरं असौ श्रीकृष्णः विशाखामाह। विशाखे त्वं एहि इति ईरयन् तां विशाखां परिषस्वजे। सख्य एनं कृष्णं परिवव्रुः ॥१२९॥ तदा ताभिः सखीभिः सह अस्मिन् कृष्णे कलहायमाने कोलाहले च प्रोच्छलिते प्रयत्नेन संमूकितानि निःशब्दीकृतानि भूषणानि यया सा राधा कुन्जमध्ये प्रविश्य निलीनाभूत् ॥१३०॥ तावत्तुलसी सशङ्का सती। वंशींगृहीत्वा वृन्दान्वितं कुन्जमगात्। वृन्दा चास्याः करात् वंशीमुपादाय तां वंशीं सुहृदि निधायावादीत् ॥१३१॥ हे वंशिके सद्वंशानां मध्ये क्षुद्रवंशोद्भवापि त्वमेका वंशोत्तंसा वंशश्रेष्ठासि। या त्वं राधाकृष्णयोरेतादृशानामद्भुतानां लीलानां हेतुरासीत् ॥१३२॥ विशाखा सगद्गदं कृष्णमधिक्षिपन्ती आक्षेपं कुर्व्वती

लिए बालक देवरसे भी सम्भाषण करना उचित नहीं है, गोपाङ्गना तो मुझे भी दोषी बना रही हैं। अतएव मैं घरको जाती हूँ, जो उत्कोच विशाखा को देना था, उसे देकर मुझको बन्धनसे मुक्त करो ।।१२७-१२८।। यह सुनकर कृष्ण हँस-हँस कर विशाखा को बोले-साध्वि! आओ! रत्न ग्रहण करो, यह कहते-कहते विशाखाको आलिङ्गन किया, सखीगण भी हँस-हँस कर श्रीकृष्ण को घेर लिए।।१२९।। उस समय सखियों के साथ कृष्णका कलह कोलाहल शुरू होगया, अवसर देखकर राधा भी भूषणों को निःशब्द करके कुञ्जमध्य में छिप गई।।१३०।। तब तुलसी भी सशङ्किता होकर वंशिके साथ जिस कुञ्ज में वृन्दादेवी हैं, वहाँ चली गई, वृन्दादेवी भी तुलसी के हाथसे वंशीको लेकर वक्षःस्थल में स्थापन किया और कहने लगी।।१३१।।

न स्मः स्वीयास्त्वत्कृतौ वा सहाया ग्राह्यं वित्तं ते कथं नः परस्य।
तस्मादर्थोद्देशिकायै निजायै देह्ये तत्त्वं भ्रातृपत्न्यै शठेश॥ ॥१३४॥

कुन्दालि त्वं किं प्रगल्भापि मुग्धा जाता कस्माद्यत् स्वदेवुर्धनं स्वम्।
हित्वा मौग्ध्यादन्यदीयं चिकीर्षुर्मालिन्यं नस्तेन किम्वा करोषि ॥१३५॥

तामब्रवीत् कुन्दलता विशाखे ददात्यसौ वो वरसुद्विजाभ्यः।
धनं वदान्यो निजधर्म्मवृद्ध्यै निषिद्ध्य पापं किमहं विदध्याम्॥ ॥१३६॥

चेत् प्रीतिदानमस्येदं किं भीतास्थः प्रतिग्रहात्।
गृहीत्वा द्विगुणं कृत्वा यूयं वितरताचिरात्॥ ॥१३७॥

निविडात् कृष्णवाहुवन्धान्निर्गत्य रोषादवदत्॥१३३॥ हे शठेश तव वयं स्वीया न स्मः न भवामः। तत्कृतौ तव कार्य्ये सहायाश्च न। परस्य ते वित्तं नोऽस्माकं कथं ग्राह्यं। तस्मात्त्वं निजायै भ्रातृपत्न्यै एतदालिङ्गनरूपं वित्तं देहि॥१३४॥ हे कुन्दालि त्वं प्रगल्भापि अकस्मात् किं कथं मुग्धा जाता यत् स्वं स्वकीयं स्वदेवुः स्वदेवरस्य धनं हित्वा मौग्ध्यात् तद्धनं अन्यदीयं कर्त्तुमिच्छुः सती। तेन धनेन नोऽस्माकं मालिन्यं किम्वा करोषि॥१३५॥ कुन्दलता तामाह। हे विशाखेऽसौ वदान्यो दाता कृष्णः। वरसुद्विजाभ्यः वराः सुष्ठु द्विजाः दन्ताः यासां ता एव। श्लेषेण उत्कृष्टाः सुब्राह्मण्यस्ताभ्यः वो युष्मभ्यं धनं ददाति निषिद्धाहं किं पापं विदध्यां करोमि॥१३६॥ अस्य कृष्णस्य

हे वंशीके! सद्वंशगणके मध्यमें तुम क्षुद्र वंशोद्भवा होकर भी वंशश्रेष्ठा होगई हो। कारण तुमही तो राधाकृष्ण की इस प्रकार लीलाका कारण हो।।१३२।। सखियाँ हँसने लगी, इससे विशाखा चञ्चल हो उठी, और गद्गदायमान स्वरसे कृष्णको भर्त्सना करके कठिनता से भुजबन्धन मुक्त होकर क्रोधसे कहने लगी।।१३३।। हे शठराज! हमसब तुम्हारे आत्मीय नहीं है, किसी भी काममें सहायक नहीं बन सकते हैं। तुम पर हो। तुम्हारा धन ग्रहणयोग्य नहीं है। अतएव तुम निज भ्रातृजाया कुन्दलताको इस आलिङ्गन रूप धनको प्रदान करो। उसने ही तो उपकार किया है।।१३४।। अनन्तर विशाखा कुन्दलता को बोली-सखि! कुन्दलते! तुम तो प्रगल्भा होकर भी मुग्धा क्यों हो रही हो? कारण निज देवरके धनको छोड़कर दूसरे को देने की इच्छा कर रही हो? इस धनको देकर हमें मलिन बनाना चाहती हो?।।१३५।। सुनकर कुन्दलता बोली-विशाखे! दाता कृष्ण, उत्कृष्ट

चित्राब्रवीद्धनमिदं निजवेतनत्वात्
स्वीयं सखि त्यजसि किं परकीयबुद्ध्या।
आढ्यास्यनेन न कृतिस्तव चेत् स्वसख्यै
अस्याग्रतः सपदि दापय कुन्दवल्ल्यै॥ ॥१३८॥

पुनः कौन्द्यब्रवीच्चित्रे स्वरत्नं दीयतेऽमुना।
नाङ्गीकुरुत चेत् कास्य हानिस्तत् स्वगृहे स्थितम्॥ ॥१३९॥

कृष्णादानां प्रदानन्ते क्षुद्रास्वेतासु नोचितम्।
सुकलः सुकलायां त्वं राधायां तत्तदाचर॥ ॥१४०॥

चेदिदं प्रीत्या दानं। प्रतिग्रहात् किं भीतास्थः गृहीत्वा यूयं द्विगुणं कृत्वा वितरत॥१३७॥ एतच्छ्रुत्वा चित्राह। इदं धनं निजवेतनत्वात् स्वीयं परकीयबुद्ध्या किं त्यजसि। अनेन धनेन त्वमाढ्यासि पूर्णासि। चेद्यदि तव हृतिः कार्य्यं न। तदा स्वस्याग्रतः सख्यै कुन्दवल्ल्यै सपदि दापय॥१३८॥ हे चित्रे अमुना कृष्णेन स्वस्य रत्नं दीयते। यूयं नाङ्गीकुरुत चेत् अस्य श्रीकृष्णस्य का हानिः। तत् रत्नं कृष्णस्य गृहे स्थितं भवतु॥१३९॥ हे कृष्ण एतासु क्षुद्रासु ते आदानं प्रदानञ्च नोचितं। सुकलः दातृभोक्ता सुकलायां राधायां तत्तत् आदानप्रदानमाचर। तस्यादानं त्वं भुङ्क्ष्व। स्वदानं तां भोजय इत्यर्थः। सुकलो दातृभोक्तरीत्यमरः॥१४०॥ हरिर्द्दशा तां

दन्तशालिनी (सुब्राह्मणी) जानकर धन दान करना चाहते हैं, मैं मनाकर पाप क्यों करूँगी?॥१३६॥ और यदि मान लो, कि कृष्ण प्रेमसे दान कर रहे हैं, तब दान लेने में भयकी बात क्या है, दान लेकर द्विगुणतर कृष्णको दे दो॥१३७॥ सुनकर चित्रा बोली,-सखि विशाखे! निज वेतन हेतु यह धन तो तुम्हारा है, पराई बुद्धिसे क्यों त्याग कर रही हो? इस धनसे तुमतो धनी बन चुकी हो, यदि इस धन की आवश्यकता नहीं तो तुम्हारे सामने की सखी कुन्दवल्ली को सत्वर प्रदान करो॥१३८॥ फिरसे कुन्दलता बोली-चित्रे! श्रीकृष्ण निज धन दे रहे हैं, यदि तुमसब इसे स्वीकार न करो तो इससे इनकी हानि क्या होगी? इनका धन इनके पास ही रहेगा॥१३९॥ बादमें कृष्ण को बोली,-कृष्ण! क्षुद्र व्यक्तिके साथ आदान प्रदान करना सङ्गत नहीं है, जब तुम सुकल हो, अर्थात् दाता भोक्ता हो, तब सुकला (दात्री भोक्त्री) श्रीराधाके साथ ही लेन-देन का बर्त्ताव करो। अर्थात् राधाका दान तुम भोग

अन्विष्यतामथ दृशा हरिरप्य पश्यन्
कुत्राप्युवाच ललितां क्व नु गोपितासौ।
चौरी त्वया कुटिलया स्वसखी पुरो मे
आनीयतामितरथा त्वमिहासि दण्ड्या॥ ॥१४१॥

साप्याह प्रतिभूर्नाहं का जानाति क्व सा गता।
कुरु राज्यं तयात्र त्वं योग्यया याम्यहं गृहम्॥ ॥१४२॥

एकाब्रवीत् सा स्वगृहं प्रयाता पराब्रवीत् सूर्य्यसमर्च्चनायै।
अन्याब्रवीन्मानसजाह्नवीं ते स्पृष्टा पवित्रा पुनराप्लवाय॥ ॥१४३॥

इत्यालीभिः प्रलब्धोऽसौ पश्यन् कुन्दलताननम्।
तया दृशा निकुञ्जाय प्रेरितस्तं प्रविष्टवान्॥ ॥१४४॥

राधां अन्विष्य कुत्राप्य पश्यन् ललितामुवाच। नु भो ललिते असौ चौरी स्वसखी तव सखी राधा कुटिलया त्वया कुत्र गोपिता। मे पुरोऽग्रे आनीयतां। इतरथा नानीतासि चेत्त्वं इह दण्ड्यासि॥१४१॥ सा ललिताह। प्रतिभूः साक्षिणी नाहं। लग्नकः प्रतिभूः साक्षीत्यमरः। सा क्व गता का जानाति। अत्र योग्यया तव राज्यकरणयोग्यया तया सह त्वं राज्यं कुरु अहं गृहं यामि॥१४२॥ एका सखी अब्रवीत् सा राधा गृहं प्रयाता। पराह सूर्य्यपूजायै। अन्याह ते त्वया स्पृष्टा अतोऽपवित्रा भूत्वा पुनः स्नानाय मानसगङ्गां प्रयाता॥१४३॥ आलीभिः प्रलब्धः हसितोऽसौ कृष्णः कुन्दलताननं पश्यन् तया कुन्दलतया दृशा निकुञ्जाय प्रेरितस्तं निकुञ्जं प्रविष्टवान्॥१४४॥ निकुञ्जगह्वरं

करो, तुम्हारा दान राधा भोग करें।।१४०।। तत्पश्चात् नयन भङ्गीसे श्रीकृष्ण श्रीराधाको अन्वेषण कर जब देख न पाये, तो ललिता को बोले,- ललिते! तुम तो अत्यन्त कुटिला हो, अपनी सखीको कहाँ छिपाकर रखी हो? वह तो चोरनी है। उसको मेरे सामने ले आओ, यदि ऐसा न करो तो दण्डनीया बनोगी।।१४१।। सुनकर ललिता बोली-मैं जानती नहीं, कौन जानती है, वह कहाँ गई है? राज्यकरण योग्या राधाके साथ तुम यहाँ राज्य करो, मैं तो घर को जा रही हूँ।।१४२।। तब एक सखी बोली, राधा तो घर चली गई है, अन्य सखी कहने लगी, सूर्यपूजाके लिए चली गई है, दूसरी सखी वोली,-तुमने तो राधाको छू लिया था, इस लिए पवित्र होनेके लिए नहाने के लिए मानसी गङ्गाको गई है।।१४३।। श्रीकृष्ण इस प्रकार सखियों

तस्मिन् प्रविष्टेऽथ निकुञ्जगह्वरं चतुर्षु सख्योऽथ स कुन्दवल्लिकाः।
वद्धा लतापाशचयैः कवाटिका द्वारेषु कुञ्जाङ्गन एव ताः स्थिताः ॥१४५॥

कान्तं वीक्ष्यान्तिकायान्तं सापसर्त्तुं कृतोद्यमा।
अलब्धनिर्गमा द्वार्षु तल्पं नीतामुना वलात्॥ ॥१४६॥

स्मरदावप्रतप्तोऽसौ राधासुरतरङ्गिणीं।
रहो लब्ध्वा यथावाञ्छं रेमे कृष्णमतङ्गजः॥ ॥१४७॥

नीवीकञ्चुकमुक्तिरोधविचलद्दोरुत्स्वनत्–कङ्कणा
वंशीं मे दद देह्यलं मम ममामेत्युल्लसद्गद्गदाः।

तस्मिन् कृष्णे प्रविष्टे सति। सकुन्दवल्लिकाः सख्यः लतापाशसमूहैश्चतुर्षु द्वारेषु कवाटिका वद्धा कुञ्जाङ्गणे ताः सख्यः स्थिताः॥१४५॥ सा राधा अपसर्त्तुं कृतोद्यमा द्वार्षु अलब्धनिर्गमा अमुना कृष्णेन वलात् तल्पं नीता॥१४६॥ स्मररूपदावानलेन प्रतप्तः असौ कृष्णमतङ्गजः राधारूपगङ्गां रहो निर्जने लब्ध्वा यथावाञ्छं यथेच्छं तस्यां रेमे॥१४७॥ राधामाधवयोः कुञ्जेः मधुराः केलयो जयन्ति। कीदृश्यः केलयः नीवीकञ्चुकयोः कृष्णकर्त्तृकमुक्त्यां मोचने राधाकृतरोधे च विचलाद्दोर्षुः भुजासु उत्स्वनन्ति उच्चैः शव्दायमानानि कङ्कणानि करभूषणानि यासु ताः। वंशीं मे देहि इत्युक्ते कृष्णस्य कन्दर्पावेशेन स्वरभङ्गात् दद देहीति दकाराधिक्यं। वंशी मयि नास्तीत्यर्थे मामेत्युक्ते श्रीराधायाश्च मम ममामेति मकाराधिक्यं। इत्यलमुल्लसन्तो गद्गदा वचनस्खलनानि यासु ताः। तारुण्यादिधनानां श्रीराधा सम्बन्धिनां

से उपहसित होकर कुन्दलताके मुख की ओर ताकने लगे, कुन्दलताके इशारे से निकुञ्ज भवनमें प्रविष्ट हो गए।।१४४।। तत्पश्चात् श्रीकृष्ण निकुञ्ज गह्वरमें प्रविष्ट होनेपर कुन्दलताके साथ सखीगण सब कुञ्जद्वार बन्दकर कुञ्ज प्राङ्गण में अवस्थित होगईं।।१४५।। कान्त को निकट में आते देखकर राधा भागकर निकलने की चेष्टा की, किन्तु द्वार प्राप्त न होने से श्रीकृष्ण बलपूर्वक उनको शय्यामें ले गये।।१४६।। अनन्तर उन्मत्त मतङ्गज जिस प्रकार दावानल से सन्तप्त होकर स्वेच्छानुसार जलविहार करता है, उस प्रकार श्रीकृष्ण रूप मतङ्गज कन्दर्परूप दावानल से प्रतप्त होकर निर्जनमें राधारूप सुरतरङ्गिणी अर्थात् मन्दाकिनी को प्राप्तकर यथेच्छ रमण करने लगे।।१४७।। विलास के समय श्रीकृष्ण श्रीराधिका की नीवी कञ्चुकिका मोचन करने लगे, तो श्रीराधा हाथों से अवरोध करने लगी। उससमय कर भूषण की उच्चध्वनि होने लगी। श्रीकृष्ण, कहने लगे-''वंशीं मे देहि'' मेरी

तारुण्यादिधनात्मसात्कृतिसुसंरक्षोद्गत-व्यग्रता
उद्यद्धार्ष्ट्यं-भटापसारित धृति ह्री वामताद्यालयः ॥ ॥१४८॥
आविर्भूतमिथोऽतिपौरुष-लसाद्गाढप्रयोगोत्सवाः
सीत्काराञ्चित-कण्ठकूजित-सरत्पीयूषधारोत्कराः ।
अन्योऽन्याग्रह-नर्म्मपूर्व्वक-कृताकल्पादिशोभाढ्यो
राधामाधवयोर्जयन्ति मधुराः कुञ्जे रहः केलयः ॥१४९॥ युग्मकम् ॥

आत्मसात्कृतौ श्रीराधाकृष्णकृतस्वीकारे सुसंरक्षणे श्रीराधाकृतस्वकीय-तत्सर्व्वरक्षणे च उद्गता व्यग्रता यासु ताः। उद्यद्धार्ष्ट्यमेव भटः सेनापतिस्तेनापसारिता दूरीकृता धृति ह्री वामतादय एवालयः सख्यो यासु ताः। ततः आविर्भूतो मिथोऽतिपौरुषेण लसद्गाढप्रयोगेषूत्सवो यासु ताः। शीत्कारेण व्यथयेव नायिकाकृत-जैह्व-दन्तध्वनिना अञ्चिताया युक्तायाः कण्ठकूजितरूप-सरत्पीयूषधाराया उत्करो निचयो यासु ताः। अन्योन्यग्रहेण नर्म्मपूर्व्वककृता आकल्पादिशोभा नखचिह्नादिभूषा यासु ताः रहः केलयः ॥१४८॥१४९॥ ॥ अत्र काकाक्षि गोलक न्यायेन भट्टशब्दस्य उभयत्राप्यन्वयः। तथाच रघुनाथभट्टो भट्टवरो गोपालभट्टस्ताभ्यां जाते आदौ स्वल्परूपेण निर्म्मिते। पश्चात् कृष्णदासकविराजेन विस्तारिते इत्यर्थः। इति गोविन्दलीलामृते तत्प्रसिद्धः श्रीकृष्ण

वंशी दो, किन्तु कन्दर्पविश से होनेपर ''दद देहि'' केवल दकार का ही प्रयोग करने लगे। उत्तर में श्रीराधा बोली- 'वंशीमयि नास्ति' मेरे पाश वंशी नहीं है, कहते ''मम ममा मा'' गद्गदायमान वाक्यसे मकार का ही प्रयोग होने लगा। इसमें श्रीकृष्णचन्द्र श्रीराधा की तारुण्यादि सम्पत्ति को आत्मसात करने में व्यग्र रहे, और श्रीराधा निज तारुण्यादि सम्पत्ति की रक्षामें व्यग्र रही। इस केलिमें समुन्नता धृष्टतारूप सेनापति के द्वारा आक्रान्त होकर लज्जा धैर्य्यादि सखी समूह भी अपसारित हो गई थीं। अनन्तर परस्पर अति प्रगाढ़ प्रयोग पौरुष उत्सव आरम्भ हुआ। जिसमें नायिका की सीत्कार ध्वनि वर्त्तमान है। परस्परको आलिङ्गन करने के लिए परस्पर की व्यग्रता परिहास पूर्वक नखचिह्नादि सम्भोग भूषणसमूह की सम्पादना हो रही है। श्रीराधाकृष्ण के एतादृश मधुर निकुञ्जमें निर्जन कामविलास समूह जययुक्त हो ।।१४८-१४९।। श्रीकृष्णचैतन्यमहाप्रभुके चरणारविन्दके मधुपायि भ्रमर स्वरूप श्रीरूपगोस्वामी की सेवासे श्रीरघुनाथदास गोस्वामी द्वारा आदिष्ट, श्रीजीवगोस्वामिजी के सङ्गसे समुद्गत, श्रीरघुनाथ भट्ट, श्रीगोपालभट्ट गोस्वामिके वरसे उत्पन्न श्रीगोविन्दलीलामृत काव्य में श्रीकृष्ण एवं सखीगण

श्रीचैतन्यपदारविन्दमधुप श्रीरूपसेवाफले
दृष्टे श्रीरघुनाथदासकृतिना श्रीजीवसङ्गोद्गते ।
काव्ये श्रीरघुनाथभट्टवरजे गोविन्दलीलामृते
सर्गोऽगाद्दशमस्तदालि-सुखकृन्मध्याह्नलीलामनु ॥१०॥ ※ ॥

आलीनां विशेषत आल्याः श्रीराधायाश्च सुखकृत् यत्र स मध्याह्नलीलायां दशमः सर्गः समाप्तोभूत् ॥१०॥

॥※॥ इति सदानन्दविधायिन्यां दशमः सर्गार्थः ॥※॥

सखीगण के सुखप्रद विशेषतः श्रीराधिकाके सुखप्रद मध्याह्न लीलाके वर्णनमें दशमसर्ग समाप्त हुआ ॥१०॥

— ※※ —

श्रीगोविन्दलीलामृतम्

एकादशः सर्गः

—◦※※◦—

नान्दीमुखीमनुसृताथ सभां सखीना-
मागत्य तां मुरलिकां हृदि निह्नुवाना ।
वृन्दाब्रवीत् क्व नु गतौ व्रजकाननेशौ
सख्यौ निवेद्यमिह नावनयोः पदेऽस्ति ॥ ॥१॥

ता ऊचुरेतौ स्मरसार्व्वभौमपार्श्वं प्रयातौ कलहायमानौ ।
किं तन्निवेद्यं वद तत् सुगोप्यं चेद्गच्छतं निष्कुटपट्टगेहं ॥ ॥२॥

अथानन्तरं वृन्दा तां मुरलिकां हृदि निह्नुवाना गोपयन्ती सती । नान्दी मुखमनुसृता नान्दीमुखीसहिता सती । सखीनां सभामागत्याब्रवीत् । हे सख्यः व्रजवनेशौ राधाकृष्णौ क्व कुत्र गतौ अनयोः राधाकृष्णयोः पदे नौ आवयोर्निवेद्यमस्ति ॥१॥ ताः सख्य ऊचुः । एतौ राधाकृष्णौ कलहायमानौ कन्दर्पराजपार्श्वं प्रयातौ । युवां तन्निवेद्यं

अनन्तर वृन्दादेवी मुरलीको वक्षःस्थल में संगोपन कर नान्दीमुखी के साथ सखीगणकी सभामें आकर सखियों को बोली,-सखियो ! वृन्दावनेश्वरी श्रीराधा, वृन्दावनेश्वर श्रीकृष्ण कहाँ हैं ? उनके चरणों में हमारा कुछ निवेदन है ॥१॥ सखीगण बोलीं,-श्रीराधा, श्रीकृष्ण दोनों कलह कर कन्दर्प राजाके पास गए हैं, निवेदनीय विषय क्या है ? कहो, यदि विषय अति

वृन्दाह नैतद्भवतीषु गोप्यं राधा मनः-प्राण-वपुः समासु।
निवेदनीयं सचिवास्ववश्यं किन्त्वीशयोः सन्निधिराजितासु॥ ॥३॥

क्रीडावसानमवधार्य्य ततः समन्ताद्द्रष्टुं तयोर्निधुवनान्तविलासमुत्काः।
आगत्य कुञ्जमनुमुक्तकवाटवन्धाश्छिद्रेषु दत्तनयनाः परितः स्थितास्ताः॥४॥

आम्रेडितः स्वाङ्गविभूषणाय तत् कर्त्तुं प्रवृत्तोऽप्यनया निवारितः।
समुच्छलद्विभ्रमया तदप्यमुं विभूषयन्नास ※ तया स भूषितः॥ ॥५॥

स पुण्डरीकाच्छदलेऽथ कौङ्कुमद्रवेण काश्चित् प्रतिलिख्य पत्रिकां।
दधच्छिरोवेष्टनके स्वके प्रियामुत्तिष्ठ यावो वहिरित्यभाषत॥ ॥६॥

वद तं। सुगोप्यं चेत्तदा निष्कुटपट्टगेहं निष्कुटे कृष्णक्रीडालययुक्तारामे अत्र वने उत्तमकुञ्जगृहं गच्छतं। गृहारामास्तु निष्कुटा इत्यमरः॥२॥ श्रीराधायां मन आदि समासु सचिवासु अन्तरङ्गासु अमात्यासु भवतीषु एतत्गोप्यं न। किन्तु ईशयोः राधाकृष्णयोः समीपगतासु सतीषु निवेदनीयं॥३॥ ततस्ताः सख्यस्तयोः राधाकृष्णयोः क्रीडासमाप्तिं ज्ञात्वा निधुवनस्य रहस्यलीलायाः अन्ते यो विलासस्तं द्रष्टुमुत्सुकाः सत्य आगत्य मुक्तकवाटवन्धा, मुक्ताः कवाटवन्धाः कुञ्जगृहस्य चतुर्दिक्षु वलयाकृतेश्चतुष्कोणाकृतेर्वा आवरणभित्तेश्चतुर्द्वारयुक्तानां चतुर्णां कवाटानां वन्धाः स्वकृतलतापाशनिविडवन्धनानि याभिस्ताः। कुञ्जमनु कुञ्जे छिद्रेषु दत्तनयनाः। परितश्चतुर्दिक्षु स्थिताः॥४॥ अनया श्रीराधया स्वस्याः अङ्गविभूषणाय आम्रेडितः

गोपनीय हो तो श्रीकृष्ण इस बनके उत्तम कुञ्जगृह में विराज रहे हैं, वहाँ जाओ ॥२॥ वृन्दादेवी बोली,–सखीगण! तुम सब तो श्रीराधा के मन:प्राण, देह एवं अन्तरङ्ग अमात्य सदृश हो, अतएव हमारे निवेदनीय बिषय तुम सबके पास गोपनीय नहीं है, परन्तु तुमसब अधीश्वर के समीप में समवेत होने पर ही बोलूँगी॥३॥ बाद में श्रीराधाकृष्ण की क्रीड़ा की समाप्ति को जानकर लीलाका अवसान विलास को देखने की उत्सुकता से कुञ्जमें उपस्थित होकर कुञ्जके किवाड़ बन्धन को खोलकर कुञ्जगृह के छिद्रमें नयन देकर सखीगण चारों ओर अवस्थित हो गईं ॥४॥ तब श्रीराधा निजाङ्ग को विभूषित कर देने के लिए दो तीन बार कहने पर श्रीकृष्ण उस कार्य करने में प्रवृत्त हो गए, श्रीराधा समुच्छलित विभ्रमयुक्ता होकर श्रीकृष्ण को मना करने लगी, तथापि श्रीकृष्ण उनको विभूषित कर दिये एवं स्वयं भी श्रीराधाके द्वारा विभूषित हो गये॥५॥ श्रीकृष्णश्वेतकमल के निर्मल

सखी त्रपा कुण्ठितनिगमेच्छां चौरीमिव न्यायजितां गृहीत्वा।
करे वलात् फुल्लविलोचनोऽसौ कुञ्जालयात् प्राङ्गणमाससाद॥ ॥७॥

सङ्कुचत् फुल्लनयनौ प्राणप्रेष्ठौ पुरःस्थितौ।
हृष्यन्त्यः परिवार्य्यार्ल्यः सखीमाहुः ससम्भ्रमम्॥ ॥८॥

मुञ्चन्त्या नः कुत्र यातं भवत्या नास्माभिश्चान्विष्य लब्धा कुतोऽपि
धृष्टेनासीत् क्व क्वामुना वा प्रसङ्गो जातास्मात्ते भाग्यतो नाभिभूतिः ॥९॥

निशम्य तासां परिहासभङ्गीं निशाम्य चासौ रतिलक्षणानि।
कान्तं निजालीः प्रति सूचयन्तं ह्रियेर्ष्यया चोच्चलिता तदासीत् ॥१०॥

द्विस्त्रिरुक्तः। स श्रीकृष्णः तत्तदङ्गभूषणं कर्त्तुं प्रवृत्तोऽपि समुच्छलद्विभ्रमया अनया राधया निवारितस्तदपि अमुं राधां विभूषयन् तया भूषित आस॥५॥ स श्रीकृष्णः पुण्डरीकस्य श्वेतकमलस्याच्छदले निर्म्मलपत्रे कुङ्कुमस्य द्रवेण काञ्चित् पत्रिकां प्रतिलिख्य स्वके स्वीये शिरोवेष्टने मस्तकवन्धन-वस्त्रे दधत् सन्। हे राधे त्वमुत्तिष्ठ आवां वहिर्यावः इति प्रियां राधामभाषत॥६॥ सखीभ्यो या त्रपा लज्जातया कुण्ठिता निर्गमनेच्छा यस्यास्तां राधां न्यायजितां चौरीमिव वलात्कारेण गृहीत्वा फुल्लविलोचनोऽसौ कृष्णः कुञ्जगृहात् प्राङ्गणमगमत्। चौरीमिव इत्यत्र दृष्टान्तस्तु स्थूलतो अधीनांश एव। सूक्ष्मतमस्तु रहस्यलीलायाश्चौर्य्याद्यंशे॥७॥ सङ्कुचन्ती नयने यस्याः। फुल्ले नयने यस्य तौ पुरःस्थितौ प्राण प्रेष्ठौ। राधाकृष्णौ हृष्यन्त्यः सख्यः परिवार्य्य ससम्भ्रमं यथा स्यात्तथा सखीं राधामाहुः॥८॥ नोऽस्मान् मुञ्चन्त्या भवत्या

पत्रमें कुङ्कुम द्रवके द्वारा कुछ लिखकर निज उष्णीष वस्त्रमें रखकर श्रीराधाको कहने लगे,-प्रिये! उठो, हम दोनों बाहर चलें॥६॥ सखिगणके निकट उपस्थित होने की लज्जासे श्रीराधा की गमनेच्छा कुण्ठित हो रही थी, तथापि श्रीकृष्ण, प्रफुल्ललोचन से विचार पराजिता चोरनी की भाँति श्रीराधाके हाथको पकड़कर निकुञ्ज गृहसे प्राङ्गण में उपस्थित हो गए॥७॥ सङ्कुचित नेत्रा प्राणप्रियतमा श्रीराधा, प्रफुल्लनयन प्राणप्रियतम श्रीकृष्ण को सम्मुखमें उपस्थित देखकर सखीगण हृष्ट होकर चारों ओर से घेरकर खड़ी हो गईं, और सम्भ्रम के साथ श्रीराधाको बोलने लगी॥८॥ धृष्टे! हमें छोड़कर कहाँ गई थी? हम ढूँढ़ ढूँढ़ कर हार गईं, पता लगा न सकीं, धृष्ट कृष्णके साथ मिलन कहाँ पर हुआ? जो भी हो, कृष्णसे

कान्तं हसन्तं कुटिलीकृतभ्रूश्चलाधरा गद्गदरुद्धकण्ठी।
सा तर्ज्जनी-चालनया ततर्ज स्वालीर्हसन्तीरवदच्च भङ्ग्या॥ ॥११॥

गृहोन्मुखीं कर्षथ वस्त्रकर्षं लीनां क्वचित् सूचयथाश्वमुष्मै।
सङ्गेस्थितां खेदयथामुना मां सङ्गः कथं वोऽथ मया विधेयः॥ ॥१२॥

कुत्र यातं अस्माभिश्चान्विष्य कुत्रापि न लब्धा त्वं। धृष्टेनामुना क्व प्रसङ्ग आसीत्। अस्मात् कृष्णात् तेऽभिभूतिः पराभवो भाग्यान्नाभूत्॥९॥ तदासौ राधा तासां सखीनां परिहासभङ्गीं निशम्य श्रुत्वा निजालीः प्रति रतिलक्षणानि सूचयन्तं कान्तं निशाम्य दृष्ट्वा ह्रिया सखीनां परिहासजन्यया ईर्षया कृष्णेन रतिलक्षणसूचनजन्यया च उच्चलितासीत्॥१०॥ सा राधा हसन्तं कान्तं तर्ज्जन्यङ्गुलिचालनया ततर्ज्ज। हसन्तीः स्वसखीरवदच्च॥११॥ किमाह। मया वो युस्माकं सङ्गः कथं विधेयः गृहोन्मुखीं गृहे गन्तुमुद्यतां मां वस्त्रकर्षं कुर्व्वथ। वस्त्रे गृहीत्वा कर्षथेति लीनां मां अमुष्मै कृष्णाय आशु सूचयथ। सङ्गे स्थितां मां अमुनां कृष्णेन खेदयथ॥१२॥

अथ श्रीमन्महाप्रभोः कृपया कविकर्णपूरगोस्वामिकृतालङ्कारकौस्तुभाख्य ग्रन्थे यानि अलङ्कारलक्षणानि तानि अस्मिन् ग्रन्थे उत्थाप्य तदनुसारेण एतत् ग्रन्थोक्तालङ्काराणां व्याख्या कर्त्तव्या। अलङ्काराणां मध्ये यदलङ्कारमादौ प्राप्स्यामि तदलङ्कारस्य व्याख्या तत्रैव कर्त्तव्या। पश्चात् तदनुसारेण तदलङ्कारस्यार्थज्ञानं भविष्यति। पुनरपि यत्र श्लोके लिखितालङ्कार आयास्यति। तत्र झटिति तल्लक्षणस्य प्राप्त्यर्थं यस्मिन् श्लोके तल्लक्षणं व्याख्या चास्ति तस्य श्लोकस्याङ्को देयः। लक्षणस्य व्याख्याने यत्र ग्रन्थकर्त्तु व्याख्या। तत्र अस्यार्थ इति शब्दो देयः। यत्र मत्प्रभु श्रीकृष्णदेव-सार्व्वभौम-भट्टा-चार्य्य-ठक्कुरकृता व्याख्या। तत्र अस्य टीका इति शब्दो देयः॥※॥

तुम्हारी हार नहीं हुई, यह ही हमारा सौभाग्य जानना होगा।।९।। तब श्रीराधा सखियों के परिहास भङ्गीको जानकर निज सखिगणके समीप में रतिचिह्न प्रकाशक कान्तको देखकर सखियों के परिहास से लज्जा एवं कृष्ण द्वारा रतिचिह्न सूचना हेतु ईर्षासे चले जाने की उद्यत हो गई।।१०।। कृष्ण हँस रहे थे, यह देखकर भ्रूकुटिको कुटिल कर कम्पिताधर एवं गदगद स्वरसे रुद्धकण्ठी हो तर्जनी सञ्चालन पूर्वक राधा कान्त को तर्जन करने लगी, निज सखिगण को हँसते देखकर भङ्गीसे उनसब को कहने लगी।।११।। सखिगण ! मैं घरको जाने के लिए उद्यत होनेसे तुमसब वस्त्र पकड़कर खींचती रहतीं हो, और गुप्तभावमें रहने से तत्क्षणात् कृष्णको सूचित कर देती हो, अब कहो, मैं तुम सबकी सङ्गति में कैसे रह सकती हूँ।।१२।।

युष्माभिरीरित–सुमत्तभुजङ्गवर्य्या
न्मां चञ्चलात् सपदि कण्टकवल्लिसख्यः।
स्पर्शोत्सुकादपसृतां चकितां ररक्षुः
-कुञ्जश्च रक्त-सितसच्छतपत्रिकाश्च ॥१३॥ व्याजोक्तिः ॥

श्रीकृष्णात् पलायनं कृत्वा गताया मम लताभिः रक्षाभूदिति व्याजोक्त्यलङ्कारेणाह युष्माभिरिति। युष्माभिरीरितात् प्रेरितात् मत्तभुजङ्गवर्य्यात् कामुकश्रेष्ठात्। भुजङ्गः पन्नगे शिङ्गे इत्यमरः। भुजङ्गः कामुकः। कीदृशात् चञ्चलात् स्पर्शोत्सुकात्। अपसृतां पलायनपरां चकिताञ्च मां सपदि तत्क्षणात् कुञ्जाश्च रक्तवर्णाः सिताः शुक्लवर्णाः सच्छतपत्रिकाश्च एताः कण्टकवल्ल्य एव सख्यस्ता ररक्षुः। व्याजोक्तिनामालङ्कारोऽयं। व्याजोक्तिलक्षणं यथा। प्रकृतस्थगनच्छद्म व्याजोक्तिरनिषेधभाक्। अस्यार्थः। अपह्नुतिस्तु निषेधपूर्व्वा इयं तु न तथा इत्यनिषेधभागित्युक्तं। इयं तु छद्मपूर्व्वेव। अस्य टीका। यत्र प्रकृतार्थस्य स्थगनं सम्वरणं तत्तुमिषमात्रं। किन्तु प्रकृतार्थ एव वक्तुस्तात्पर्य्यं। तत्र व्याजोक्तिः। एषा अनिषेधभाक् अपह्नुतिस्थले तु प्रकृतार्थस्य निषेधपूर्व्वकसम्वरणं। अत्र तु प्रकृतार्थस्य निषेधं विनैव सम्वरणमिति भेदो बोध्यः। अत्र प्रकृतस्य कृष्णसङ्गजन्यनखचिह्नस्य स्थगने आच्छादने कण्टकिलताकृतं स्वरक्षणं चिह्नं छद्ममात्रं न तु निषेधः। किन्तु कृष्णाङ्गसङ्गजन्यनखक्षतकथन एव तात्पर्यं। एवं बोध्यं ॥१३॥

सुमत्त, चञ्चल, स्पर्शोत्सुक कामुकश्रेष्ठ कृष्णसे भीत होकर व्यग्रता से भागने लगी तो कुञ्ज, रक्तवर्ण, श्वेतवर्ण, प्रशस्तपद्म एवं कण्टकलता सबने मुझको बँचाकर रखनेका कार्य किया है। इसमें व्याजोक्ति अलङ्कार है।

उसका लक्षण—"प्रस्तुत स्थगनच्छद्म व्याजोक्तिरनिषेधभाक्॥"

यहाँपर केवल छलके द्वारा ही वास्तवार्थ आच्छदित होता है, एवं प्रकृतार्थ प्रकाश में ही वक्ताका तात्पर्य रहता है। निषेध की अपेक्षा नहीं होती है, उसको व्याजोक्ति कहते हैं। अपह्नुति अलङ्कार में निषेध पूर्वक प्रकृत अर्थ का आच्छादन होता है, यहाँपर प्रकृत्यर्थ का निषेध व्यतीत ही अर्थका आच्छादन हुआ है। यहाँपर प्रकृत्यर्थ यह है कि–श्रीकृष्णसङ्ग हेतु नख़चिह्न का आच्छादन है, कण्टकिलता द्वारा निज रक्षण,–छलमात्र है, किन्तु निषेध नहीं हुआ है, किन्तु कृष्णाङ्ग सङ्ग हेतु नखक्षत कथन में ही तात्पर्य है, जानना होगा॥१३॥

कुन्दवल्ल्यावदत् सत्यं राधे ते नानृतं वचः।
यत्तन्निरोधजं चिह्नं कृष्णाङ्गे दृश्यते स्फुटम्॥ ॥१४॥

तीक्ष्णैः स्वकण्टकनखैश्चटुलाभिराभि-
स्त्वद्गोपनाय वपुरस्य लतासखीभिः।
आचोटितं सखि तदौपयिकं तदे-
तच्चित्रन्त्विदं तदधिकं यदिदं तवापि॥ ॥१५॥

रूपकेण विभावनयासङ्गतिर्वेति सन्देह सङ्करः ॥ ※ ॥

एतच्छ्रुत्वा कुन्दवल्ल्यवदत्। हे राधे ते वचः सत्यं अनृतं मिथ्या न। कृष्णाङ्गे तन्निरोधजं चिह्नं यद्यस्मात् स्फुटं दृश्यते ॥१४॥ हे सखि राधे चटुलाभिर्लतासखीभिः त्वद्गोपनायास्य श्रीकृष्णस्य वपुः शरीरं तीक्ष्णैः स्वैः कण्टकनखैराचोटितं यत् तदेतत् कर्म्म तदौपयिकं उचितं। इदन्तु तवापि वपुर्यत् तत्तस्मात् कृष्णवपुषोऽधिकं ताभिस्तव रक्षाकर्त्रीभिस्तैर्नखैराचोटितं तदिदं तव वपुराचोटनं चित्रं ॥१५॥

※ रूपकलक्षणं। रूपकन्तु तत् यत् तादात्म्यं द्वयोः। अस्यार्थः। द्वयो-रुपमानोपमेययोस्तादात्म्यं यत्तत् रूपकं। अतिशयाभेदादपह्नुतभेदत्वं तादात्म्यं द्विप्रकारं समस्तवस्तुविषयं एकदेशविवर्त्ति च आरोप्यमानारोपविषयौ। यत्र शब्दगौ तत्र समस्तवस्तुविषयं। अस्य टीका। यत्र आरोपविषयस्योपमेयस्य तथारोप्यमाणस्योपमानस्य च द्वयोरेव बोधकशब्दो वर्त्तते तत्र समस्तवस्तुविषयकं रूपकं। आरोप्यमाणः शाब्द आर्थश्च तत्परं एकदेशविवर्त्तित्वं शाब्दः शब्दोपात्तः आर्थः अर्थमर्य्यादया ज्ञेयः। इत्येकदेशविवर्त्तित्वं। यत्र शाब्दः आर्थश्चोभयमपि वर्त्तते। तत्र एकदेशविवर्त्ति। यत्र तु केवलं शाब्द एव। तत्र समस्तवस्तुविषयरूपकमिति भेदः। आरोप विषयाभावेऽप्यारोप्यं

यह सुनकर कुन्दलता बोली,–राधे! तुम्हारा कहना सत्य है, मिथ्या नहीं है, कारण श्रीकृष्ण के अङ्गमें निरोध हेतु चिह्न समूह सुस्पष्ट रूपमें दिखाई पड़ते हैं।।१४।। और भी मैं कहती हूँ, सखि राधे! चञ्चल लतारूपिणी सखीगण तुम्हारी रक्षाके लिए कण्टकरूप सुतीक्ष्ण नखके द्वारा श्रीकृष्ण के अङ्गको छिन्न-भिन्न कर दिये हैं, वह तो सर्वथा उचित ही है, किन्तु आश्चर्य की बात तो यह है कि लतागण तुम्हारी रक्षक होकर भी कृष्णाङ्ग की अपेक्षा तुम्हारे शरीर को क्षत-विक्षत किए हैं। यहाँ पर रूपक के साथ असङ्गति है अथवा विभावनाके साथ असङ्गति है, ऐसा सन्देह सङ्कर अलङ्कार है।

यदि तदन्यप्रकारं। अत्र टीका। आरोपविषयस्योपमेस्य भावेऽपि यद्यारोप्यमुपमानं वर्त्तते। तदन्यत् रूपकं उक्त त्रिविधं रूपकं। कुत्रापि प्रासङ्गिप्रकृष्टसजातीयवहुसङ्गात्। कुत्रापि निःसङ्गं एकमेव रूपकं प्रधानत्वेन विवक्षितं। तत्र सजातीयद्वितीय-रूपकान्तराभावेन निःसङ्गं। मालारूपकं तु मालोपमावत् अन्यप्रकारं। अथ विभावना लक्षणं। हेतुरूपक्रियाभावे फलं यत् सा विभावना। अस्यार्थः। फलं फलप्राकट्यं अभावे निषेधे। अथासङ्गतिलक्षणं। अत्यन्तभिन्नाधारत्वेयुगपद्भाषणं यदि। धर्म्मयोर्हेतुफलयोस्तदा सा स्यादसङ्गतिः। अस्यार्थः। यदाधारो हेतुस्तदाधारं फलं इति नियमः। तथा पापपुण्यकृते एकाधारे एव दुःख सुखे तदन्यथा भावादसङ्गतिः। तत्रापि युगपदेव हेतु हेतुफलं च नतु पापादिकृतदुःखवत् कालान्तरव्यवधानं। अथ सङ्करलक्षणं। सङ्करस्त्वङ्गाङ्गिभावः। एषामलङ्काराणामङ्गाङ्गिभावः सङ्करः। स चानुग्राह्यानुग्राहकभावेन यथा। अस्य टीका। अनुग्राह्यानुग्राहकभावेन व्याप्यव्यापकेन भावेन भवति। अत्र रूपकेन सहासङ्गतिः। विभावनया सह असङ्गतिरिति सन्देहे सङ्करः। अङ्गाङ्गि-भावेनोभयमित्यर्थः। अत्र रूपकेण सहासङ्गतिः। पक्षे यथा। कृष्णवक्षःस्थले चिह्नं। चिह्नद्वयस्य भेदाभावात् रूपकमिदं समस्यवस्तुविषयकं। उपमानोपमेययोर्नखचिह्नयोः

रूपक लक्षण – रूपकन्तु तत् यत् तादात्म्यं द्वयोः ॥

उपमान उपमेय का तादात्म्य, अर्थात् एकरूप होना, रूपक अलङ्कार है। अत्यन्त अभेद होने पर भी जो भेद गुप्तरूप से रहता है, उसको तादात्म्य कहते हैं, रूपक दो प्रकार के हैं, समस्त वस्तुबिषयक, एकदेशविवर्त्ति, जहाँ पर आरोप विषय उपमान का तथा आरोप्यमाण एवं उपमान का बोधक शब्द होता है, वहाँपर समस्त वस्तुविषयक रूपक अलंकार जानना होगा, और जहाँपर आरोप्यमाण शब्दसे अथवा अर्थसे गृहीत होता है। वहाँ एकदेश विवर्त्ति रूपक होता है, जहाँ पर शब्दोपात्त अर्थोपात्त दोनों रहते हैं, वहाँ एकदेश विवर्त्ति होता है, जहाँ केवल शब्दमात्र विद्यमान है, वहाँ समस्त वस्तुविषयक रूपक होता है। आरोप विषय उपमेयका अभावसे भी यदि आरोप का उपमान रहता है, तब वहाँ दूसरे प्रकार रूपक होता है। तीन प्रकारं रूपक प्रदर्शित हुआ। किसी स्थलमें प्रासङ्गि प्रकृष्ट बहु सङ्ग की भाँति, एवं किसी स्थानमें निःसङ्ग एकमात्र रूपक प्रकृष्ट बहु सङ्गकी भाँति, एवं किसी स्थानमें निःसङ्ग एकमात्र रूपक प्रधान रूपमें विवक्षित होता है। वहाँ पर सजातीय द्वितीय रूपकान्तर के अभाव प्रयुक्त निःसङ्ग रूपक जानना होगा। मालारूपक मालोपमा की भाँति है।

शब्दगत्वात्। एकस्यैव नखचिह्नरूपकस्य प्राधान्येन कथनात्। प्रकृष्ट-राजातीय-वहुरूपकस्य सङ्गाभावाच्च निःसङ्गं। अत्र रूपकेण सहासङ्गतिस्तु एकाधारे कृष्णवक्षसि फलरूपनखचिह्नं तस्य हेतुश्चास्ति। भिन्नाधारे तव वक्षसि फलरूपचिह्नमस्ति नतु तस्य हेतुरिति। तव रक्षार्थं कण्टकनखैर्लताभिः कृष्णवक्षसि कृतं चिह्नं। भिन्नाधारे तव वक्षसि हेतुं विना तच्चिह्नं फलरूपमसङ्गतिः विभावनया सहासङ्गतिः रूपकचिह्नद्वयस्य भेदाभावादेव एकहेतुजन्यफलप्राकट्यज्ञानात् रूपकेण सहासङ्गतिरङ्गी विभावनया सहासङ्गतिरङ्गं ॥

विभावना का लक्षण—"हेतुरूपक्रियाभावे फलं यत् सा विभावना ।।"

कारण स्वरूप क्रिया के अभावमें अर्थात् निषेध में जो फल प्रकट होता है, उसे विभावना अलङ्कार कहते हैं।

असङ्गति अलङ्कार का लक्षण —

"अत्यन्तभिन्नाधारत्वे युगपद्भाषणं यदि ।
धर्मयोर्हेतुफलयोस्तदा सा स्यादसङ्गतिः ।।

सङ्गति न होना ही असङ्गति है। जहाँ पर कारणाधारतया फलाधार एक होगा, अर्थात् एकाधारमें कार्यकारण वर्त्तमान होगा। जिस प्रकार पापकृत दुःख, पुण्यकृत सुख, एक व्यक्ति में रहते हैं, उस प्रकार उभय की अभिव्यक्ति समकालमें यदि हो तब उसको असङ्गति कहते हैं।।

सङ्कर का लक्षण—सङ्करस्त्वङ्गाङ्गिभावः ।।

जहाँ पर अलङ्कार समूह अङ्गाङ्गि भाव होता है, अर्थात् एकस्थान में भिन्न-भिन्न अलङ्कार होने पर भी एक अलङ्कार अङ्ग एवं अपर अलङ्कार अङ्गी 'प्रधान' होता है, उसको सङ्कर कहते हैं। यह सङ्कर, अनुग्राह्य अनुग्राहक भावसे अर्थात् व्याप्यव्यापक भावसे होता है। प्रस्तुत श्लोक में रूपक के साथ असङ्गति, एव विभावनाके साथ असङ्गति के सन्देह से सङ्कर हुआ है। यहाँ पर अङ्गाङ्गिभाव दोनों में विद्यमान है। रूपकके साथ असङ्गति इस प्रकार है-जिस प्रकार कृष्ण के वक्षःस्थलमें चिह्न है, उसप्रकार तुम्हारे वक्षःस्थलमें भी चिह्न है, उभय चिह्नमें कोई भेद नहीं है, अतः यह रूपक समस्त वस्तुविषयक हुआ है। उपमान एवं उपमेय नखचिह्नद्वय शब्दगत प्रयुक्त है, एक नखचिह्न स्वरूप रूपक का प्रधानरूप से कथन होनेसे प्रकृष्ट सजातीय बहु रूपक का सङ्गभाव प्रयुक्त निःसङ्ग रूपक हुआ है। यहाँपर रूपकके साथ असङ्गति इस प्रकार है-एकाधार कृष्ण वक्षःस्थल में फलरूप

गोपाङ्गनागणरतेरतिलम्पटस्य चन्द्रावलेर्धृतिरुरस्यमलस्य युक्ता।
यत्त्वं विभर्षि हृदि ता महितामपीदं चित्रं परं सखि वदात्र च तत्र हेतुम्
शब्दश्लेषः ॥१६॥

तामाललाप ललिता कुरुमात्र शङ्कां
पुंसः परादतिचलाद्भयविद्रुतानाम्।

गोपाङ्गनागणेषु रतिर्यस्य तस्य अतिलम्पटस्य अस्य श्रीकृष्णस्य उरसि वक्षसि चन्द्रावलेर्नखचिह्नरूपचन्द्रश्रेण्येव चन्द्रावली चन्द्रावलीनाम्नी श्रीव्रजाङ्गना तस्या धृतिरलं युक्ता त्वं तामहितां द्वेष्ट्रीं चन्द्रावलीं स्वहृदि यद्बिभर्षि इदं परं चित्रं। हे सखि राधे अत्र स्वहृदि चन्द्रावलीवहने तत्र कण्टकैर्वपुराचोटने च कारणं वद। शब्दाश्लेषो यथा। अनेकार्थप्रतिपादकता यदि एकार्थस्य शब्दस्य तदा श्लोषः स कथ्यते। अत्र चन्द्रावली शब्देन नखक्षतश्रेणी तन्नाम्नी गोपी च शब्दश्लेषः ॥१६॥ ललिता तां कुन्दलतामाललापाह। हे साध्वि कुन्दलते। अतिचलात् स्पर्शोत्सुकात् परात् पुंसो

नखचिह्न एवं उसका कारण भी है। और भिन्नाधार तुम्हारे वक्षःस्थलमें फलरूप चिह्न है, किन्तु उसका कारण नहीं है। तुम्हारी रक्षाके लिए कण्टकरूप नखके द्वारा श्रीकृष्णके वक्षःस्थलमें चिह्न, एवं भिन्नाधाररूप तुम्हारे वक्षःस्थल कारण व्यतीत उक्त चिह्न होने से फलरूपमें असङ्गति है, अर्थात् विभावनाके साथ असङ्गति है। रूपक चिह्नद्वय में भेद न होनेपर एक कारण जन्य फलका प्राकट्य ज्ञान प्रयुक्त रूपकके साथ असङ्गति होने से अङ्गी है। और विभावना के साथ असङ्गति अङ्ग है।।१५।। गोपाङ्गनागण को सुतृप्त करने वाला कृष्ण अतिशय लम्पट है। उस कृष्णके वक्षःस्थलमें चन्द्रावली अर्थात् नखचिह्नरूप चन्द्रश्रेणी ही चन्द्रावली नाम्नी व्रजाङ्गना है, उसका धारण तो उपयुक्त ही है, किन्तु तुमने तो द्वेष कारिणी उस चन्द्रावली को निज हृदय में धारण किया है, यह ही सबसे अचरज की बात है। जो भी हो, सखि राधे ! तुमने जो चन्द्रावली का धारण हृदय में किया है, और तुम्हारा अङ्ग कण्टकनिचय से क्षतविक्षत हुआ है, उसका कारण क्या है ? कहो। प्रस्तुत श्लोक में शब्दश्लेष है–उसका लक्षण–अनेकार्थ प्रतिपादकता यदि एकार्थस्य शब्दस्य तदा श्लेषः स कथ्यते।'' एक शब्दका यदि अनेकार्थ प्रकाश होता है, तब उसको शब्दश्लेष कहते हैं, यहाँपर चन्द्रावली शब्दसे नखक्षतश्रेणी एवं चन्द्रावली नाम्नी गोपीका बोध हो रहा है।।१६।। अनन्तर

स्पर्शोत्सुकाद्वपुषि साध्वि कथं सतीनाम्
दारिद्रमस्तु वनकण्टकजक्षतानाम् ॥१७॥ व्याजोक्तिः ॥
प्रत्यङ्गानां वर्णनं श्रोतुमस्याःद्रष्टुं चास्यं भावशावल्यराल्यः ।
नानोपायांश्चिन्तयत्युत्क ईशे स्वाली हास्याद्वर्णयामासुराल्यः ॥ ॥१८॥
॥ समाधिनामालङ्कारोऽयं ॥

भयेन पलायितानां सतीनां वपुषि वनकण्टकजन्यक्षतानां दारिद्र्यं अभावः कथमस्तु अपि तु वहुकण्टकक्षतं भवत्वेव। अत्र भयात् पलायमानायास्तस्याः स्तने कण्टकजक्षतमिषेण नखक्षतस्यापह्नुतिमिषमात्रं। किन्तु नखक्षतकथनएव तात्पर्य्याद्व्याजोक्तयलङ्कारः। अस्य लक्षणं त्रयोदशश्लोकस्य टीकायामस्ति ॥१७॥ अस्या राधायाः प्रत्यङ्गानां वर्णनं श्रोतुं तथास्या भावानां शावल्येन मिलनेन रम्यमास्यं मुखचन्द्रञ्च द्रष्टुमुपायान् चिन्तयति सति उत्के उत्कण्ठिते ईशे कृष्णे तस्य हृदयज्ञा आल्यः सख्यः हास्यात् स्वाली राधां वर्णयामासुः। समाधिनामालङ्कारोऽयमस्य लक्षणं यथा। कारणान्तरसाहाय्यात् कार्य्यं यत् सुकरं भवेत्। विना प्रयत्नेन कर्त्तुः स समाधिरितीर्य्यते। अत्र कर्त्तुः कृष्णस्य यत्नं विना राधाङ्गवर्णनं तथा भावशावल्यरम्यस्य तस्या मुखस्य दर्शनरूपञ्च कार्य्यं सखीनां हास्यरूपकारणान्तरसाहाय्यात् सुकरमभूत् ॥१८॥

ललिता कुन्दलता से बोली,–साध्वी कुन्दलते! अतिचञ्चल स्पर्शोत्सुक पर-पुरुषके भयसे पलायनपरा सती नारीगण के शरीर में वनके कण्टक द्वारा क्षत होने का अभाव कैसे होगा? उन सब के शरीर में कण्टक लतासे क्षत अवश्य ही होता है। इसमें व्याजोक्ति अलङ्कार है। लक्षण-प्रस्तुत स्थगनच्छद्म व्याजोक्तिरनिषेधभाक्।" यहाँपर भयसे पलायनपरायणा श्रीराधा के स्तनमें कण्टक द्वारा क्षतके बहाने से नखक्षत का गोपन करना छलमात्र है। वास्तविक नखक्षत का कथन ही तात्पर्य होने के कारण व्याजोक्ति अलङ्कार हुआ है।।१७।। उस समय श्रीकृष्ण, श्रीराधाके प्रति अङ्गके वर्णन को सुनने के लिए एवं भाव शावल्य, अर्थात् भाव समूहके सम्मिलनसे श्रीराधाके रमणीय वदनचन्द्र को देखने के लिए उपााय की चिन्ता कर रहे थे, तब मर्मज्ञा सखीगण हँस-हँस कर श्रीराधा की वर्णना करने लगी। यहाँ समाधि नामक अलङ्कार है।

लक्षण – कारणान्तर साहाय्यात् कार्यं यत्सुकरं भवेत्।
विना प्रयत्नेन कर्त्तुः स समाधिरितीर्य्यते।

तृप्त्यै मुरारेरथ राधिकाया माधुर्य्यकर्पूरसुवासितां स्वाम्।
विधातुकामाः कवितारसालां तया निषिद्धाः कुटिलभ्रुवापि॥ ॥१९॥

संफुल्ल-गोविन्दमुखारविन्दमन्दस्मिता मन्दमरन्दसिक्ताः।
तदिङ्गितज्ञाः क्रमतश्चलाक्षीं तां वर्णयन्त्यो जहसुर्वयस्याः॥२०॥ युग्मकम्॥

भङ्ग्याथ कुन्दवल्लीं तां वर्णयन्त्य इवालयः।
अप्रस्तुतप्रशंसाया विषयं स्वसखीं व्यधुः॥ ॥२१॥

ततः सा ललितावादीत् पश्यताल्यो विभर्त्त्यसौ।
मधुसूदनसम्भोगचिह्नानि कुन्दवल्लिका॥२२॥ सश्लेषाप्रस्तुतप्रशंसा॥

वयस्याः स्वां स्वीयां कवितारसालां कवितैव रसाला तां राधाया माधुर्य्यरूपकपूरेण सुवासितां विधातुं कर्त्तुं कामाः कामना यासां ताः। तया राधिकया कुटिलभ्रुवा निषिद्धा अपि संफुल्लस्य गोविन्दमुखपद्मस्य मन्दस्मितमेवामन्दो मरन्दो मधु तेन सिक्ताः। तस्य श्रीकृष्णस्य इङ्गितज्ञास्ता मुरारेस्तृप्त्यै तां राधां वर्णयन्त्यो जहसुः॥१९॥२०॥ आलयो भङ्ग्या कुन्दवल्लीं वर्णयन्त्य इवाप्रस्तुतप्रशंसानामालङ्कारस्य विषयं स्वसखीं राधां व्यधुः॥२१॥ ललिताह। हे आल्यः मधुसूदनसम्भोगचिह्नानि कुन्दवल्लीका विभर्त्ति। राधा विभर्त्ति इत्युक्ते सा क्रोधं कृत्वा

कर्त्ताकि यत्नके बिना एवं कारणन्तर की सहायता हेतु कार्य यदि अनायास सिद्ध होता है, तो समाधि अलङ्कार कहते हैं। यहाँपर कर्त्ता श्रीकृष्ण के यत्न व्यतीत श्रीराधाके अङ्ग वर्णन, एवं भावसम्मिलनसे श्रीराधा का मुखचन्द्रका दर्शनरूप कर्म, सखिगण के हास्यरूप कारणान्तरके साहाय्यसे अनायास साध्य हुआ। भाव शावल्य का लक्षण, उज्ज्वलनीलमणि के स्थायिभाव प्रकरण ११५ में। शवलन्तुभावानां सम्मर्दः स्यात् परस्परः।। अर्थात् भावसमूह के परस्पर सम्मर्दन अर्थात् उपर्य्युपरिभाव को भावशावल्य कहते हैं।।१८।। सखिगण श्रीकृष्ण के परितृप्त के निमित्त स्वीय कवितारूप रसाला शिखरिणी को श्रीराधाके माधुर्यरूप कर्पूरके द्वारा सुवासित करने की इच्छुक होकर श्रीराधा की कुटिल दृष्टिसे निवारित होकर भी श्रीगोविन्द के प्रफुल्ल मुखारविन्द के सुमधुर हास्यरूप मकरन्द से अभिषिक्त होकर उनके इङ्गित को जानकर क्रमशः चञ्चलाक्षी श्रीराधा का वर्णन हँस हँस कर करने लगीं।।१९-२०।। अनन्तर सखियोंने कुन्दवल्ली का वर्णन करके निज सखी श्रीराधाको अप्रस्तुत प्रशंसा का विषय बनाया, अर्थात् कुन्दवल्ली को नाम साम्यसे पुष्पलता मानकर ही प्रकृत प्रस्तावमें वर्णन कर श्रीराधा का वर्णन

भुवि शिवलिङ्गानीन्दोर्वलितान्येकैकया कलया।
मन्येऽस्याः कुचशम्भू ता दधतस्तज्जिगीषया प्रचुरा॥ ॥२३॥

तां भर्त्सयेत् ततो गच्छेद्वा। तदा वर्णनं न स्यात् वर्णनाभावे कृष्णस्य सखीनां च वाञ्छापूर्त्तिर्न स्यादिति कुन्दवल्लिका इत्यवादीत्। सश्लेषाप्रस्तुतप्रशंसा यथा। श्लेषलक्षणं। अनेकार्थप्रतिपादकता यदि एकार्थस्य शब्दस्य तदा श्लेषः स कथ्यते। मधुसूदनः कृष्णोः भ्रमरश्च श्लिष्टः। कुन्दवल्लिका लता तन्नाम्नी गोपी च श्लिष्टा अप्रासङ्गिकस्य वाक् प्रासङ्गिककथायां स्यादप्रस्तुतप्रशंसनं। अस्यार्थः। अप्रासङ्गिकस्या-प्राकरणिकस्यार्थस्य वाक् कथनं यत् प्रासङ्गिककथायां तदप्रस्तुतप्रशंसा स्यात्। कार्य्यकारण-सामान्यविशेषेषु तदन्यगीः। प्रस्तुतेषु च तुल्ये च तुल्यगीः पञ्चधा भवेत्। तदप्रस्तुतप्रशंसा पञ्चधा-तुल्य भवेद्यथा प्रस्तुतेषु कार्य्यकारण-सामान्यविशेषेषु तदन्यस्या प्रस्तुतस्य कथनं कार्य्ये कारणकथनं कारणे कार्य्यकथनं सामान्ये विशेषकथनं विशेषे सामान्यकथनं तुल्ये प्रस्तुते तुल्यस्याप्रस्तुतस्य कथनमिति। चकारादन्येषां कथनञ्च। अत्र पद्ये अप्रासङ्गिकस्य कुन्दवल्ल्याः सम्भोगचिह्नस्य प्रासङ्गिक-राधाङ्गचिह्नकथायां तुल्यायां कथनमत्राप्रस्तुतप्रशंसा ॥२२॥ भुवि पृथिव्यां। इन्दोरेकैकया कलया वलितानि युक्तानि शिवलिङ्गानि सन्ति। अस्याः कुचरूपशम्भू स्तनौ ताः कलाः प्रचुरास्ततः सकलङ्केन्दुकलातो निष्कलङ्कत्वादिगुणैः प्रशस्ताः कृत्वा तत्तेषां शिवलिङ्गानां जिगीषया

अप्रासङ्गिक रूपसे किया ।।२१।। यहाँ सश्लेषाप्रस्तुत प्रशंसा है। श्रीराधा धारण कर रही है, कहने से श्रीराधा क्रुद्ध होकर ललिता को तिरस्कार करती, अथवा वहाँसे चली जाती, ऐसा होने से वर्णन की सम्भावना नहीं रहती, वर्णन न होने से सखीगण एवं श्रीकृष्ण का अभिलाष पूर्ण नहीं होता। अतः ललिताने ''कुन्दवल्ली'' शब्दोच्चारण किया। यह श्लेषान्वित अप्रस्तुत प्रशंसा अलङ्कार है, श्लेष लक्षण—अनेकार्थप्रतिपादकता यदि एकार्थस्य शब्दस्य तदाश्लेषः स कथ्यते। एकार्थ शब्द की अनेकार्थ प्रतिपादकता होने से श्लेष होता है, यहाँ मधुसूदन शब्दका अर्थ कृष्ण, एवं भ्रमर। कुन्दवल्ली शब्दसे लता, कुन्दवल्ली नाम की व्रजाङ्गना। अप्रस्तुत प्रशंसा का लक्षण-अप्रासङ्गिकस्य अप्राकरणिकस्यार्थस्य वाक् कथनं यत् प्रासङ्गिककथायां तदप्रस्तुत प्रशंसा स्यात्।। कार्य कारण सामान्य विशेषेषु तदन्यगीः। प्रस्तुतेषु च तुल्ये च तुल्यगीः पञ्चधा भवेत्।। यथा—प्रस्तुतेषु कार्यकारण सामान्य विशेषेषु तदन्यस्याप्रस्तुतस्य कथनं। कार्ये कारण कथनं, कारणे कार्य कथनं,

रूपकोत्प्रेक्षा-व्यतिरेकैः सङ्करः ॥

तानि जेतुमिच्छया दधतः इत्यहं मन्ये। रूपकोत्प्रेक्षा-व्यतिरेकः सङ्करः। अत्र शम्भुकुचयोरुपमानोपमेययोस्तादात्म्यं रूपकं। उपमानोपमेययोः शम्भुकुचगत-चन्द्रनखचिह्नयोः शब्दगत्वात्। अत्र समस्तवस्तुविषयं। एकस्याः कलायाः प्राधान्येन कथनात् प्रकृष्ट-सजातीयान्य रूपकस्याभावात् निःसङ्गं। रूपकलक्षणां पञ्चदशश्लोकटीकायामस्ति। उत्प्रेक्षा यथा। संभावनोपमानेनोपमेययोत्कर्षहेतुका। उत्प्रेक्षा नूनमित्यादिशब्दद्योत्या। अस्यार्थः। उपमेयस्योत्कर्षहेतुका या उपमानेन सह सम्भावना सा उत्प्रेक्षा। सम्भावनाहेत्वन्तरोपन्यासेन वितर्कणं। न्यूनमित्यादिना। नूनं मन्ये शङ्के इव ध्रुवं नु किं किमुत इत्यादि। उपमानेन शम्भूना उपमेयस्य कुचशम्भूद्वयस्य उत्कर्षहेतुका सम्भावना। तज्जिगीषया इति हेत्वन्तरोपन्यासेन मन्ये इति शब्दद्योत्या उत्प्रेक्षात्र ज्ञेया। व्यतिरेको विलक्षणः। विलक्षण इति गुणेन दोषेण च। अस्य टीका वैलक्षण्यमाधिक्यं। उपमानात् शम्भूलिङ्गात् विलक्षणौ कुचशम्भूव्यतिरेकः। त्रयाणां सङ्करः। सङ्करलक्षणं। सङ्करस्त्वङ्गाङ्गिभावः। रूपकेण शम्भूकुचयोस्तुल्यज्ञाने सत्येव पश्चात् उत्प्रेक्षा-व्यतिरेकाभ्यां कुचयोरौत्कर्षमाधिक्यं स्यादतोऽत्र रूपकोऽङ्गी उत्प्रेक्षा-व्यतिरेकौ-अङ्गे ॥२३॥

सामान्ये विशेषे कथनं, तुल्यप्रस्तुते तुल्यस्याप्रस्तुतस्य कथनं। ककारादन्येषाञ्च कथनं॥ प्रासङ्गिक कथामें अप्रासङ्गिक का कथन, अप्रस्तुत प्रशंसा है। प्रस्तुत पद्यमें प्रासङ्गिक राधाङ्गचिह्न वर्णन में अप्रासङ्गिक कुन्दवल्ली का सम्भोगचिह्न का तुल्यता कथन हुआ है, यह ही अप्रस्तुत प्रशंसा नामक अलङ्कार है ॥२२॥

तत्पश्चात् ललिता, श्रीराधा की वर्णना कर बोली,–सखिगण ! पृथिवी में चन्द्रकी एक कलायुक्त होकर शिवलिङ्ग समूह विराजित हैं, किन्तु इनके, कुचरूप शिवयुगल उक्त शिवलिङ्ग को जीतने के लिए प्रचुरतर चन्द्रकला को धारण किए हुए हैं। यहाँपर रूपक उत्प्रेक्षा व्यतिरेक के मिश्रणरूप सङ्कर है। यहाँ शम्भु एवं कुच, उभयमें उपमान उपमेयत्व का साम्य होने से रूपक नामक अलङ्कार है, लक्षण–रूपकन्तु तत् यत् तादात्म्यंद्वयोः ॥ एक कलाके प्राधान्य कथन हेतु प्रकृष्ट सजातीय अन्यरूपक के अभाव प्रयुक्त निःसङ्ग रूपक है। उत्प्रेक्षालक्षण–"सम्भावनोपमानेनोपमेयोत्कर्षहेतुका उत्प्रेक्षान्यून-मित्यादि शब्दद्योत्या ॥" उपमेय के उत्कर्ष हेतु उपमान के साथ जो सम्भावना होती है, उसे उत्प्रेक्षा कहते हैं, यह 'नूनं' इत्यादि शब्द द्वारा सूचित होती है। सम्भावना का अर्थ है–अन्य हेतु के द्वारा वितर्क करण।

हासविकास–श्रीरदपङ्क्तिः।
कृष्णमुदे सा, प्राह विशाखा ॥२४॥

क्षयिष्णुं हित्वा शशजठरमिन्दुं मितकलम्
सदा पूर्णानङ्काविगणितकलानामघभिदः॥

हासस्य विकासेन श्रीः शोभा दन्तपङ्क्तौ यस्याः सा विशाखा कृष्णस्य मुदे हर्षाय प्राह॥२४॥ क्षयिष्णु शशो मृगो जठरे यस्य तं मितकलं तमिन्दुं हित्वा अघभिदः श्रीकृष्णस्य सदा पूर्णानामनङ्कानामकलङ्कानामविगणिता अनन्ताः कला येषां करनखविधूनां वल्लीभिः कलाभिः श्रेणीभिरस्याः कुन्दलताया इत्युक्ते श्रीराधायाः स्तनरूपशिवलिङ्गद्वयं निजतनुं किं अलश्चक्रे। स्वशोभार्थमलश्चक्रे। इत्यात्मनेपदस्यार्थः। अत्र चन्द्रनखचन्द्रज्योत्स्नयोस्तादात्म्याच्च रूपकं। उपमानोपमेययोः शब्दगत्वात् समस्तवस्तुविषयं। क्षयिष्णु-शशजठरं मितकलमित्यादिप्रकृष्टसजातीयरूपकानेकसङ्गात्

अर्थात् नूनं, मन्ये, शङ्के, इव, ध्रुव, नु, किं किमुत। इसमें से किसी एक के प्रयोगसे उत्प्रेक्षा सूचित होती है। यहाँपर पृथिवीस्थ शम्भु उपमान है, कुचद्वयरूप शम्भु उपमेय है। उभय के उत्कर्ष हेतु सम्भावनोत्: प्रेक्षणा है, पृथिवीस्थ शम्भुको जीतने की इच्छा। अन्य कारण का उपन्यास यह ही है। 'मन्ये' शब्द प्रयोग हेतु यहाँपर उत्प्रेक्षा अलङ्कार जानना होगा। व्यतिरेक का लक्षण—"विलक्षण इति गुणेन च दोषणे च" विलक्षण का नाम व्यतिरेक है। गुण अथवा दोषके द्वारा अधिक होना ही विलक्षण है। यहाँपर उपमान शम्भुलिङ्ग से कुचरूप शम्भुद्वय अधिक है। इससे व्यतिरेक अलङ्कार प्रकट हुआ। यहाँ पर तीन अलङ्कार के सङ्कर है, अर्थात् अङ्गाङ्गि भाव है। सङ्कर लक्षण—सङ्करस्त्वङ्गाङ्गिभावः॥ रूपकालङ्कार द्वारा शम्भु एवं कुचकी तुल्यता ज्ञान होनेपर बादमें उत्प्रेक्षा, एवं व्यतिरेक द्वारा कुचद्वय का उत्कर्षाधिक्य हुआ। कारण यहाँपर रूपकालङ्कार प्रधान है, उत्प्रेक्षा, व्यतिरेक अलङ्कार द्वय अप्रधान है। स्पष्टार्थ यह है कि–"शम्भु एवं कुच" उभय में रूपकालङ्कार है। 'मन्ये' इस पदसे उत्प्रेक्षा सूचित है, 'जिगीषा' पदसे व्यतिरेक अर्थात् उपमान भूस्थ शम्भुसे स्तनद्वयरूप शम्भु का आधिक्य है॥२३॥ हँसने से जिन की दन्तपङ्क्ति अतिशय मनोरम लगती है, वह विशाखा श्रीकृष्णको हर्षित करने के लिए कहने लगी॥२४॥ श्रीराधाके स्तनरूप शिवलिङ्गद्वय-परिमित कलाशाली, क्षयशील, सकलङ्क शशाङ्कका त्यागकर श्रीकृष्ण के सर्वदा पूर्णमण्डल, अक्षय कलायुक्त करनखचन्द्र की बहुतर कलासे ही क्या

कलाभिर्वह्वीभिः करनखविधूनां निजतनू-
मलश्चक्रेऽस्याः किं स्तनगिरिशलिङ्गद्वयमिदम् ॥ ॥२५॥
रूपकोत्प्रेक्षा–व्यतिरेकैः सङ्करः ॥
साभाषत तद्वाक्, तृप्ता तनुमध्या। कृष्णं सुखयन्ती, श्रीचम्पकवल्ली ॥२६॥
किं नागरङ्गार्पितलास्यलाञ्छने पदाम्बुजे वीक्ष्य हरेः कराम्बुजे।
तत्स्पर्द्धयाऽस्याः कुचनागरङ्गके मुदा न्यधत्तां नटनैः क्षतानि ॥२७॥
श्लेषरूपकोत्प्रेक्षा ॥

प्रासङ्गि। क्षयिष्णु आदि हेत्वन्तरोपन्यासेन किमिति पदद्योत्या। उत्प्रेक्षा व्यतिरेकालङ्कारेण शिवलिङ्गात् गुणेन स्तनरूपशिवलिङ्गयोराधिक्यं। रूपकेण शिवलिङ्गस्तनयोस्तुल्यज्ञाने सत्येव उत्प्रेक्षाव्यतिरेकाभ्यां स्तनयोरुत्कर्षज्ञानं स्यादतो व्याप्यव्यापकभावेन रूपकोऽङ्गी उत्प्रेक्षाव्यतिरेकावङ्गे तैः सङ्करः। रूपकलक्षणं व्याख्या च पञ्चदशश्लोकस्य टीकायां। उत्प्रेक्षा-व्यतिरेकयोर्लक्षणं व्याख्या च त्रयोविंशतिश्लोकस्य टीकायामस्ति ॥२५॥ तस्याः विशाखाया वाक्येन तृप्ता तनुमध्या क्षीणमध्या सा चम्पकवल्ली कृष्णं सुखयन्ती अभाषत ॥२६॥ नागः कालियसर्प एव रङ्गस्थलं तत्रार्पितं लास्येन नृत्येन लाञ्छनं चिह्नं याभ्यां ते पदाम्बुजे वीक्ष्य तत्स्पर्द्धया

निज कलेवर को भूषित किए हैं? इस श्लोकमें रूपक उत्प्रेक्षा व्यतिरेक अलङ्कार अङ्गाङ्गिभावरूप सङ्कर है। यहाँ चन्द्र एवं नखचन्द्र की ज्योत्स्ना की एकात्मकता प्रयुक्त रूपकालङ्कार है, लक्षण—रूपकं रूपितारोपाद्विषये निरपह्नवे। उपमान-उपमेयके शब्दगतत्व हेतु समस्त वस्तुविषयक रूपक है। क्षयिष्णु शशजठर, परिमितकला इत्यादि प्रकृष्ट सजातीय रूपकके अनेक सङ्गिके कारण प्रासङ्गित रूपक है। क्षयिष्णु आदि अन्य हेतुके प्रकाशके लिए 'किं' पदका प्रकाश होनेसे उत्प्रेक्षा है। व्यतिरेक अलङ्कार द्वारा शिवलिङ्ग से गुणद्वारा स्तनरूप शिवलिङ्ग युगलका आधिक्य है। रूपकालङ्कार द्वारा शिवलिङ्ग एवं स्तनद्वयके सादृश्यज्ञान होनेसे भी उत्प्रेक्षा एवं व्यतिरेक अलङ्कार द्वारा स्तनद्वय का उत्कर्ष ज्ञात हुआ है, अतएव व्याप्य एवं व्यापक भावसे रूपकालङ्कार अङ्गी अर्थात् प्रधान है, और उत्प्रेक्षा एवं व्यतिरेक, अलङ्कारत्रय का सङ्कर अर्थात् मिश्रण हुआ है। रूपक का लक्षण १५ श्लोकमें उत्प्रेक्षा व्यतिरेक का लक्षण २३ श्लोक में है।।२५।। विशाखाके वाक्य से परितृप्त होकर क्षीणमध्या चम्पकवल्ली श्रीकृष्ण को आनन्दित करने के लिए

स्त्रीषु श्रेष्ठा। चित्रा चख्यौ॥ ॥२८॥

चित्रा-कनकलतेयं, श्याम-तमालाश्रिता स्फुटं धत्ते।
पक्वं श्रीफलयुगलं तच्चलशाखोपशाखिकोल्लिखितम्॥ ॥२९॥

किं हरे, कराम्बुजे अस्याः कुचनागरङ्गके नागराख्यफलविशेषे नटनैः क्षतानि न्यधत्तां। नागरङ्गशब्दोऽत्र उभयार्थवाचित्वात् श्लेषः। पदकृतकरकृतचिह्नयोस्तादात्म्यमत्र रूपकं। उपमानोपमेययोः शब्दगत्वात् समस्तवस्तुविषयं। सजातीयरूपकान्तराभावात् निःसङ्गं चोत्प्रेक्षात्र। स्पर्द्धयेति हेत्वन्तरोपन्यासेन किमिति पदद्योत्या। पदकृतलाञ्छनात् करकृतलाञ्छनानां गुणेनोत्कर्षः। श्लेषलक्षणं १० श्लोके। रूपकलक्षणं २५ श्लोके। उत्प्रेक्षालक्षणं २३ श्लोके ॥२७॥ चित्रा सखी आह ॥२८॥ इयं चित्रा मनोहरा कनकलता श्यामं तमालं आश्रिता भूत्वा तस्य तमालस्य शाखोपशाखिकाभिरुल्लिखित पक्वं श्रीफलयुगलं धत्ते। चित्रा इति हेत्वन्तरोपन्यासेन। स्फुटमिति पदद्योत्या। सामान्यतमालाश्रितकनकलतायां तमालशाखोपशाखाकृतचिह्नयुक्त श्रीफलयुग्मात् श्रीकृष्णतमालस्य शाखोपशाखारूपनखेनोल्लिखितं श्रीराधायाः स्तनरूपश्रीफल-युगलस्योत्कर्षमत्रोत्प्रेक्षा। अतिशयोक्तिर्यथा। निगीर्णस्योपमानेनोपमेयस्य निरूपणं या

कहने लगी।।२६।। कालियनाग रूप रङ्गालयमें श्रीकृष्णके चरणयुगलको नृत्य करते देखकर श्रीकृष्णके करकमलद्वय स्पर्द्धा करके ही क्या श्रीराधाके कुचमण्डलरूप नागरङ्गमें अर्थात् नागरङ्गरूप फल विशेषरूप रङ्गस्थल में सहर्ष नृत्यकर आघात कर रहे हैं? यहाँपर नागरङ्ग शब्द उभयार्थ वाचक हेतु श्लेषहुआ है। पदकृत एवं करकृत चिह्नद्वयके तुल्यत्व प्रयुक्त रूपक अलङ्कार है। यहाँपर उपमान, उपमेय के शब्दगतत्व हेतु समस्त वस्तुविषयक रूपक है, सजातीय रूपकान्तरके असद् भावहेतु निःसङ्ग एवं उत्प्रेक्षा है। 'स्पर्द्धया' अन्यहेतु उपन्यास द्वारा 'किं' पदसे प्रकाशित हुआ है। पदकृत लाञ्छन से करकृत लाञ्छन समूह के गुणके द्वारा उत्कर्ष है।। श्लेषलक्षण १० श्लोक में, रूपकलक्षण २५ में, उत्प्रेक्षा लक्षण २३ में वर्णित है।।२७।। अनन्तर स्त्रीगण के मध्यमें श्रेष्ठा चित्रा बोली।।२८।। चित्रा अर्थात् मनोज्ञा कनकलता श्यामतमालका आश्रित होकर है, तमाल की शाखा उपशाखा से क्षतविक्षत श्रीफलयुगल को धारण कर वह सुशोभित है। प्रस्तुत श्लोकमें उत्प्रेक्षा, अतिशयोक्तिके द्वारा संसृष्टि अलङ्कार है। ''चित्रा'' इस पदमें अपर हेतुका उपन्यास हुआ है, ''स्फुट'' इस पदके द्वारा सामान्य. तमालाश्रित कनकलता

उत्प्रेक्षातिशयोक्तिभ्यां संसृष्टिः ॥

सभां प्रीणयन्ती, सखी लज्जयन्ती। स्ववाण्या कवीशावदत्तुङ्गविद्या ॥३०॥

अस्या लसत्तनुवनीमनुभाति काम–
गम्भीरवेदि–गजराट् यदिहास्य भातः।

स्यादतिशयोक्तिः सा। अस्य टीका। उपमानेन निगीर्णस्योपमेयस्य यन्निरूपणं सातिशयोक्तिः निगीर्ण ग्रस्तं तथा चोपमानस्य इव प्रयोगो नतूपमानेन ग्रस्तोपमेयस्य। अत्र उपमानेन तमालशाखोपशाखाकृतचिह्नयुक्तश्रीफलेन निगीर्णोपमेयस्य श्रीकृष्णकृतन-खक्षतयुतराधास्तनस्य निरूपणं अतिशयोक्तिः। संसृष्टिरसौ क्रियाशब्दार्थोभयभूः। अस्यार्थः। सा क्रमेण प्रदर्श्यते। शब्दः शब्दालङ्कारः आर्थः अर्थालङ्कारः उभयं शब्दार्थालङ्कारः एते त्रयः, क्रियाप्रधानेत्यर्थः। अत्र टीका। संसृष्टिलक्षणं। एतेषामन्योन्यनिरपेक्षत्वेन विशकलिततयावस्थानं संसृष्टिः। अत्र उल्लिखितमिति क्रियाप्रधाना। उत्प्रेक्षातिशयोक्त्योर्निरपेक्षत्वेनावस्थितिः संसृष्टिः ॥२९॥ कवीशा तुङ्गविद्या सभां श्रीकृष्णादिकं। सखीं राधां ॥३०॥ अस्याः सख्या लसत्तनुवनीमनु तनुवन्यां कामस्य गम्भीरवेदी, अङ्कुशादिना त्वङ्मांसादिच्छेदेऽपि व्यथाज्ञान-रहितोऽतिमत्तो गजराट् भाति। तद्यस्मात् इह तनुवन्यां अस्य गजस्य कुम्भौ कुचयोर्मिषेण भातः। कीदृशौ कुम्भौ ? हरेः पाणौ जन्म येषां ते हरिपाणिजन्मनो

में तमाल की शाखा उपशाखाके द्वारा चिह्नयुक्त श्रीफलयुगल से श्रीकृष्णरूप तमाल की शाखारूप नखके द्वारा उल्लिखित अर्थात् क्षतविक्षत श्रीराधाके स्तनरूप श्रीफलयुगल का उत्कर्ष है। यहाँ उत्प्रेक्षा अलङ्कार है। अतिशयोक्ति का लक्षण—निगीर्णस्योपमानेनोपमेयस्य निरूपणं। या स्यादतिशयोक्तिः सा। उपमानके द्वारा ग्रस्त उपमेय का जो निरूपण, उसका नाम अतिशयोक्ति है। यह उपमान की भाँति प्रयोग होगा, किन्तु उपमान के द्वारा उपमेय ग्रस्त नहीं होगा। यहाँपर उपमान तमाल शाखाकी उपशाखाकृत चिह्न श्रीफल द्वारा ग्रस्त उपमेय श्रीकृष्ण नखक्षतयुक्त स्तनका जो निरुपण है, वह ही अतिशयोक्ति है। संसृष्टि अलङ्कार का लक्षण—"संसृष्टिरसौ क्रिया-शब्दार्थोभयभूः ॥" क्रिया प्रधान शब्दालङ्कार एवं अर्थालङ्कार से उत्पन्न को संसृष्टि कहते हैं। यहाँ उल्लिखित पद, क्रियाप्रधान है, उत्प्रेक्षा एवं अतिशयोक्ति का निरपेक्षत्व रूपमें अवस्थान का नाम ही संसृष्टि है ॥२९॥ अनन्तर कविश्रेष्ठा तुङ्गविद्या निज वाक्य द्वारा श्रीकृष्णादि सभासद् जनको

कुम्भौ मिषेण कुचयोर्हरिपाणिजन्म-
कामाङ्कुशक्षतशतौ मदलेपचित्रौ ॥ ॥३१॥

अत्र रूपकानुमानापह्नुतिश्लेषाणामन्योन्यङ्गाङ्गिभावात् साङ्कर्य्यं ॥

नखास्ते एव कामाङ्कुशास्तेषां क्षतशतं ययोस्तौ। मदलेपेन मदस्य मृगमदस्य लेपेन चित्रौ। त्वग्भेदाच्छोणितस्रावान्मांसस्य कृन्तनादपि। संज्ञां न लभते यस्तु गजो गम्भीरवेद्यसौ। अलङ्कारचतुर्णां मध्ये अत्र रूपकं। कुचयोर्गजकुम्भयोस्तादात्म्येन रूपकमिदं समस्तवस्तुविषयं उपमानोपमेयबोधकशब्दयोवर्त्तमानत्वात्। रूपकलक्षणं। अस्य सर्गस्य पञ्चदशश्लोके ज्ञेयं। अनुमानलक्षणं यथा। साध्यसाधनसद्भावेऽनुमान-मनुमानवत्। अत्र नखाङ्कुशजन्यत्वङ्मांसभेदादपि सञ्ज्ञाराहित्येन गम्भीरवेदिगजस्यास्याः स्तनयोरनुमानं। अपह्नुतिलक्षणं यथा। यातु प्रकृतस्यान्यथाकृतिः सा अपह्नुतिः। अत्र प्रकृतयोः स्तनयोर्गजकुम्भत्वेनान्यथाकृतिरपह्नुतिः। हरिः कृष्णः सिंहश्चात्र श्लेषः। एषां परस्पराङ्गाङ्गिभावात् साङ्कर्य्यं। अत्र कृष्णः सिंहश्चात्र श्लेषः। एषां परस्पराङ्गाङ्गिभावात् साङ्कर्य्यं। अत्र परस्पराङ्गाङ्गिभावो यथा। कुचयोगजकुम्भत्वेन रूपकं यदि भवति तदैवास्याः स्तनौ गजस्थितेरनुमानं स्यात्। गजस्थितेरनुमाने सत्येव स्तनयोरूपकं भवति। अपह्नुत्या स्तनयोर्गजकुम्भत्वेन निश्चये सत्येव हरिशब्दः श्लिष्टः स्यात्। एवं विवेचनीयं ॥३१॥

सन्तुष्ट कर एवं श्रीराधाको लज्जितकर कहने लगी।।३०।। आहा ! श्रीराधा के मनोज्ञ तनुरूप काननके मध्यमें गम्भीर वेदी है। अर्थात् रक्तश्राव, त्वकमांसछेदन करने पर भी चेतना व्यथाज्ञान रहित अतिमत्त गजराज विराजित है, कारण इस तनुवनमें इसके कुम्भद्वय, स्तनयुगलके छलसे हरिपाणि जन्य, अर्थात् श्रीकृष्णके नखरूप कामाङ्कुश द्वारा अनेक क्षत एवं मृगमदके लेप द्वारा चित्रविचित्र होकर अत्यन्त शोभित हैं। इस श्लोकमें रूपक, अनुमान, अपह्नुति, श्लेष, यह चार अलङ्कारके मध्यमें कुचयुगल एवं गजकुम्भद्वय के तादात्म्य होने से रूपकालङ्कार है, अर्थात् उपमान उपमेय बोधक शब्दद्वय वर्त्तमान हेतु समस्त वस्तुविषयक रूपक हुआ है। लक्षण—रूपकं रूपितारोपाद्विषये निरपह्नुवे। अनुमान लक्षण—साध्यसाधन सद्भावे अनुमानमनुमानवत्। धूमको देखकर जिस प्रकार वह्निका अनुमान होता है, उस प्रकार साधनके द्वारा साधन का अनुमान ही अनुमान अलङ्कार है। यहाँ नखाङ्कुशजन्य शोणितश्राव एवं चर्ममांस छेदन होने पर भी

विराजत्सुदन्तोल्लसत्सोमराजी। ततोऽतिप्रमोदाज्जगादेन्दुलेखा ॥३२
अस्यां सुरतरङ्गिण्यां कृष्णोऽक्रीडन्मतङ्गजः।

विराजन्तः सुदन्ता एव उल्लसन्त्यौ सोमानां चन्द्राणां राजी पङ्क्ती यस्याः सा इन्दुलेखा जगाद ॥३२॥ अस्यां सुतरङ्गिण्यां कृष्णरूपो मतङ्गजोऽक्रीडत्। यतोऽस्याः स्तनचक्रवाकौ कोरकाविति पाठे स्तनरूपपद्मकोरकौ। तत्तस्य कृष्णस्य मतङ्गजस्य करयोरास्फालनात् प्रसारणात् आ सम्यक् क्लिष्टौ च तौ उत्लिखितौ च स्तः। सुरतरङ्गिणीशब्दोऽत्र श्लिष्टः। राधापक्षे सुरतेषु रङ्गिण्यां। कोरकपक्षे गङ्गायां। श्लेषोत्प्रेक्षासंमिश्रं रूपकं। गङ्गायां मतङ्गजस्य मत्तहस्तिनः क्रीडापेक्षया अस्यां

संज्ञाराहित्य प्रयुक्त गम्भीर वेदिगज के कुम्भद्वयके द्वारा श्रीराधाके स्तनयुगल का अनुमान होता है। अपह्नुति का लक्षण—"यातु प्रकृतस्यान्यथाकृतिः सा अपह्नुतिः॥" प्रकृत वस्तुको अन्यथा कर देनेका नाम अपह्नुति है। यहाँपर स्तनद्वय को गजकुम्भत्व रूपमें अन्यथा करने के कारण अपह्नुति अलङ्कार हुआ है। हरि शब्दका अर्थ कृष्ण एवं सिंह है। यह श्लेष है। यह सब अलङ्कार परस्पर अङ्गाङ्गिभाव होनेसे सङ्कर हुआ है। परस्पर का अङ्गाङ्गिभाव इस प्रकार है–कुचयुगल का रूपक गजकुम्भत्वरूप होनेसे ही श्रीराधाके स्तनयुगलमें गजकुम्भस्थिति का अनुमान होगा। और गजकुम्भस्थिति का अनुमान होनेसे ही स्तनद्वय का रूपक होगा। अपह्नुतिके द्वारा स्तनद्वय का निश्चय गजकुम्भत्व रूपमें होनेसे ही हरिशब्द श्लिष्ट होगा॥३१॥ इसके बाद जिनके सुन्दर दन्तपङ्क्ति उल्लासयुक्त चन्द्रश्रेणी की भाँति प्रतिभात होती है, वह इन्दुलेखा सहर्ष कहने लगी॥३२॥ इस सुर तरङ्गिणी में कृष्णरूप मतङ्गजने क्रीड़ा की है, कारण इनके स्तनरूप चक्रवाक् अथवा पद्मकोरक, कृष्णरूप मतङ्गज के करप्रसारण से सम्यक् रूपसे क्लिष्ट अर्थात् क्षतविक्षत हो गए हैं। इस श्लोकमें श्लेष एवं उत्प्रेक्षा संमिश्रक रूपक अलङ्कार है। यहाँ सुरतरङ्गिणी है। कोरक के पक्षमें सुरतरङ्गिणी गङ्गा है। श्लेष एवं उत्प्रेक्षा संमिश्ररूपक इस प्रकार है। गङ्गामें मत्तहस्ति की क्रीड़ा की अपेक्षा इस राधामें कृष्णकृत क्रीड़ाका उत्कर्ष है। उत्प्रेक्षण–सम्भावनोपमानेनोपमेयोत्कर्ष हेतुका उत्प्रेक्षान्यूनमित्यादि शब्दद्योत्या॥ कोकसे कुचमें उल्लिखन का अर्थात् क्षतविक्षत का उत्कर्ष है। यहाँ श्लेष एवं उत्प्रेक्षा का संमिश्रण हुआ है। यहाँ कोक (चक्रवाक) द्वयके साथ श्रीराधाके कुचयुगल का तादात्म्य है, अर्थात्

तत्करास्फालनाक्लिष्टोल्लिखितौ स्तनकोरकौ ॥
अत्र श्लेषोत्प्रेक्षासंमिश्रक–रूपकं ॥ ॥३३॥

कृष्णकर्णौ सुधापूर्णौ रचयन्ती स्वया गिरा।
वारितापि दृशा सख्या रङ्गदेवी जगाद सा ॥ ॥३४॥

तरुणिममणिपूर्णौ मुद्रितौ हेमकुम्भौ
निभृतमुरसि धात्रा गोपितौ वाढमस्याः।

कृष्णकृतक्रीडाया उत्कर्षः। उत्प्रेक्षालक्षणं चतुर्विंशतिश्लोकेऽस्ति। कोकात् कुचेषु उल्लिखनस्य उत्कर्षात् श्लेषोत्प्रेक्षयोः संमिश्रं सहितं। अस्या राधायाः स्तनयोः कोरकाभ्यां तादात्म्यमत्र रूपकं समस्तवस्तुविषयं। उपमानोपमेययोर्मतङ्गज–कृष्णयोः स्तनकोरकयोः शब्दगत्वात् रूपकं। लक्षणमस्य सर्गस्य पञ्चदशश्लोके वर्त्तते ॥३३॥ सा रङ्गदेवी सलज्जया राधिकया दृशा निवारितापि स्वया गिरा कृष्णकर्णौ सुधारसपूर्णौ रचयन्ती सती जगाद ॥३४॥ धात्रा अस्य उरसि तरुणिममणिभिर्वाढं पूर्णौ मुद्रितौ च कृत्वा यौ हेमकुम्भौ निभृतं यथा स्यात्तथा गोपितौ वभूवतुः। तैः प्रसिद्धैर्लुब्धकृष्णेन प्रेरितैर्नखरूपखनकचौरैस्तत्र स्वर्णकुम्भयोः सुरङ्गं छिद्रं कर्त्तुमिव इतस्ततः खातौ खनितौ विदारितौ भवतः। खनु अवदारणे। अत्र स्तनयोः स्वर्णकुम्भेन नखानां खनकचौरेण नखक्षतस्य खातेन तादात्म्यं रूपकमत्र हेमकुम्भशब्देनार्थमर्य्यादया स्तनयोः कथनादेकदेशविवर्त्तिरूपं रूपकं। लक्षणं पञ्चदशश्लोकेऽस्ति। स्तनापेक्षया स्वर्णकुम्भस्य

तुल्यरूप है, वह ही रूपक है। यह रूपक-उपमान, एवं उपमेय, मतङ्गज, एवं कृष्ण, तथा स्तन एवं कोक है, यह शब्दगतत्व हेतु समस्त वस्तुविषयक रूपक है। लक्षण—रूपकं तद् यत् तादात्म्यं द्वयोः ।।३३।। अनन्तर रङ्गदेवी सलज्जिता श्रीराधाके द्वारा नयनेङ्गित से निवारित होकर भी निज वाक्यके द्वारा श्रीकृष्ण के कर्णयुगल को अमृतरस से पूर्णकर कहने लगी।।३४।। श्रीराधाके वक्षःस्थल को विधाताने तारुण्यमणिसे पूर्ण एवं मुद्रित दो स्वर्णकुम्भ को निर्जनमें गोपन करके रक्खे हैं, किन्तु लुब्ध कृष्णके द्वारा नखरूप चोर (सेंध काटनेवाला) प्रेषित होकर कुम्भद्वय में सुरङ्ग 'सुराख' करने के लिए इधर उधर क्षतविक्षत कर दिया है। इसमें रूपक उत्प्रेक्षाके साथ अतिशयोक्ति अलङ्कार है। यहाँपर स्तनयुगल का स्वर्णकुम्भके साथ, नखका खनक चोरके साथ, क्षतका खातके साथ एकत्व होनेके कारण रूपक अलङ्कार है। यहाँ हेमकुम्भ शब्द, अर्थमर्य्यादासे स्तनयुगल का प्रकाशक होनेसे एकदेश विवर्त्ति रूपक हुआ है। रूपक लक्षण—रूपकं तत् यत्

नखर–खनकचौरैर्लुब्धकृष्णेरितैस्तैः
तत इत इव खातौ तत्र कर्त्तुं सुरङ्गम् ॥ ॥३५॥

अत्र रूपकोत्प्रेक्षाभ्यामतिशयोक्तिः ॥

गिरिधरतृप्त्यै शशिवदनां तां। तदनु सुदेवी परिहसति स्म ॥३६॥

वनप्रियप्रियां वित्तसुवर्णदाडिमीमिमाम् ।
पीतां–शुकनखक्षुण्णं दधतीं सत्फलद्वयम् ॥ ॥३७॥

नखापेक्षया खनकचौरस्य नखक्षतापेक्षया खातस्य न्यूनत्वेन स्तनादेरुत्कर्ष उत्प्रेक्षा। उत्प्रेक्षालक्षणं त्रयोविंशतिश्लोकेऽस्ति। स्वर्णकुम्भेन स्तनयोस्तथा नखचौरकृतखातेन नखक्षतस्य निरूपणात् उपमानेन हेमकुम्भेन निगीर्णस्य उपमेयस्य स्तनस्य निरूपणादतिशयोक्तिः ॥३५॥ तदनु श्रीरङ्गदेवीकथानन्तरं सुदेवी तां राधां परिहसति स्म ॥३६॥ हे सख्यः! इमां वनप्रियस्य श्रीकृष्णस्य कोकिलस्य च प्रियां सुवर्णदाडिमलतां नखैः क्षतां खण्डितं सत्फलद्वयं दधतीं। बनप्रियः परभृतः कोकिलः पिक इत्यपीत्यमरः। यूयं वित्त जानीतेति। अत्र रूपकं। नायिकायाः सुवर्णदाडिमीत्वेन

तादात्म्यं द्वयो।। स्तनसे सुवर्णकुम्भका, नखसे खनक चोरका एवं नखक्षत की अपेक्षा खातका न्यूनत्व प्रयुक्त स्तनादिका उत्कर्ष ही उत्प्रेक्षा है। लक्षण—संभावनोपमानेनोपमेययोत्कर्षहेतुका, उत्प्रेक्षा, न्यूनमित्यादि शब्दद्योत्या। स्वर्णकुम्भक के साथ स्तनद्वय का, नख चौरकृत खात के साथ नखक्षत निरूपण हेतु उपमान हेमकुम्भ के साथ ग्रस्त उपमेय स्तनका निरूपण होनेसे अतिशयोक्ति अलङ्कार है। लक्षण—निगीर्णस्योपमानेनोपमेयस्य यन्निरूपणं अतिशयोक्तिः ।।३५।। रङ्गदेवीके कथन सुदेवी गिरिधर श्रीकृष्ण की तृप्तिके निमित्त शशिवदना श्रीराधाको परिहास पूर्वक कहने लगी।।३६।। सखियो! पीतवर्ण सुवर्ण दाडिमी, शुकके द्वारा क्षतविक्षत होकर व उत्कृष्ट फलयुगल धारण कर रही है, इसको वनप्रिय कोकिल की प्रियतमा जानना। श्लेष पक्षमें कृष्णनखक्षत स्तन युगल धारिणी, स्वर्णदाड़िमी स्वरूप गौराङ्गी श्रीराधाको वनप्रिय श्रीकृष्ण की प्रियतमा रूपमें जानना। इस श्लोकमें रूपक श्लेषके द्वारा अतिशयोक्ति अलङ्कार है। यहाँ पर नायिका का स्वर्णदाड़िमीत्व, स्तनद्वयका फलत्व, समान होनेसे स्वर्णदाड़िमी शब्दसे श्रीराधिका एवं सत्फलद्वय शब्द का अर्थ मर्यादा से स्तनद्वयका कथन होनेसे एकदेश विवर्त्ति रूपक हुआ है।

अत्र रूपकश्लेषाभ्यामतिशयोक्तिः ॥

स्वावसराप्त्या तामथ हृष्टा। चन्द्रमुखी सा वर्णयति स्म ॥ ॥३८॥

लोकोत्तरा हाटकदाडिमीयं फले दधानापि पृथग्यदाभ्याम्।
सुपक्ववीजान्यलिविक्षतेन पिधाय धत्ते कुसुमद्वयेन ॥ ॥३९॥

स्तनयोः फलत्वेन तादात्म्यं स्वर्णदाडिमीशब्देन राधिकायाः सत्फलद्वयशब्देनार्थमर्य्यादया स्तनद्वयस्य च कथनादेकदेशविवर्त्तिरूप रूपकं। श्लेषः, वनप्रियः कोकिलः कृष्णश्च। श्लेषलक्षणं षोडशश्लेकेऽस्ति। दाडिमफलरूपोपमानेन उपमेयस्य स्तनस्य निगीर्णं निरूपणमत्रातिशयोक्तिः। अतिशयोक्तिलक्षणं ऊनत्रिंशश्लोकेऽस्ति ॥३७॥ अष्टसखीनां वर्णनसमाप्तौ स्वस्य कथनेऽवसरप्राप्ता सा चन्द्रमुखी तां राधां ॥३८॥ इयं हाटकदाडिमी लोकोत्तरा। यद्यस्मात् दाडिमफले दधानापि आभ्यां फलाभ्यां पृथक् वीजानि दन्तानि अलिविक्षतेन कुसुमद्वयेन ओष्ठाधरेण पिधाय आच्छाद्य धत्ते। व्यतिरेको विलक्षणं उपमानात्। अस्यार्थः। गुणेन दोषेण च। अत्र टीका। वैलक्षण्यमाधिक्यं। अत्रान्यदाडिमीलता उपमानादियं राधादाडिमी लोकोत्तरा। आभ्यां फलाभ्यां स्तनाभ्यां पृथक् कुसुमद्वयाच्छन्नवीजानां अधरौष्ठाच्छन्नदन्तानां धारणात् गुणेन विलक्षणं अधिकं व्यतिरेकः। उपमानेन कुसुमद्वयेन निगीर्णयोरुपमेययोरोष्ठाधरयोः पदयोरप्रयोगात्। एवं

वनप्रिय शब्दसे कोकिल एवं कृष्णका बोध होनेसे श्लेष हुआ है। लक्षण—अनेकार्थ प्रतिपादकता यदि एकार्थस्य शब्दस्य तदाश्लेषः स कथ्यते। दाड़िम फलरूप उपमानके द्वारा उपमेय स्तनका निरूपण ग्रस्त होनेसे अतिशयोक्ति अलङ्कार हुआ। लक्षण—निगीर्णस्योपमानेनोपमेयस्य यन्निरूपमां सातिशयोक्तिः ।।३७।। ललितादि अष्ट सखियों का वर्णन समापन होनेपर कहने के लिए अवसर प्राप्तकर चन्द्रमुखी नाम्नी सखी श्रीराधाका वर्णनकर कहने लगी ।।३८।। यह सुवर्ण दाड़िमी लोकोत्तरा अर्थात् अलौकिकी है, कारण दाड़िमफल द्वयको धारण करके भी उससे बीजको पृथक कर उसको भ्रमर दंशित कुसुमद्वय के द्वारा आवृत करके धारण कररहा हैं। श्लेष पक्षमें स्वर्ण दाड़िमी स्वरूपा श्रीराधा दाड़िमफल सदृश स्तनद्वय को धारण किये हैं, एवं उसके बीजस्वरूप दन्तसमूह को श्रीकृष्णके दन्तक्षत अधरोष्ठ के द्वारा आवृत किये हैं। इस श्लोकमें व्यतिरेक एवं अतिशयोक्ति अलङ्कार है। उपमानसे व्यतिरेक विलक्षण होता है। लक्षण--व्यतिरेको विलक्षणं उपमानात्। यह विलक्षण-गुण अथवा दोषसे होता है, विलक्षण का अर्थ अधिक है।

अत्र व्यतिरेकातिशयोक्तिः ॥

नारीणां मूर्द्धन्या। श्रीज्येष्टा सावादीत् ॥ ॥४०॥

अस्या दृगञ्जनालेपात् पक्वजम्बुफलायते।
कृष्णाधरोऽस्मिन् दन्तोऽस्या बुभुक्षितशुकायते ॥ ॥४१॥

दाडिमीपदोपमानेनोपमेयः राधापदस्याप्रयोगात्। एवं वीजपदेन दन्तानामुपमेयानामदानात्। एवमुपमानकुसुमपदादीनां उपमेयानामोष्टाधरः राधादन्तानामदानमतिशयोक्तिः। अस्य लक्षणं ऊनत्रिशत्श्लोकस्य टीकायामस्ति ॥३९॥ श्रीयुक्ता ज्येष्ठानाम्नी सखी सा अवादीत् ॥ ४०॥ कृष्णस्याधरः अस्या दन्तः अस्मिन् कृष्णाधरे वुभुक्षितशुक इवाचरति। अत्र जम्बुफलमिव शुक इवाचरतीत्यत्र इवशब्दस्य लोपात् लुप्तोपमा। सा उपमा यथा। यथाकथञ्चित् साधर्म्म्यमुपमा सा भवेद्द्विधा। पूर्णा लुप्तेति, पूर्णातु धर्म्मेणैव यथादिभिः। उपमानोपमेयाभ्यां इयमेवेवादिभिः युक्ता श्रौति, समाद्यैस्तु सा स्यादार्थी च। तद्धिते वाक्ये समासे केत्येते षोढा लुप्तातु लोपतः। काव्यलिङ्गं यथा। पदवाक्यार्थनाहेतोः काव्यलिङ्ग प्रकीर्त्त्यते। अस्यार्थः। पदार्थहेतुसकाशात्, तथा

यहाँपर उपमान, अन्य दाड़िमीलता से उपमेय यह दाड़िमीलता लोकोत्तरा अर्थात् अलौकिकी है। दाड़िमी फलद्वय की अपेक्षा पृथक् है, एवं कुसुम द्वयाच्छन्न बीज समूहसे अधरौष्ठाच्छन्न दन्तसमूह का धारण हेतु गुण द्वारा अधिक होनेसे व्यतिरेक हुआ है। तथा उपमान कुसुमके साथ निगीर्ण अर्थात् ग्रस्त उपमेय ओष्ठाधरके अप्रयोग हेतु अतिशयोक्ति अलङ्कार हुआ है। लक्षणनिगीर्णस्योपमानेनोपमेयस्य निरूपणं यस्मादतिशयोक्तिः सा। उपमानेन निगीर्णस्योपमेयस्य यन्निरूपणं सातिशयोक्तिः, निगीर्णं ग्रस्तं तथाचोपमानस्य इव प्रयोगोनतूपमानेन ग्रस्तोपमेयस्य ।।३९।। नारीगणों की शिरोमणि स्वरूपा श्रीज्येष्ठा सखी कहने लगी ।।४०।। श्रीराधाके लोचनाञ्चल के अञ्जनसे लिप्त होने के कारण श्रीकृष्ण के अधर पक्व जामुन फलके समान दिखाई देते हैं, एवं श्रीराधिका की दन्तपङ्क्ति उक्त अधरके लिए क्षुधार्त्तशुकपक्षीके समान आचरण करती रहती है। यहाँपर लुप्तोपमा काव्यलिङ्ग अलङ्कार है। "जम्बुफलमिव, शुकइव आचरति" उभयस्थल में इव शब्दका लोप होनेसे लुप्तोपमा हुआ है। उपमा का लक्षण—यथा कथञ्चित् साधर्म्म्यमुपमा सा भवेद् द्विधा 'पूर्णा लुप्तेति' यथाकथञ्चित् साधर्म्यका नाम उपमा है, यह पूर्णालुप्ता भेदसे दो प्रकार है, दृगञ्चल जम्बुफल "आ है, इसलिए दन्त भी

अत्र लुप्तोपमाकाव्यलिङ्गे ॥

भ्रुवेरिता हृदीशेन वारितापि दृशेशया ।
राधां तां काञ्चनलता स्पष्टवर्णमवर्णयत् ॥ ॥४२॥

नाभिर्लोमावलिरुरसिजद्वन्द्वमास्यं विभाति
श्रीराधायामिति विधिकृता पश्यतां भ्रान्तिरेषा ।
सत्यं सान्द्रामृतमय-सरस्येकनालोत्थमब्ज-
द्वन्द्वं शश्वत् करपरिचयैर्मीलयन् दीव्यतीन्दुः ॥४३॥ अपह्नुतिः ॥

वाक्यार्थताहेतुसकाशात् यत्र कार्य्यसिद्धिस्तत्र काव्यलिङ्गमुच्यते। अत्र पक्वजम्बुफलमिवाचरति, तथा शुकमिवाचरति, वाक्यार्थहेतुककृष्णाधरस्य जम्बुफलरूपकार्य्यसिद्धिः। तथास्याः राधाया दन्तस्य बुभुक्षितशुकरूपकार्य्यसिद्ध्या काव्यलिङ्गं ॥४१॥ ईशया राधया दृशा वारितापि हृदीशेन कृष्णेन भ्रुवेरिता प्रेरिता काञ्चनलता तां राधां स्पष्टवर्णं राधानाम गृहीत्वा ॥४२॥ राधायां नाभिस्तदुपरि रोमावलिः स्तनद्वन्द्वं तत् आस्यं विभाति। इत्येतन्नाभ्यादि पश्यतां जनानां विधिकृता भ्रान्तिरेषा सत्यं तु सान्द्रे निविडे अमृतसरोवरे एकमृणाले उत्पन्नं पद्मद्वयं इन्दुश्चन्द्रः शश्वत् पुनःपुनः करपरिचयैः किरणसयोगैर्मीलयन् मुद्रयन् दीव्यति। अपह्नुतिलक्षणं। सा तु प्रकृतस्यान्यथाकृतिः सापह्नुतिः। अन्यथाकृतिः प्रकृतं निषिध्यान्यस्य स्थापनं। प्रकृतं नाभिरोमावलीस्तनद्वयं मुखञ्च निषिध्यान्यथाकृतिरमृत सरोमृणालपद्मचन्द्राणां स्थापनमत्रापह्नुतिः ॥४३॥

शुक हो गया है, इस प्रकार पूर्ववाक्य परवाक्य का हेतु होनेसे ही काव्यलिङ्ग अलङ्कार हुआ है। काव्यलिङ्ग का लक्षण—पदवाक्यार्थता हेतोः काव्यलिङ्ग प्रकीर्त्त्यते।। पदार्थ हेतु एवं वाक्यार्थ हेतु से जहाँपर कार्य की सिद्धि होती है, वहाँ काव्यलिङ्ग अलङ्कार होता है।।४१।। तब काञ्चनलता सखी, श्रीराधा द्वारा नयनेङ्गित से निवारित होने परभी श्रीकृष्ण द्वारा भ्रूभङ्गी से अर्थात् राधा नाम लेकर ही श्रीराधाकी वर्णना करने लगी।।४२।। आहा! श्रीराधा की नाभि ह्रदरूप है, उसके ऊपर रोमावली है, उसके ऊपर स्तनद्वय है, उसके ऊपर मुखमण्डल शोभित है, नाभि प्रभृति को देखकर ब्रह्माकी सृष्टि सौन्दर्य में लोकों की भ्रान्ति होती है, कारण,–निविड़तर सुधासरोवर में एक मृणाल में समुद्भूत कमलद्वय को चन्द्र मानो पुनः पुनः अपने हस्तस्पर्शसे मुद्रित करके क्रीड़ा कर रहा है। यहाँ अपह्नुति अलङ्कार है, सातु प्रकृतस्य अन्यथाकृतिः सापह्नुतिः। यथार्थ विषय को निषेध कर अन्यको स्थापन करने

सा मृगीलोचना। माधवी व्याहरत् ॥४४॥

नाभिः कुण्डं त्रिवलिविततिर्मेखला चावलग्नं
वेदिर्लोमावलिरपि जुहूः श्रीकुचौ भद्रकुम्भौ।
कामो यज्वा सुजघनगलौ पीठशङ्खौ बकारे-
श्चित्ताकृष्टिः फलमिह बभौ यज्ञशालास्य राधा ॥४५॥ रूपकम् ॥

भानोः कन्यां, धन्यामेतां। सा पश्यन्ती, वासन्त्याख्यत् ॥ ॥४६॥

भ्रूरोमाल्यौ धनुरसिलते श्रीकटाक्षाः पृषत्का-
बाहूपाशौ गल इह दरः श्रीनितम्बो रथाङ्गं।

माध्वीनाम्नी गोप्याह ॥४४॥ अस्य श्रीकृष्णस्य राधा यज्ञशाला। साम्यमाह। नाभिर्होमकुण्डं। तदुपरि त्रिवलिविस्तारो मेखला। अवलग्नं मध्यदेशो वेदिः। रोमावलिर्जुहूः। कुचौ मङ्गलकुम्भौ। कामो यज्वा होता। सुजघनं पीठः। कण्ठः शङ्खः। श्रीकृष्णस्य चित्ताकर्षणं फलं। अत्र नाभित्रिवल्यादेः कुण्डादिना तादात्म्यं रूपकं। समस्तवस्तुविषयं उपमानोपमेयबोधकशब्दानां वर्त्तमानत्वात्। प्रासङ्गिरूपकश्च प्रकृष्टसजातीयबहुसङ्गानां नाभित्रिवलिमेखलादीनां विद्यमानत्वात् ॥४५॥ वासन्तीनाम्नी सा भानोः वृषभानोः कन्यामेतां धन्यां श्रीराधां पश्यन्ती आख्यत् आह ॥४६॥ कामस्य शस्त्रगृहं राधा भाति। शस्त्राण्याह। भ्रूर्धनुः रोमावलिः असिलता खड्गः

का नाम अपह्नुति ही है। इस श्लोकमें नाभि, रोम, स्तनद्वय, वदनमण्डल को निषेधकर यथाक्रमसे अमृत सरोवर, मृणाल, एवं चन्द्र का स्थापन करने से अपह्नुति अलङ्कार हुआ है।।४३।। अनन्तर मृगीलोचन माधवी गोपी कहने लगी।।४४।। श्रीराधा श्रीकृष्ण की यज्ञशाला स्वरूपा है। उनकी नाभि होमकुण्ड है, त्रिवली मेखला है, मध्यदेश वेदी, रोमावली जुहू 'स्रुव्' कुचद्वय मङ्गलमय कुम्भयुगल, कन्दर्प यज्ञकर्त्ता, नितम्ब पीठ, अर्थात् आसन, कण्ठ ही शङ्ख, श्रीकृष्णका आकर्षण ही यज्ञका फल है। यहाँ रूपकालङ्कार है। लक्षण--रूपकं यत् तादात्म्यं द्वयोः। नाभि त्रिवलि आदि का कुण्डादिके साथ जो तादात्म्य है अर्थात् एकीभाव है, वह ही रूपकालङ्कार है, उपमान उपमेय बोधक शब्दसमूह की विद्यमानतासे रूपक समस्तवस्तु विषयक हुआ है। प्रकृष्ट सजातीय बहुसङ्ग नाभि प्रभृति की विद्यमानता के कारण प्रासङ्गिक रूपक भी जानना होगा।।४५।। अनन्तर वासन्ती

दीव्यद्गण्डौ कनकफलके श्रीनखाश्चाङ्कुशाः श्री-
राधा भाति स्मरनरपतेः शस्त्रशाला विशाला ॥४७॥ रूपकम् ॥

तद्वाक्तृप्ता । वृन्दावादीत् ॥४८॥

राधायाः सुतनुः सुधा सुरधुनी बाहूबिशे सत्स्तनौ
कोकौ श्रीमुख-नाभि-पाणि-चरणाः पद्मानि वक्रालकाः ।
रोलम्बा मधुरस्मितश्च कुमुदं नेत्रे तथेन्दीवरे
रोमाली जलनीलिकेह लसति श्रीकृष्णहृत्कुञ्जरः ॥४९॥ रूपकम् ॥

यथासंख्येनान्वयः। कटाक्षाः पृषत्काः वाणाः वाहू पाशौ नागपाशौ। गलो दरः शङ्खः नितम्बो रथाङ्गं चक्रं। गण्डौ सुवर्णस्य फलके ढाल इत्याख्ये भ्रूरोमावल्यादीनां धनुरादिभिस्तादात्म्यं समस्तवस्तुविषयं प्रकृष्टबहु-सजातीयानां विद्यमानत्वात् प्रासङ्गि रूपकं लक्षणं पञ्चदशश्लोकेऽस्ति ॥४७॥४८॥ सुतनुः शोभनशरीरं अमृतमयगङ्गा। बाहू विशे मृणाले। सत्स्तनौ चक्रवाकौ। मुखादीनि कमलानि। वक्रालकाः रोलम्वा भ्रमराः। लोमश्रेणी जलनीली। जलनीली तु शैवालमित्यमरः। इह तनौ कृष्णस्य हृदयरूपकुञ्जरो लसति। अमृतमयगङ्गादिभिरुपमानौ राधाशरीराद्युपमेयेषु तादात्म्य रूपकं समस्तवस्तुविषयं पूर्व्ववत् प्रासङ्गिकं ॥४९॥

नामिका सखी, धन्यतमा वृषभानु कन्या श्रीराधाके प्रति नेत्रपात करके कहने लगी।।४६।। श्रीराधिका कन्दर्प की सुविशाल अस्त्रशाला की भाँति शोभिता है, उनकी भ्रूयुगल ही धनु, रोमावली खड्ग, कटाक्ष वाण, भुजयुगल नागपाश, गलदेश-शङ्ख, मनोहर नितम्ब चक्र, गण्डयुगल सुवर्ण फलक, सुन्दर नखरश्रेणी अङ्कुश स्वरूप है। यहाँ भ्रूरोमावली प्रभृति, धनु प्रभृति के साथ तादात्म्य होनेसे समस्तवस्तु विषयक प्रकृष्ट एवं अनेक सजातीय वर्त्तमान होनेसे रूपकालङ्कार भी हुआ है। लक्षण रूपकंयत् तत् तादात्म्यं द्वयोः।।४७।। इस कथन से सुतृप्त होकर वृन्दा कहने लगी।।४८।। श्रीराधाका सुन्दर शरीर–अमृतमय गङ्गा है, भुजयुगल मृणाल, उत्तम स्तनद्वय, चक्रवाक्, शोभन मुख, नाभि, हस्त, चरण, कमल, कुटिल अलकाकुलभ्रमर, सुमधुर हास्य ही, कुमुदपुष्प, नयनयुगल, इन्दीवर, रोमावली-शैवाल स्वरूप है, एवं जिनके शरीर में श्रीकृष्ण हृदयरूप कुञ्जरराज विराज रहे हैं। अमृतमय गङ्गादि उपमान के साथ श्रीराधाके शरीरादिरूप उपमेयकी तादात्मता है, वह ही रूपक है। समस्त वस्तुविषयक एवं पूर्ववत् प्रासङ्गिक है।।४९।।

पुनः कृष्णेङ्गितज्ञास्ताः श्लोकैकैकशः पृथक्।
वयस्यां वर्णयामासुः प्रेम्णा तां ललितादयः ॥५०॥

शङ्खार्द्धेन्दु-यवाब्जकुञ्जररथैः सीराङ्कुशेषु ध्वजै-
श्चाप-स्वस्तिक-मत्स्य-तोमरमुखैः-सल्लक्षणैरङ्कितं।

ललितादयः एकैकशः श्लोकेस्तां राधां ॥५०॥ सुकटकं शोभतौ पादकटकौ नूपुरौ यत्र तत्। पक्षे, प्रशस्तं सेनावसतिस्थलं श्रीराधाचरणद्वयं शङ्खादिभिरङ्कितं लाक्षया यावकेन वर्म्मितं कवचेनावृतं एभिः पूर्व्वोक्तैः शङ्खादिभिः आहवो युद्धं तस्योपकरणैः अखिलं विश्वं विजित्य साम्राज्यलक्ष्मया बभौ। कुञ्जरी हस्ती अङ्कुशः इषुर्बाणः चापो धनुः स्वस्तिकः सीरस्य डमर्य्याकारः। अन्ये स्फुटार्थाः। चतुर्णां मध्ये स्वभावोक्तिः। स्वभावसिद्धानि। उत्प्रेक्षा अन्ययुद्धोपकरणजन्यसाम्राज्यलक्ष्म्यापेक्षया राधाया उत्कर्षरूपा साम्राज्यलक्ष्मीः। उत्प्रेक्षालक्षणं त्रयोविंशश्लोकेऽस्ति। रूपकं शङ्खादीनां चरणचिह्न-शङ्खादिभिस्तादात्म्यं। रूपकं अत्र प्रासङ्गि, प्रकृष्ट-सजातीयवहुसङ्गरत्वात्। पञ्चदशश्लोके रूपकलक्षणमस्ति। कटकशब्देन पादकटकः। सेना चेत्यर्थद्वयकथनात्। कटकः पादकटकः सेना च एषां साङ्कर्य्यं व्याप्यव्यापकभावरूपं। अत्र शङ्खादि-चिह्नानाञ्च स्वभावसिद्धत्वे सत्येव शङ्खादीनामुत्कर्षः सिध्यति। अतः स्वभावोक्ति-व्यापकः। उत्प्रेक्षा एव शङ्खादीनां चरणचिह्नशङ्खादिभिस्तादात्म्ये सति शङ्खशब्दस्यार्थ-

---

पुनर्वार श्रीकृष्ण के इङ्गित को जानकर ललितादि सखीवृन्द पृथक्-पृथक् श्लोकके द्वारा श्रीराधा की वर्णना करने लगीं ॥५०॥ श्रीराधाके सुशोभन कटक अर्थात् नूपुरद्वय शोभित अथवा प्रशस्त सेनानिवासरूप पदयुगल, शङ्ख, अर्द्धचन्द्र, यव, पद्म, हस्ति, रथ, सीर, (लाङ्गल) अङ्कुश, बाण, ध्वज, धनु, स्वस्तिक, मत्स्य एवं तोमर प्रभृति उत्कृष्ट लक्षणके द्वारा अङ्कित एवं यावकरूप कवचसे आवृत होकर यह सब युद्धोपकरण विश्वराज्य को जीतकर साम्राज्य शोभासे शोभित हैं। यहाँपर स्वभावोक्ति उत्प्रेक्षा रूपक श्लेषके द्वारा साङ्कर्य है। शङ्ख, अर्द्धचन्द्र, यव, अङ्कुश इस चारमें स्वभावोक्ति है, कारण यह सब चरणके स्वभाव सिद्धलक्षण हैं—अन्यान्य युद्धोपकरण से जो राज्यलक्ष्मी होती है, उससे श्रीराधा की राज्यलक्ष्मी में ही उत्कर्ष सूचित होनेसे उत्प्रेक्षा है। लक्षण—सम्भावनोपमानेन उपमेयोत्कर्ष हेतुका उत्प्रेक्षान्यूनमित्यादिशब्दद्योत्या ॥ एवं शङ्खाकार चिह्न ही शङ्ख है, अर्थात् युद्ध शय्या है, यह ही रूपक है। लक्षण—रूपकन्तु यत् तत् तादात्म्यं द्वयोः ॥

लाक्षावर्म्मितमाहवोपकरणैरेभिर्विजित्याखिलं
श्रीराधाचरणद्वयं सुकटकं साम्राज्यलक्ष्मया वभौ ॥ ॥५१॥
स्वभावोक्त्युत्प्रेक्षारूपकश्लेषैः साङ्कर्य्यं ॥
यत्कान्त्या लवनाच्छ्रियः किसलये या पल्लवाख्यां न्यधात्
पद्माख्यां नलिने विधाय मलिनीभावं निशा कोकवत् ।
शोकात् कोकनदाभिधां विलपनैरक्तोत्पले चेत्यसौ
सा राधा भुवि तत्पदद्वयमिदं केनोपमेयं भवेत् ॥५२॥ व्यतिरेकः ॥

द्वयकथनरूप श्लेषलक्षणं भवतीति व्यापकव्याप्यभावो बोध्यः। साङ्कर्य्यलक्षणं पञ्चदशश्लोकेऽस्ति ॥५१॥ या राधा यद्‌यस्य स्वस्याः पदद्वयस्य कान्त्या किशलयस्य रक्तवर्णकोमलनवीन–पत्रस्य याः श्रियः शोभास्तासां लवनात् छेदनात् किशलये पल्लवाख्यां पदा हेतुना लवं शोभानां लवश्छेदो यस्य सः। पल्लव इत्याख्यां पल्लव इति नाम न्यधात् अस्थापयत्। लूञ् छेदने धातुः। भावेऽप्यप्रत्ययः। यत्कान्त्या नलिने मलिनीभावं विधाय पद्ममित्याख्यं पदा हेतुना मलिनीभावो यस्य तत् पद्ममित्याख्यं न्यधात्। केवल मशब्देन मलिनीभाव एकदेशग्रहणं। यत्कान्त्या रक्तोत्पले च निशायां कोकवत् चक्रवाकवत् शोकात् कोकस्य विलपनमिव यन्मुद्रितत्वरूप-विलपनं तदेव नदो नादस्तस्मात् कोकनदाभिधां कोकनदमिति नाम न्याधात्। रक्तोत्पलं कोकनदमिति। कोकश्चक्रश्चक्रवाको रथाङ्गाह्वय नामक इति चामरः। अतः सा राधा तत्तस्याः पदद्वयञ्च केन वस्तुना उपमेयं भवेत् न केनापीत्यर्थः। व्यतिरेको विलक्षणं उपमानात् गुणेन दोषेण च। अत्र पल्लवपद्मोत्पलात् उपमेयं राधापदद्वन्द्वं गुणेन विलक्षणं ॥५२॥

इस प्रकार शङ्ख एवं अर्द्धचन्द्रस्थल में भी जानना होगा। कटकशब्द श्लिष्ट है, वह पादकटक एवं सेनाका वोधक है। यह चार अलङ्कार का परस्पर अङ्गाङ्गिभाव व्यक्त होनेसे सङ्करता हुई है। सङ्करस्तु अङ्गाङ्गिभावः ।।५१।। जिनके पदद्वय की कान्ति से रक्तपद्मके नवीन कोमल पत्रकी शोभाका छेदन होनेसे किशलयका नाम पल्लव हुआ है, पद्म एवं रजनीमें शोकप्राप्त हेतु कोक अर्थात् चक्रवाक की भाँति आर्त्तनाद परायण रक्तोत्पल की कोकनद आख्या हुई है, अतः उन श्रीराधाके चरणयुगल को उपमा किसके साथ दी जायेगी? यहाँपर व्यतिरेक अलङ्कार है। लक्षण— व्यतिरेको विलक्षणः। गुण दोष अथवा अन्य किसी कारण से उपमेयका

अपूर्व्वा श्रीराधाचरणनखचन्द्रावलिरियम्
सदा पूर्णा भान्ती हरिहृदि निरङ्कारुणरुचिः।
समुत्फुल्लं तस्येन्द्रियकुमुदवृन्दं विदधती
हठाच्चन्द्रावल्या विरचयति या विस्मृतिमपि॥ ॥५३॥

रूपकविरोधव्यतिरेकश्लेषाः॥

इयं श्रीराधाचरणनखचन्द्रावलिरपूर्व्वा। अपूर्व्वतामाह, निरङ्का कलङ्करहिता अरुणवर्णा रुचिः कान्तिर्यस्याः सा। या हरेः श्रीकृष्णस्य हृदि सदापूर्णा भान्ती तस्य कृष्णस्य इन्द्रियरूपकुमुदवृन्दं समुत्फुल्लं विदधती सती। तस्य चन्द्रावल्या विस्मृतिमपि हठात् विरचयति। अत्र रूपक राधानखचन्द्रयोस्तादात्म्यमत्र समस्तवस्तुविषयं। विरोध द्रव्यस्य द्रव्येण विरोधाभासो बोध्यः। स विरोधाभासो विरोध इति वस्तुतो न विरोधः। विरोध इव भासते इत्यर्थः। जातिगुणक्रियाद्रव्याणां जात्यादिभिर्विरोधः। जातिर्जात्यादिभिर्गुणस्त्रिभिर्द्वाभ्यां क्रिया द्रव्यं द्रव्येणैवेति ते दश। जात्यादिभिश्च-तुर्भिर्जातिर्विरुध्यते। गुणो गुणक्रियाद्रव्यैः। क्रियाक्रिया द्रव्याभ्यां। द्रव्य द्रव्येणोति दश। चन्द्रावलिरित्यत्र चन्द्रस्तु सदा पूर्णो न निष्कलङ्कोऽरुणरुचिश्च नेति विरोधः। नखचन्द्रावल्या चन्द्रस्य च वर्णगुणभिन्नद्रव्यतया तं हठात् चन्द्रावलिं विस्मारयतीत्यर्थः। विरोधाभावात् नखचन्द्रसमूहनिष्ठजात्या सह प्रसिद्धचन्द्ररूपद्रव्यस्य जात्या सह द्रव्यस्य विरोधाभासः। निरङ्कारुणरुचिरित्यत्र कलङ्कस्याभावात्। अरुणस्य विद्यमानत्वात्

उपमानसे वैलक्षण्य अर्थात् आधिक्य अथवा न्यूनता होनेसे व्यतिरेक होता है। यहाँपर पल्लव, पद्म, उत्पलरूप, उपमान से श्रीराधाके चरणयुगलरूप, निज गुणसे विलक्षण अर्थात् उत्तम हुआ है।।५२।। आहा! श्रीराधा की नखचन्द्रावली आश्चर्यकर है, कारण, चन्द्रावली सकलङ्क है, यहाँ अकलङ्क, अरुणकान्तियुक्ता है, अतएव श्रीकृष्णके हृदयमें पूर्णरूपसे दीप्तिमती होकर, उनके हृदयरूप कुमुद समूहको प्रफुल्लकर सहसा उनकी चन्द्रावली को विस्मृतकर देती है। यहाँपर रूपकविरोध व्यतिरेक श्लेष अलङ्कार है। श्रीराधाके नखचन्द्र एवं चन्द्र, उभयमें तादात्म्य अर्थात् एकरूपत्व होनेसे समस्तवस्तुविषयक रूपकहै। जातिके साथ जातिका, गुणके साथ गुणका, क्रियाके साथ क्रियाका, द्रव्यके साथ द्रव्यका, जाति, गुण, क्रिया, द्रव्यके साथ जातिका, जाति, क्रिया द्रव्यके साथ गुणका, जाति क्रियाके साथ गुणका, द्रव्यके साथ क्रियाका, द्रव्यके साथ द्रव्यका एवं क्रिया, द्रव्यके साथ क्रियाके विरोध को विरोधाभास कहते है, यह दस प्रकार होता है।।५३।।

तारुण्ये नवराज्ञि नीतिशिथिले राधावपुःपत्तने
वक्षोजद्वयदस्युना सजघनेनाक्रम्य मध्यं वलात्।
पौष्कल्यं निखिलं हृतं त्रिवलिभिः फुत्कारभीत्या गुणै-
र्वद्ध्वा स्थापितमित्यवेत्य भयतो गुल्फौ निलीय स्थितौ ॥५४॥
रूपकोत्प्रेक्षयोः संसृष्टिः ॥

विरोधाभासो गुणेन गुणस्येति। कुमुदं समुत्फुल्लमित्यत्र कुमुदपुष्पस्य फुल्लतायां हरेरिन्द्रियकुमुदफुल्लतायां क्रियाया भिन्नत्वेन विरोधाभासः क्रियया सह क्रियायाः। चन्द्रावल्या विस्मृतिरित्यत्र चन्द्रावलिनामा गोपी चन्द्रश्रेणी च तस्या भिन्नत्वात् द्रव्यस्य द्रव्येण विरोधाभासो बोध्यः। नखचन्द्रस्य क्षयाभावात् आपूर्णा उपमानात् प्रसिद्धात् चन्द्रादुपमेयनखचन्द्रो विलक्षणः। गुणेनोत्कृष्टः। चन्द्रावलिशब्दः चन्द्रश्रेणी चन्द्रावली गोपी चेति श्लिष्टः ॥५३॥ श्रीराधायास्तारुण्यजाङ्गशोभां वर्णयति तारुण्ये नवराज्ञीति। शिथिले नीतेर्न्यायात् शिथिले शैथिल्ययुक्ते सति राधाया वपुरूपपलने देशे स्तनद्वयदस्युना जलनदस्युना च तयोर्मध्यदेशं वलादाक्रम्य पौष्कल्यं पुष्टत्वं निखिलं कृत। फुत्कारभीत्या त्रिवलिभिर्गुणैर्वद्धा स्थापितमिति ज्ञात्वा गुल्फौ निलीय स्थितौ। तारुण्यस्य राज्ञा स्तनजघनयोर्दस्युना त्रिवल्या रज्वा तादात्म्यं रूपकं समस्तवस्तुविषयं सजातीयवहूनामलङ्काराणां सङ्गात् प्रासङ्गि। प्रसिद्धराज्ञे (१) गुणापेक्षया राधायास्तारुण्यवक्षोजनितम्बत्रिदलीनामुत्कर्ष उत्प्रेक्षा। संसृष्टिलक्षणं यथा। शब्दार्थोभयभुवामलङ्काराणामखण्डावस्थितिः संसृष्टिः। अत्रालङ्कारयोरूपकोत्प्रेक्ष-योरखण्डावस्थितिः संसृष्टिः ॥५४॥ अस्या जङ्घे दीव्यतः कीदृश्यौ ? स्वस्थित्या

पश्चात् सखिगण, श्रीराधाके तारुण्यजनित अङ्गशोभा का वर्णना कर रही हैं। तारुण्यरूप नूतन राजाके अधिकार से नीति समूह शिथिल होनेसे श्रीराधाके शरीररूप प्रदेशमें स्तनद्वय एवं जघनद्वयरूप दस्युगण स्तन एवं जघनके मध्यदेशका बलपूर्वक आक्रमण कर समुदाय स्थूलत्व को अपहरण कर लिए हैं, और फुत्कारके भयसे मध्यदेशको त्रिवलीरूप तीन रेखाओं से बाँध दिये हैं। यह जानकर दोनों एड़ियोंने अपने को छिपा लिया है। यहाँपर रूपक उत्प्रेक्षा की संसृष्टि है। तारुण्यका राजाके साथ, स्तनजघन का दस्युके साथ, त्रिवली का रज्जुके साथ तादात्म्य होनेसे समस्त वस्तुविषयक रूपक है, सजातीय अलङ्कार निचयके सङ्गी हेतु प्रासङ्गिक है। प्रसिद्ध राजाके गुणकी अपेक्षा श्रीराधाके तारुण्य, स्तन, नितम्ब त्रिवली का उत्कर्ष हेतु उत्प्रेक्षा है। शब्द,

स्वस्थित्यैव स्तम्भितस्वर्णरम्भा स्तम्भारम्भे दीव्यतोऽस्याः सुजङ्घे
धात्रानङ्गोष्णार्त्तकृष्णेभशीतच्छायाशालास्तम्भतां लम्भिते ये ॥५५॥ रूपकोत्पेक्षे॥

अस्या मिषात् प्रसृतयोर्मदनाय हैमालानद्वयं विधिरदादमुनार्थितः किम्
यत् कृष्णचित्तमदमत्तगजं स चास्मिन् तन्माधुरीसुदृढशृङ्खलया बबन्ध ॥५६॥
रूपकोत्प्रेक्षापह्नुत्यनुमानानि ॥

स्तम्भितः स्वर्णरम्भाणां स्तम्भभावस्यारम्भो याभ्यां ते। धात्रा अनङ्ग एव उष्णः ग्रीष्मकालस्तेनार्त्तो यः कृष्णेभः कृष्णरूपगजः तस्य शीता छाया यत्र तस्याः शालाया गृहरूपाया राधाया स्तम्भतां ये जङ्घेलम्भिते प्रापिते। अत्र रूपकं। जङ्घयोः स्तम्भत्वेन कृष्णस्येभत्वेन तादात्म्यमत्र समस्तवस्तुविषयं उपमानोपमेयोः शब्दगत्वात्। सजातीय-रूपकान्तराभावेन निःसङ्गं स्वर्णकदलीवृक्षात् जङ्घयोरुत्कर्ष उत्प्रेक्षा। जङ्घातु प्रसृतेत्यमरः ॥५५॥ अमुना मदनेन प्रार्थितो विधिरस्यां राधायाः प्रसृतयोजङ्घयोर्मिषात् मदनाय हैमालानद्वयं किमदात्। आलानं करिवन्धनमित्यमरः। यद्यस्मात् स मदनः तत्तस्याः जङ्घायाः माधुरी सैव सुदृढशृङ्खला तया अस्मिन् आलानद्वये मदमत्तं श्रीकृष्णस्य चित्तहस्तिनं ववन्ध। अत्र रूपकं। जङ्घाया आलानेन कृष्णचित्तस्य गजेन च तादात्म्यमत्र समस्तवस्तुविषयं उपमानोपमेययोः शब्दगत्वात् सजातीयरूपकान्तरस्या-

---

अर्थजनित अलङ्कार समूह की अवस्थिति अखण्डरूप में होनेसे संसृष्टि हुई है, यहाँपर रूपक उत्प्रेक्षा अवस्थिति सम्पूर्ण रूपसे होनेसे संसृष्टि हुई है।।५४।। अनन्तर श्रीराधाकी जङ्घायुगल की वर्णना करके सखी कहती है, और ग्रीष्मकालसे पीड़ित कृष्ण मतङ्गजके लिए राधारूप सुशीतल छायाविशिष्ट गृहस्थित स्तम्भका निर्म्मार्ण विधाताने किया है, इस श्लोकमें रूपक एवं उत्प्रेक्षा है। जङ्घा युगलके स्तम्भत्व, एवं कृष्णका हस्तीत्व होनेके कारण स्तम्भके साथ जङ्घा एवं हस्तके साथ श्रीकृष्ण का तादात्म्य होनेसे उपमान उपमेय शब्दगत होने के कारण समस्तवस्तुविषयक रूपक है, यह रूपक सजातीय अन्यरूपकके अभावसे निःसङ्ग हुआ है, स्वर्णकदली वृक्षसे जङ्घायुगलका उत्कर्ष ही यहाँ पर उत्प्रेक्षा है।।५५।। और भी मदनके द्वारा प्रार्थित होकर विधाताने क्या श्रीराधा की विस्तृतजङ्घा निर्माणके छलसे सुवर्ण निर्मित हस्ती बन्धनके लिए दो खम्भे मदनको दिया है, कारण मदनने श्रीराधा की जङ्घायुगल की माधुरी रूप सुदृढ़श्रृङ्खल के द्वारा श्रीकृष्णके

जानुद्वयं न तदिदं वृषभानुजायाः कामस्य ते कनकसम्पुटिके सुगुप्ते।
यत् कृष्णहृन्नयनरत्नमनेकयत्नैः संमुष्य सोऽयमनयोर्मुमुदे निधाय ॥५७॥
अपह्नुतिरूपकोत्प्रेक्षानुमानानि ॥

भावात् प्रासङ्गि। उत्प्रेक्षात्र आलानात् जङ्घाया उत्कर्षः। अपह्नतिलक्षणं, यातु प्रकृतस्यान्यथाकृतिः सा अपह्नुतिः। अत्र जङ्घाया आलानेन अन्यथाकृतिरनुमानं श्रीकृष्णचित्तहस्तिबन्धनं हेतु कृत्वा जङ्घायामालानत्वं साध्यं ॥५६॥ राधायास्तदिदं जानुद्वयं न किन्तु ते कामस्य सुगुप्तेकनकसम्पुटिके। सोऽयं मदनः अनेकयत्नैः कृष्णहृन्नयनरत्नं संमुष्य संचौर्य्य अनयोः सम्पुटयोर्मध्ये निधाय मुमुदे। अत्र प्रकृतस्य जानुद्वयस्य सम्पुटत्वेनान्यथाकृतिरपह्नुतिः। जानुद्वयस्य सम्पुटेन तादात्म्यं रूपकं पूर्व्वश्लोकरीत्या समस्तवस्तुविषयं प्रासङ्गि च। कृष्णहृन्नयनादिरत्नाधरहेतुनान्यसम्पुटात् जानुसम्पुटस्य उत्कर्षादुत्प्रेक्षा। श्रीकृष्णस्य हृन्नयनयोर्जानुद्वये अवस्थितं हेतुं कृत्वा

चित्तरूप हस्तिको वाँधकर रखा है। यहाँपर रूपक उत्प्रेक्षा अपह्नुति अनुमान अलङ्कार है। जानुयुगलके साथ आलानका, कृष्णचित्तके साथ गजका तादात्म्य हेतु, उपमान उपमेयका शब्दगतत्व प्रयुक्त समस्त वस्तुविषयक रूपक है, सजातीय रूपकान्तर का अभाव के कारण प्रासङ्गिक है। आलानसे जङ्घाका उत्कर्ष होनेसे उत्प्रेक्षा है। अपह्नुति का लक्षण--यातु प्रकृतस्यान्यथा कृतिः सा अपह्नुतिः। प्रकृत वस्तुकी अन्यथा करनको अपह्नुति कहते हैं। यहाँपर आलानके द्वारा प्रकृत जङ्घाकी अन्यथा की गई है। अनुमान,—साधन को देखकर साध्य का अनुमान, धूमको देखकर वह्निका अनुमान होता है। प्रकृतमें श्रीकृष्णका मन हस्ती होनेसे ही श्रीराधा की जङ्घा अवश्य ही बन्धन स्तम्भ होगा। यहाँ "चित्तहस्ती" साधन, "जङ्घास्तम्भ" साध्य है।।५६।। वृषभानुनन्दिनी श्रीराधाके जानुद्वय नहीं हैं, यह कन्दर्पका सुगुप्त सुवर्ण सम्पुट है, कारण इस सम्पुट में मदनने श्रीकृष्णके हृदय एवं नयनरत्न को अपहरण करके रखा है। यहाँ जानुयुगल का सम्पुटत्व रूपमें जो अन्यथाभाव है वह ही अपह्नुति है, जानुद्वयका सम्पुटके साथ तादात्म्यहेतु रूपक है, पूर्व श्लोकोक्त नियमके अनुसार रूपक, समस्त वस्तुविषयक एवं प्रासङ्गिक हुआ है। श्रीकृष्णके हृदय, नयनादि रत्नाधार हेतु अपर सम्पुटसे जानुसम्पुट का उत्कर्ष होनेसे उत्प्रेक्षा है। प्रकृत जानुद्वय का सम्पुट रूपसे अन्यथा करण ही अपह्नुति है एवं श्रीकृष्णके हृदय नयनकी

त्वचि कठिनकरेभ्यः पद्मिनां भीः करेः स्या-
ज्जलमयकदलीनां ह्रीश्च काण्डादसारात्।
हरिकरभविलासायासलभ्ये तदस्या-
निरुपम-मधुरे ते सक्थिनी केन तुल्ये ॥५८॥ व्यतिरेकः ॥
मनोज्ञं श्रीगोवर्द्धनकटकमश्चन्न लभते
मुदं यः कालिन्द्याः पुलिनगुणलीलास्मरणजाम्।

जानुद्वये सम्पुटं साध्यमत्रानुमानं ॥५७॥ ये हरिणा श्रीकृष्णेन करभयोर्विलासरूपायासेन प्रयत्नेन मुष्टीकृतकरद्वयाधोदेशेन मृदुसेवया लभ्ये। मणिवन्धादाकनिष्ठं करस्य करभो वहिरित्यमरः। ते निरुपममधुरे अस्या राधायाः सक्थिनी जानु परि ऊरुद्वयं केन तुल्ये स्यातां न केनापीत्यर्थः। हस्तिशुण्डेन सह तुलनां देहि तत्राह। पद्मिनां हस्तिनां त्वचि कठिनेभ्यः करेभ्यः शुण्डेभ्यः तुलनादाने करेर्भीः स्यात्। कदलीवृक्षेण तुलना दीयतामिति चेत्। तदा जलमयकदलीनामसारात् काण्डात् कदलीवृक्षाकाराद्धेतोः कदल्या तुल्यकथने करेर्भीभयं ह्रीर्लज्जा च स्यात्। व्यतिरेकोऽत्र। करिशुण्ड-कदलीरूपोपमानत्वात् उरुद्वयस्य वैलक्षण्यात् गुणेनाधिक्यात् व्यतिरेकः ॥५८॥ यो मधुरिपुः मनोज्ञ श्रीगोवर्द्धनस्य कटकं नितम्बमश्चन् कालिन्द्याः पुलिनगुणलीलास्मरणजां मुद्रं न लभते। अस्याः कालिन्द्याः पुलिनमश्चन् सन् तत्रत्यां गोवर्द्धनकटकभवां मुदश्च

अवस्थिति जानुद्वय में है, इसको हेतुकर जानुद्वय को सम्पुट रूपमें साध्य करना ही अनुमान है, इस प्रकार-अपह्नुति रूपक उत्प्रेक्षा अनुमान, अलङ्कार है।।५७।। श्रीराधाके निरूपम, सुमधुर ऊरुयुगल की तुलना किससे करें, श्रीकृष्ण, करयुगलके अग्रभाग को हस्तिसूँड़ की भाँति मोड़कर श्रीराधाके उरुयुगल को धारण करते हैं, हस्तिसूँड़के साथ तुलना करनेपर हस्तिका भय होगा, कदलीवृक्षके साथ तुलना करनेसे जलमय कदलीवृक्ष असार होनेसे भयलज्जा भी होते हैं, अतएव उरूयुगल निरुपम है। यहाँ व्यतिरेक अलङ्कार है, व्यतिरोकोऽत्र करिशुण्ड कदलीरूपोपमानात् उरुद्वयस्य वैलक्षण्यात् गुणेनाधिक्यात् गुणाधिक्य हेतु व्यतिरेक है।।५८।। कृष्ण, मनोज्ञ गोवर्द्धन पर्वतके निम्नदेशमें भ्रमण करते-करते कालिन्दी पुलिनके गुणलीला उद्दीप्त होनेसे सुखी नहीं होते हैं, और कालिन्दी पुलिनमें भ्रमण करते-करते गोवर्द्धनपर्वत की लीलामें जो सुख होता है, वैसा सुखप्राप्त नहीं करते हैं,

न तत्रत्यां चास्याः पुलिनमनुविन्दन्नघरिपुम्
नितम्बं सोऽस्यास्तां समलभत पश्यन्नु भयजाम् ।।५९।। व्यतिरेकः ।।

राधाश्रोणिरियं समा न पुलिनैः सत्या कवेर्गीरियम्
यद्वेणी यमुना तदेव पुलिनं काञ्ची मरालीततिः ।
नो चेत्तत्र हरेर्मनोनटवरः श्रीरासलास्यं कथम्
स्वाभिर्वृत्तिसखीनटीभिरनिशं कुर्व्वन्न विश्राम्यति ।। ।।६०।।
रूपकानुमानव्यतिरेकाः ।।

न लभते। स श्रीकृष्णः अस्या राधाया नितम्बं पश्यन् उभयजां गोवर्द्धनकटकजां कालिन्दीपुलिनजाञ्च मुदं समलभत। अत्र व्यतिरेकः। उभयोर्गोवर्द्धनदर्शनज — पुलिनदर्शनजयोर्मुदोर्नितम्बदर्शनजमुदोर्वैलक्षण्यं गुणेनाधिक्यं ।।५९।। श्रीराधाया इयं श्रोणिः पुलिनैः समाइति कवेरियं गीः सत्या न अपि तु सत्यैव। श्रेणिः पुलिनैः समेति व्याख्याने रूपकालङ्कारः। पुलिनेन तादात्म्यं न सम्भवेत् यद्‌यस्मात् श्रोणिमध्यालम्बिनी वेण्येव यमुना श्रोणितटविराजमाना। काञ्ची हंसीश्रेणी। तत्तस्मात् श्रेणिः पुलिनमेव चेद्‌यदि न हरेर्मन एव नटवरः स्वाभिः मनोवृत्तिरूपसखीनटीभिः सह तत्र श्रोण्यां श्रीरासलास्य रासक्रीडायां नृत्यं रससमूहो रासस्तद्‌युक्तं लास्यं वा अनिशं कुर्व्वन् कथं न विश्राम्यति। वेण्यादेर्यमुनादिभिस्ता-दात्म्यात् रूपकमत्र समस्तवस्तुविषयं उपमानोपमेययोः शब्दगत्वात्। श्रीकृष्णमनो-रूपनटस्य नृत्यं हेतुं

किन्तु कृष्ण श्रीराधाके नितम्ब देशको अवलोकन कर उभयज अर्थात् गोवर्द्धननितम्ब दर्शनजन्य तथा कालिन्दी पुलिनके गुणलीला स्मरण जन्य सुखका अनुभव करने लगे हैं। यहाँ व्यतिरेक अलङ्कार है। उभयो गोवर्द्धन दर्शनजपुलिन दर्शनजयोर्मुदोनितम्ब दर्शनजन्यमुदोर्वैलक्षण्यं गुणेनाधिक्यम् ।। व्यतिरेक,-यथा, गोवर्द्धन दर्शनजनित एवं पुलिन दर्शनजनित आनन्द की अपेक्षा, नितम्ब दर्शनजनित आनन्द की विलक्षणता एवं गुणके द्वारा आधिक्य है ।।५९।। "श्रीराधाका नितम्व, यमुना पुलिनके समान है" कविका यह वाक्य क्या सत्य नहीं है? अवश्य ही सत्य है, कारण, श्रीराधाकी श्रोणीमध्यावलम्बिनी हरी वेणीरूपा यमुना विराजित है, नितम्बदेश पुलिन, एवं काञ्ची ही हंसश्रेणी है, यदि ऐसा नहीं होता तो, श्रीकृष्णके मनोरूप नटराज, क्यों निज मनोवृत्ति सखीरूप नटीके साथ निरन्तर रासनृत्यकर श्रान्त

वीर्य्योन्मत्तैर्मदकरितनुस्थूलता हस्तकुम्भै-
मैत्रीं कृत्वा शठगुरु—नितम्बोरुवक्षोजचौरैः।
पौष्कल्यं मे हृतमिति भयक्रोधशोकादिवास्या
दुःस्थं मध्यं त्वरितमकरोत् सिंहमध्येन सख्यम् ॥६१॥ रूपकोत्प्रेक्षे ॥

अस्या नितम्वस्तनयोर्दरिद्रयोः सन्धिं विधायाकृतमध्यसम्पदोः।
पश्चाद्विधिर्वीक्ष्य कलिं प्रलुब्धयोश्चकार सीमां त्रिवलिच्छलेन किम्? ॥६२॥
उत्प्रेक्षापह्नु ती ॥

कृत्वा पुलिनं साध्यमत्रानुमानं। पुलिनान्नितम्बस्य वैलक्ष्यण्यं व्यतिरेकः ॥६०॥ वीर्य्योन्मत्तैर्मदकरिणां मत्तहस्तिनां तनोः स्थूलता शुण्डकुम्भस्थलैः सह क्रमेण मैत्रीं कृत्वा शठगुरवश्च ते नितम्बोरुवक्षोजाश्च तैर्नितम्बोरुवक्षोजैः चौरैर्मे पौष्कल्यं हृतमिति हेतोर्भयक्रोधशोकादि। अस्या मध्यं मध्यदेशो दुःस्थं दुःखितं सत् हस्तिहन्ता यः सिंहस्तस्य मध्येन सह त्वरितं सख्यमकरोत्। स्तनादेर्हस्तिकुम्भादिना मध्यस्य सिंहमध्येन तादात्म्यं रूपकमत्र समस्तवस्तुविषयं। उत्प्रेक्षात्र कुम्भाद्यपेक्षया इव इति शब्दद्योत्यः स्तनादेरुत्कर्षः ॥६१॥ अस्याः श्रीराधाया नितम्बस्तनयोरादौ दरिद्रयोस्ततः सन्धिं विधाय परस्परं सौहृदं कृत्वा आहृता मध्यदेशस्य सम्पदो याभ्यां तयोर्लुब्धयोः कलिं कलहं वीक्ष्य पश्चात् सम्पदाहरणानन्तरं पुनस्तयोः कलिनिवृत्त्यर्थं त्रिवलिच्छलेन

नहीं हो रहें हैं? वेणी प्रभृति का यमुनादिके साथ तादात्म्य हेतु रूपक है। श्रीकृष्ण की मनोवृत्ति रूप नटीके नृत्यको हेतु करके पुलिनको साध्य करना ही अनुमान है, पुलिनसे नितम्बका वैलक्षण्य ही व्यतिरेक है, इस प्रकार रूपक अनुमान-व्यतिरेक अलङ्कार प्रस्तुत पद्यमें है ।।६०।। शठगुरु नितम्ब, ऊरु, स्तनरूप चोर है, इससे क्रमशः मदमत्त करि शरीर की स्थूलता, शुण्ड एवं कुम्भस्थलके साथ मित्रताकर मेरी स्थूलता का अपहरण कर लिया है, इस प्रकार भय, क्रोध, शोकसे ही श्रीराधा की कटिने दुःखी होकर हस्तिनाशक सिंहके मध्यदेशके साथ सत्वर मित्रता करली है। यहाँ रूपक-उत्प्रेक्षा है। कैशोरावस्थामें कटिदेश क्षीण होता है, उरु, स्तन स्थूल होते हैं, स्तनादि का हस्तीकुम्भादिके साथ, मध्यदेश का सिंहके मध्यदेशके साथ तादात्म्य होने के कारण समस्त वस्तुविषयक रूपक है। यहाँ उत्प्रेक्षा,-कुम्भादि की अपेक्षा रत्नादिका उत्कर्ष है, इव शब्दद्वारा प्रकाशित है ।।६१।।

वाल्यमित्रविरहादवलग्नं क्षीणतामुपगतं प्रसमीक्ष्य ।
भङ्गभीतिविधुरो विधिरस्याः किं त्रिधा वलिगुणैः प्रवबन्ध ॥६३॥
उत्प्रेक्षारूपके ॥

सुधासरस्यां कनकाब्जिनीदलं भृङ्गालिफुल्लाब्जविराजदन्तरम् ।
किमेतदाभाति न किन्तु राधिकातुन्दं सरोमावलिनाभिभूषितम् ॥ ॥६४॥

किं सीमां चकार। अन्यदरिद्रकलिसीमापेक्षया किंशब्दद्योत्योत्कर्षोऽत्र उत्प्रेक्षा। नितम्बस्तनत्रिवल्यादेर्लब्धसीमादिना अन्यथाकृतिरत्रापह्नुतिः ॥६२॥ बाल्यमेव मित्रं तस्य विरहादवलग्नं मध्यं क्षीणतां प्राप्तमिति वीक्ष्य विधिर्भङ्गभीत्या कातरः सन् त्रिवलिरज्ज्वा किं प्रवबन्ध। किंपदद्योत्या अन्यापेक्षयास्या मध्यदेशत्रिवल्या-देरुत्कर्षोऽत्रोत्प्रेक्षा। त्रिवल्यादेरज्ज्वादिरूपेण तादात्म्यमत्र रूपकं ॥६३॥ सुधासरोवरे कनकपद्मलतादलं। तत् कीदृशं ? भ्रमरश्रेण्या सह प्रफुल्लकमलेन विराजत् अन्तरं मध्यं यस्य तदेतत् आभातीति सन्देहः, किन्तु नैतत् राधिकायास्तुन्दमुदरं रोमावलिसहितनाभिना

और भी पहले श्रीराधाका नितम्ब एवं स्तन दरिद्र दशामें थे, बादमें द्रोनोंने परस्पर सन्धि कर ली, अर्थात् परस्पर सौहार्दकर श्रीराधाके मध्यदेश की समस्त सम्पत्ति हरण कर ली, तथापि नितम्ब एवं स्तन दोनों लुब्धचित होकर सम्पद् प्राप्तिके लिए कलह करते रहते हैं। विधाताने कलह को देखकर सम्पत्ति छीन ली, और कलह शान्तिके लिए ही क्या त्रिवलिके च्छलसे ही सीमा निर्द्धारण किया है। यहाँ उत्प्रेक्षा हुआ है। एवं वस्तुतः नितम्ब स्तन, त्रिवल्यादि सीमा न होने परभी उसका सीमारूप से वर्णन करना ही अपह्नुति है।।६२।। अहो ! श्रीराधाके बाल्यरूप मित्रके विरह हेतु मध्यदेश (कटिदेश) क्षीण होगया है, यह देखकर उसके टूटने के भयसे विधाताने कातर होकर ही क्या त्रिवलिके द्वारा मध्यदेश को त्रिवलिके द्वारा बाँध दिया है ? यहाँ उत्प्रेक्षा रूपक है। किं पदकेद्वारा प्रकाशित दूसरेकी अपेक्षासे श्रीराधाके मध्यदेश एवं त्रिवल्यादि का उत्कर्ष ही उत्प्रेक्षा है। और त्रिवल्यादिका रज्जुके साथ तादात्म्य ही रूपकहै।।६३।। अमृत सरोवरमें भ्रमरश्रेणी एवं प्रस्फुटित कमलविराजित है, यह क्या स्वर्णकमल दल हैं? ऐसा नहीं है, यह श्रीराधाका उदर है, निश्चय ही रोमावली के साध नाभिके द्वारा भूषित होकर शोभित है। यहाँ निश्चयानु सन्देह है। अर्थात् वास्तव

निश्चयानुसन्देहः ॥

चलदल–दलजाले कम्पदं हैमदीव्यत्–
कमल–नवदलालौ जाड्यदं निर्जयेन ।
तिलकितमिव रोमश्रेणि–कस्तूरिकाभि–
स्तदिदमुदरमस्या भाति साम्राज्यलक्ष्म्या ॥६५॥

रूपकव्यतिरेकोत्प्रेक्षाः ॥

भृङ्गाराम्भोजमाला-व्यजनशशिकला-कुण्डलच्छत्रयूपैः
शङ्खश्रीवृक्षवेद्यासनकुसुमलता-चामर-स्वस्तिकाद्यैः ।

भूषितमाभातीति निश्चयः। निश्चयोऽनु पश्चात् यस्य तादृशः सन्देहः ॥६४॥ तत् अस्या उदरं साम्राज्यलक्ष्म्या भाति। साम्राज्यलक्ष्मीमाह, उदरं कीदृशं ? निर्जयेन चलदलः पिप्पलस्तस्य दलसमूहे कम्पदं। वोधिद्रुमश्चलदलः पिप्पलः कुञ्जराशन इत्यमरः। स्वर्णवत् दीव्यत् कमल-नवपत्रश्रेण्यां जाड्यदश्च। अतः सकाशात् रोमावलिश्रेणीरूपकस्तूरिकाभिस्तिलकितमिवाभाति। साम्राज्यलक्ष्मीयुतस्यैव कस्तूरीतिलकं भवति। उदरस्य अश्वत्थपत्रेण स्वर्णपद्मस्य नवपत्रश्रेण्या च तादात्म्यं। रोमालेस्तिलकेन तादात्म्यं रूपकं। अश्वत्थदलस्वर्णपद्मदलोपमानादुदरोपमेये वैलक्षण्यादत्र व्यतिरेकः। अश्वत्थदलाद्यपेक्षया उदरादेरुत्कर्ष उत्प्रेक्षा ॥६५॥ भृङ्गारो जलपात्रं। शशिकला चन्द्ररेखा। श्रीवृक्षः विल्ववृक्षः। पूर्वोक्तैः सौभाग्यचिह्नैः। भृङ्ग-पद्ममाला-व्यजन-चन्द्ररेखा-कुण्डलच्छत्र-यूप-श्रीवृक्ष-वेद्यासनकुसुमलता-चामर-

---

वस्तुमें सन्देह है, यहाँ-यह क्या दल है ? यह सन्देह नहीं, दल नहीं है। किन्तु उदर है, यह निश्चय है। निश्चयोऽनुपश्चात् यस्य तादृश सन्देह, अर्थात् अन्तमें जिसका निश्चय है, ऐसा सन्देह ।।६४।। श्रीराधाका उदर चलदल अर्थात् पिप्पलके दलसमूह को पराजित कर विराजित है, एवं सुवर्णके समान शोभाशाली कमलदलको जय कर दिया है। वह उदर रोमावलीरूप कस्तूरिकाके द्वारा तिलकान्वित होकर ही साम्राज्य शोभासे शोभित है। यहाँ रूपक व्यतिरेक, उत्प्रेक्षा अलङ्कार है, अश्वत्थ पत्रके साथ उदरका सुवर्ण कमलके नवपत्रावली के साथ उदरका, तिलकके साथ रोमावली का तादात्म्य हेतु रूपक है, अश्वत्थदल स्वर्णपद्म दलरूप उपमान से उदररूप उपमेय का वैलक्षण्य हेतु यहाँ व्यतिरेक है, और अश्वस्त दलादि

सौभाग्याङ्कैरमीभिर्युतकरयुगला राधिका राजतेऽसौ
मन्ये तत्तन्मिषात् स्वप्रियपरिचरणस्योपचारान् विभर्त्ति ॥६६॥
स्वभावोक्त्युत्प्रेक्षापह्नुतयः ॥

श्रीकामाङ्कुशतीक्ष्ण-चारुशिखरैर्माणिक्यपूर्णेन्दुभिः
श्लिष्टाग्रार्द्धविभाग-गन्धफलिकाश्रेणीदलैः शोभिते ।

स्वस्तिकाद्यैर्युतकरकमला असौ राधिका राजते तत्तन्मिषान् भृङ्गारादिच्छलेन कृष्णपरिचरणस्योपचारान् राधा विभर्त्ति। स्वभावोक्तिः। स्वभावस्य वर्णनमत्र करद्वये भृङ्गारादेर्वर्णनं। करस्थभृङ्गारादेरुत्कर्षादुत्प्रेक्षाप्रकृतस्य भृङ्गारादेः प्रियपरिचर्य्योपचारत्वे-नान्यथाकृतिरपह्नुतिः ॥६६॥ शोभायुक्तैः कामाङ्कुशादपि कामाङ्कुशवद्वा तीक्ष्णानि चारुणि शिखराणि अग्रभागाः येषां तैर्माणिक्यसम्बन्धिभिः पूर्णेन्दुभिः श्लिष्टो युक्तोऽग्रभूतार्द्धविभागो यस्यां तथाभूतानां गन्धफलिकानां चम्पककलिकानां श्रेण्यावेव दलानि तैः शोभिते पद्मे चेद्यदि क्वचिदपि देशे अभविष्यतां तदा जितः पल्लवसमूहः पद्मसमूहश्च याभ्यां तयोः श्रीराधिकाहस्तयोरौपम्यं सम्प्राप्स्यतां। कामाङ्कुशेन नखाग्रस्य माणिक्यनिर्म्मितपूर्णचन्द्रेणारक्तनखस्य चम्पककलिकया अङ्गुल्या पद्मेन हस्तस्य

की अपेक्षा उदरादि का जो उत्कर्ष है वही ही उत्प्रेक्षा है।।६५।। और भी भृङ्गार (जलपात्र) पद्ममाला, व्यजन (तालवृन्त) चन्द्रलेखा, कुण्डल छत्र, यूप, (यज्ञीय पशुबन्धनार्थ काष्ठ) शङ्ख, विल्ववृक्ष, वेदी, आसन, कुसुम, लता, चामर एवं स्वस्तिकादि सौभाग्य चिह्न समूह जिनके करयुगल में अङ्कित हैं, इससे श्रीराधा अधिक शोभित हैं, प्रतीति होती है कि श्रीराधा निज प्राणबन्धु की परिचर्य्या के उपकरण ही धारण कर रही है। यहाँ स्वभावोक्ति, उत्प्रेक्षा अपह्नुति अलङ्कार है। स्वभावोक्तिः, स्वभावस्य वर्णनं, करद्वयमें भृङ्गारादिका वर्णन ही स्वभावोक्ति है, अर्थात् स्वभाव सिद्ध का ही वर्णन है, करस्थ भृङ्गारादिका उत्कर्ष हेतु उत्प्रेक्षा है प्रकृत भृङ्गारादि प्रियको परिचर्या के लिए उपहार रूपमें अन्यथा करण ही अपह्नुति है।।६६।। शोभायुक्त कामाङ्कुशसे भी जिसका अग्रभाग अतिशय सुतीक्ष्ण है एवं माणिक्य सम्बन्धीय पूर्णचन्द्र समूह अर्द्धभागमें संयुक्त है, इस प्रकार चम्पक कलिका समूहके दलसे यदि कमल शोभित होता है, तब पल्लव एवं कमलों

पद्मे चेदभविष्यतां क्वचिदपि श्रीराधिकाहस्तयो-
रौपम्यं जितपल्लवाञ्जचययोः सम्प्राप्स्यतां ते तदा ॥६७॥
रूपकव्यतिरेकातिशयोक्तयः।

राधाकराञ्जनखरा वकारेर्वक्षस्तटी-गरुडरत्नकवाटिकायाम्।
उत्कीर्णचित्रकरणाय रतीशकारोष्टङ्का-सुसूक्ष्मनिशिताः स्पुटमुल्लसन्ति
॥६८॥ रूपकोत्प्रेक्षे॥

मूलेऽधोवदनं वराटकयुगं चाग्रेऽम्बुजे बिभ्रती
नैते स्वर्णमृणालके रतिपतेर्ये पाशतामागते।

तादात्म्यं रूपकं। उपमानकामाङ्कुशमाणिक्याद्यपेक्षया श्रीराधाया नखादेर्वैलक्षण्यमत्र व्यतिरेकः। उपमानेन कामाङ्कुशेन निगीर्णस्य उपमेयस्य राधानखाग्रस्य निरूपणमत्रातिशयोक्तिः। एवं चन्द्रेण नखस्य पद्मेन करस्य चम्पकदलैरङ्गुलैरङ्गुलीनाञ्च निरूपणं॥६७॥ मुखरा अतितीक्ष्णा राधायाः करनखरः बकारेर्वक्षःस्थलरूपेन्द्र-नीलमणिरत्नकवाटिकायां क्षुद्रकवाटे उत्कीर्णचित्रं पाषाणादौ क्षोदं कृत्वा हिङ्गुलादिवर्णकैः पूर्णचित्रं तत्करणाय रतीश एव कारुः शिल्पकारी तस्य सुसूक्ष्मा निशिताष्टङ्काः पाषाणदारकाः स्फुटमुल्लसन्ति। टङ्कः पाषाणदारकाः इत्यमरः। अत्र रूपकं। नखस्य टङ्केन तादात्म्यं टङ्कापेक्षया नखस्योत्कर्ष उत्प्रेक्षा॥६८॥ एते मूले

की पराजित करने वाला श्रीराधाके करकमल युगल कभी भी किसी से तुलना प्राप्त नहीं कर सकता है। यहाँ रूपक, व्यतिरेक, अतिशयोक्ति अलङ्कार है। कामाङ्कुशके साथ नखाग्रका माणिक्य निर्मित पूर्णचन्द्र के साथ आरक्त नखका, चम्पक कलिकाके साथ अङ्गुलि समूह का, कमल के साथ हस्तका तादात्म्य हेतु रूपक है, उपमान, कामाङ्कुश, माणिक्यादि की अपेक्षासे श्रीराधाके नखादिका वैलक्षण्य प्रयुक्त यहाँपर व्यतिरेक है, और उपमान कामाङ्कुश द्वारा निगीर्ण अर्थात् शब्द द्वारा अनुत्पादित उपमेय स्वरूप राधानखाग्रका निरूपण ही अतिशयोक्ति है।।६७।। औरभी श्रीराधाके करकमल के सुतीक्ष्ण नखसमूह श्रीकृष्णके वक्ष:स्थलरूप इन्द्रनीलमणि निर्मित क्षुद्रतम कपाटमें उत्कोर्णचित्त अर्थात् पाषाणादि में खोदकर हिङ्गुलादि के द्वारा चित्र करने के लिए शिल्पकारी मदन का सुशाणित पाषाण विदारक अस्त्र की भाँति शोभित है। यहाँ रूपक एवं उत्प्रेक्षा अलङ्कार है। टङ्कके साथ नखका तादात्म्य हेतु रूपक है, टङ्कको अपेक्षा नखका उत्कर्ष हेतु

कृष्णोत्फुल्लतमालवेष्टनपटू विल्वत्कुचाधःफले
राधावाहुलते इमे करयुगश्रीपल्लवे दीव्यतः ॥६९॥
सन्देहरूपकलुप्तोपमाः ॥

कामार्त्तिसिन्धुतरणाय हरेर्विधात्रा
राधा व्यधायि तरणिर्मणिचित्रहैमी।

मूलदेशे अधोवदनं वराटकयुगं वीजकोषद्वयं अग्रे अम्बुजे च विभ्रती दधाने। तदपि स्वर्णमृणालके मृणालमेव मृणालकं एतेन ये रतिपतेः पाशतां प्राप्ते अतः कृष्णरूपोत्फुल्लतमालस्य वेष्टने पटुनिपुणे। विल्ववत् आचरत इति विल्वती विल्वतुल्य कुचरूपाधःफले ययोस्ते। करयुगरूपश्रीपल्लवौ ययोस्ते। इमे राधायाः वाहुलते दीव्यतः। वीजकोषो वराटक इत्यमरः। मूले वराटकयोधारणेनाग्रे अब्जयोर्धारणेन च स्वर्णमृणालस्य कारणसत्त्वेऽपि न मृणाले इति सन्देहः। वाहुयुगलस्य लतात्वेन तादात्म्यं रूपकं। पाशतामिवागते पाशतामागते। अत्र लुप्तोपमा ॥६९॥ विधात्रा हरेः कामार्त्तिसमुद्रस्य तरणाय राधा मणिना चित्रा च। सा हैमी हेमनिर्म्मिता च तरणिर्नौका व्यधायि। तस्यां नौकायां क्षेपणी शुभरोमराजिर्निहिता। वाहुयुगलं अरित्रयुग्मञ्च न्यस्तं किं ? नौकादण्डः क्षेपणीस्यादरित्रं केनिपातक इत्यमरः। अन्यनौकापेक्षया

उत्प्रेक्षा है।।६८।। अनन्तर श्रीराधा निजवदन को अवनतकर दोनों हाथोंके ऊपर स्थापन करने से सखी उसका वर्णन करती है, श्रीराधाके भुजयुगल सुवर्ण मृणाल स्वरूप है, कारण मूलदेश में अधोवदनरूप बीजकोषद्वय (पद्मचाकी) है अग्रभागमें अर्थात् बीजकोषके बहिर्भाग में करतलरूप कमलयुगल शोभित है, वस्तुत यह सुवर्ण मृणाल नहीं है, कारण रतिपति कन्दर्पपाश की भाँति प्रतीत होता है, अतएव यह मृणाल नहीं है, किन्तु श्रीराधाके बाहु युगल श्रीकृष्णरूप प्रफुल्लित तमाल तरुको वेष्टन करने के लिए सुदक्ष लतापाश है। कारण स्तनरूप विल्वफल निम्नभागमें हैं, एवं हस्तद्वयरूप सुशोभित पल्लवको भी धारण किये हैं। यहाँ सन्देह रूपक लुप्तोपमा अलङ्कार है। मूलमें वराटकद्वय का धारण, अग्रभागमें कमलद्वय का धारण होनेसे सुवर्ण मृणालका हेतु विद्यमान होने पर भी मृणाल नहीं है, यह सन्देह अलङ्कार है, 'बाहुलता' यह रूपक है, 'पाशतामिवागते' इस अर्थमें 'पाशतागते' इसमें इव शब्द विद्यमान न होनेसे 'लुप्तोपमा' है। लुप्ता सामान्य धमदिरेकस्य यदि वा द्वयोः ।। उपमान अथवा उपमेय, उभयका ही सामान्यत

तत्क्षेपणी च निहिता शुभरोमराजि-
न्र्यस्तश्च वाहुयुगलं किमरित्रयुग्मम् ॥७०॥ उत्प्रेक्षारूपके ॥

श्रीराधिकापार्श्व मतल्लिके शुभे सौन्दर्य्यकन्ये वृणुतः स्म ये स्वयं।
माधुर्य्यपुत्रौ हरिपार्श्व-सद्वरौ सव्यापसव्यक्रमवैपरीत्यतः ॥७१॥ रूपकम् ॥

स्मरजयलिपियुक्ता हाटकी पट्टिकेयम्
किमु विधृतमनोभूशस्त्रिकं स्वर्णपीठम्।

कृष्णार्त्तिसिन्धुतरणहेतुना राधानौकाया उत्कर्षादुत्प्रेक्षा। राधाया नौकात्वेन रोमावलेः क्षेपणीत्वेन वाहुयुगलस्य अरित्रयुग्मत्वेन तादात्म्यं रूपकं ॥७०॥ श्रीराधायाः पार्श्वमतल्लिके प्रशस्ते शुभे सौन्दर्य्यस्य कन्ये ये कर्त्तृभूते माधुर्य्यस्य पुत्रौ हरेः पार्श्वरूप-सद्वरौ वृणुतःस्म। राधिकायाः वामपार्श्वः कृष्णस्य दक्षिणपार्श्वं, श्रीराधादक्षिणपार्श्वं कन्या श्रीकृष्णवामपार्श्वं वरमिति वैपरीत्यं। पार्श्वस्य कन्यावरत्वेन तादात्म्यं रूपकं। मतल्लिकामचर्च्चिका प्रकाण्डमुद्घतल्लजौ। प्रशस्तवाचकान्यमून्यय इत्यमरः ॥७१॥ इयं किं स्मरजयस्य या लिपिस्तद्युक्ता हाटकी स्वर्णनिर्म्मिता पट्टिका किमु विधृता कन्दर्पस्य शस्त्रिका छुरी इति ख्याता यत्र तत् स्वर्णपीठं। नु वितर्के। हेमनिर्म्मितं

सादृश्य प्रतिपादक धर्मनिचयलुप्त होने पर भी उसका अनुसन्धान कर यदि सादृश्य प्रतिपादित होता है, तब कविगण उसे लुप्तोपमा कहते हैं।। ६९।। प्रतीत होता है कि श्रीकृष्ण की कामपीड़ा रूप समुद्र पार करने के लिए विधाताने श्रीराधाको मणि चित्रस्वर्णमयी तरणि रूपमें सृष्टि की है, एवं सुन्दर रोमावली को क्षेपणी दाँड़ रूपमें एवं भुजद्वय को अरित्र, अर्थात् जलसेचन पात्ररूप रचना की है। यहाँ उत्प्रेक्षा रूपक अलङ्कार है। अपर नाव की अपेक्षा श्रीकृष्णके काम पीड़ारूप समुद्र तरण हेतु राधारूप नौका का उत्कर्ष निबन्धन उत्प्रेक्षा है, और श्रीराधा नौका, रोमावली क्षेपणी, एवं बाहुयुगल अरित्र के साथ तादात्म्यापन्न होने से रूपक हुआ है।।७०।। श्रीराधाके पार्श्वद्वय सुप्रशस्त कन्याद्वयने माधुर्य्यनन्दन स्वरूप श्रीकृष्णके पार्श्वद्वयरूप उत्कृष्ट वरयुगल को वरण किया है, वह सव्यापसव्य रूपसे आलिङ्गित है, अर्थात् श्रीराधाका वामपार्श्व श्रीकृष्णके दक्षिणपार्श्व के साथ आलिङ्गत है, एवं श्रीराधाका दक्षिणपार्श्व श्रीकृष्णके वामपार्श्वके साथ आलिङ्गित है। पार्श्वद्वयका कन्यावरत्व प्रयुक्त तादात्म्य रूपक है।।७१।। श्रीराधाके पृष्ठदेश

मदनभुजगपाशाधारतूणं नु हैमं
नहि लसति विराजद्वेणि राधासुपृष्टम् ।।७२।। निश्चयानुसन्देहः ।।
सहज-विनतमंशद्वन्द्वमस्या कवीन्द्रा
गिरिधरकर–शश्वद्धारतो नम्रमाहुः ।
मम तु मतमनुच्चैरप्यदः सर्व्वमुच्चैः–
शिरसगणमतीत्योद्भाति तत्सौभगेन ।।७३।।

मदनस्य नागपाशस्याधारतूणं किं ? इति सन्देहानन्तरं निश्चयमाह नहीति। तदा किं विराजन्ती वेणी यत्र तत् श्रीराधायाः शोभनपृष्ठं लसति ।।७२।। अस्याः सहजतः स्वतः विशेषेण नतं स्कन्धद्वयं कविश्रेष्ठाः कृष्णकरस्य शश्वद्धारात् नम्रमाहुः। मम तु मतं अदः अंशद्वन्द्वं अनुच्चैरनुच्चं नम्रमपि तत्सौभगेन कृष्णकरस्य शश्वद्धारजन्यसौभाग्येन सर्व्वं उच्चैःशिरसगणं, वयं सौभाग्यवत्यइत्यभिमानेनोच्चैरुच्चान्युन्नतानि शिरांसि मस्तकानि यस्यां ताः। किम्वा राजदन्तादिवत् शिरसोच्चैरुच्चा उच्चता उच्चैःशिरसस्ताः व्रजे श्रीचन्द्रावल्यादिव्रजसुन्दर्य्यः पुरे श्रीमहिष्यः परव्योम्नि श्रीलक्ष्म्यश्च। अन्या या गौरी शच्याद्या दिव्याङ्गनास्तासामुच्चैः शिरसः। इदमर्थे अणि चौरा इत्यत्राणोऽणित्त्वा-दिस्वरावृद्धिः स चासौ गणश्चेति तं। उच्चैःशिरसगणं अतिक्रम्योद्भाति। उपमानत्वात् सहजनतात् अंशद्वयात् कृष्णकरभारजन्य-नतरूप-विलक्षणोव्यतिरेकः। अनुच्चस्य सर्व्वोच्चत्वेन विराजमानता विरोध इव भासते नतु विरोधः। तल्लक्षणं, द्रव्यं द्रव्येण विरुध्यते। नतं स्कन्धद्वयं द्रव्यं तस्य सौभाग्यजन्योच्चांशेन गुणेन सह विरोधाभासः।

का वर्णन कर कहती है, यह क्या कन्दर्प जयका लिपियुक्त स्वर्णपट्ट है? अथवा, कामदेव की शस्त्रिका 'छुरी' युक्त स्वर्णपीठ है? अथवा मदनरूपी नागपाशका आधार स्वरूप तूण (वाणाधार) है? यह सव कुछ भी नहीं है, यह शोभमान वेणी दोलित श्रीराधा की सुन्दर पीठ शोभित है। यह क्या सुवर्ण निर्म्मित कन्दर्प के नागपाश का आधार स्वरूप तूण है? इस सन्देह के बाद, निश्चय यह हुआ है कि,-यह तूण नहीं है, यह वेणी शोभित श्रीराधाके पृष्ठदेश है। इस प्रकार निश्चयानुसन्देह अलङ्कार है।।७२।। श्रीराधाके स्कन्धद्वय स्वभावतः विशेष रूपसे नत हैं, किन्तु श्रेष्ठ कविगण गिरिधर श्रीकृष्णके हस्तका भार निरन्तर वहन करने के कारण नत है, ऐसा कहते हैं, किन्तु मेरा मत तो यह है कि,-श्रीराधाके स्कन्धद्वय, नम्र होने पर भी श्रीकृष्णके हस्तका निरन्तर भार वहन हेतु सौभाग्यसे समुदाय उन्नत

व्यतिरेकविरोधोत्प्रेक्षाः ॥

सौन्दर्य्यलक्ष्मीरिह काव्यलक्ष्मीः सङ्गीतलक्ष्मीश्च हरेर्मुदेऽस्ति ।
पूर्णेति धातुर्गणनात्तु रेखात्रयेण कण्ठः किमु भात्यमुष्याः ॥७४॥ उत्प्रेक्षा ॥
सीमार्थमुच्चैः शिरसोर्विवादेर्वलिष्ठनासास्तनयोर्विधाता ।
राधावपुर्नीवृति कण्ठमध्ये रेखात्रयेणैव चकार सीमाम् ॥७५॥

उत्प्रेक्षारूपके ॥

सहज-नतस्य अंशद्वयस्य कृष्णकरभारसौभाग्यजन्योत्कर्षादुत्प्रेक्षात्र ॥७३॥ इह कण्ठे सौन्दर्य्यादिलक्ष्मीत्रयी हरेर्मुदे पूर्णास्ति इति विधातुर्गणनात् अमुष्याः कण्ठो रेखात्रयेण किमु भाति। अन्यकण्ठात् पूर्णलक्ष्मीत्रयस्यास्तित्वेन उत्कर्षादुत्प्रेक्षा ॥७४॥ उच्चैः शिरोऽग्रं ययोस्तयोर्वलिष्ठनासास्तनयोः श्रीराधायाः वपुर्नीवृतिशरीररूपदेशे सीमार्थं विवादे सति विधाता तस्या कण्ठमध्ये रेखात्रयेणैव सीमां चकार। विधातृकर्त्तृत्वेन हेतुना अन्यसीमातोऽस्याः सीमाया उत्कर्षादुत्प्रेक्षा। राधाशरीरस्य देशत्वेन त्रिरेखायाः सीमात्वेन तादात्म्यात् रूपकं ॥७५॥

मस्तक को, अर्थात् हम सौभाग्यवती हैं। इस प्रकार अभिमानसे उन्नत मस्तक सुन्दरीगण को, किम्वा वृन्दावनमें अतिशय उच्चमस्तक चन्द्रावली प्रभृति व्रजाङ्गनावृन्द, द्वारका पुरस्थ महिषीवर्ग, एवं परमव्योमस्थित श्रीलक्ष्मीवर्ग, तथा अन्यात्न्य गौरी शची प्रभृति दिव्याङ्गनागण को अतिक्रम करके विराजित है। यहाँ व्यतिरेक विरोध उत्प्रेक्षा अलङ्कार है। उपमान स्वरूप एवं स्वभावतः विनत स्कन्धद्वयसे श्रीकृष्णके हस्त भारहेतु नतरूप जो वैलक्षण्य है, यह ही व्यतिरेक है, अनुच्च की सर्वोच्चत्व रूपमें विराजमानता, आपाततः विरोध की भाँति प्रतीत होने से विरोधाभास हैः स्वभावतः नतस्कन्धद्वय का श्रीकृष्णके हस्त भारवहन सौभाग्य हेतु उत्कर्ष ही उत्प्रेक्षा है।।७३।। आहा! श्रीराधाके कण्ठदेशमें लक्ष्मीत्रय विराजित है। अर्थात् सौन्दर्य्यलक्ष्मी, काव्यलक्ष्मी, सङ्गीतलक्ष्मी एकत्र होकर श्रीकृष्ण के आनन्दवर्द्धन निमित्त सम्पूर्णा शोभित है। अन्य कण्ठसे पूर्णलक्ष्मीत्रय का अस्तित्व रूपमें उत्कर्ष हेतु उत्प्रेक्षा है।।७४।। श्रीराधिका की नासिका, एवं स्तन उभयका मस्तक ही उन्नत है, श्रीराधाके अङ्गरूप देशमें शोभाके निमित्त उक्त नासा एवं स्तनके बीचमें विवाद खड़ा हो गया, विधाताने श्रीराधाके कण्ठदेश में रेखात्रयके द्वारा सीमा बद्ध करदिया है। यहाँ उत्प्रेक्षा

व्यर्थाकृता स्वरगुणैर्गहनं पिकाली
भेजे सुधा च कटुतां जडतां ततश्रीः।
यस्य श्रिया दरततिश्च समुद्रमस्याः
केनोपमान्तु कवयस्तमिमं सुकण्ठम् ॥७६॥ दीपकव्यतिरेकौ ॥
यो वालार्कविकाशि-सुप्तमधुप स्वर्णाम्बुजैकच्छदो
विश्राम्यत्पिक-हेममन्दिरगवाक्षाधोविटङ्कोऽपि यः ॥

कवयः अस्याः सुकण्ठं केन उपमान्तु उपमां ददतु। अस्य कण्ठस्य स्वरगुणैर्व्यर्थीकृता पिकाली गहनं वनं भेजे। सुधा कटुतां भेजे। ततं वीणादिवाद्यं तस्य श्रीश्च जडतां भेजे। यस्य श्रिया दरः शङ्खस्तस्य श्रेणी समुद्रं भेजे। दीपकलक्षणं, कारकैक्ये क्रियावह्वो व्यत्ययेऽपि च दीपकं। व्यत्यये अपि क्रियाया ऐक्ये कारकस्य बहुत्वेऽपि दीपकं तदेवात्र। कटुतां जडतां ततश्रीः। दरततिरित्यत्र कारकस्य बहुत्वं। भेजे इत्यत्र क्रियाया ऐक्यं दीपकं। कोकिलस्वराद्युपमानत्वात् श्रीराधिकास्वरादीनां विलक्षणत्वेन व्यतिरेकः ॥७६॥ यो वालार्केण विकाशी विकासवांश्चासौ सुप्तमधुपेन सहितः स्वर्णाम्बुजस्य एकः छदो दलं चासौ हेममन्दिरस्य गवाक्षस्य अधोवर्त्तिविटङ्कः पक्षिणां निवासस्तौ कीदृशौ ? स्वस्य राधाचिबुकस्य साम्ये उत्सुकौ तौ दृष्ट्वा राधाया मदविन्दुना मृगमदविन्दुना चारु मनोहरं चिबुकं। श्रीकृष्णाङ्गुलिसङ्गसौभगगुणैस्तौ

रूपक अलङ्कार है। विधाताकृत अन्य सीमा की अपेक्षा श्रीराधा की सीमाका उत्कर्ष हेतु उत्प्रेक्षा है। श्रीराधाके शरीरका देशत्व प्रयुक्त, रेखात्रय का सीमात्व प्रयुक्त तादात्म्य हेतु रूपक है।।७५।। श्रीराधाके शोभमान कण्ठके स्वरगुणसे पिककुल व्यर्थ होकर वनको चले गए हैं, एवं शोभाको देखकर शङ्खगण भी समुद्र को चले गये है। अतएव कविगण किस वस्तुके साथ श्रीराधाके कण्ठ की उपमा प्रदान करेंगे? यहाँ दीपक व्यतिरेक अलङ्कार है। दीपक लक्षण-कारकैक्ये क्रियावह्वो व्यत्ययेऽपि दीपकं। क्रिया एक हो, और कारक अनेक हो तो दीपक होता है। यहाँ कटुता, जड़ता, वीणावाद्य श्री, शङ्ख, बहु कारक की क्रिया एकवचनान्त (भेजे) होनेसे दीपक अलङ्कार हुआ है। कोकिल के स्वरादि उपमानसे श्रीराधाके स्वरादि की विलक्षणता प्रयुक्त व्यतिरेक हुआ है।।७६।। प्रभातकालीन सूर्य की किरणसे विकासशील सुवर्ण कमलके एकदेशमें भ्रमर शयन कर रहा है, हेममन्दिरस्थ गवाक्षके अधोदेशके घोंसले

तौ राधामदविन्दुचारु चिबुकं दृष्ट्वा स्वसाम्योत्सुकौ
श्रीकृष्णाङ्गुलिसङ्गसौभगगुणैर्न्यक्कृत्य विभ्राजते ।।७७।। व्यतिरेकः ।
बन्धोर्हरेजीवतयास्य तत्ता प्रेम्णो वहिर्विम्बतया तथास्य ।
राधाधरौष्ठाविति बन्धुजीवविम्बौ स्वयं तन्नहि साम्यमाभ्याम् ।।७८।।
रूपकव्यतिरेकौ ।।

न्यक्कृत्य तिरस्कृत्य विभ्राजते। हेममन्दिरमत्र श्रीराधाशरीरं गवाक्ष मुखं चिवुकं पक्षिगृहं। विश्राम्यत्पिकोऽत्र कस्तूरीविन्दुः। स्वर्णकमलस्यैकदलस्थभ्रमरात् स्वर्णगृहस्य गवाक्षाधःस्थविटङ्के विश्राम्यत्कोकिलाच्च कस्तूरीविन्दुना सह चिवुकस्य गवाक्षाधःस्थविटङ्के विश्राम्यत्कोकिलाच्च कस्तूरीविन्दुना सह चिबुकस्य विलक्षणत्वेन व्यतिरेकः ।।७७।। वन्धोर्हरेरस्य श्रीकृष्णस्य जीवतया तत्ता वन्धुजीवता। अयमत्रार्थः। श्रीकृष्णस्य जीवनं श्रीराधाया अधरौष्ठयोर्मध्ये स्थित तस्य प्रतिविम्वरूपावेतावधरोष्ठौ। तथास्य हरेः प्रेम्ना वहिर्विम्बतया च। प्रेम्णः इति पाठे अस्य श्रीकृष्णस्य प्रेम्णः बिम्बता इत्यर्थं। तथाच राधाविषयकप्रेम्णो बिम्व हृदयं वहिर्विम्बं राधाधरेष्ठो इति यावत्। बन्धुजीवविम्बौ स्वयं राधाधरौष्ठौ तत्तस्मादाभ्यां वन्धुजीवविम्बताभ्यां ओष्ठाधरयोः साम्यं नहि। श्लेषेण बन्धुजीवपुष्प-बिम्वफले च। राधाधरोष्ठौ अधरोष्ठयोर्वन्धुजीव-

---

में पिक विश्राम कर रहा है, यह दोनों श्रीराधिका चिबुकमें कस्तूरीबिन्दु को देखकर निज सादृश्य विषयमें समुत्सुक होनेपर श्रीराधाके चिबुक निजाङ्ग में श्रीकृष्णके अङ्गुलि सम्मिलनरूप सौभाग्यगुण से पूर्वोक्त कमलदल एवं स्वर्णगवाक्ष को तिरस्कार कर शोभित है। यहाँ व्यतिरेक अलङ्कार है। यहाँ हेममन्दिर-श्रीराधाका शरीर है, गवाक्ष-मुख है, चिबुक-पक्षिगृह है, विश्रान्त कोकिल, कस्तुरीविन्दु, स्वर्णकमलके एकदलस्थ भ्रमर से सुवर्णगृह की गवाक्षके अधःस्थित घोंसले में विश्रान्त कोकिल से कस्तूरीविन्दुके साथ चिबुक की विलक्षणता हेतु व्यतिरेक अलङ्कार हुआ है।।७७।। बन्धुजीव अर्थात् बन्धुवर श्रीकृष्णके जीवन स्वरूप श्रीराधाके अधर ओष्ठके मध्यमें अवस्थित सुतरां कृष्णप्रेम में प्रतिबिम्बस्वरूप, बिम्बफल ही जब अधरोष्ठ हुए तब उभयके साथ श्रीराधाके अधरोष्ठ की तुलना नहीं हो सकती है। यहाँ रूपक व्यतिरेक अलङ्कार है। श्रीराधाके अधरोष्ठ का बन्धुजीव, बिम्बफलके साथ तादात्म्य हेतु रूपक है, बन्धुजीव एवं बिम्बफलकी अपेक्षा

आनन्दपूर्णामृतसत्त्वमूर्तेः कृष्णस्य जीवातुतयाप्तकीर्त्तेः ।
एतावता वर्णितसन्महिम्नो राधाधरस्यान्यगुणैः किमुक्तैः ॥७९॥
स्वभावोक्त्याक्षेपौ ॥

राधादन्तान् विजितशिखराफुल्लकुन्दाद्यमित्रान्
विश्वव्याप्तीरित-निजकरानुन्मदान् वीक्ष्य वेधाः ।

बिम्वयोस्तादात्म्यं रूपकं । बन्धुजीवविम्वयोरोष्ठाधरयोर्विलक्षणत्वेन व्यतिरेकः ॥७८॥ आनन्दादिमूर्त्तेः कृष्णस्य जीवनोपायत्वेन कीर्त्तिर्यस्य एतावता श्रीकृष्णजीवनोपायत्वेन वर्णितः सन्महिमा यस्य तस्य श्रीराधाधरस्य उक्तैरन्यगुणैः किं किमपीत्यर्थः । श्रीराधाधरस्य स्वभाववर्णनादत्र स्वभावोक्तिः । आक्षेपलक्षणं, आक्षेपो वक्तुमिष्टस्य यो विशेषविवक्षया । निषेधो वक्ष्यमाणत्वेनोक्तत्वेन च सद्विधा । अत्र वक्तुमिष्टस्य राधाधरस्यान्यमहिम्नो वक्ष्यमाणस्योक्तस्य च निषेधकथनेनाक्षेपः ॥७९॥ वेधा राधादन्तान् वीक्ष्य चेद्यदि द्राक्शीघ्रं ओष्ठाधराभ्यां सुपिहितान् नाकरिष्यत् । तदा ते दन्ता नानावर्णं जगदपि सिताद्वैतं शुक्लवर्णमयमेव व्यधास्यन् कीदृशान् विजितानि शिखराणि च, पक्वदाडिमवीजाभं माणिक्यं शिखरं विदुः अफुल्लानि कुटनलभूताति कुन्दानि च तदादीन्येवामित्राणि शत्रवो यैस्तान् । पुनः किम्भूतान् ? विश्वव्याप्तौ ईरिताः

अधरोष्ठ की विलक्षणताके कारण व्यतिरेक है ।।७८।। श्रीराधाके जो अधर, आनन्द एवं पूर्णामृत सत्त्वमूर्त्ति श्रीकृष्णके जीवनोपाय रूपमें प्रसिद्ध हैं, एवं इस प्रकार वर्णन से ही वे विख्यात प्रशस्त महिमायुक्त हुए हैं। श्रीराधिकाके अधर के अपरगुण वर्णन की आवश्यकता क्या है? यहाँ स्वभावोक्ति आक्षेप अलङ्कार है, श्रीराधाधरस्य स्वभाव वर्णनादत्रस्वभावोक्ति आक्षेप का लक्षण—आक्षेपोवक्तुमिष्ठस्य योविशेष विवक्षया, निषेधो वक्ष्यमानत्वेनोक्तत्वेन च सद्विधा। अत्र वक्तुमिष्टस्य राधाधरस्यान्यमहिम्नो वक्ष्यमाणस्योक्तस्य च निषेधकथनेनाक्षेपः। यहाँ श्रीराधाके अधर का स्वभाववर्णन हेतु स्वभावोक्ति अलङ्कार है, स्वयं किसी विषय को कहनेके लिए इच्छुक होकर विचार पूर्वक उसका निषेध करने से आक्षेप अलङ्कार होता है। श्लोकमें श्रीराधाके अन्यगुण वर्णन की इच्छा होनेपर भी विचार के द्वारा उसका निषेध किया गया है।।७९।। श्रीराधा की सुपक्व दाड़िम्ब बीजके सदृश जो दन्तश्रेणी हैं, यह निज सुन्दरता से माणिक्य विकशित कुन्दकुसुमादि शत्रुवर्ग को पराजित

द्राक् चेदोष्ठाधरसुपिहितान्नाकरिष्यत्तदा ते
नानावर्णं जगदपि सिताद्वैतमेव व्यधास्यन् ॥८०॥

उदात्तव्यतिरेकातिशयोक्तयः ॥

कुन्दाकृतिर्हीररुचिर्विचित्रा श्रीराधिकाया रदकीरराजिः।
या नित्य-कृष्णाधरविम्वमात्रास्वादेन लेभे शिखरच्छवित्वम् ॥८१॥

प्रेरिता निजकरा निजकिरणा यैस्तान्। उन्मदान् उन्मत्तान्। उदात्तलक्षणं, समृद्धिरुदात्तं वस्तुनः परा। अत्र दन्तानां परा समृद्धिरुदात्तं। पक्वदाडिमवीजाकाररत्नकुन्द-पुष्पाद्युपमानत्वात् श्रीराधादन्तानां गुणेनवैलक्षण्यं व्यतिरेकः। शिखरकुन्दपुष्पाद्युपमानेन उपमेयस्य राधादन्तस्य उत्कर्षनिरूपणं अत्रातिशयोक्तिः ॥८०॥ श्रीराधाया दन्तशुकश्रेणी कुन्दपुष्पाकृतिः हीररुचिर्विचित्रा च। कुन्दाकृतित्वेन कुन्दपुष्पवत् शुक्लत्वं हीररुचिरित्यनेन दीप्तिमत्त्वमिति मध्यदन्तचतुष्टयस्य विचित्रा चित्रवर्णा इति पार्श्वस्थदन्तस्य दन्तरूपकीरश्रेणी सदा कृष्णाधरविम्बफलमात्रास्वादनेन शिखरस्य बक्वदाडिमवीजाभरत्नस्य कान्तिमत्त्वं लेभे। दन्तानां दाडिमबीजकुन्दादिभिस्तादात्म्यं रूपकं। तद्गुणलक्षण यथा। उत्कृष्टगुणयोगेन समुत्सृज्यनिजं गुणं। वस्तु तद्गुणतां याति तदायं तद्गुणो यथा। श्रीकृष्णाधरस्य रक्तोत्कृष्टतद्गुणयोगेन राधादन्तश्रेणी निजं शुक्लगुणमुत्सृज्य श्रीकृष्णाधरस्य रक्तगुणप्राप्त्या तद्गुणा बभूवेति भावः ॥८१॥

करचुकी है। असीम विश्वमण्डली को आक्रमण कर जिनकी किरण समूह विकीर्ण हुई है, श्रीराधा की उस दन्तश्रेणी को देखकर विधाता यदि तत्क्षणात् ओष्ठाधर के द्वारा उसका आच्छादन नहीं कर देते तो, वह दन्तपङ्क्ति अनेक प्रकार वर्णोंसे विचित्र विश्वको भी एकमात्र शुक्लवर्ण कर डालती। यहाँ उदात्त, व्यतिरेक अतिशयोक्ति अलङ्कार है। वस्तु की अत्यन्त समृद्धि को उदात्त कहते हैं। लक्षण--समृद्धिरुदात्तं वस्तुतः परा। यहाँ दन्तपङ्क्ति की अतिशय समृद्धि वर्णन ही उदात्त है। पक्वदाड़िम्बबीजाकार रत्न, कुन्दपुष्पादि उपमानसे श्रीराधा की दन्तसमूह का गुणके द्वारा वैलक्षण्य हेतु व्यतिरेक अलङ्कार है, शिखर कुन्दपुष्पादिरूप उपमान द्वारा उपमेय राधादन्त का जो उत्कर्ष निरूपण वह ही यहाँ पर अतिशयोक्ति है।॥८०॥ श्रीराधाके दर्शनरूप शुकश्रेणी, कुन्दपुष्पाकृति, हीरककान्ति एवं विचित्रा है, अर्थात् चित्रवर्णा होने से भी जो नित्य श्रीकृष्णके अधर विम्बफल का आस्वादन द्वारा पक्वदाड़िम्ब की भाँति कान्ति को प्राप्त किए हैं। यहाँ रूपक

८२ ॥ रूपकतद्गुणौ ॥

राधारसज्ञारुणरत्नदर्वी कृष्णाय रेजे परिवेशयन्ती।
सन्नर्म्मसङ्गीतसुकाव्यरूपान् स्ववाग्विलासामृत-सद्विकारान् ॥८२॥ रूपकं ॥

यां कृष्णसत्कीर्त्ति-विदग्धनर्त्तकीं राधा स्वकण्ठे निलये न्यवीविशत्
चकास्ति सूक्ष्मारुणशाटिकाञ्चलं तस्या वहिःस्थं रसनाच्छलेन किं ॥८३॥

श्रीराधाया रसज्ञा जिह्वा सैवारुणवर्णरत्नस्य दर्वी हाता करछीति ख्याता। कृष्णाय सन्नर्म्मसङ्गीतसुकाव्यरूपान् स्ववाग्विलासामृतस्य सद्विकारान् मिष्टान्नानीव नानावाक्यभेदान् परिवेशयन्ती रेजे। रसनाया दर्वीत्वेन तादात्म्यं रूपकं ॥८२॥ या यां श्रीकृष्णस्य सत्कीर्त्तिरूपां विदग्धां नर्त्तकीं श्रीराधा निलयरूपे स्वकण्ठे न्यवीविशत्। तस्याः सूक्ष्मारुणशाटिकाया अञ्चलं रसनाच्छलेन वहिश्चकास्ति। किं श्रीकृष्ण-कीर्त्तेनर्त्तकीत्वेन राधाकण्ठस्य रङ्गभूमीत्वेन रसनाया अरुणशाटिकाञ्चलत्वेन तादात्म्याद्रूपकं। प्रकृतानां सत्कीर्त्ति–कण्ठरसनानां नर्त्तक्यादिरूपेणान्यथाकृतिरत्रा-पह्नुतिः। अन्यथाकृतिः प्रकृतं निषिध्यान्यस्य स्थापनं। श्रीकृष्णसत्कीर्त्तिविदग्धनर्त्तक्या निलयत्वेन हेतुना कण्ठादेरुत्कर्ष कथनमुत्प्रेक्षा ॥८३॥ श्रीकृष्णस्य सत्कीर्त्तिरभिधानं

तद्गुण अलङ्कार है। दन्तसमूह का तादात्म्य दाड़िम्बबीज एवं कुन्दपुष्पादिके साथ तादात्म्य होनेसे रूपक हुआ है। तद्गुणलक्षण--उत्कृष्टगुणयोगेन समुत्सृज्य निजं गुणं वस्तु तद्गुणतां यातितदायं तद्गुणो यथा। किसी वस्तु स्वीयगुण को छोड़कर अपर उत्कृष्ट गुणका ग्रहण करती है तो, तद्गुण अलङ्कार कहते हैं। यहाँ श्रीराधा की दन्तपङ्क्ति निज शुक्लगुण का त्यागकर श्रीकृष्णके अधर का रक्तगुण का ग्रहण करने से तद्गुण अलंकार हुआ है।।८१।। श्रीराधिका की रसनारूप अरुणवर्ण की रत्नदर्वी (हाता, कटछुली, करछी) की भाँति है, हाता जिस प्रकार, उत्तम मिष्ठान्न परिवेशनके द्वारा प्रियको सन्तुष्ट करती है, उस प्रकार, श्रीराधिका की रसना श्रीकृष्ण को उत्कृष्ट परिहासमय, सङ्गीत एवं सुवाक्यरूप स्वीय वाक्विलासामृत पूर्ण अनेक विध वाक्य विन्यास को परिवेशन कर विराजित है। जिह्वाका दर्वी अर्थात् हाताके साथ तादात्म्य होनेसे यहाँ रूपक अलंकार हुआ है।।८२।। श्रीकृष्ण की सत्कीर्त्तिरूपा विदग्धानर्त्तकी को श्रीराधिकाने क्या निज कण्ठमें स्थान प्रदान किया है? उस विदग्धा नर्त्तकी को सूक्ष्म अरुणवर्ण शाटिका का अञ्चल

रूपकापह्नुत्युत्प्रेक्षाः ॥

श्रीकृष्णसत्कीर्त्यभिधाननाम्नो सुनव्ययूनोर्मिथुनस्य धात्रा ।
हिन्दोलललीलाभिरतस्य चक्रे राधारसज्ञारुणवस्त्रदोला ॥८४॥ रूपकोत्प्रेक्षे ॥

पीयूषाब्धितरङ्गवर्णमधुरं नर्म्मप्रहेलीमयं
शब्दार्थोभयशक्तिसंसितरसालङ्कारवस्तुध्वनि ।
भृङ्गी-भृङ्ग-पिकी-पिकध्वनिकलास्वध्यापकं राजते
श्रीकृष्णश्रवसो रसायनमिदं श्रीराधिकाभाषितम् ॥ ॥८५॥

चेति नामनी यतोस्त्वेऽर्थात् सत्कीर्त्तिनामनी तयोस्तस्य मिथुनस्य सुनव्ययूनोरित्यनेन सदैव नव्ययुववत् पुनः पुनर्जिह्वायां हिन्दोलललीलाभिरतत्वेन मिथुनत्वं तथा रसनाया अरुणवस्त्रदोलात्वं रूपकं । श्रीकृष्णकीर्त्तिनामोच्चारणहेतुना रसनाया उत्कर्षमत्रोत्प्रेक्षा ॥८४॥ अमृतसमुद्रस्य तरङ्गवत् वर्णेन वर्णप्रयोगेण मधुरं मनोहरं नर्म्म परिहासः प्रहेली वाक्चातुरी तन्मयं । शब्दार्थोभयशक्त्या संसितः कथितो रसालङ्कार-वस्तूनां ध्वनिर्यत्र तत् । भृङ्गादिध्वनिकलासु अध्यापकं राधाभाषितं कृष्णकर्णयोरसायनं सत् राजते । राधावाक्यस्यामृतेन तादात्म्यं रूपकं । राधावाक्यस्य स्वभाववर्णनमत्र

ही क्या श्रीराधिका की रसनाके छलसे बाहर प्रकाशित है। इसमें रूपक, अपह्नुति उत्प्रेक्षा अलङ्कार है। श्रीकृष्ण कीर्त्ति ही नर्त्तकी है, श्रीराधाका कण्ठ ही रङ्गभूमि है, एवं रसना ही रक्तवर्ण साड़ी का अञ्चल है, इस प्रकार तादात्म्य होनेसे रूपक अलङ्कार हुआ है। यहाँ प्रकृत सत्कीर्त्ति, कण्ठ, एवं रसना की नर्त्तकी प्रभृति रूपमें जो अन्यथाकृति, वह ही अपह्नुति अलङ्कार है। उसका लक्षण--प्रकृतं निषिध्य अन्यस्य रूपायनं, अपह्नुतिः ।। श्रीकृष्ण की सत्कीर्त्ति रूप विदग्ध नर्त्तकी का प्रवेश हेतु कण्ठादिका जो उत्कर्ष कथन है, वह उत्प्रेक्षा है।।८३।। श्रीकृष्ण की सत्कीर्त्ति एवं नामरूप शोभमान नवीन युवक युगलको आसक्त देखकर, अर्थात् नवीन युवक मिथुन स्त्री पुरुष की हिन्दोलललीला (झूला लीला) में आसक्त देखकर विधाताने श्रीराधा की रसना को अरुणवस्त्रसे मण्डित हिन्दोला रूपमें निर्माण किया है। यहाँ रूपक उत्प्रेक्षा अलङ्कार है, हिन्दोल लीलामें अभिरत होने से मिथुनत्व तथा रसनाका अरुण वसन मण्डित झूला होने से रूपक हुआ है। श्रीकृष्ण की कीर्त्ति एवं नामोच्चारण, रसनामें सतत होनेसे श्रीराधिका की रसना का जो उत्कर्ष हुआ है, वह ही उत्प्रेक्षा है।।८४।। जो सुधासमुद्र की तरङ्गवत् वर्णके प्रयोगसे

रूपकस्वभावोक्ती ॥

प्रेमाज्य नर्म्मालिसितारसावलीमाध्वीकमन्दस्मितचन्द्रसंयुता ।
अस्या मृषेर्षामरिचान्विताद्भुता वाणी रसालोल्लसतीशतृप्तिदा ॥८६॥ रूपकं ॥

सुधासरिदियं हरेः किमु मनोमरालाश्रयः
सुधाकिरणकौमुदी–तृषितदृक्चकोरीगतिः ।
सुधासितघनावली–सुतनुचातकी जीवनी
विराजति न राधिकास्मितसुधोर्म्मिरुन्मीलति ॥८७॥

स्वभावोक्तिः ॥८५॥ अस्या वाणी रसाला पानकविशेषः । रसाला घृत-सिता-मधु-कर्पूर-मरिचमिश्रं जलं भवति । तदेवाह प्रेमाज्यं घृतं नर्म्मालिः सिता रसश्रेणी मधुरं स्मितं कर्पूरः मिथ्येर्षामरिचैरन्वितः । ईशः कृष्णस्तस्य तृप्तिदा । वाण्या रसालात्वेन तादात्म्यं रूपकं ॥८६॥ इयं किमु सुधामयसरिन्नदीरूपा यतः हरेर्मनोमरालस्य हंसस्याश्रयः किमियं सुधाकिरणश्चन्द्रस्तस्य कौमुदी ज्योत्स्ना अतएव हरेस्तृषितदृक्चकोर्य्या गतिः सुधायाः सिता शुक्ला निर्म्मला मेघावली । यतो हरेः सुतनुचातकी तस्या जीवनी जीवनोपायो विराजति न तदा किं राधास्मित इत्यादिस्मितस्य नद्याद्युपमानेन तादात्म्य रूपकं । सुधानद्यादिरूपेणादौ संशयं पश्चात् राधास्मितत्वेन निश्चयः निश्चयान्तसंशयः ॥८७॥

मनोहर है परिहास एवं वाक्चातुरीमय है, जिसमें शब्दार्थ उभय शक्ति द्वारा रस, अलङ्कार, एवं वस्तु ध्वनि विद्यमान है, जो भृङ्गीकोकिल की ध्वनिकलाका अध्यापक है, श्रीराधाका उस प्रकार वाक्य श्रीकृष्णके श्रवणद्वय का रसायन होकर विराजित है। यहाँ रूपक एवं स्वभावोक्ति अलङ्कार है, श्रीराधाका वाक्य अमृत के साथ तादात्म्यापन्न होनेसे रूपक है, श्रीराधा वाक्य का स्वभाव वर्णन से स्वभावोक्ति अलङ्कार हुआ है। नैसर्गिक भाववर्णन को स्वभावोक्ति कहते हैं।।८५।। और जिसमें प्रेम, घृत, नर्मसमूह-सिताचीनी, रसश्रेणीरूपी रसाला श्रीकृष्ण की तृप्तिप्रदा होकर विराजित है। रसाला-घृत, चीनी, कर्पूर, मरीच मिश्रित जलरूपा है। यहाँ रसालाके साथ वाणीका तादात्म्य होनेसे रूपक अलङ्कार हुआ है।।८६।। अनन्तर श्रीराधाके हास्य का वर्णन करते हैं। आहा, यह क्या अमृतमयी नदी है? कारण यह श्रीकृष्णका मनोरूप हंसका आश्रय है, अथवा यह क्या सुधा

८८ ॥ रुपकनिश्चयान्तसंशयौ ॥

हरेर्गुणाली वरकल्पवल्ल्यो राधाहृदाराममनु प्रफुल्लाः ।
लसन्ति या याः कुसुमानि तासां स्मितच्छलात् किन्नु वहिः स्खलन्ति ॥
॥८८॥ रूपकापह्नुत्युत्प्रेक्षाः ॥

श्रीराधावदनं सुधाक्षयसरः कृष्णार्णवं यत्ततो
निष्क्रम्याश्चति पञ्चमस्वरसुधास्रोतस्वतीयं क्वचित् ।

श्रीराधाया हृदयपुष्पोद्याने श्रीकृष्णगुणश्रेणीरूपाः श्रेष्ठकल्पलताः या या प्रफुल्ला लसन्ति। तासां वल्लीनां कुसुमानि स्मितच्छलात् नु भोः किं वहिः स्खलन्ति? हृदयादीनां आरामादिरूपेण तादात्म्य रूपक। प्रकृतस्य हृदयादेरारामादिना अन्यथाकृतिरपह्नुति। श्रीकृष्णगुणमयत्वेन हेतुना वल्ल्यादेः स्मितस्य उत्कर्ष उत्प्रेक्षा ॥८८॥ यद्यस्यात् राधावदनं सुधाया अक्षयसरोवरस्ततः श्रीराधामुखात् निष्क्रम्य पञ्चमस्वर एव सुधानदी क्वचित् समये श्रीकृष्णार्णवमश्चति गच्छति। क्वचित् सङ्गीतसुधानदी राधावदनात् श्रीकृष्णार्णवमश्चति। एवं क्वापि तत इतः वाणी सैव सुदानदी। क्वापि आमोदः सौगन्ध्यं तदेव सुधानदी। अन्यतः क्वापि स्मितसुधैव दिव्या नदी सा सा सा सा सा राधामुखात् श्रीकृष्णार्णवमश्चति श्रीराधामुखादीनां सुधासरोवरत्वादिना तादात्म्यात् रूपक। प्रकृतानां चैकदोक्तिरुच्यते तुल्ययोगिता। प्रकृतानां राधावदनादीनां पञ्चमस्वरसुधानद्यादीनां एकदोक्त्या तुल्ययोगितात्र।

किरण है? अर्थात् चन्द्रकी कौमुदी है, कारण, यह श्रीकृष्ण की तृषित नयनचकोरी का आश्रय स्वरूप है, किम्वा यह अमृतमय शुक्लवर्ण निर्म्मल मेघावली है, कारण यह श्रीकृष्णके सुतनुरूप चातकी का जीवनोपाय होकर विराजित है। पूर्वोक्त वह सब कुछ नहीं है, यह श्रीराधाकी हास्यामृत की तरङ्ग है। यहाँ रूपक निश्चयान्त संशय अलङ्कार है। प्रथम सुधानद्यादि रूपमें संशयः, पश्चात् श्रीराधा का हास्य रूपमें निश्चय है, अतः निश्चयान्त संशय है, श्रीराधास्मित का नद्याद्युपमानके साथ तादात्म्य होनेसे रूपक हुआ है।।८७।। और भी श्रीराधाके हृदयरूप पुष्पोद्यान में श्रीकृष्ण की गुण श्रेणीरूप जो जो श्रेष्ठ कल्पलता श्रेणी प्रफुल्ल होकर शोभिता है, उस-उस कल्पलताके पुष्प निकर ही क्या श्रीराधाके हास्य रूपमें बाहर प्रकट हैं। हृदय का उपवनादि रूपमें वर्णन करने से तादात्म्य हेतु रूपक है, हृदयादि का वर्णन आरामादि रूपसे होनेपर अन्यथाकृति प्रयुक्त अपह्नुति हुई है। श्रीकृष्णगुणमयत्व हेतु लतादि से हास्यका जो उत्कर्ष, वह उत्प्रेक्षा है, इस

सङ्गीतामृतवाहिनी तत इतो वाणी सुधानिम्नगा
क्वाप्यामोदसुधाधुनीस्मितसुधा दिव्या नदी चान्यतः ॥८९॥
रूपकतुल्ययोगितानुमानक्रियादीपकानि ॥
राधाया वदनं सुमेरुशिखरं न्यक्कृत्य विभ्राजते
यत्तस्मात् स्मितसत्सुधासुरधुनी-कृष्णामृताम्भोनिधिम् ।

पञ्चमस्वरसुधानदीनां निष्क्रमणं हेतुं कृत्वा श्रीराधावदने अक्षयसुधासरसोऽनुमानं। यत्र क्रियाया एकत्वं कारकस्य वहुत्वं अथवा क्रियायां अनेकत्वं तत्र दीपकं। पञ्चम-स्वरसुधानद्यादिकारकस्यात्र वहुत्वेनाञ्चति क्रियाया ऐक्येन क्रियादीपकं ॥८९॥ श्रीराधाया वदनं सुमेरुशिखरं तिरस्कृत्य विभ्राजते। न्यक्वारे हेतुमाह। प्रसिद्धा गङ्गा जलमयी क्षीरसमुद्रं गच्छति इयममृतमयी अमृतसमुद्रं गच्छतीति। स्मितमेव सत्सुधासुरधुनीगङ्गा श्रीकृष्णामृतार्णवमञ्चति। दिव्यामोद एव सुधापः सुपर्व्वतटिनी देवनदी कृष्णामृताम्भोनिधिमञ्चति। एवमग्रेऽपि। वाणी सैव सुधास्वर्णदी सङ्गीतमेवामृतजाह्नवी। स्वरो मन्दाकिनी। स्मितसुधासुरधुनीत्यादि। कारकस्य बहुत्वेन अञ्चति क्रियाया ऐक्यात् क्रियादीपकं। राधावदनात् गङ्गादिनदीनां कृष्णामृतसमुद्रगमन

प्रकार-रूपक अपह्नुति उत्प्रेक्षा अलङ्कार इस श्लोक में है ॥८८॥ श्रीराधाका वदन,-अक्षयसुधासरोवर है, कारण उससे किसी समय पञ्चमस्वररूप अमृत नदी निकलती है, किसी समय सङ्गीतरूप सुधा प्रवाहिणी नदी, कभी तो वाक्यरूपा सुधानदी, कभी सौगन्ध्य नदी, एवं कभी ईषत् हास्यरूपा दिव्य नदी निर्गता होकर श्रीकृष्ण सागर की ओर जा रही है। यहाँ रूपक, तुल्ययोगिता, अनुमान, क्रिया दीपक अलङ्कार है। श्रीराधाके मुखादि का सुधासरोवरत्वादिके साथ तादात्म्य हेतु रूपक है, प्रस्तुत पदार्थ समूहका एक धर्ममे सम्बन्ध होनेसे तुल्ययोगिता होती है, यहाँ प्रकृत श्रीराधा वदनादिका पञ्चमस्वर एवं अमृतवाहिनी नद्यादि की एकदा उक्ति हुई है। पञ्चमस्वर, सुधानदी प्रभृति का निष्क्रमण को हेतु करके श्रीराधाके वदन में अक्षय सुधासरोवर का अनुमान किया गया है यदि कारक का बहुत्व, एवं क्रियाका अनेकत्व, कारक का एकत्व हो तो दीपक अलङ्कार होता है। यहाँ पञ्चमस्वर सुधानद्यादि कारकका बहुत्व, एवं 'अञ्चति' क्रिया की एकता प्रयुक्त क्रिया दीपक है।॥८९॥ श्रीराधाका वदन सुमेरु शिखर का तिरस्कार कर शोभित है, कारण सुमधुर हास्य सुधासुरधनी, सुदिव्य आमोदरूप सुधाकी देवनदी, वाणीरूप सुधाकी सुरतरङ्गिणी, सङ्गीतरूप अमृत की जाह्नवी एवं स्वरूप

दिव्यामोदसुधासुपर्व्वतटिनी वाणीसुधास्वर्णदी
सङ्गीतामृतजाह्नवी-स्वरसुधामन्दाकिनी चाञ्चति ॥ ॥९०॥
क्रियादीपकानुमानरूपकतुल्ययोगिताः ॥

नयनपथिकयात्रामङ्गलायाघशत्रो-
र्विधिरिह मुखपद्मं राधिकाया विधाय।
तदधिनिहित चक्षुःखञ्जनौ वीक्ष्य लोलौ
निभृतमकृत नासास्वर्णदण्डे निबद्धौ ॥९१॥ रूपकोत्प्रेक्षे ॥

हरिनयनचकोरप्रीतये राधिकाया
मुखशशिनमपूर्व्वं पूर्णमुत्पाद्य धाता।

हेतुं कृत्वा। राधावदनेन सुमेरुशिखरस्य न्यक्कारः साध्यमत्रानुमानं। स्मितादीनां सुधानदीत्वेन रूपकं। स्मितसुधासुरधुन्यादीनां प्रकृतानामेकदोक्त्या तुल्ययोगिता ॥९०॥ अघशत्रोर्नयनपथिकस्य यात्रायां मङ्गलार्थं विधिः राधामुखपद्मं विधाय तदधिमुखपद्मे निहितनेत्रखञ्जनौ लोलौं वीक्ष्य नासास्वर्णदण्डे निवद्धौ अकृत। यात्रासमये पद्मे खञ्जनदर्शनं सुमङ्गलं मुखनेत्रनासानां पद्मखञ्जनस्वर्णदण्डत्वेन रूपकं। पद्मादिभ्यो

सुधाकी मन्दाकिनी-श्रीकृष्णरूप अमृत समुद्रमें मिलित हो रही है। अर्थात् अन्यान्य प्रसिद्ध जलमयी गङ्गा जिस प्रकार लवण समुद्रमें पतित होती है, उस प्रकार यह अमृतमयी गङ्गा श्रीकृष्णामृत सागर में मिलती रहती है। वाणी ही अमृतमयी देवनदी है, सङ्गीत ही अमृत जाह्नवी, स्वर ही मन्दाकिनी, एवं स्मित सुधासुरधुनी है, इस प्रकार कारक अनेक होनेके कारण अञ्चति क्रिया के साथ ऐक्य होकर यहाँ क्रिया दीपक है, कृष्णामृत समुद्रको हेतु करके राधावदनके द्वारा सुमेरु शिखर का तिरस्कार हुआ है, अतः यहाँ अनुमान अलङ्कार है। स्मितादिका सुधानदीत्व हेतु रूपक है। स्मित सुधासुरधनी प्रभृति एककालीन एकधर्म में उक्त होनेसे तुल्ययोगिता अलङ्कार है, इस प्रकार क्रियादीपक अनुमानरूपक तुल्ययोगिता अलङ्कार प्रस्तुत पद्यमें है।।९०।। यात्रा करते समय यदि पद्मके ऊपर खञ्जन पक्षी दिखाई दे तो यात्रा शुभ होती है, ऐसा मानकर श्रीकृष्णके नेत्ररूप पथिक की शुभयात्राके लिए श्रीराधाका मुखपद्मका निर्म्माण विधाताने किया है। और उसमें सुनिहित नयन खञ्जन युगल को अत्यन्त चञ्चल देखकर निर्जन में

नयनहरिणयुग्मं न्यस्य तस्मिन् सुलोलम्
न्यधित तदवरोद्धुं पार्श्वयोः कर्णपाशौ ।।९२।। रूपकोत्प्रेक्षे ।।

चन्द्रः कलङ्की क्षयितोऽतिविह्वलस्तत्पादघातैर्मलिनं यथाम्बुजम् ।
सुनिर्म्मलं सन्ततपूर्णमण्डलं केनोपमेयं वद राधिकाननम् ।।९३।। व्यतिरेकः ।।

राधाया जितहेमदर्पणमदं गण्डद्वयं सुन्दरम्
लावण्यामृतपूर्णितं हि कनकक्षौण्यां सरोयुग्मकम् ।

मुखादीनामुत्कर्ष उत्प्रेक्षा ।।९१।। श्रीकृष्णनेत्रचकोरप्रीत्यर्थं धाता पूर्णमपूर्व्वं राधामुखचन्द्रमुत्पाद्य तस्मिन् सुलोलं न्यनहरिणयुग्मं न्यस्य तत् हरिणयुग्मं रोद्धुं पार्श्वद्वये कर्णरूपपाशौ रज्वौ न्यधात् । श्रीकृष्णनेत्रयोश्चकोरत्वेन श्रीराधामुखचन्द्रत्वेन नयनस्य हरिणत्वेन रूपकं । अन्यचकोराद्यपेक्षया नयनादीनामुत्कर्षादुत्प्रेक्षा ।।९२।। चन्द्रः कलङ्की क्षयरोगो जातोऽस्येति क्षयितस्तेन विह्वलः तत्तस्य चन्द्रस्य पादघातैः किरणैर्मलिनं यथा अम्बुजं तथा चन्दोऽपि कलङ्केन मलिनं सुनिर्म्मलं सदा पूर्णमण्डलं श्रीराधावदनं केनोपमेयं । चन्द्रात् श्रीराधामुखं विलक्षणं व्यतिरेकः ।।९३।। श्रीराधाया गण्डद्वयं जितो हेमदर्पणयोर्मदो येन तत् । कनकपृथिव्यां सरोवरयुगं । सरोधर्म्ममाह ।

नासिकारूप सुवर्णदण्डके साथ दोनों को बाँध रखा है। यहाँ मुख, नयन, नासिका का वर्णन कमल, खञ्जन, स्वर्णदण्डरूप में होनेसे रूपक हुआ है। और पद्मादि से मुखका जो उत्कर्ष है, वह उत्प्रेक्षा है।।९१।। श्रीकृष्णके नयनरूप चकोर को तृप्त करने के लिए विधाताने सम्पूर्ण अपूर्व श्रीराधा का मुखचन्द्र का निर्माण कर उसमें नेत्ररूप चञ्चल हरिण द्वयकी स्थापन कर, दोनों को अवरुद्ध करने के लिए दोनों पार्श्वमें दो कर्णपाश की रचना की है। श्रीकृष्णके नयनों का चकोरत्व, श्रीराधामुख का चन्द्रत्व नयनों का हरिणत्व प्रयुक्त रूपक हुआ है, अन्य चकोर की अपेक्षा नयनादिका उत्कर्ष हेतु उत्प्रेक्षा अलङ्कार है।।९२।। और भी चन्द्र कलङ्की है, और क्षयरोगाक्रान्त भी है। अतः वह विह्वल है, उसके किरणों से कमल भी मलिन होगया है, अतः कहो? सुनिर्म्मल व सदा परिपूर्ण मण्डल ही श्रीराधा का मुखमण्डल है, वह किससे उपमित हो सकता है ? यहाँ चन्द्रव पद्मसे श्रीराधा का मुखमण्डल विलक्षण हेतु व्यतिरेक अलङ्कार हुआ है।।९३।। श्रीराधिका का गण्डद्वय,- स्वर्ण दर्पणका गर्वखर्वकारी तथा कमनीय है, यह गण्डद्वय जैसे स्वर्णमयी

यत्ताटङ्कसुवर्णपद्मकलितं कस्तूरिकाचित्रस-
च्छैवालं मकरीविलासवलितं कृष्णातितृष्णाहरं ॥९४॥

रूपाकानुमानव्यतिरेकाः ॥

श्रीकृष्ण–श्रीनयनमधुपद्वन्द्वपोषय धाता
श्रीलावण्यामृतमयसरस्यानने राधिकायाः ।
उत्पाद्यास्मिन् मधुरनयनच्छद्मनेन्दीवरे द्वे
श्रीगण्डेन्दू न्यधित स तयोः पार्श्वे उत्फुल्लतायैः ॥९५॥

रूपकोत्प्रेक्षापह्नुतयः ॥

यत्ताटङ्कौ कर्णभूषणो सुवर्णस्य पद्मकलिके यत्र तत्। कस्तूरिका चित्रमेव यत् शैवालं यत्र तत्। चित्रितमकार्य्याविलासेन युक्तं। श्रीकृष्णस्य तत्रैव या अतितृष्णा तां हरतीति तत्। गण्डयोः सरोजयुग्मत्वेन रूपकं। श्रीराधारूपकनकभूमौ श्रीकृष्णतृष्णाहरत्वं हेतुं कृत्वा सरोयुग्मं साध्यमत्रानुमानं। अन्यसरोवरात् गण्डसरो विलक्षणमत्र व्यतिरेकः॥९४॥ धाता श्रीकृष्णनेत्रमधुपद्वन्द्वपोषार्थं श्रीराधाय लावण्यामृतमयसरोवररूपे आननेऽस्मिन् नयनच्छलेन द्वे इन्दीवरे उत्पाद्य स विधिस्तयोर्नयनयोरुत्फुल्लतार्थं नयनयोः पार्श्वे पार्श्वद्वये श्रिया कान्त्या करणेन सहितौ गण्डेन्दू गण्डरूपचन्दौ न्यधित। श्रीकृष्णनयनस्य मधुपत्वेन श्रीराधामुखस्य सरसीत्वेन नेत्रयोर्नीलपद्मत्वेन गण्डयोश्चन्द्रत्वेन साम्याद्रूपकं।

पृथिवी का लावण्यामृतपूर्ण सरोवरद्वय है। कारण इसमें निम्न दोलित कर्णभूषणरूप स्वर्णकमल की दो कलिका हैं एवं जिसमें कस्तूरी का चित्रही शैवाल है, तथा मकरी अर्थात् जलजन्तु अथवा उस प्रकार कर्णभूषण विराजित है, सुतरां उक्त गण्डयुगल श्रीकृष्ण की अतिशय पिपासा व दिदृक्षाको हरण कर रहे हैं। यहाँ रूप अनुमान व्यतिरेक अलङ्कार है। सरोवर युगलके साथ गण्डद्वयका तादात्म्य ही रूपक है, श्रीराधारूपी कनकभूमिमें श्रीकृष्ण की तृष्ण! हरणको हेतु करके सरोवरद्वय साध्य है, यहाँपर यह ही अनुमान अलङ्कार है। अन्य सरोवर की अपेक्षा गण्डयुगल उत्कर्ष हेतु व्यतिरेक अलङ्कार है।।९४।। विधाताने श्रीकृष्णके नयनयुगलरूप भ्रमर युगलका पोषण करने के लिए श्रीराधाका लावण्यामृत सरोवररूप इस मुखमण्डल में नयनके च्छलसे नील कमल युगलका उत्पादन कर उसकी प्रफुल्लताके लिए गण्डद्वयरूप चन्द्रका निर्म्माण कर दोनों तरफ रख दिया। रूपक उत्प्रेक्षा

निवसति ननु राधाभालशालारकान्त-
र्वृततनुरिह कश्चित् कीरराजः सतृष्णः।
रसवदधरविम्बप्रेक्षणादस्य चञ्चुः
कलयत बत नासाच्छद्मना निर्गतास्ति ॥९६॥

रूपकापह्नुत्युत्प्रेक्षाः ॥

अस्याः सुनासामदनाद्भुतेषुर्व्यालोलचिल्लीधनुरर्पितोऽपि।
विवेश मुक्ताफलकाग्रकोऽपि द्रुतं हरेर्हृत्धृतिवर्म्मितं यः ॥९७॥

अन्यमधुपादिभ्यः श्रीकृष्णनयनादेरुत्कर्ष उत्प्रेक्षा। प्रकृतस्य श्रीकृष्णनयनादेरन्यथाकृतिः प्रकृतं श्रीकृष्णनयनादिकं निषिध्यान्यस्य मधुपादेः स्थापनमत्रापह्नुतिः ॥९५॥ श्रीराधाया भाल एव शालारकः पञ्जरस्तस्यान्तर्मध्ये आवृततनुः कीरराजः रसयुक्ताधरविम्वप्रेक्षणात् सतृष्णः नासाच्छलेनास्य चञ्चुर्निर्गतास्ति। कलयत पश्यत। भालस्य पञ्जरत्वेन नासायाः कीरचञ्चुत्वेन रूपकं। प्रकृतनासायाः शुकचञ्चुत्वेनान्यथाकृतिरेवापह्नुतिः। चञ्चुतो नासाया उत्कर्ष उत्प्रेक्षा ॥९६॥ अस्याः सुनासामदनस्याद्भुतेषुः वाणस्याद्भुतत्वमाह। य इषुः व्यालोलभ्रूधनुष्यर्पितोऽपि मुक्ताफलकाग्रकोऽपि हरेर्धृति-रूपकवचेन वर्म्मितं कवचितं हृत् हृदयं विवेश। विरोधः स विरोधाभासः। नासारूप इषुः धनुरर्पितः नतु त्यक्तः। वाणस्य त्यागं विना अन्यस्य कवचाच्छन्नहृदये प्रवेशो विरोधसहित इवाभासते नतु विरोधः। नासाधनुषोर्भिन्नद्रव्यत्वेन क्रियया भिन्नत्वेन च

अपह्नुति-अलङ्कार इसमें है। श्रीकृष्णनयन मधुप, श्रीराधाका वदन-सरोवर, नयनयुगल नील कमल, गण्डयुगल चन्द्र है, इस प्रकार साम्यता हेतु रूपक है, अपर मधुप प्रभृति से श्रीकृष्ण नयनादिका उत्कर्ष ही उत्प्रेक्षा है। एवं प्रकृत नयनादि का निषेधकर श्रीकृष्ण नयनादि की अन्यथाकृति अर्थात् अन्य मधुपादि रूपमें वर्णन ही यहाँपर अपह्नुति अलङ्कार है।।९५।। आहा! देख, एक उत्कृष्ट शुकपक्षी क्या श्रीराधाके ललाट पिञ्जरमें आवृताङ्ग होकर है? कारण वह शुक, रसयुक्त अधरबिम्ब को देखकर नासिकाके बहाने से चञ्चुको बाहर निकाल कर है। यहाँ रूपक अपह्नुति उत्प्रेक्षा अलङ्कार है, ललाट का पिञ्जरत्व, नासिका का शुकचञ्चुत्व हेतु रूपक है, ललाट का पिञ्जरत्व नासिका का शुक चञ्चुत्वरूप में जो अन्यथा करण वह ही अपह्नुति अलङ्कार है, और चञ्चुकी अपेक्षा नासिका का उत्कर्ष ही उत्प्रेक्षा है।।९६।। और भी श्रीराधा की शोभन नासिका कन्दर्प का अद्भुत वाण है, कारण उक्त

विरोधरूपकविशेषोक्तयः ॥

अमुष्याः श्रीनासातिलकुसुम–तूणो रतिपते–
रधोवक्त्रं पूर्णः कुसुमविशिखैश्चित्रमृगयोः ।
मुखद्वारा तस्मात् स्मितचयमिषात्ते निपतिताः
शरव्यत्वं येषामलभत हरेश्चित्तहरिणः ॥९८॥

द्रव्यस्य क्रियया सहात्र विरोधाभासः। नासाया इषुत्वेन भ्रूवोर्धनुस्त्वेन रूपकं। विशेषोक्तिः। कारणेषु सत्सु कार्य्यस्य नोदयः। सा विशेषोक्तिः त्रिधा अनुक्तनिमित्तता उक्तनिमित्तता अचिन्त्यनिमित्तता च। अत्र मुक्ताफलस्याग्रस्थितत्वेन धनुष्यर्पितत्वेन बाणस्य कवचाच्छन्नहृदये प्रवेशाभावस्य कारणे विद्यमानेऽपि प्रवेशाभावरूपकार्य्य-स्यानुदयात् विशेषोक्तिरियं अचिन्त्यनिमित्तता रूपा ॥९७॥ चित्रमृगयोः आश्चर्य्यव्याधस्य रतिपतेः कुसुमावाणैः पूर्णः अधोमुखः नासारूपतिलपुष्पस्य तूणं तस्मात् तूणात् मुखद्वारा ते विशिखाः स्मितसमूहच्छलात् निपतिताः। तेषां विशिखानां बाणानां हरेश्चित्तरूपहरिणः शरव्यत्वं लक्ष्यत्वमलभत। नासायाः तूणत्वेन स्मितस्य बाणत्वेन चित्तस्य मृगत्वेन रूपकं। प्रकृतं नासादिकं निषिध्यतूणादेः स्थापनरूपान्यथाकृतिरपह्नुतिः। हेतुरूपक्रियाभावे फलं यत् सा विभावना। कृष्णचित्तहरिणवेधे बाणक्षेपरूपक्रियाया अभावेऽपि वेधरूपफलमत्र विभावना ॥९८॥

वाण निजाग्रभाग में मुक्ता फलकयुक्त होकर भी चञ्चल भ्रूधनुष में अर्पित होकर धैर्य्य कवच समाच्छादित श्रीकृष्ण के वक्षःस्थल में प्रविष्ट हुआ है। यहाँ विरोधरूपक विशेषणोक्ति अलङ्कार है। विरोधः स विरोधाभासः कवचाच्छन्न हृदयमें भी वाणका प्रवेश यह ही विरोध है, कारण रहते हुए भी कार्य न होना यह ही विशेषोक्ति है। यहाँ वाणके अग्रभाग मुक्ताफलसे आबद्ध है, सुतरां वह हृदय में प्रविष्ट नहीं हो सकता है, इस प्रकार न होने के लिए मुक्ताफलरूप कारण वर्त्तमान है, अथच प्रवेश न होना'' इस प्रकार कार्य नहीं हुआ, अर्थात् कारण रहते हुए कार्य नहीं हुआ, किन्तु वाणका प्रवेश हुआ, इससे निषेध मुखसे विशेषोक्ति अलङ्कार हुआ है ॥९७॥ श्रीराधिका की नासिका नतमुख तिलकुसुम सदृश है, वह कुसुमतूण अर्थात् वाणाधार है, वह आश्चर्य्य व्याधरूप रतिपति मदनके शरसे पूर्ण है, उस वाणाधार से हास्यके छलसे जो हार निर्गत हो रहा है, उसका एकमात्र लक्ष्य श्रीकृष्ण का मनोरूप मृग है। यहाँ रूपक अपह्नुति विभावना अलंकार है।

रूपकापह्नुतिविभावनाः ॥

राधाया नयनाञ्जनाधररुचा व्याप्तं नु गुञ्जायते
नासामौक्तिकमेतदित्यविदुषां काव्यं ममैतन्मतम् ।
शश्वत् कृष्णविराजि रागि हृदयश्वासानिलैर्भावितम्
तत्तद्वर्णतयाशु तत् परिणतं तेषां हि तत्तद्गुणैः ॥ ॥९९॥

नयनयुगविधाने राधिकाया विधात्रा
जगति मधुरसाराः सञ्चिताः सद्गुणा ये ।

श्रीराधाया नयनाञ्जनाधरयोः कान्त्या व्याप्तं नासामौक्तिकं गुञ्जा इवाचरति गुञ्जायते इत्यविदुषामज्ञानं काव्यं । शश्वत् कृष्णविराजि सदा कृष्णस्य विशेषेण राजता स्थितिर्यत्र तादृशं तत् रागि रागयुतश्चहृदयं तस्मात् श्वासरूपानिलैर्भावितं जनितं हि निश्चितं । तत्तद्वर्णतया कृष्णस्त कृष्णवर्णतया रागस्य रक्तवर्णतया तेषां तत्तद्गुणैः कृष्णगुणरक्तगुणैः परिणतं तत् मौक्तिकं एतत् मम मतं । परिणतमिति लुप्तोपमा । कृष्णरक्तगुणस्य कथनात् तद्गुणः ॥९९॥ विधात्रा राधाया नयनयुगं विधातुं कर्त्तुं मधुरसारा ये सद्गुणाः सञ्चिताः तेषां सारं गृहीत्वा राधाया नयनयुगं कृतं । भुवि पतिततदंशैरसारैर्भ्रमरादीनि सृष्टानि । विशेषालङ्कारो यथा । आधारस्यप्रसिद्धस्या-भावेऽप्याधेयदर्शनं । एकस्य युगपत् वृत्तिरनेकत्र स्वरूपतः । एकस्यैवातिचित्रस्य वस्तुनः

यहाँ नासाका तूणत्व, ईषत् हास्य का वाणत्व, चित्तका मृगत्व हेतु रूपक है। प्रकृत नासाका निषेध कर तूणादि स्थापनरूप अन्यथाकृति ही अपह्नुति है, कारण भूतक्रिया का अभावसे फलोत्पत्ति विभावना है। यहाँपर श्रीकृष्णके चित्तरूप हरिण को विद्ध करनेके लिए वाणक्षेपणरूप कारण भूतक्रिया का अभावसे भी श्रीकृष्णको विद्ध करना रूप फलोत्पत्तिसे विभावना अलङ्कार है।।९८।। जिस प्रकार गुञ्जाफल का एक अंश रक्तवर्ण अपर अंश कृष्णवर्ण होता है, उसकी भाँति श्रीराधिका की नासिकाके अग्रभागमें स्थित मौक्तिक-नयनाञ्जन एवं अधर की कान्तिसे मुक्ताके सदृश हुआ है। यह काव्य अकविका है, अर्थात् कपोलकल्पित है, मेरा मत यह है कि-श्रीकृष्ण का कृष्णवर्ण, व अनुरागरूप रक्तिमा जिस हृदयमें सुशोभित है, उस हृदयका निःश्वासरूप समीरणके साथ संयुक्त होकर नासिकाके अग्रस्थित मुक्ताफल,-कृष्ण एवं रक्तवर्ण से द्विधा विभक्त हुआ है। यहाँ

भुवि पतिततदंशैस्तेन सृष्टान्यसारै-
र्भ्रमर-मृग-चकोराम्भोज-मीनोत्पलानि ॥१००॥ विशेषालङ्कारः ॥
खञ्जनतीक्षणमञ्जनलिप्तं कञ्ज-नवस्मय भञ्जनदृप्तम् ।
शञ्जननाच्युत-रञ्जनशीलं सुमुखि ! तवाण्डजगञ्जनलीलं ॥१०१॥
अनुप्राससलुप्तोपमे ॥
धाता कुण्डल-मीनराज-नटयोर्दाम्पत्यसिद्ध्यै हरे
राधाया मुखसत्सुधासरसि तन्नेत्रद्वयीव्याजतः ।

करणेन हि। तत् सामान्यवस्तूनां करणेन भवेत् त्रिधा। स विशेषालङ्कारस्त्रिधा भवेत्। त्रिधा मध्येतु एकस्यातिविचित्रस्य वस्तुनो राधानेत्रयुगस्य करणेन तत्तस्मात् सामान्यवस्तूनां भ्रमरादीनां करणे विशेषालङ्कारोऽयं ॥१००॥ हे सुमखि ! तवाञ्जनलिप्तमीक्षणं खञ्जन इवाचरति खञ्जनति कञ्ज-नवस्य कञ्जेषू नवं सुन्दरं यत् कञ्जतस्य। यद्वा, कञ्जस्य नवो यः स्मयो गर्व्वस्तस्य भञ्जने दृप्तं प्रतापवत्। शं सुख तस्य जननमुत्पत्तिर्यस्मात्। तमच्युतं रञ्जयितुं शीलं यस्य तत्। अण्डजा मत्स्यास्तेषां गञ्जनलीला यस्य तत्। अनुप्रास्यत इत्यर्थेऽनुप्रासो वर्णसाम्यतः खञ्जनाञ्जनभञ्जनशञ्जनगञ्जनेति वर्णसाम्यादनुप्रासः। खञ्जनमिवाचरतीत्यत्र लुप्तो-पमा ॥१०१॥ धाता हरेः कुण्डलरूपौ मीनराजौ मकरौ तावेव नटौ तयोर्दाम्पत्यसिद्ध्यै स्त्रीपुरुषभावसिद्ध्यर्थं राधामुखसरसि तत्तस्या नेत्रच्छलेन नृत्यं शिक्षयितुं झषेशस्य

लुप्तोपमा, तद्गुण अलङ्कार है। परिणत इस पदमें 'परिणतमिव' अर्थ होनेसे इव शब्द लुप्त होनेसे लुप्तोपमा एवं मुक्ताफल निजवर्णको छोड़कर कृष्ण एवं रक्तवर्ण को ग्रहण करनेसे तद्गुण अलङ्कार हुआ है।।९९।। अपि च विधाताने श्रीराधाके नेत्रयुगल के निर्म्माणके लिए जगतके मधुरसार सद्गुण समूहका संग्रह किया है, और उसके सारभागसे श्रीराधाके नयनद्वय का निर्म्माण आपने किया है, उस समय असार जो अंश पृथिवीमें गिरा है, उसके द्वारा भ्रमर, मृगलोचन, चकोर, कमल मीन एवं उत्पल की सृष्टि हुई है। यहाँ विशेष अलङ्कार है, आधारके बिना आधेय की स्थिति, एकवस्तु का स्वभावतः एक समयमें अनेक स्थानों में अवस्थान एव एक अत्याश्चर्य वस्तु निर्म्माणके द्वारा तत्तुल्य अन्यान्य वस्तुका निर्म्माण, इस प्रकारसे विशेष अलङ्कार तीन प्रकार होता है, किन्तु यहाँपर श्रीराधाके अत्याश्चर्य नयन के निर्म्माण से भ्रमरादि सामान्य वस्तुका निर्म्माण होनेसे उक्तलक्षण का तृतीय

लास्यं शिक्षयितुं झषेशतनये बाले विधायानयोः
पार्श्वे लोलतया पलायनभिया श्रीकर्णजाले न्यधात् ॥१०२॥
रूपकाह्नु त्युत्प्रेक्षाः ॥

राधाक्षि पद्मद्वय धाम्नि तिष्ठतः सदा सृजन्तौ भ्रमरप्रजापती।
प्रजावलीं मानसिकीं यतोऽसकौ कटाक्षधारामिषतो निरेत्युतः ॥१०३॥
रूपकाह्नुत्युत्प्रेक्षाः ॥

मीनश्रेष्टस्य द्वे कन्ये विधाय अनयोर्झषेशतनययोः पलायनभिया अनयोः पार्श्वद्वये कर्णरूपजाले न्याधात्। कुण्डलस्य मकरेण नेत्रस्य मीनेन कर्णयोर्जालेन तादात्म्यात् रूपकं। तादात्म्यमुपमा-नोपमेययोरभेदप्रतीतिः। प्रकृतस्य कुण्डलादेर्मीनादिना अन्यथाकृतिरपह्नुतिः। अन्यमीनापेक्षया कुण्डलनेत्रादीनामुत्कर्ष उत्प्रेक्षा ॥१०२॥ भ्रमराविव भ्रमरौ नेत्रमध्यवर्त्तिनीलौ तारारूपौ तावेव प्रजापती राधाया नेत्रपद्मद्वयधाम्नि मानसिकीं प्रजावलीं सृजन्तौ तिष्ठतः। यतो नेत्रद्वयात् असकौ असौ स्वार्थे कः। अकृ वा इति। प्रजावली कटाक्षधाराच्छलेन निरेति निर्गच्छति। नेत्रस्य पद्मेन कटाक्षस्य मानसप्रजावल्या तादात्म्यात् रूपकं। प्रकृतनेत्रकटाक्षादिकं निषिध्यान्यस्य पद्मादेः स्थापनमपह्नुतिः। पद्मान्यप्रजातो नेत्रकटाक्षाणामुत्कर्ष उत्प्रेक्षा ॥१०३॥

प्रकार विशेषालङ्कार हुआ है।।१००।। हे सुमुखि! तुम्हारे अञ्जन लिप्त नयनद्वय-खञ्जन के समान आचरण रत हैं, कारण कमलके मध्यमें जो सुन्दर कमल है, उक्त नयन उसका गर्वखण्डन में प्रतापान्वित है, एवं सुख जनक श्रीकृष्ण का रञ्जनशील है, तथा उक्त लोचन की लीला इस प्रकार आश्चर्यजनक है कि उसमें मत्स्यगण भी रञ्जित हो रहे हैं, यहाँ अनुप्रास लुप्तोपमा है। वर्ण की समता को अनुप्रास कहते हैं, यहाँ खञ्जन, अञ्जन, भञ्जन, शञ्जन, गञ्जन, दृप्त, लिप्त अच्युत, शील, लील, शब्दोंमें वर्णसाम्य हेतु अनुप्रास हुआ है, 'खञ्जनमिवाचरति' यहाँ लुप्तोपमा है।।१०१।। श्रीकृष्ण के कुण्डलद्वयरूप मकर ही नट है, विधाताने दोनों के दाम्पत्य सिद्धिके लिए, श्रीराधाके मुखसरोवर में तदीय नेत्रच्छल से नृत्य सिखाने के लिए मीन राजाकी कन्याद्वय का विधानकर उक्त मीनराजके तनयाद्वयके पलायनके भयसे दोनों के पासमें कर्णरूप जालका स्थापन किया है। यहाँ रूपक अपह्नुति उत्प्रेक्षा अलङ्कार है। यहाँ कुण्डल का मकरके साथ, नेत्रका मीनके साथ, कर्णयुगल का जालके साथ तादात्म्य हेतु रूपक है, अर्थात् उपमान उपमेय की अभेद प्रतीति है, कुण्डलादि की मीनादिके साथ जो

भ्रुवौ तिरःप्रसारिण्यौ विष्णुक्रान्ता लते ध्रुवम्।
अस्याः कृष्णे ययोर्भातः कुसुमे नेत्रयोर्मिषात्॥१०४॥ रूपकापह्नुति॥

किं राहुणा कवलितेन्दुकले वहिष्ठे
तद्दन्तदंशगलितस्तिमिताङ्कलेशे।
एते न किन्तु कचचिल्लिलतान्तराले
श्रीराधिकालिकमिदं विमलं विभाति॥१०५॥ निश्चयान्तःसन्देहः॥

अस्याः भ्रुवौ तिरःप्रसारिण्यौ वक्रीभूय प्रसारिण्यौ। विष्णुक्रान्ता अपराजिता तस्या लते इति ध्रवं। ययोर्लतयोः कृष्णवर्णे कुसुमे नेत्रयोर्मिवात् भातः। भ्रुवोर्लतयो नेत्रयोः पुष्पेण तादात्म्यं रूपकं। प्रकृतयोर्भ्रूनेत्रयोर्विष्णुक्रान्ता लता पुष्पत्वेनान्यथाकृतिरपह्नुतिः॥१०४॥ राहुणा ग्रस्तेन्दुकलाद्वये तस्य राहोर्दन्तदंशनात् गलिते स्तिमितकलङ्कलेशे। एते बहिष्ठे वहिःस्थिते इति सन्देहः। तदन्ते निश्चयमाह न इति। किं नु पुनः राधायाः कचः केशः चिल्लिलता–भ्रूस्तयोरन्तराले मध्ये इदं विमलमलिकं विभाति। तिमितत्वं तैलाभ्यञ्जनेन स्वतश्चिक्कणत्वेन च केशरूपराहोर्दन्तगलितत्वेन

अन्यथाकृति है। उसका नाम अपह्नुति है, अन्य मीनकी अपेक्षासे कुण्डल नेत्रादिका जो उत्कर्ष है, उसका नाम उत्प्रेक्षा है।।१०२।। श्रीराधाके नयनके मध्यमें भ्रमर सदृश तारका स्वरूप प्रजापतिद्वय सर्वदा श्रीराधाके नयन कमलमें मनोवृत्तिरूप प्रजावली का सृजन कर अवस्थित है, कारण उक्त नेत्रद्वय से उक्त प्रजावली कटाक्ष धाराके च्छलसे बाहर निकल रही हैं। नेत्रका पद्मके साथ, मानस प्रजावलीके साथ कटाक्ष का तादात्म्य से रूपक है, प्रकृत नेत्र कटाक्षादिका निषेध कर अपर पद्मादिका स्थापन से अपह्नुति है, पद्मान्य प्रजासे नेत्रकटाक्ष का उत्कर्षसे उत्प्रेक्षा है।।१०३।। श्रीराधिका की भ्रूद्वय वक्रभावसे प्रसारित होनेसे वह अपराजिता लता बन गई हैं। उक्त लताद्वयके कृष्णवर्ण कुसुमद्वय नेत्रके मिषसे शोभित है। यहाँ रूपक अपह्नुति अलंकार है। भ्रूयुगलका लताके साथ, नेत्रयुगलका पुष्पके साथ तादात्म्य के कारण रूपक है, प्रकृत भ्रूनयन की अपराजिता लताका पुष्पत्व रूपमें अन्यथा कृतिका नाम अपह्नुति है।।१०४।। अनन्तर श्रीराधाके ललाट का अपूर्व सौन्दर्य्य का वर्णन करती हैं, राहुके द्वारा कवलित एवं उसके दशन दंशनसे गलित चन्द्रकलाद्वय कलङ्कशून्य होकर क्या बाहर विराजित है? नहीं, किन्तु केश एवं भ्रूलताके अन्तरालमे श्रीराधाका ललाट देश शोभित है। यहाँ निश्चयान्त सन्देह है। यह क्या चन्द्रमण्डल की कलायुगल है? यह सन्देह नहीं यह श्रीराधाका केशपाश है, यह ही निश्चय है।।१०५।।

राधालिकं चिल्ल्यलकालिमञ्जुलं नवेन्दुलेखा मदहारि दीव्यति ।
उपर्य्यधः षट्पदपालिवेष्टितं यथा नवं काञ्चनमाधवीदलम् ॥१०६॥ उपमा ॥

गुणमणि–खनिरस्या वल्लभः कृष्ण एव
प्रणयिनि भवितास्याः कृष्ण एवानुरागः ।
इति लिपिरलिकान्तर्वैधसीयास्त्यसौ किं
बहिरपि मदसिन्दूरेन्दुदम्भात् स्फुटाभूत् ॥१०७॥

रूपकोत्प्रेक्षापह्नुतयः ॥

सीमन्तरेखाञ्चचरुणाम्वरावृतं सैन्दूरमस्यास्तिलकं विभाति ।
करावगुण्ठाभिधमुद्रयावृतं ताम्रार्घ्यपात्रं सशिखं स्मरस्य वा ॥१०८॥ ॥ उपमा ॥

मध्यस्थलात् अथःपतितकलङ्कस्य भ्रूद्वयत्वेनोपमा ॥१०५॥ चिल्ली अलकालिभिश्च मनोज्ञ राधालिकं राधाया ललाटं नवेन्दुलेखामदहारि दीव्यति। उपमामाह। उपर्य्यधो भ्रमरैर्वेष्टितं नवं सुन्दरं काञ्चनस्य माधवी वासन्ती लता तस्या दलं यथा ॥१०६॥ गुणरूपमणीणां खनिः गुणोत्पादिका भूमिः। कृष्ण एव अस्या वल्लभः प्रियः। प्रणयिनि कृष्णे एवास्या अनुरागश्च भविता भविष्यतीति विधातृकृता वैधसी या लिपिरलिकान्त-र्ललाटमध्येऽस्ति। असौ लिपिर्बहिरपि मृगमदसिन्दूरेन्दुच्छलात् स्पुटाभूत्। मृगमदादीनां वैधसीयलिपित्वेन तादात्म्यं रूपकं। विधिलिप्यपेक्षया मृगमदादीनामुत्कर्ष उत्प्रेक्षा।

सुवर्णवर्ण माधवी लताके पत्रके उपर एवं नीचे भ्रमर अवस्थित होनेसे जैसी शोभा होती है, उसकी भाँति श्रीराधाके ललाट देश, भ्रुलता एवं चूर्ण कुन्तलके मध्यवर्त्ती होकर नबोदित चन्द्रलेखा का गर्वको खर्व करके शोभित है। यहाँ उपमा है, ऊपर एवं नीचे भ्रमर मालासे समाकुल हैभी माधवी लताके दलकी भाँति अलका वेष्टित श्रीराधाका ललाट है, यह ही उपमा है।।१०६।। गुणरूप मणिसमूह की खनि, अर्थात् गुणोत्पादिका भूमि श्रीकृष्ण ही श्रीराधिका का वल्लभ है अर्थात् प्रिय है, एवं प्रणयि श्रीकृष्णमें उक्त श्रीराधा का अनुराग होगा, यह विधाता की लिपि उक्त ललाट के मध्यमें है। क्या वह मृगमद, सिन्दूर, चन्द्रक छलसे वाहर प्रकाशित है ? यहाँ रूपकोत्प्रेक्षापह्नुति अलङ्कार है। विधिलिपि की अपेक्षा मृगमदादि का जो उत्कर्ष है, वह ही उत्प्रेक्षा है, एवं प्रकृत मृगमदादि की विधिलिपिके साथ अन्यथाकृतिका नाम ही अपह्नुति है।।१०७।। सीमन्तरेखा (सिंथि) रेखायुक्त

श्रीकृष्णहृन्मत्तमतङ्गजस्याविष्टस्य राधाकचकाननान्तः ।
तद्गण्डसिन्दूरमदाभिषिक्तं वर्त्मास्य सीमन्तमिषाद्विभाति ॥ ॥१०९॥
रूपकापह्नुती ॥

श्रीराधाश्रयणात् सुखं निवसतोः केशाननव्याजतो-
ध्वान्तेद्वोर्हृदि शङ्कितं नहि गतं निर्वैरिणोरप्यहो

प्रकृतमृगमदादेर्विधिलिपित्वेनान्यथाकृतिरपह्नुतिः ॥१०७॥ अस्याः सिन्दूरं तिलकं सीमन्तरेखया युक्तारुणाम्वरावृतं विभाति । किमिव कामस्य सशिखं ताम्राार्घ्यपात्रं करेणावगुण्ठं उपरि आच्छन्नं कृत्वा या मुद्रातया वृतं । वा इवार्थे इवशब्द उपमावाचकः कामस्य कृष्णवर्णत्वेन सीमन्तरेखायाः पार्श्वद्वयवर्त्तिकेशरचनया अरुणाम्वरस्य कामस्य करद्वयेन सिन्दूरतिलकस्य ताम्राार्घ्यपात्रेण सीमन्तरेखायाः सिन्दूरकृतायाः ताम्राार्घ्यपात्रस्य शिखरेण साम्यं ॥१०८॥ राधायाः कचाः केशा एव काननं तन्मध्ये आविष्टस्य प्रविष्टस्य श्रीकृष्णमनोरूपहस्तिनः गण्डस्थसिन्दूरमदादभिषिक्तं । मदालिषिक्तमित्यपि पाठः । वर्त्म सीमन्तमिषात् विभाति । कृष्णमनसः हस्तित्वेन कचस्य काननत्वेन सीमन्तस्य वर्त्मत्वेन तादात्म्यमभेदप्र तीतिरूपकं । मनः-कचसीमन्तानां प्रकृतानां हस्त्यादिनान्यथाकृतिरपह्नुतिः ॥१०९॥

तथा अरुणवर्ण वसनसे समावृत श्रीराधा का सिन्दूर द्वारा रचित तिलक, करमुद्रावृतशिखायुक्त कन्दर्प का ताम्रनिर्मित अर्घ्यपात्र के समान शोभित है। इवार्थ में इव शब्द उपमा वाचक है, कृष्णवर्णत्वके साथ कन्दर्प का पार्श्ववर्त्ति केशरचनाके साथ सीमन्तरेखा का, करयुगलके साथ अरुणवर्ण अम्बर का ताम्राार्घ्यपात्रके साथ सिन्दूर तिलक का, ताम्रपात्र शिखर के साथ सिन्दूरकृत सीमन्तरेखा का साम्य हेतु उपमा अलङ्कार हुआ है।।१०८।। श्रीराधाके केशरूप कानन के मध्यमें श्रीकृष्णके मनोरूप हस्ती प्रविष्ट होनेसे उक्त केशरूप कानन का पथ गण्डस्थ सिन्दूरके मदसे अभिषिक्त होकर सीमन्त के छल से प्रकाशित है। यहाँ रूपक अपह्नुति अलङ्कार है, प्रकृत मन, केश एवं सीमन्तके हाथ, हस्ति कानन तथा पथ प्रभृति की जो अन्यथाकृति है अर्थात् हस्ति आदि रूपमें वर्णन है, वह अपह्नुति है।।१०९।। अहो, श्रीराधाके अङ्गआश्रय हेतु सुखसे वसतिशील केशके बहाने से अन्धकार का एवं वदन के बहाने से चन्द्रका, परस्पर निर्वैर होने से भी इसके हृदयसे शङ्का विदूरित

ध्वान्तं यन्निजसीमनि भ्रमरकव्यूहं पुरःस्वं भया-
दिन्दुश्चालिकसत्कलाग्रगनिजव्यूहं स्वगुप्त्यै न्यधात् ॥११०॥
रूपकापह्नुत्यनुमानानि ॥

अलकमधुपमाला भाति या राधिकाया-
मुखकमलमधूलीपानलुब्धोपविष्टात् ।
नयनहरिणयुग्मारोधनायाघशत्रो-
र्मदनमृगयुनासौ लम्भिता वागुरात्वम् ॥१११॥ रूपकोत्प्रेक्षे ॥

राधाश्रयणात् सुखं निवसतोः केशच्छलात् ध्वान्तस्य आननच्छलात् इन्दोर्निर्वैरिणोरपि द्वयोर्हृदि शङ्कितं नहि गतं। ध्वान्तमन्धकारः स्वगुप्त्यै स्वरक्षार्थं निजसीमनि स्वं भ्रमरका अलकास्तत्र व्यूहः सैन्यं तं पुरोऽग्रे भयात् न्यधात्। इन्दुश्च स्वगुप्त्यै अलिकं ललाटमेव सत्कला सैवाग्रगो निजव्यूहः सैन्यं तं पुरो भयान्न्यधात्। केशस्य ध्वान्तेन आननस्य चन्द्रेण अलकानां सैन्येन ललाटस्य चन्द्रकलया तादात्म्यं रूपकं। प्रकृतानां केशादीनां अन्धकाराद्याकारेणान्यथाकृतिरपह्नुतिः। स्वस्वसीमायां सैन्यस्थापनं हेतुं कृत्वा चन्द्रान्धकारयोर्हृदि शङ्कासाध्यमत्रानुमानं ॥११०॥ राधाया मुखकमलमधुपानलुब्धाया अलकरूपभ्रमरमाला भाति। असावलकभ्रमरश्रेणी मदनव्याधेन अघशत्रोर्नयनहरिणयुग्मस्य रोधनाय वद्धार्थं वागुरात्वं लम्भिता। बागुरा मृगवन्धनीत्यमरः। कृष्णनेत्रे अलकायां पतिते सती तत्रैव तिष्ठतः। अन्यत्रगमनासामर्थ्यात्। अलकानां मधुपेन वागुरया च नयनस्य हरिणेन मदनस्य व्याधेन तादात्म्यं रूपकं। राधामुखमधुपानरूपहेत्वन्तरस्य दानाद्भ्रमराद्यपेक्षया अलकानामुत्कर्ष उत्प्रेक्षा ॥१११॥

नहीं हुई है, कारण अन्धकार निज रक्षार्थ निज अलकरूप सैन्य एवं चन्द्रभी निज रक्षार्थ ललाट रूप प्रशस्त कलाको सैन्य करके भीत होकर सामने स्थापन किया है। केश निचय का अन्धकार के साथ, चन्द्रके साथ मुखका, अलक का सैन्यके साथ, ललाट का चन्द्रकलाके साथ जो तादात्म्य है, वह रूपक है, प्रकृत केश प्रभृति को अन्धकारादि रूपमें अन्यथाकृति ही अपह्नुति है, एवं निज सीमामें सैन्य स्थापन को हेतु करके चन्द्र एवं अन्धकार के हृदयमें जो शङ्का साध्य है, वह ही अनुमान है ।।११०।। श्रीराधाके चूर्णकुन्तल रूपिणी भ्रमर श्रेणी, मुखकमल के मधुपान में लुब्ध होकर ऊपरमें निवास कर रही हैं, इसको देखकर कन्दर्प व्याध श्रीकृष्णके नेत्र युगलको अवरुद्ध करनेके लिए उक्त मधुपश्रेणी को वागुरा अर्थात् मृगबन्धन करने का जाल बनाया है।

राधामनोवृत्तिलताङ्कुरागताः कृष्णस्य ये भावनया तदात्मताम् ।
सूक्ष्मायताः प्रेमसुधाभिसेकतस्ते निःसृता केशमिषाद्बहिर्ध्रुवम् ।। ।।११२।।

रूपकापह्नुत्युत्प्रेक्षाः ।।

स्वश्रिया चामरान् पुष्णञ्छितिकण्ठकलापदम् ।
कैश्यं वृन्दावनेश्वर्य्या विष्णोरैश्यमिवाबभौ ।।११३।। श्लेषोपमे ।।

ये राधाया मनोवृत्तिताया अङ्कुराः । कृष्णस्य भावनया तदात्मतां कृष्णतां गताः । ते प्रेमसुधाभिषेकात् सूक्ष्मायताः सूक्ष्माश्च ते आयतादीर्घाश्चेति तथाभूताः सन्तः केशमिषात् वहिर्निसृताः । केशस्य मनोवृत्तिलताङ्कुरेण तादात्म्यं रूपकं । प्रस्तुतस्य केशस्य लताङ्कुरेणान्यथाकृतिरपह्नुतिः । अन्यकेशात् कृष्णतादात्म्येन हेतुना उत्प्रेक्षा ।।११२।। राधायाः कैश्य केशसमूहो विष्णोरैश्य ईशस्य भाव ऐश्यमिवावभौ । उभयसाम्यमाह । केशपक्षे, स्वकान्त्या चामरान् । विष्णुपक्षे, अमरान् देवान् पुष्णत् शितिकण्ठस्य मयूरस्य कलापं पुच्छं दाति स्वकान्त्या खण्डयति तत् । दोअबखण्डने । पक्षे, महादेवस्य कलाया अर्द्धाङ्गस्य पदं स्थानं । शितिकण्ठशब्दः श्लिष्टः । कैश्यं विष्णोरैश्यमिव । इवशब्द उपमावाचकः ।।११३।।

यहाँ रूपक उत्प्रेक्षा अलङ्कार है, यहाँ अलक समूह,–मधुप एवं वागुरा, नयन हरिण एवं कन्दर्परूप व्याध रूपमें तदात्मता ही रूपक है। दूसरा, श्रीराधा मुखका मधुपान हेतु हेत्वन्तर का विन्यास होनेसे भ्रमरादि की अपेक्षा से अलक सकल का उत्कर्ष ही उत्प्रेक्षा है।।१११।। श्रीराधा की मनोवृत्ति रूप लताङ्कुर समूह, श्रीकृष्ण की भावनासे कृष्णवर्ण प्राप्त एवं प्रेमसुधासे अभिषेक हेतु सूक्ष्म अथच आयत होकर. जैसे केशके च्छुलसे बाहर निकल पड़े हैं। यहाँ रूपक अपह्नुति उत्प्रेक्षा अलङ्कार है यहाँ केश ही लताङ्कुर है, यह तदात्मता ही रूपक है, प्रस्तुत केशका लताङ्कुरके साथ तादात्म्य हेतु उत्कर्ष ही उत्प्रेक्षा है,-वह अपह्नुति है, अन्य केशकी अपेक्षा कृष्णके साथ तादात्म्य हेतु उत्कर्ष ही उत्प्रेक्षा है।।११२।। श्रीराधाके केशनिचय, स्वीय कान्तिके द्वारा चामर समूह को पोषण कर मयूरपुच्छ को तिरस्कृत कर श्रीविष्णुके ऐश्वर्य्य की भाँति शोभित है। पक्षान्तर में श्रीराधाके केशविषय निजकान्ति के द्वारा देवगण का पोषण कर महादेव की कला अर्थात् अर्द्धाङ्ग का स्थान स्वरूप होकर शोभित है। यहाँ श्लेषतया उपमा है, शितिकण्ठ शब्दसे मयूर शिवका

कृष्णाङ्गभासो निचिताः सुसूक्ष्माः श्रीराधया या मनसा दृशा च।
ता एव धम्मिल्लमिषेण वन्द्याः पुञ्जीकृता मूर्द्धिन धृता विभान्ति ॥११४॥
उत्प्रेक्षापह्नुती ॥

रत्नावलीकान्ति-सरस्वतीयुता मुक्ताप्रसूनावलिगङ्गयान्विता।
निजश्रियासौ यमुनायिता स्वयं वेणीत्रिवेणीव वभौ नतभ्रुवः ॥११५॥
रुपकोत्प्रेक्षोपमाः ॥

विलासविश्रान्तमवेक्ष्य राधिका श्रीकेशपाशं निजपुच्छपिञ्छयोः।
न्यक्कारमाशङ्क्य ह्रियेव भेजिरे गिरिं चमर्य्यो विपिनं शिखण्डिनः ॥११६॥
उत्प्रेक्षा ॥

राधया मनसा दृशा च करणभूतया सुसूक्ष्माः कृष्णाङ्गभासो या निचिताः निचित्य एकत्रीकृताः ता एव वन्द्याः वन्दनीयाः पुञ्जीकृता धम्मिल्लमिषेण मूर्द्धिन धृता विभान्ति। वन्द्याः कृष्णाङ्गभास इति हेतुना धम्मिल्लस्य केशवन्धस्योत्कर्ष उत्प्रेक्षा। धम्मिल्लस्य कृष्णाङ्गभाससान्यथाकृतिरपह्नुतिः ॥११४॥ नतभ्रुवो राधाया वेणी रत्नकान्त्या सरस्वती। मुक्तापुष्पश्रेण्या गङ्गा। स्वयं वेणीनिजश्रिया यमुनायिता। सरस्वतीगङ्गायमुनात्रिवेणीव वभौ। वेण्याः त्रिवेण्यपेक्षयोत्कर्ष उत्प्रेक्षा। त्रिवेणी इव इति उपमा ॥११५॥ राधाया विलासेन विस्रस्तं केशपाशं समीक्ष्य चमर्य्यो निजपुच्छस्य

बोध होता है, अतः श्लेष है, ''कैश्यं विष्णोरैश्यमिव'' इव शब्द उपमा-वाचक है।।११३।। श्रीराधा, मन एवं नयनके द्वारा श्रीकृष्ण की जिस अङ्गकान्ति को एकत्र किए थे, उस वन्दनीय अङ्गकान्ति ही क्या केशके छलसे मस्तक के ऊपर पुञ्जीभूत होकर शोभित है। उत्प्रेक्षा अपह्नुति अलङ्कार है, श्रीकृष्ण की अङ्गकान्ति के च्छलसे केशकलाप का सम्मान पूर्वक मस्तकोपरि धारण कर रही है, इस हेतु केशकलाप का उत्कर्ष ही उत्प्रेक्षा है, और धम्मिल्ल, कृष्णाङ्ग भासकी अन्यथाकृति ही अपह्नुति है।।११४।। विनत भ्रू श्रीराधा की रत्नावली, कान्ति से सरस्वती है, मुक्ता पुष्पमाला गङ्गा है, एवं स्वयं वेणी भी स्वीय कान्ति के द्वारा यमुना है, इस प्रकार श्रीराधा वेणी, त्रिवेणी, अर्थात् गङ्गा, यमुना, सरस्वती की भाँति शोभिता है। त्रिवेणी के साथ वेणीका जो तादात्म्य, वह ही रूपक है, त्रिवेणी है, इस से उपमा हुई है।।११५।। श्रीराधाके केशपाश विलास द्वारा आलुलायित हुए हैं, देखकर स्वीयपुच्छ एवं पिञ्छको तिरस्कार कर अत्यन्त लज्जासे जैसे चमरीगण पर्वत

राधायाः कुङ्कुमानां परिमलविततिर्निर्जिहीतेऽखिलाङ्गा-
न्नाभिभ्रूकेशनेत्रादगुरुमृगमदालिप्तनीलोत्पलानाम् ।
वक्षःश्रोत्रास्य नासाकरपदयुगलादिन्दुलिप्ताम्बुजानाम्
कक्षश्रेणीनखेभ्यो मलयजरससंसिक्तसत्केतकीनाम् ॥११७॥

दीपकस्वभावोक्ती ॥

कृष्णेन्द्रियाह्लादिगुणैरुदारा श्रीराधिका राजति राधिकेव ।
सर्व्वोपमानावलिमर्द्दिशीलान्यङ्गानि वाङ्गानि च भान्त्यमुष्याः ॥११८॥

अनन्ययालङ्कारः ॥

मयूराः पिञ्छस्य न्यक्वारमाशङ्क्य ह्रिया गिरिं काननञ्च भेजिरे। केशपाशस्य चामरपुच्छाद्युत्कर्ष उत्प्रेक्षा ॥११६॥ राधाया अखिलाङ्गात् कुङ्कुमानां परिमलविततिः सुगन्धश्रेणी निर्जिहीते निर्गता भवति। नाभिभ्रूकेशनेत्रात् अगुरुकस्तूरीलिप्तनीलोत्पलानां परिमलततिर्निर्जिहीते। वक्षःश्रोत्रमुखनासाकरपदयुग्मात् कर्पूरलिप्तपद्मानां कक्षा-दिभ्यश्चन्दनसिक्तकेतकीनां परिमलततिर्निर्जिहीते। कुङ्कुमानां नीलोत्पलानां अम्बुजानां केतकीनामित्यादिकारकस्य वहुत्वं निर्जिहीते इति क्रियैक्यमत्र दीपकं। अङ्गगन्धस्य स्वभावकथनात् स्वभावोक्तिः ॥११७॥ कृष्णेन्द्रियमाह्लादयितुं शीलं येषां तादृशा ये गुणास्तैरुदारा राधिका इव राधिका राजति। सर्व्वोपमानावलिं मर्द्दयतीति तच्छीलं येषां तानि अमुष्या राधाया अङ्गानि वा इव अङ्गानि भान्ति। एकस्यैव उपमानो-

---

को एवं मयूरनिकर कानन को चले गए हैं। यहाँ उत्प्रेक्षा अलङ्कार है। केशपाश का चामर एवं पुच्छ से उत्कर्ष है, वह ही उत्प्रेक्षा है।।११६।। श्रीराधाके अङ्गसमूह से ही परिमल श्रेणी निर्गत हो रही है, अर्थात् नाभि, भ्रू, केश, नयनसे अगुरु मृगमद् लिप्तनीलोत्पल श्रेणीका परिमल, वक्षः कर्ण, वदन नासिका चरणयुगलसे कर्पूरलिप्त पद्मसमूह की परिमल, एवं कक्ष नितम्ब नखसमूह से चन्दनसिक्त केतकी का परिमलश्रेणी निर्गत हो रही है, यहाँ दीपक स्वभावोक्ति अलङ्कार है, कुङ्कुम नीलोत्पल अम्बुज केतकी प्रभृति कारक का बहुत प्रयुक्त एवं निर्जिहीते इस क्रिया की एकता निबन्धन दीपक है, और अङ्गगन्धका स्वभाव कथन ही स्वभावोक्ति अलङ्कार है।।११७।। श्रीकृष्ण की इन्द्रियनिचय का आह्लादकारी सौन्दर्य्य माधुर्य्यादि गुणोंसेभूषित श्रीराधिका है, श्रीराधिकातो श्रीराधिकाके समान है, चन्द्रः कुमुद, मृणाल, कमल, स्वर्णादि निखिल उपमान वस्तुका अहङ्कार मर्दक श्रीराधाके

श्रीराधिकानन्यसमा लसत्यसौ माधुर्य्यसम्पत्तिरिवाघविद्विषः।
माधुर्य्यसम्पत्तिरपीयमुच्चकैः श्रीराधिकेवानुपमा विराजते॥ ॥११९॥

उपमेयोपमा॥

प्रेमा प्रमाणरहितोऽनुपमा गुणश्रीः
सौन्दर्य्यसम्पदसमा रुचिरश्च शीलम्।
तारुण्यमद्भुततमं सखि राधिकायाः
कृष्णः कथं न भविता वशगो गुणज्ञः॥१२०॥ सद्‌योगसमुच्चयः॥

पमेयत्वेऽनन्वयोपमा। अत्र राधाया एव उपमानोपमेयत्वं॥११८॥ अघविद्विषो माधुर्य्यसम्पत्तिरिसौ। राधिका लसति। न अन्या समा यस्याः सा अनन्यसमा। इयं कृष्णमाधुर्य्यसम्पत्तिरपि उच्चकैरनुपमा श्रीराधिकेव विराजति। विपर्य्यास उपमेय-योपमानयोर्द्वयोरुपमेयोपमा। माधुर्य्यसम्पत्ति राधिकयोर्द्वयोरुपमेयोपमानयोरत्र विपर्य्यासः। आदौ माधुर्य्यसम्पत्तिरिव राधा। पश्चाद्विपर्य्यासः। राधिका इव माधुर्य्य-सम्पत्तिः॥११९॥ गुणज्ञः कृष्णः राधिकाया वशगः कथं न भविता। अत्र कारणमाह। अस्याः प्रमाणरहितः प्रेमा। गुणश्रीरनुपमा। असमा सौन्दर्य्यसम्पत्। शीलं रुचिरं तारुण्यमद्भुततमं। एकस्मिन् यत्र साधके साधकान्तरनिर्द्देशः स समुच्चयः एष च सद्‌योगासद्‌योगसदसद्‌योगभेदात् त्रिधा। अत्र एक साधके राधिकाया प्रेमगुणश्रीसौन्दर्य्य सौशील्यतारुण्यानां साधकान्तरनिर्द्देशानां योगेन सद्‌योगः समुच्चयः॥१२०॥ कापि

अङ्ग-प्रत्यङ्ग श्रीराधाके अङ्ग-प्रत्यङ्ग की भाँति शोभित हैं॥११८॥ यहाँ उपमेयोपमा है, ''पर्य्यायेण द्वयोरेतदुपमेयोपमामता'' अर्थात् उपमान उपमेय-उभय, पर्य्यायक्रमसे अर्थात् एकबार उपमेय-उपमान, एवं एकबार उपमान, उपमेय होनेसे उपमेयोपमालङ्कार होता है, यहाँ श्रीराधा माधुर्य्य सम्पत्ति की भाँति माधुर्य्य सम्पत्ति भी श्रीराधा की भाँति है, इस प्रकार पर्य्याय क्रमसे एकबार उपमेय, एकबार उपमान हुआ है, अतः उपमेयोपमालङ्कार है॥११९॥ हे सखि! श्रीराधाका प्रेम, प्रमाण रहित है, अर्थात् प्रमाण द्वारा अनिर्देश्य है, गुण सम्पत्ति भी तुलना विहीन है, सौन्दर्य्य सम्पत्ति-असमान है, स्वभाव-मनोहर, तारुण्य अद्भुत, अतएव गुणज्ञ श्रीकृष्ण श्रीराधा से वशीभूत क्यों नहीं होंगे? यहाँ सद्‌योग समुच्चय अलङ्कार है। समुच्चय समूह, अर्थात् कार्यसाधक एक विद्यमान होने परभी वहाँ अपर कार्यसाधक समूह का उपन्यास होनेसे समुच्चय होता है। यह समुच्चय-

पातिव्रत्यं क्व नु परवधूत्वापवादः क्व चास्याः
प्रेमोद्रेकः क्व च परवशत्वादिविघ्नः क्व चायम्।
क्वैषोत्कण्ठा क्व नु वकरिपोर्नित्यसङ्गाद्यलब्धि–
र्मूलं कृष्ट्वा कषति हृदयं कापि शल्यत्रयी नः॥ ॥१२१॥

सदसद्योगसमुच्चयः॥

का कृष्णस्य प्रणयजनिभूः श्रीमती राधिकैका
कास्य प्रेयस्यनुपमगुणा राधिकैका न चान्या।

शल्यत्रयी नोऽस्माकं मूलं कृष्ट्वा धृत्वा हृदयं कषति हीनस्ति। कषहिंसायां धातुः। शल्यत्रयमाह। अस्या राधायाः पातिव्रत्यं क्व परवधूत्वापवादः क्व। अत्यन्तासम्भावनायां क्व द्वयं। यत्रेदृशं पातिव्रत्यं तत्र परवधूत्वापवादस्य सम्भावना सर्व्वथैव न भवति इत्येकं। प्रेमोद्रेकः क्व परवशत्वादिविघ्नः क्वः। पूर्व्ववत् यत्र प्रेमोद्रेकस्तत्र विघ्नसम्भावनाभावोद्वितीयं। एषा उत्कण्ठा क्व कृष्णनित्यसङ्गाद्यभावः क्व। अत्र सदैव मिलनाभावः तृतीयं। पातिव्रत्यप्रेमोद्रेकोत्कण्ठानां त्रयं सत्। अपवादविघ्नसङ्गाभावानां त्रयं असत्। सदसद्योगेऽत्र समुच्चयः॥१२१॥ कृष्णस्य प्रणयोत्पत्तिभूमिः का एका श्रीमती राधिका। अत्र प्रश्नपूर्व्वकमाख्यानाख्या परिसंख्या एकविधा। अस्य कृष्णस्य का प्रेयसी अनुपमगुणा राधिकैका अन्या न इत्यनेन तत् सामान्याया अन्यप्रेयस्या व्यपोहनं दूरीकरणमत्र परिसंख्या द्वितीया। अस्याः केशे

सद्योग, असद्योग, सद्सद् योग भेदसे त्रिविध है, इस श्लोक में श्रीकृष्ण को वश करनेके लिए साधन श्रीराधिका वर्त्तमान होने पर भी श्रीकृष्ण को वशीभूत करने के लिए श्रीराधिका के अप्रमेय प्रेम अनुपम गुण अतुलनीय सौन्दर्य्य प्रभृति शोभमान गुणोंका जो उपन्यास है, वह ही सत् अर्थात् उत्तम वस्तुके योगसे सद्योग समुच्चय हुआ है।।१२०।। कहाँ श्रीराधिका का पातिव्रत्य और परवधूरूप अपवाद ही कहाँ है ? अर्थात् जहाँ इस प्रकार पातिव्रत्य है, वहाँ परवधूरूप अपवाद की सम्भावना ही नहीं हो सकती है। कहाँ प्रेमोद्रेक, और कहाँ परवशतादि विघ्न ? अर्थात् जहाँ प्रेमाधिक्य है, वहाँ विघ्न की सम्भावना ही नहीं है, और कहाँ उत्कण्ठा ? और श्रीकृष्ण के साथ निरन्तर मिलनाभाव ही कहाँ है ? इस प्रकार किसी प्रकार अनिर्वचनीय शल्यत्रय हमारे हृदय को भूलसे आकर्षण कर रहा है। यहाँ सदसद्योग समुच्चय है। पातिव्रत्य, प्रेमोद्रेक, उत्कण्ठा-ये तीन सत् साधक है, अपवाद, विघ्न, सङ्गाभाव ये तीन असत् है। इस प्रकार शल्यत्रय हृदय

जैह्म्यं केशे दृशि तरलता निष्ठुरत्वं कुचेऽस्या
वाञ्छापूर्त्त्यै प्रभवति सदामुष्य राधैव नान्या॥ ॥१२२॥

चतुर्व्विधपरिसंख्या॥

प्रफुल्लपुन्नागकृताश्रया सदा प्रफुल्लिताङ्गी मधुसूदनाश्रया।
आमोदपूर्णा वरपत्रभङ्गिका वृन्दावनेऽसौ लसतीह राधिका॥१२३॥ ॥समासोक्तिः

जैह्मयं कौटिल्यं हृदि न इति अन्यासां हृदि कौटिल्यं केशे न इति तस्य व्यपोहनस्य प्रश्नं विना व्यङ्गत्वेन परिसंख्या तृतीया। एवं दृशि तरलता कुचे निष्ठुरत्वं ज्ञेयं। हरेर्वाञ्छापूर्त्त्यै एका राधिका प्रभवति नान्या अत्र प्रश्नपूर्व्वव्यङ्गत्वेनाख्यानं। परिसंख्या। परिसंख्या लक्षणं यथा। प्रश्नपूर्व्वकमाख्यानं तत्सामान्य व्यपोहनं। तस्य तस्यापि च ज्ञेये व्यङ्गत्वे स्यादर्थापरं। अप्रश्नपूर्व्वमाख्यानं परिसंख्या चतुर्व्विधा॥१२२॥ इह वृन्दावनेऽसौ राधिका लसति। कीदृशी प्रफुल्लः पुन्नाग एव कृत आश्रयो यया सा। पुन्नागः कृष्णः। माधवीलता। पक्षे नागकेशरश्च। मधुसूदनः कृष्णः भ्रमरश्च आश्रयो यस्यां सा। वरपत्रभङ्गे गण्डे चित्रविशेषो यस्याः सा। पक्षे श्रेष्ठः पत्रस्य भङ्गो यस्याः सा। विशिष्टैर्व्विशेषणैरेव विशेष्यस्यान्यथा स्थितिः सा समासोक्तिः। अत्र विशेष्यस्य राधिकाशब्दस्यान्यथा स्थितिः माधवीलतारूपेण॥१२३॥

को आकर्षण कर रहा है, इस कार्यकि प्रति पूर्वोक्त तीन सत्, अपर तीन असत् है, इस हेतु यहाँ सदसद्योग समुच्चय अलङ्कार हुआ है।।१२१।। श्रीकृष्ण की प्रीति का आधार कोन है? प्रश्नका उत्तर,-एका श्रीमती राधिका, श्रीकृष्ण की प्रियतमा कोन है? अनुपमगुणा एका श्रीराधिका ही है, अपर कोई नहीं इनकी केशमें कुटिलता, चक्षुमें तरलता, कुचमें निष्ठुरता है, अतएव श्रीराधा ही श्रीकृष्णाभिलाष पूर्त्तिकि लिए एकमात्र समर्था है, अपर कोई नहीं है। यहाँ चतुर्विध परिसंख्या अलङ्कार है। प्रश्नपूर्वक अथवा अप्रश्न पूर्वक कथित वस्तु से यदि अपर का त्याग होता है तो परिसंख्या होती है। यह चार प्रकार है, प्रश्न पूर्वक आख्यान, सामान्य त्याग, अप्रश्न व्यङ्ग एवं प्रश्नपूर्वक व्यङ्ग, ये चार प्रकार परिसंख्या के मध्यमें प्रथम प्रश्न पूर्वक, द्वितीय-श्रीराधा ही है, अन्य नहीं, इसमें अपर का त्याग हेतु सामान्य त्याग, केशमें कुटिलता, मनमें नहीं, कुचमें निष्ठुरता, किन्तु बुद्धिमें नहीं, एवं नेत्रमें चञ्चलता, स्वभाव में नहीं, इस सबता प्रश्न न होने परभी कुटिलता मनमें नहीं है, इस प्रकार बोध होता है, सुतरां अप्रश्न व्यङ्ग्य है,

न दीक्षास्याः शिक्षा–श्रवणपठने वा गुरुमुखा–
त्तथापीयं राधा त्रिजगदबला विस्मयभुवाम्।
कलाम्भोधेः शौरेरपि परमसन्तोषणकृताम्
कलानामाचार्य्या व्रजमृगदृशामप्यजनि सा ॥१२४॥ विभावना ॥

तृणीकृत त्यक्त कुलीननारीधर्म्मापि दूरोज्झित भर्त्तुकापि।
सती च याभीप्सित सच्चरित्रा राधा विधात्रारचि चित्रशीला ॥१२५॥
विशेषोक्तिः ॥

अस्या गुरुमुखात् दीक्षा न शिक्षा न श्रवणं न पठनं न च तथापि सेऽयं राधा त्रिजगदबलानां विस्मयभुवां कलानां कलाम्भोधेः कृष्णस्यापि परमसन्तोषणकृतां व्रजमृगदृशामपि कलानामाचार्य्या अजनि। विभावना विना हेतुं कार्य्योत्पत्तिर्निगद्यते। गुरोर्दीक्षादिहेतुं विना कलाज्ञानरूपकार्य्योत्पत्तर्विभावना ॥१२४॥ विधात्रा राधा चित्रशीला अरचि। चित्रशीलतामाह। या तृणीकृतश्चासौ त्यक्तश्च कुलीननारीणां

श्रीराधा ही समर्था, अपर नहीं, यहाँ प्रश्न पूर्वक आख्यान होने से, प्रश्नपूर्वक त्याग हुआ है।।१२२।। जिसने प्रफुल्ल पुन्नाग अर्थात् पुरुषश्रेष्ठ कृष्ण का आश्रय किया है, जो सर्वदा प्रफुल्लिताङ्गी, एवं मधुसूदन कृष्ण ही जिनका आश्रय है, उत्कृष्ट पत्र अर्थात् तिलक रचना जिसमें विद्यमान है, वह आमोद पूर्णा श्रीराधिका ही वृन्दावन में शोभिता है, पक्षान्तर में प्रफुल्ल नागकेशर वृक्षाश्रिता, विकसित पुष्पबती, व भ्रमरान्विता, तथा परिमल वाहिनी, उत्कृष्ट पल्लव शोभिनी, माधवीलता इस वृन्दावन में शोभिता है, समासोक्ति अलङ्कार है, विशिष्ट विशेषण के द्वारा यदि विशेष्य का वर्णन अन्यरूपसे होता है, तब उसे समासोक्ति कहते हैं। यहाँ विशेष श्रीराधिका शब्द की माधवीलतारूप में अन्यथा स्थिति हुई है।।१२३।। गुरुके समीपसे कलाविषय में दीक्षा, शिक्षा, श्रवण, पठन श्रीराधिका का कुछभी नहीं था, तथापि वह अशिक्षिता श्रीराधा त्रिभुवनस्थ अबलागणों के विस्मय जनक कलासमूह का कलानिधि है, श्रीकृष्णको सन्तोषदायिनी होकर व्रजसुन्दरीगण को कलादान विषयमें आचार्य्या हुई है। कारण के विना कार्य्योत्पत्ति होनेसे विभावना अलङ्कार होता है, यहाँ गुरुदीक्षादि कारण को छोड़कर भी श्रीराधामें कलाज्ञान रूप कार्य की जो उत्पत्ति है, वह ही विभावना।।१२४।। जिन्होंने कुलीन नारीगण के धर्मका त्याग तृणके समान मानकर किया है, एवं भर्त्ता

प्रजागर स्वप्न सुषुप्तिषु श्रीगान्धर्व्विकायाः सततं हि नान्या।
मनोवपुर्वागखिलेन्द्रियाणां कृष्णैकतानत्वमृतेऽस्ति वृत्तिः॥ ॥१२६॥
तुल्ययोगिता।

शफरमृग–चकोरी–खञ्जनाम्भोज–भृङ्गी–
निकर–मदनवाणश्रेणी नीलोत्पलानि।
हरिधृति धनचौरै राधिकायाः प्रवीणैः
सहजनयनलीलानर्त्तनैर्निर्जितानि॥१२७॥ तुल्ययोगिता।

धर्म्मो यया तथाभूता भूत्वापि सती। दूरे उज्झितस्त्यक्तो भर्त्ता यया तादृशा भूत्वापि सती च येनाभीप्सितं सच्चरित्र यस्याः सा च विशेषोक्तिः। कारणेषु सत्सु कार्य्यस्य नोदयः कुलनारीधर्म्मत्याग भर्त्तृत्यागरूपकारणे सत्यपि। असती असच्चरित्रा इति कार्य्यस्यात्र नोदयः॥१२५॥ गान्धर्व्विकाया राधायाः जागर स्वप्न सुषुप्तिदशात्रयेषु मनोवपुर्वागखिलेन्द्रियाणां वृत्तिः कृष्णैकतानत्वं विना हि निश्चितं सततं नान्यास्ति। एकतानोऽनन्यवृत्तिरित्यमरः। वृत्तिस्तदाकारेण परिणतिः। प्रकृतानां चैकदोक्तिरुच्यते तुल्ययोगिता। चकारादप्रकृतानां। अत्र प्रकृतानां जागरादिषु मनोवपुर्वागखिलेन्द्रियाना-मेकदा कृष्णैकतानत्वेन उक्तिः तुल्ययोगिता॥१२६॥ श्रीराधायाः सहजैर्नयनयोर्लीलया नर्त्तनैः। कीदृशैः प्रवीणैः हरिधृतिधनानां चौरैः सफरादीनां निकरं समूहं तथा मदनवाणश्रेणीनीलोत्पलानि च निर्जितानि। अप्राप्तिपूर्व्ववत् तुल्ययोगिता। प्रकृतानां शफरादीनां एकदा नयनलीलानर्त्तनैर्निर्जितस्योक्तिस्तुल्ययोगिता॥१२७॥

को दूरसे परित्याग करके भी जो सतीगणके अभिलषित चरित्रवती हुई है, विधाताने इस विचित्रशीला राधाकी रचना की है। कारण निचय वर्त्तमान होने परभी यदि कार्य्योत्पत्ति नहीं होती है, तब उसे विशेषोक्ति कहते हैं। यहाँ कुलस्त्रीका स्वधर्म त्याग भर्त्तृत्यागरूप कारण विद्यमान होने परभी असच्चरित्ररूप कार्यका उदय नहीं हुआ है। अतः विशेषोक्ति अलङ्कार है।।१२५।। श्रीराधा की जाग्रत स्वप्न सुषुप्ति अवस्थामें मन वपु वाक्य एवं निखिल इद्रियसमूह की बृत्ति श्रीकृष्ण में सतत एकतान अर्थात् एकाग्र है। यहाँ जागरादि में मनः वपुः वाक्य प्रभृति अखिल इन्द्रियों की वृत्ति श्रीकृष्ण में एकाग्र रूपमें है, उसका कथन ही तुल्ययोगिता है।।१२६।। श्रीकृष्णके धैर्य्यधनापहरण करनेमें निपुणा श्रीराधाके स्वाभाविक नयनयुगल का लीला नर्त्तन, मछली, मृग, चकोरी, खञ्जन, कमल, भृङ्गीसमूह तथा मदनके बाण निचय, नीलोत्पल समूह को पराजित किया है। यहाँ प्रकृत मछली प्रभृति

चकोर वापीह सरोजिनीनां पालिर्नभोऽरण्य जलानि दीना।
ह्रियेव भेजे कथमत्र हेतुं कृष्णैकताने वद राधिके नः॥ ॥१२८॥

पर्य्यायोक्तं॥

राधे चकोरावली चातकाली सरोजिनीश्रेणीषु योऽतिगर्व्वः।
सदैकतानत्वभवः स लुप्तः कृष्णैकतानत्वमवेक्ष्यतेऽभूत्॥ ॥१२९॥

पर्य्यायोक्तं॥

चकोरश्च वापीहश्चातकश्च सरोजिनी च तासां पालिः श्रेणी दीना सती नभोऽरण्य जलानि ह्रियेव कथं भेजे। अत्र हेतुं हे कृष्णैकताने हे राधिके नोऽस्मान् त्वं वद। तव यथा कृष्णैकतानता तथा चन्द्र मेघ सूर्य्येषु चकोर चातक कमलिनीनामेकतानता नेति हेतुः प्रतीतः। पर्य्यायलक्षणं यथा। विना वाचकवाच्यत्वं यत्र वस्तुप्रतीयते। पर्य्यायोक्तं तत् चकोरस्य चन्द्रे चातकस्य मेघे पद्मस्य सूर्य्यो एकतानता तथा न। यथा तव कृष्णे इत्यादिवाचकवाच्यशब्दं विनैव राधिकायां कृष्णैकतानतारूपप्रतीतिरत्र पर्य्यायोक्तं॥१२८॥ हे राधे चातकादिषु सदैकतानत्व-भवोऽतिगर्व्वः स गर्व्वस्ते कृष्णैकतानत्वमवेक्षः लुप्तोऽभूत्। अत्रापि स गर्व्वो लुप्तोऽभूदित्युवाच। हे राधे तव यथा कृष्णैकतानत्वं तथा चातकादीनां नेति वाच्यशब्दं विनैव राधायाः कृष्णैकतानस्याधिक्यप्रतितिः पर्य्यायोक्तं॥१२९॥

को एक समयमें नयन लीलाके द्वारा पराजित करना ही तुल्य योगिता है।।१२७।। हे कृष्णैकताने राधिके! चकोर चातक, सरोजिनी श्रेणी दीन होकर लज्जासे क्यों मनोरूप काननके जल की प्रार्थना की है, उसका कारण कहो? तात्पर्य्य यह है कि–कृष्ण में जिस प्रकार तुम्हारी एकतानता है, तद्रूप चन्द्र मेघ सूर्य्यमें क्रमसे चकोर चातक कमलिनी की भी वैसी एखाग्रता नहीं हुई है।

इष्टमर्थमनाख्याय साक्षात् तस्यैव सिद्धये।
यत् प्रकारान्तराख्यानं पर्य्यायोक्तं तदुच्यते॥

अभिलषित अर्थ को न कहकर साक्षात् रूपसे उसका ही जिससे सिद्धि होती है, इसके लिए वाच्यवाचक शब्दको छोड़कर भी प्रकारस्तर से जो कथन है वह पर्य्यायोक्त है। यहाँ श्रीराधा श्रीकृष्णगत चित्ता है, इसको न कहकर चन्द्रादि के प्रति, जो चकोरादि की एकतानता का वर्णन हुआ है, वह ही पर्य्यायोक्ति है।।१२८।। हे राधे! चकोरावली, चातकश्रेणी एवं पद्मिनी गणकी सर्वदा एकतानता के कारण जो अतिशय गर्व है, उस गर्व तदीय

गीर्भूलीला युवतिषु वरैः सद्गुणैः सारभूता-
स्ताभ्यः सा श्रीस्तत इह महाप्रेमगोपाङ्गनास्ताः।
ताभ्यश्चन्द्रावली-मुखलसद्यूथनाथा अमूभ्यः
श्रीराधास्यां यदिह नितरां सोऽपि कृष्णः सतृष्णः॥ ॥१३०॥
सारानुमानाभ्यां शङ्करः॥

युवतिषु मध्ये वरैः सद्गुणैर्गीर्भूलीलाः शक्तयः सारभूताः ताभ्यः सा श्रीर्लक्ष्मीः सारभूता। ततः इह व्रजे महत्प्रेम यासां ता गोपाङ्गनाः सारभूताः ताभ्यश्चन्द्रावल्यादि यूथनाथास्ताभ्यः यद्यस्मात् अस्यां सोऽपि कृष्णः नितरामतिशयेन सतृष्णः। सारः सावधिरुत्कर्षो यद्भवेदुत्तरोत्तरं। अत्र श्रीराधावधिरुत्कर्षः सारः। सतृष्णं कृष्णं हेतुं कृत्वा राधायां सारः साध्य इत्यनुमानं। आभ्यां शङ्करः अङ्गाङ्गिभावः। यतः श्रीराधा उत्तरोत्तरसावधि उत्कर्षसारः। तृष्णा आसक्तिरनुराग इत्यर्थः। कृष्ण श्रीराधिकानुरागवान् सर्व्वशक्तिसारदर्शनात्। इति हेतुः। अतः श्रीकृष्णतृष्णानुमानं। अत्र सारोऽङ्गी अनुमङ्गं। एवं अनुमानमङ्गि यथा। श्रीराधायां सतृष्ण कृष्णानुमानं विना उत्तरोत्तरसावधिरुत्कर्षज्ञानं न भवेत्॥१३०॥

कृष्ण विषयक एकतानता का दर्शन से विलुप्त हुआ है। यहाँ पर्यायोक्ति अलङ्कार है, श्रीराधा, कृष्णगत चित्ता है, इस प्रकार अभिलषित अर्थ, वाक्यवाचक शब्द को छोड़कर ही चकोरादि की एकतानता का वर्णन में-अर्थात् हे राधे! तुम्हारी कृष्ण में एकतानता के कारण चकोर को चन्द्र में चातक की मेघ में पद्मिनी की सूर्य्यमें जो एकतानता से सर्व है, वह खण्डित होगया है, इसप्रकार वर्णन से श्रीराधाजी कृष्णगत चित्ता है, उसका प्रकाश हुआ है। अतएव पर्य्यायोक्त है।।१२९।। ललनागणों के मध्यमें उत्कृष्टगुण के द्वारा वाणी, पृथिवी, लीला प्रभृति शक्ति समूह सारस्वरूपा हैं, उससे चन्द्रावली प्रभृति यूथेश्वरीकी सारस्वरूपा है, उन सबसे श्रीराधा ही सारस्वरूपा है, कारण इस राधामें ही श्रीकृष्ण अतिशय सतृष्ण होते हैं। सार अनुमान के द्वारा सङ्कर अलङ्कार है। उत्तरोत्तर किसी वस्तुका उत्कृष्ट वर्णन करने से सार होता है। यहाँ सरस्वती से चन्द्रावली प्रभृति की श्रेष्ठता है, उससे श्रीराधाकी श्रेष्ठता होनेसे सारालङ्कार है, एवं साधन का दर्शन से साध्यस्थिर होनेसे अनुमान होता है, यहाँ श्रीराधा निखिल ललनाओं में सारस्वरूपा है, कारण श्रीकृष्ण भी इस श्रीराधामें सतृष्ण होते हैं, इस कथन

चन्द्रावली–प्रणयरूपगुणैः प्रयत्न–
व्यक्तीकृतैर्व्यरचयत् स्ववशं बकारिम्।
श्रीराधिका तु सहजप्रकटैर्निजैस्तै–
र्व्यस्मारयत्तमिह तामपि हा कुतोऽन्याः ॥१३१॥ व्याघातालङ्कारः।
न दोषलेशोऽपि गुणैर्लसन्त्यां श्रीराधिकायामिति गीर्न सत्या।
केशेषु कौटिल्यमुरोजयुग्मे काठिन्यमक्ष्णोश्च यदस्ति लौल्यम् ॥१३२॥
सारानुमानाभ्यां शङ्करः॥

चन्द्रावली प्रयत्नेन व्यक्तीकृतैः प्रणयरूपगुणैर्बकारिं स्ववशं व्यरचयत्। राधा तु सहजप्रकटैर्निजैस्तैर्गुणैः तं कृष्णं स्ववशं व्यरचयत्। तां चन्द्रावलीमपि व्यस्मारयत्। हा इत्याश्चर्य्यं। अन्या स्त्रियः कुतो गणनायां यद्वस्तुसाधितं येन करणेन तदन्यथा। तेनैव यदि तस्य स्यात्तदा व्याघात इष्यते। अत्र चन्द्रावल्या प्रयत्नसाध्यः कृष्णवशीकारः राधयान्यथा सहजगुणैः कृत इति व्याघातः ॥१३१॥ गुणैर्लसन्त्यां राधायां दोषलेशोऽपि न इति गीर्वाणी न सत्या। तदेवाह केशेष्वित्यादि। मुखे स्तुतिर्निन्दा वा हृदये व्याजस्तुतिः स्यात्तत्तदन्यथा। अत्र राधायाः केशे कौटिल्यमिति मुखे निन्दा हृदयेऽन्यथा स्तुतिः केशे कौटिल्यस्य स्तुतिविषयत्वात्। एवं कुचे काठिन्यं

से श्रीराधा सार है, यह साध्य है, हेतु है श्रीकृष्ण सतृष्ण है। इस प्रकार साधन दर्शनसे साधन की स्थिरता ही अनुमान है, श्रीराधामें उत्कर्ष है, अतः श्रीकृष्ण उनमें सतृष्ण है। इस प्रकार सार अनुमान हुआ है, सुतरां सार अङ्गी (प्रधान) है, एवं अनुमान अङ्ग (अप्रधान) है। अथवा श्रीकृष्ण श्रीराधामें सतृष्ण है, इस लिए श्रीराधा उत्कृष्ट है, इस पक्षमें अनुमान अङ्गी है, सार अङ्ग है, इस प्रकार उभय का अङ्गाङ्गि भावसे सङ्कर हुआ है ॥१३०॥ चन्द्रावली यत्नके साथ प्रणय, रूप, गुण समूह को प्रकट कर श्रीकृष्ण को वश करती है, किन्तु श्रीराधा स्वाभाविक प्रकटित स्वीय प्रणय, रूपगुण समूह के द्वारा श्रीकृष्ण को वशीभूत करती है और चन्द्रवली को भी भुला देती है, यह तो आश्चर्य है, अपर नारीओं की बात तो दूर है। यहाँ व्याघात अलङ्कार है।

''यद्वस्तु साधितं येन करणेन तदन्यथा।
तेनैव यदि तस्य स्यात्तदाव्याघात इष्यते ॥

जिस वस्तु जिस साधनसे साधित होती है, उससे यदि उक्त वस्तु की अन्यथा को जाती है, तव व्याघात अलङ्कार होता है। प्रकृत स्थलमें

दृशौ चकोर्य्यौ सखि राधिकायाः कृष्णाननेन्दौ स्मितकौमुदीनाम्।
पानान्मुखं चाम्वुरुहं यदस्मिन् कृष्णाक्षिभृङ्गौ पततः सतृष्णौ ॥१३३॥
अनुमानं ॥

विनाप्याकल्पैः श्रीवृषरविसुता कृष्णसविधे-
मुदोत्फुल्लाभावाभरणवलितालीः सुखयति।

नेत्रे लौल्यं ज्ञेयं ॥१३२॥ हे सखि राधिकाया दृशौ कृष्णाननेन्दोः स्मितकौमुदीनां पानाद्धेतोश्च कार्य्यौ। मुखं चाम्वुजं। यद्यस्मात् अस्मिन् राधामुखे कृष्णस्याक्षिभृङ्गौ सतृष्णौ सन्तौ पतत। कृष्णमुखचन्द्रचन्द्रिकापानं हेतुं कृत्वा राधादृशि चकोरत्वं साध्यमित्यनुमानं। एवं कृष्णनेत्र भ्रमरस्य पतनं हेतुं कृत्वा राधामुखे पदत्वं साध्यमिति चानुमानं ॥१३३॥ कृष्णनिकटे वृषभानुजा आकल्पैर्भूषाभिर्विनापि मुदाहर्षणोत्फुल्ला-भावरूपाभरणेन युता च सती आलीः सखीः सुखयति। कृष्णं विना सालङ्कारापि म्लाना।

चन्द्रावली के जिस गुणोंसे श्रीकृष्ण वशीभूत हुए थे, श्रीराधाने उस-उस गुणोंसे ही श्रीकृष्ण को वशकर, चन्द्रावलीको भूला दिया, सुतरां जिस उपायसे साधित वस्तु उस उपाय से ही अन्यथा हुई है, व्याघातालङ्कार हुआ है।।१३१।। गुणगण विभूषित श्रीराधिकामें दोष का लेशभी नहीं है, यह वाक्य सत्य नहीं है, कारण श्रीराधाके केश में कुटिलता, वक्षोजद्वय में काठिन्य एवं नेत्र युग्ममें चाञ्चल्य सर्वदा वर्त्तमान है। यहाँ व्याजस्तुति है। यहाँ छल पूर्वक निन्दासे स्तुति, स्तुतिसे निन्दा की जाती है। वहाँ व्याजस्तुति होती है, यहाँ कौन व्यक्ति राधाको निर्दोष कहता है? कुटिलता, काठिन्य, चाञ्चल्य, केश, वक्षोज, नेत्रमें विद्यमान है, इस वाक्यसे निन्दा होने परभी वह स्तुति है, कारण कुटिल केश, कठिन स्तन, चञ्चल लोचन सलक्षणा ललनाका लक्षण है। इस निन्दाके छलसे स्तुति होने से व्याजस्तुति अलङ्कार हुआ है।।१३२।। हे सखि ! श्रीकृष्णमुखचन्द्र की ईषत् हास्यरूप कौमुदीका पानसे श्रीराधा के मुख कमलमें श्रीकृष्ण के नयनरूप भ्रमरद्वय सतत सतृष्ण होकर पतित हो रहें हैं। अनुमान अलङ्कार है, श्रीराधाने श्रीकृष्णमुखचन्द्र का दर्शन किया है, यह है, सारार्थ किन्तु वर्णन चातुर्य्यसे श्रीराधाके नेत्र चकोर है, कारण वह श्रीकृष्णमुख चन्द्रकी ज्योत्स्ना पान कररहें हैं। अथवा श्रीराधाका वदनकमल है, कारण श्रीकृष्ण के नयन भृङ्ग उसमें मधुपान के लिए लुब्ध हैं, इस प्रकार कारण को देखकर कार्यका अनुमान ही अनुमानालङ्कार है।।१३३।। श्रीकृष्णके समीप में श्रीवृषभानु सुता श्रीराधा विना आभरण से आनन्द से

विना कृष्णं तृष्णाकुलितहृदयालङ्कृतिचयै-
र्युताप्येषा म्लाना मलिनयति तासां तनु मनः ॥ ॥१३४॥

विनोक्तिः ॥

कृष्णः पुरः स्फुरति पार्श्वयुगे च पश्चा-
च्चित्तस्य वृत्तिषु दृशोर्विषये च शश्वत्।
श्रीगण्डयोश्च कुचयोस्तरले यतोऽस्याः
श्रीराधिका तदिह कृष्णमयीति सत्यवम् ॥१३५॥ पर्य्यायः ॥

कृष्णस्य सौन्दर्य्यभरैर्विनिर्जितः कामोऽस्य किञ्चित् प्रतिकर्त्तुमक्षमः

तासां सखीनां तनु मनः मलिनयति। विनोक्तिः सा विनैकेनान्यस्य चेत् सदसत् कृतिः। आकल्पैर्विना कृष्णनिकटे राधा फुल्ला सत्कृतिः। कृष्णं विना सालङ्कारा राधा म्लाना असत्कृतिरत्र विनोक्तिः ॥१३४॥ यतोऽस्या पुरः पार्श्वं युगादिषु तरले हारमध्यगरत्ने च कृष्णः स्फुरति। तत्तस्मात् कृष्णमयी राधा इति सत्यं। क्रमेणैकमनेकस्मिन् भवति क्रियतेऽथवा। अपि चानेकमेकस्मिन् तद्वत् पर्य्यायमीष्यंते। अनेकस्मिन् पुरः पार्श्वयुगादौ एकस्य स्फूर्त्तिरत्र पर्य्यायः ॥१३५॥ कृष्णसौन्दर्य्यातिशयैः पराभूतः कामः कृष्णस्य

उत्फुल्ला एवं भावरूप अलङ्कार से अलङ्कृता होकर कृष्णको सुखी करती है। कृष्णको छोड़कर श्रीराधा अलङ्कार से भूषिता होने परभी स्वयं म्लान होजाती है, एवं सखीगण के तनुमन को मलिन करदेती है। यह विनोक्ति है, यदि एक के विना अपर की साधुता असाधुता कुछभी नहीं होती है तो उसे विनोक्ति कहते हैं। श्रीराधा अलङ्कृता न होने परभी श्रीकृष्णके निकट में प्रफुल्लिता है, यह सत्कृति है, एवं कृष्ण भिन्न श्रीराधा अलङ्कृता होकर भी म्लान होती है, यह असत्कृति है, इससे विनोक्ति अलङ्कार है ॥१३४॥ जब श्रीराधाके सम्मुख, पार्श्व, पश्चाद्भाग, मनोवृत्ति नेत्रगोचर, शोभमान गण्डद्वय, स्तनयुगल, हार मध्यस्थ मणिमें श्रीकृष्ण निरन्तर स्फूरित होते हैं तब इस जगत् में श्रीराधा ही कृष्णमयी है, यह सत्य है। यहाँ पर्य्याय अलङ्कार है। पर्य्याय-अर्थात् यथाक्रम है। यदि एकवस्तु क्रमसे अनेकस्थल में, अनेक वस्तु एकस्थल में स्वयं अथवा अन्यके द्वारा सम्पादित होती हैं, तव पर्य्याय अलङ्कार होता है, यहाँ पर श्रीराधाके अग्रभाग मे पार्श्वादि स्थलमें एक श्रीकृष्ण की स्फूर्त्ति होने से पर्य्याय अलङ्कार हुआ है ॥१३५॥ श्रीकृष्णके अतिशय सौन्दर्य्य से मदन पराजित होकर श्रीकृष्णका कुछभी अपकार कर

राधामिह प्रीतिमतीं समीक्ष्य तां सम्बाधतेऽसौ तदगोचरेऽबलाम् ॥१३६
प्रत्यनीकं ॥

स्पृशति यदि मुकुन्दो राधिकां तत् सखीनाम्
भवति वपुषि कम्प स्वेद रोमाञ्च बाष्पम्।
अधरमधुमुदास्याश्चेत् पिबत्येष यत्ना-
द्भवति बत तदासां मत्तता चित्रमेतत् ॥१३७॥ असङ्गतिः ॥

किञ्चित् प्रतिकर्त्तुं प्रत्युपकारं कर्त्तुमसमर्थः तस्य कृष्णस्य असमक्षे असौ कामः। इह कृष्णे प्रीतिमतीं राधां संवाधते। अपकार्य्यपकारार्थमसमर्थो न तत् प्रियं। हीनस्ति यत्तदीयोक्तिः प्रत्यनीकं स्तवो यदि। अत्रापकारीकामः कृष्णापकारार्थमसामर्थेन तदीयां राधां अवलां तत्तस्य कृष्णस्यागोचरे वाधते यत्तदेव तदीयवृन्दाया उक्तिः स्तवरूपा प्रत्यनीकं ॥१३६॥ मुकुन्दो यदि राधां स्पृशति। तदा तस्याः सखीनां वपुषि कम्पादयः सात्त्विकविकारादयो भवन्ति। एष कृष्णः अस्या अधरमधु चेत् पिवति। तदा आसां सखीनां मत्तता भवति। एतच्चित्रं। अत्यन्तभिन्नाधारत्वे युगपद्भाषणं यदि। धर्म्मयोर्हेतुफलयोस्तदा सा स्यादसङ्गतिः। राधाङ्गस्पर्शतदधरमधुपानरूपहेतुः। तत् सखीनामङ्गरूपभिन्नाधारे हेतुजन्यं फलं ययोस्तयोर्धर्म्मयोः। राधास्पर्शाधरपानकम्पादि-मत्ततारूपयोर्युगपद्भाषणमत्रासङ्गतिः ॥१३७॥ पुंसु सद्गुणैः कृष्णः श्रेष्ठः राधा सद्गुणैः

न सका, किन्तु कृष्णमें प्रीतिमती देखकर श्रीराधा को कृष्णके असमक्ष में कामपीड़ा प्रदान करता है। प्रत्यनीक अलङ्कार है। प्रतिपक्ष बलवान् होनेसे उनको क्लेश देने में असमर्थ होकर तदीय प्रियवस्तु को उनके असमक्ष में क्लेश देनेसे प्रत्यनीक अलङ्कार होता है। यहाँ कन्दर्पराज,–श्रीकृष्णके अतिशय सौन्दर्य्य से पराभूत होकर शत्रुरूपी कृष्णके अगोचर में श्रीकृष्ण की प्रियतमा राधा को क्लेश देता है, अर्थात् राधा कामपीड़िता हो रही है।।१३६।। श्रीकृष्ण यदि श्रीराधाको स्पर्श करते हैं, तब सखियों के शरीर में कम्प, स्वेद, रोमाञ्च, बाष्प प्रभृति सात्त्विक भावका उदय होता है, श्रीराधा का अधर पान श्रीकृष्ण सहर्ष करने से सखीगणों में मत्तता आजाती है, यह अति आश्चर्य्य है। ''कार्य्यकारणयोर्भिन्नदेशतायामसङ्गतिः ।।'' यदि कार्य, कारण विभिन्न देशमें स्थित हो तब उसे असङ्गति कहते हैं, यहाँ श्रीकृष्ण श्रीराधाका स्पर्श चुम्बन करने से सखीगण में स्वेद, रोमाञ्च, बाष्प उन्मत्ततारूप सात्त्विक भावका उदय हुआ है, इससे स्वेद रोमाञ्चादि होने का कारण कृष्ण द्वारा स्पर्शादि, वह तो श्रीराधामें है, अथच सखीगण स्वेदादि

कृष्णो वरीयान् पुरुषेषु सद्गुणैः श्रीराधिका स्त्रीषु गुणैर्वरीयसी।
सङ्गं विधातुस्त्वनयोः परस्परं धातुर्नरीनर्त्तिगुणज्ञता यशः।। ।।१३८।।
समालङ्कारः।।

इयं कृष्णादङ्क–स्रजमुरुमुपादाय रुचिराम्
वदान्यास्मै राधा रुचिरमणिमालामिह ददौ।
निपीयास्याः कृष्णस्त्वधरमधु–दन्तक्षत मदा–
दगृहीत्वाभ्यामाल्योदरतदवलोकं तनुमदुः।।१३९।। परिवृत्ति।।

स्त्रीषु श्रेष्ठा।। अनयोः सङ्गं विधातु धातुर्गुणज्ञता यशः अतिशयं पुनः पुनर्वा नृत्यति। श्लाघ्यत्वेन भवेद्योग्यो यदि योगस्तदा समं। अत्र राधाकृष्णयोः श्लाघ्यो योग्यो योगः समं।।१३८।। इयं राधाकृष्णात् रुचिरां मनोहरां उरुं श्रेष्ठामङ्कस्रजं अङ्का नखाङ्कास्तेषां स्रजं मालां पुष्पमालाम्बा अङ्केक्रोडे वक्षसि स्थितां मालाम्बा। अङ्करूपां अङ्केनालिङ्गनरूपां मालाम्बा। उपादाय गृहीत्वा वदान्या राधा अस्मै कृष्णाय रुचिरां मणिमालां दन्तक्षतरूपां कण्ठस्थं हारं वा ददौ। वदान्यो दातृमहतोरित्यमरः। कृष्णस्तस्या अधरमधुनिपीयदन्तक्षतमदात् आल्यः आभ्यां राधाकृष्णाभ्यां दर ईषत् तदवलोकं गृहीत्वा तनुमदुः दत्तवत्यः। दर्शनेन पुलकादियुक्तां चक्रुरित्यर्थः। मणिमाला स्मृता हारे स्त्रीणां दन्तक्षतान्तरे इति विश्वः। समाभ्यां नियमः परिवृत्तिरुदीर्य्यते।

से भूषित होगई, यह असङ्गति अलङ्कार है।।१३७।। जिस प्रकार पुरुषगणों में सद्‌गुणोंसे श्रीकृष्ण श्रेष्ठ है, उस प्रकार स्त्रियों में निखिल गुणोंसे श्रीराधा भी श्रेष्ठा है, सुतरां उभय के परस्पर मिलन के लिए विधाता की गुणज्ञातारूपराशि अतिशय शोभिता है, यह समालङ्कार है। "समं स्यादानु-रूप्येण श्लाघायोग्यस्य वस्तुनः।।" यदि उपयुक्त कार्यके द्वारा योग्यवस्तु की प्रशंसा की जाती है, तब उसे सम अलङ्कार कहते है, यहाँ श्रीराधिका एवं श्रीकृष्णके उपयुक्त रूपगुणादि द्वारा उभय का सम्मिलन की प्रशंसा हुई है, अतः सम अलङ्कार हुआ है।।१३८।। यह दानशीला राधिका श्रीकृष्णके निकट से मनोहर एवं उत्कृष्ट नखचिह्नरूप माला, पुष्पमाला अथवा आलिङ्गनरूपा माला ग्रहणकर उनको सुन्दर मणिमाला अर्थात् दन्ताघातरूप माला अथवा कण्ठस्थ हार, एवं श्रीकृष्ण भी श्रीराधा का अधर मधुपान कर दन्ताघात तथा सखीगण श्रीराधा का अधर मधुपान कर दन्ताघात तथा सखीगण श्रीराधाकृष्णके ईषत् अवलोकन ग्रहण पूर्वक स्व स्व देह अर्पण किए हैं। "परिवृत्तिर्विनिमयः स्वधर्मपरधर्मयोः।।" अर्थात् निज धर्मके साथ पर धर्मका

अन्यैव सौन्दर्य्यसमृद्धिरस्या भङ्गी तथान्या वपुषो दृशोश्च।
स्वान्तस्य चोल्लासभरस्तथान्यो राधैव सान्या प्रियसङ्गमेन॥ ॥१४०॥

द्वितीयातिशयोक्तिः॥

स्वसौरभापूरितदिग्वितानां कौमल्यसौन्दर्य्यमकरन्दपूर्णाम्।

अर्थयोरर्थानां वा समेनासमेन नियमः परिवृत्तिः अङ्कस्रजमणिमालाभ्यां तथाधरमधुदन्तक्षताभ्यां दर तदवलोकतदनुदानाभ्यामसमाभ्यां नियमः आदानप्रदानरूपः परिवृत्तिरत्र ॥१३९॥ प्रियसङ्गमेनास्याः सौन्दर्य्यसमृद्धिरन्यैव। तथा वपुषो दृशोश्च भङ्गी अन्यैव। मनसोल्लासभवश्चान्यः सा राधापि अन्यैव। तदेवान्यतया यदि निरूप्यते सा द्वितीया तदेव प्रकृतं वस्तुउपमानं वा अन्यदेव इदमिति यदि निरूप्यते तदा सातिशयोक्तिद्वितीया भवति। अत्र राधा सौन्दर्य्यादिरन्यतया निरूपणं द्वितीयातिशयोक्तिः ॥१४०॥ सौरभयुतां कौमल्यादिपूर्णां पङ्केजनीं तां राधां पद्मञ्च हित्वा मधुसूदन कृष्णः भ्रमरश्च तां केतकीं कौमल्यसौन्दर्य्यमकरन्दरहितां सकन्टकां नायिकां पुष्पञ्च कथं धावति। अप्रासङ्गिकस्य वाक्प्रासङ्गिकस्य कथायां स्यादप्रस्तुत प्रशंसनं। अप्रासङ्गिकस्याप्राकरणिकस्यार्थस्य वाक्कथनं यत् प्रासङ्गिककथायां तदप्रस्तुतप्रशंसा स्यात्। कार्य्यकारणसामान्यविशेषेषु तदन्यगीः। प्रस्तुतेषु च तुल्ये च

परिवर्त्तन होता तो उसको परिवृत्ति अलङ्कार कहते हैं। प्रस्तुत श्लोकमें श्रीकृष्णके निकटसे मालाग्रहण करके श्रीराधिकाने मणिमाला अर्पण किया है, एवं श्रीकृष्ण श्रीराधाका अधरामृत का पानकर उनको दन्ताघात दान किया है। एवं सखीगण भी श्रीराधाकृष्ण का ईषत् अवलोकन प्राप्तकर उभय को ही स्वीय अङ्ग प्रदान किये हैं। इस प्रकार यहाँपर स्वधर्म परधर्मका परिवर्त्तन होनेसे परिवृत्ति अलङ्कार हुआ है ।।१३९ ।। प्रियसङ्गम हेतु श्रीराधा के सौन्दर्य्य की समृद्धि अन्य है, देह, नयनयुगल की भङ्गी भी अन्य है, तथा हृदय का उल्लास भी अन्य है, एवं श्रीराधा भी अन्या है। यहाँ द्वितीया अतिशयोक्ति है। प्रकृत वस्तुका अथवा उपमान का यदि अलोकिक भावसे वर्णन किया जाता है, तब उसे द्वितीया अतिशयोक्ति कहते हैं। यहाँ श्रीराधाके सौन्दर्य्यादि में अलोकिकत्व वर्णित होनेसे द्वितीया अतिशयोक्ति हुई है ।।१४० ।। जिन्होंने निज सौन्दर्य्य के द्वारा दशदिक् को पूर्ण किया है, एवं जो कोमलता एवं सौन्दर्य्यादि रूप मकरन्द से सम्पूर्णा है, उस पद्मिनी स्वरूपा श्रीराधा को अथवा पद्मलता को श्रीकृष्ण अथवा भ्रमर छोड़कर किस हेतु केतकी अर्थात्

पङ्केजनीं तां मधुसूदनोऽसौ हित्वा कथं धावति केतकीं ताम् ॥१४१॥

अप्रस्तुतप्रशंसा ॥

माधव्याः श्रीर्माधवेनैव रम्या माधव्यैवोत्फुल्लया माधवश्रीः ।

तुल्यगीः पञ्चधैव तत् । प्रस्तुतेषु कार्य्यकारणसामान्यविशेषेषु तदन्यगीः तुल्येषु तुल्यगीः पञ्च । कार्य्ये कारणकथनं कारणे कार्य्यकथनं । सामान्ये विशेषकथनं विशेषे सामान्यकथनं तुल्ये तुल्यस्याऽप्रस्तुतस्य कथनमित्यर्थः । तत्र प्रासङ्गिक-राधागुण-कीर्त्तनकथारूपकार्य्यस्य कथनं अप्रस्तुतप्रशंसनं नामालङ्कारः ॥१४१॥ माधवेन कृष्णेन वसन्तऋतुना च माधव्या राधायाः माधवीलताश्च श्रीः रम्या भवति । एवमुत्फुल्लया माधव्या एव माधव श्रीरुत्फुल्ला भवति । इत्यनेन प्रकारेणाऽन्योन्यश्रियोः समुल्लासे हेतु एतौ माधवी माधवौ एतयोर्मिलनकर्त्तुः प्रशंसामाह । युञ्जतो धातुरभिज्ञता आसीत् । अप्रासङ्गिकस्य वाक्प्रासङ्गिकथायां स्यादप्रस्तुतप्रशसनं । कार्य्यकारणसामान्यविशेषेषु तदन्यगीः । प्रस्तुतेषु च तुल्ये च तुल्यगीः पञ्चधैव तत् । पञ्चधा मध्ये विशेषे सामान्यकथनं माधवी माधवयोरस्य श्रियोः कारणं माधवो माधवी च इति प्रासङ्गिकविशेषकथायां धातुरभिज्ञतारूपा प्रासङ्गिकसामान्यकथनं अत्र प्रस्तुतप्रशंसनं नामालङ्कारः । अन्योन्यलक्षणं क्रियाया अन्योन्यकारणं वस्तुद्वयं तदन्योन्यं वस्तुद्वयं यदि क्रियया अन्योन्यकारणं तदा अन्योन्यमित्युच्यते क्रियया मिलनादिना माधवेन माधव्या श्रीर्माधव्या माधवश्रीः रम्या स्यात् । वस्तुद्वयमत्र राधाकृष्णयोः श्री समुल्लासश्य तयो रम्यता कारणमन्योन्यं । समलक्षणं । श्लाघ्यत्वेन भवेद्योग्यो यदि योगस्तदा समः ।

मकरन्द विहीन कण्टकाकीर्ण कुसुम के प्रति अथवा अन्य नायिका के प्रति धावित होंगे। यह अप्रस्तुत प्रशंसा अलङ्कार है। अप्रासङ्गिक वर्णनके द्वारा जहाँ प्रस्तुत वस्तुका उद्देश्य है, संक्षेपतः उसको अप्रशंसा कहते हैं। यहाँ उक्तप्रकार विशेषणान्वित पद्मिनी एवं मधुसूदन भ्रमर का वर्णनसे श्रीराधा एवं श्रीकृष्णका उल्लेख़ की प्रतीति होने से अप्रस्तुत प्रशंसा अलङ्कार हुआ।।१४१।। माधवी श्रीराधिका की शोभा, माधव श्रीकृष्णके साथ रमणीया है, एवं प्रफुल्लिता माधवी के साथ भी माधव की शोभा होती है। पक्षमें माधवीलता की शोभा, माधव अर्थात् वैशाख मासमें ही होती है, माधवी के द्वारा भी बैशाख मासकी शोभा होती है, इस प्रकार से परस्पर की उक्तविध शोभा समुल्लासके कारण को संयोजन कर विधाता की विशेष अभिज्ञता हुई है। अप्रस्तुत प्रशंसा का अन्योन्य समअङ्गोके द्वारा सङ्कर हुआ है। माधवी, माधवीलता, वसन्त, इन दोनों की वर्णनासे श्रीराधा एवं श्रीकृष्ण की प्रतीति

इत्यन्योन्यश्री समुल्लासहेतु एतौ धातुर्युञ्जतोऽभिज्ञतासीत् ॥१४२

अप्रस्तुतप्रशंसायाऽन्योन्यसमाभ्यामङ्गभ्यां सङ्करता ॥

दृष्ट्वा राधां निपुणविधिना सुष्ठु केनापि सृष्टां
धाता ह्वीणः सदृशमनया यौवतं निर्म्मिमित्सुः ।
सारं चिन्वन्न सृजदिह तत् स्वस्य सृष्टेः समास्या–
नैकाप्यासीदपि तु समभूत् पूर्व्वसृष्टिर्निरर्था ॥१४३॥ विषमः ॥

विनिर्म्मितेऽस्या वदने विधात्रा दृष्ट्वाम्बुजेन्दू वहुदोषपूर्णौ ।

अत्र माधवमाधव्योर्य्योगो योग्यः। श्लाघ्यश्चात्र समः। सङ्करस्त्वङ्गाङ्गिभावः। अलङ्काराणामङ्गाङ्गिभावः सङ्करः स तु वहुप्रकारः। अङ्गाभ्यां अन्योन्य-समाभ्यां अङ्गी अप्रस्तुतप्रशंसनमत्र विशेषे सामान्यकथनरूपा प्रस्तुतप्रशंसनस्य कथनादेव वस्तुद्वयस्यान्योन्यकारणमन्योन्यं भवेदिति तथा माधवमाधव्योर्योग्यः श्लाघ्यश्च योगरूपसमश्च सम्भवेदिति ॥१४२॥ केनापि निपुणविधिना सुष्ठु सृष्टां राधां दृष्ट्वा धाता ह्वीणः लज्जित सन् अनया सदृशं यौवतं निर्म्मिमित्सुः निर्म्माणं कर्त्तुमिच्छुः स्वस्यसृष्टेः पूर्व्वसृष्टिर्निरर्था समभूत् विषमलक्षणं। अत्यन्तवैसादृश्येन योगो यदतिदुर्घटः। कर्त्तुः क्रियाफलाभावप्रस्तुतानर्थसम्भवः। गुणक्रियाभ्यां ते एव कार्य्यकारणयोश्च यत्। परस्परं विरुध्यते विषमः स चतुर्व्विधः। अस्याः समा एकापि नासीदित्यनेन। पूर्व्वसृष्टिर्निरथा समभवदित्यनेन च। अत्र धातुः पूर्व्वसृष्टिरूपक्रियाफलाभावः निरर्थरूपानर्थसम्भवोऽत्र विषमः ॥१४३॥

होनेसे अप्रस्तुत प्रशंसा हुई है। ''अन्योन्यमुभयोरेकक्रियायाः कारणं मिथः'' यदि एकजातीय उभय वस्तु की क्रिया परस्पर का कारण होता हैं, तव उसे अन्योन्य कहते हैं, यहाँ माधवी का सौन्दर्य्य माधवके द्वारा, एवं माधव की शोभा भी माधवीके द्वारा है, इस प्रकार परस्पर-परस्पर शोभा कारण हुआ है, अनुरूप वस्तुके साथ योग्य वस्तु की प्रशंसा को सम कहते हैं। यहाँ माधवी एवं माधव शोभा का परस्पर सादृश्य होने से सम अलङ्कार हुआ है। उक्त तीनों का परस्पर अङ्गाङ्गि भाव होनेसे सङ्कर है।।१४२।। किसी एक निपुण विधिके द्वारा सुन्दर रूपसे निर्म्मिता श्रीराधाको देखकर विधाता लज्जित होगये, और उनके सदृश युवति गणको करने में इच्छुक होकर स्वीय सृष्टि का सार संग्रह कर युवतिगणोंकी सृष्टि की, किन्तु श्रीराधाके समान एक भी नहीं हुई, किन्तु विधाता की पूर्वसृष्टि निरर्थक होगई। यह

अशुद्धतां सूचयता तयोस्तौ कृतौ द्विरेफाङ्कमसीविलिप्तौ ॥१४४॥

प्रतीपः ॥

राधागुणानां गणनातिगानां वाणीवचः सम्पदगोचराणाम् ।
न वर्णनीयो महिमेति यूयं जानीथ तत्तत्कथनैरलं नः ॥१४५॥

आक्षेपालङ्कारः ॥

विधात्रा अस्या वदने विनिर्म्मिते अम्बुजेन्दू वहुदोषपूर्णौ दृष्ट्वा अशुद्धाक्षरं यथा मसीलिप्तं करोति तथा तयोरम्बुज-चन्द्रयोरशुद्धतां सूचयता विधात्रा तौ पद्मचन्दौ पद्मे द्विरेफः भ्रमरः चन्द्रे मृगाङ्करूप-मसीविलिप्तौ कृतौ। प्रतीपलक्षणं। उपमानस्य धिक्कार उपमेयस्तुतौ यदि। प्रतीपमुपमानस्य धिक्कृत्यै चोपमेयता। उपमानयोरम्बुजेन्द्वोर्धिक्कारः उपमेयस्य राधावक्त्रस्य स्तुतौ प्रतीपः ॥१४४॥ राधागुणानां महिमा न वर्णनीयः इति यूयं जानीथ नोऽस्माभिस्तत्तत्कथनैरलं व्यर्थं। अत्र हेतुगर्भविशेषणमाह। गणनामतिक्रम्य गच्छन्तीति गणनातिगा स्तेषां अन्यस्य का वार्त्ता वणी सरस्वती तस्या वचः सम्पदोऽगोचराणां। आक्षेपो वक्तुमिष्टस्य यो विशेषविवक्षया। निषेधो वक्ष्यमाणत्वेनोक्तस्तेन च स द्विधा। वक्तुमिष्टस्य राधागुणमहिम्नो विशेषं वक्तुमिच्छया उक्तो निषेधोऽत्र आक्षेपालङ्कारः ॥१४५॥

विषम अलङ्कार है, कार्य कारण का गुण विरुद्ध, क्रिया विरुद्ध, आरब्ध कर्म विफल होना, एवं विफल होकर भी अनर्थ का सम्भव एवं एक वस्तुमें अत्यन्त स्थिति असम्भव है, इस प्रकार विरुद्ध पदार्थद्वय का संघटन को विषम अलङ्कार कहते है। यहाँ राधाकी सृष्टि करने में इच्छुक होकर अपरापर युवतिवृन्द की सृष्टि की हैं, एवं सार संग्रहकर औरभी युवति का निम्मार्ण किए हैं, किन्तु कोई भी श्रीराधाके सदृश नहीं है, अथच पूर्वसृष्टि व्यर्थ होगई है, इस प्रकार वर्णनसे आरम्भ की विफलता एवं अनर्थ का सम्भव से विषमालङ्कार है ।।१४३।। विधाताने, निर्म्मित श्रीराधाके मुखमण्डलको देखकर पद्म एवं चन्द्रको अनेक दोषोंसे युक्त देखकर उसकी अशुद्धता को सूचित करने के लिए लोकरीति से पद्ममें भ्रमररूप मसी एवं चन्द्रमें कलङ्करूप मसी अर्पण पूर्वक विलिप्त किया है, उपमान की निन्दा उपमेय भाव होता है, तव उसे प्रतीप कहते हैं। इस श्लोकमें विधाता का राधावदन का निम्मार्ण में पद्मचन्द्र को अनेक दोषों से दूषित देखकर भ्रमर एवं कलङ्करूप मसीके द्वारा उसे विलिप्त किये हैं, यहाँ पद्म एवं चन्द्रकी निन्दा होने परभी श्रीराधा

इत्थं सालङ्कारकाव्यैः सहासं कृष्णः कान्तां वर्णिताङ्गीं सखीभिः।
पश्यत् फुल्लत्सङ्कुचद्भुग्ननेत्रां नेत्र श्रुत्योस्तृप्तिमुच्चैरवाप॥ ॥१४६॥

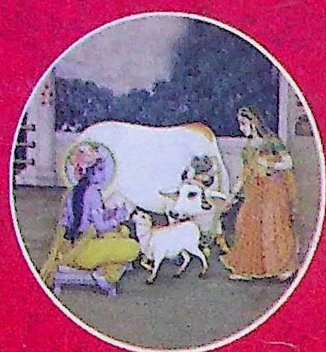
श्रीचैतन्यपदारविन्दमधुप श्रीरूपसेवाफले
दिष्टे श्रीरघुनाथदासकृतिना श्रीजीवसङ्गोद्गते।
काव्ये श्रीरघुनाथभट्टवरजे गोविन्दलीलामृते
श्रीराधातनुवर्णनामयः इतः सर्गोऽयमेकादशः॥११॥

इत्थं सखीभिः सहासं यथा स्यात्तथा सालङ्कारकाव्यैर्वणिताङ्गीं कान्तां उल्लासेन फुल्लत् लज्ज्या सङ्कुचत् क्रोधेन भुग्नं च नेत्रं यस्यास्तां। पश्यन् कृष्णः नेत्रश्रुत्योरुच्चैस्तृप्तिमवाप॥१४६॥

॥ ※॥ इति श्रीगोविन्दलीलामृते श्रीराधातनुवर्णनामय एकादशसर्गः इतः समाप्तोऽभूत्। इति सदानन्दविधायिन्यामेकादशसर्गार्थः॥ ※॥

वदनके साथ पद्म एवं चन्द्र का सादृश्य हुआ है।१४४। श्रीराधाके असंख्य गुण गणकी महिमा का वर्णन कभी भी नहीं हो सकता है, इसको तुमसब जानती हो, अतएव उनगुण समूहका वर्णन करने की आवश्यकता नहीं है, दूसरे की बात ही क्या है ? उक्त गुण समूह सरस्वती का अगोचर है। किसी की वर्णना करने में प्रकृत्त होकर उसका निषेध, विचार पूर्वक होनेसे आक्षेप अलङ्कार होता है, यहाँ श्रीराधाका गुण वर्णन करने की इच्छा होने परभी उक्त गुण जों वाक्य मन का अगोचर है, यह जानकर उससे विरत होना ही यहाँ आक्षेप अलङ्कार है।।१४५।। इस प्रकार सखियोंने सहास्य अलङ्कार युक्त काव्य समूहके द्वारा जिनकी वर्णना की एवं समधिक उल्लाससे उल्लसित एवं लज्जासे सङ्कुचित व क्रोध से जिनके नेत्र कुटिल होगए हैं, उन परमकान्ता श्रीराधाको श्रीकृष्ण देखकर श्रवण नयन को तृप्त किए हैं, अर्थात् श्रीराधा देह वर्णनारूप अलङ्कार समन्वित सखिगण द्वारा निर्मित काव्य को सुनकर कर्णद्वय को तृप्त किए।।१४६।। श्रीकृष्णचैतन्य महाप्रभुके पदारविन्दके मधुपानकारी भ्रमर स्वरूप श्रीरूपगोस्वामी की सेवासे उत्पन्न, श्रीरघुनाथ दास गोस्वामी द्वारा प्रेरित, श्रीजीव गोस्वामीके सङ्गसे प्राप्त एवं श्रीरघुनाथ दास गोस्वामीके वर प्रभाव से उद्भूत श्रीगोविन्दलीलामृत नामक काव्यमें श्रीराधा का अङ्गवर्णनमय एकादशसर्ग समाप्त हुआ ।।११।।





वृन्दावन में कालीदह नामक एक प्राचीन तीर्थ स्थान है। आज से लगभग ५००० वर्ष पूर्व श्रीकृष्णजी ने इस स्थान पर कालीयनाग को यहाँ से निष्कासित कर यमुना के प्रदूषित जल को शुद्ध किया था।

वर्तमान समय में भगवान् श्रीकृष्णजी की इसी पवित्र लीलास्थली पर ''श्रीहरिदास निवास'' एक प्राचीन दर्शनीय आश्रम है। इस आश्रम में एक अतीव भव्य-मन्दिर है, जिसमें कलियुग पाव अवतार श्रीचैतन्यमहाप्रभुजी एवं उनके प्रिय पार्षद श्रीगदाधर पण्डित, श्रीमती राधा एवं श्रीगोविन्ददेवजी के श्रीविग्रह विराजमान हैं। इसी आश्रम के आँगन में सिद्ध बाबा श्रीरामकृष्णदासजी पण्डित बाबा के एकमात्र शिष्य श्रीविनोदविहारी गोस्वामी वेदान्तरत्न महाशयजी की समाधि एवं एक अतीव प्राचीन श्रीहरिदासेश्वर हनुमानजी का मन्दिर भी है। यहाँ पर श्रीठाकुरजी की सेवा शास्त्रीय पद्धति से होती है तथा श्रीठाकुरजी के दर्शन सायंकाल में होते हैं। इस आश्रम के संस्थापक वृन्दावन के प्रसिद्ध सन्त ''श्रीहरिदास शास्त्रीजी महाराज'' हैं। आप न्याय, वैशेषिक, काव्य, व्याकरण, मीमांसा, वेदान्त इत्यादि नवतीर्थ उपाधियों से अलंकृत हैं। देश-विदेश के प्रचुर विद्यार्थी आपसे वैदिक साहित्य का विधिवत् अध्ययन करते हैं।

स्थानीय एवं दूरवर्ती प्रदेश के अनेक जिज्ञासु यहाँ आकर अपनी जिज्ञासाओं का शास्त्र-सम्मत समाधान प्राप्त करते हैं। महाराजश्री का दर्शन सन्ध्या के समय ही उपलब्ध होता है।

गौशाला

आश्रम के अग्रभाग में एक बृहद् गौशाला है। जिसमें गोवंश की संख्या लगभग १३० है। यहाँ पर गाय की सेवा गाय के अनुकूल रूप में ही जाती है न कि व्यवसाय की दृष्टि से। गाय श्रीकृष्णजी की भी पूज्य हैं जो कि उनकी भौमलीला से विदित है। उनको आदर्श मानकर ही यहाँ पर गाय की सेव्यरूप में सेवा की जाती है। गो-सेवा के लिए ''श्रीहरिदास गऊ संस्थान'' नामक ट्रस्ट की स्थापना की गयी है तथा तेहरा ग्राम के निकट ११ एकड़ भूमि भी खरीदी गयी है, वहाँ पर एक और नवीन बृहद् गौशाला है। वृद्धावस्था में भी महाराजश्री गो-सेवा स्वयं करते हैं। इस आश्रम का वातावरण प्राचीन समय के ऋषिकुलों जैसा है। आश्रम में एक विराट् ग्रन्थागार है जिसमें प्रचुर प्राचीन मुद्रित एवं हस्तलिखित ग्रन्थ उपलब्ध हैं। आश्रम की एक ''प्रेस'' भी है जिसका नाम ''श्रीगदाधर गौरहरि प्रेस'' है। इस प्रेस से अभी तक लगभग ८० ग्रन्थों का संस्कृत, हिन्दी एवं बँगला भाषा में प्रकाशन हो चुका है।